आधुनिक तर्कशास्त्र की भूमिका

लेखक

डॉ० संकठा प्रसाद सिंह

एम० ए०, डी० फिल०

दर्शन विभाग, मगध विश्वविद्यालय

बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी

पटना—३

प्रस्तावना

शिक्षा-सबधी राष्ट्रीय नीति--सकल्प के अनुपालन के रूप मे विश्वविद्यालयो मे उच्चतम स्तरो तक भारतीय भाषाओ के माध्यम से शिक्षा के लिए पाठ्य-सामग्री सुलभ करने के उद्देश्य से भारत सरकार ने इन भाषाओ मे वि विषयो के मानक ग्रथो के निर्माण, अनुवाद और प्रकाशन की योजना परि सत की है। इस योजना के अतर्गत अग्रेजी और अन्य भाषाओ के प्रामाणिक ग्र का अनुवाद किया जा रहा है तथा मौलिक ग्र थ भी लिखाए जा रहे हैं। यह कार्य भारत सरकार विभिन्न राज्य सरकारो के माध्यम से शत-प्रतिशत अनुदान देकर तथा अशत' केंद्रीय अभिकरण द्वारा करा रही है। प्रत्येक हिंदी-भाषी राज्य मे इस योजना के परिचालन के लिए भारत सरकार के शत-प्रतिशत अनुदान से राज्य सरकार द्वारा स्वायतशासी-निकाय की स्थापना हुई है। बिहार मे इस योजना का कार्यान्वयन बिहार हिंदी ग्रथ अकादमी के तत्त्वावधान मे हो रहा है।

योजना के अतर्गत प्रकाश्य ग्र थो मे भारत सरकार द्वारा स्वीकृत मानक पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया जाता है, ताकि भारत की सभी शैक्षणिक सस्थाओ मे समान पारिभाषिक शब्दावली के आधार पर शिक्षा का आयोजन किया जा सके।

प्रस्तुत कृति 'आधुनिक तर्कशास्त्र की भूमिका' डॉ० सकठा प्रसाद सिंह द्वारा लिखित मौलिक ग्रथ है। डॉ० सिंह अपने विषय के जाने-माने विद्वान हैं तथा उनको अध्ययन-अध्यापन का व्यापक अनुभव है। यह ग्रथ विद्यार्थियो के लिए महत्त्वपूर्ण है।

आशा है, अकादमी द्वारा मानक ग्र थो के प्रकाशन-सबधी इस प्रयास का सभी क्षेत्रो मे स्वागत किया जायगा।

पटना

दिनाक

अध्यक्ष

बिहार हिंदी ग्र थ अकादमी

स्व० पूज्य पिता जी

एव

स्व० पूजनीया माता जी

की

पुण्यस्मृति मे

भूमिका

हिंदी मे निगमन एव आगमन तर्कशास्त्र पर पुस्तकों की कमी नहीं है, फिर भी मैंने यह लघु प्रयास किया है। इसके पीछे मेरा एक विशिष्ट अभिप्राय है, पारपरिक तर्कशास्त्र को नवीन दृष्टिकोण से देखना। आधुनिक तर्कशास्त्र का आधार तो पारपरिक तर्कशास्त्र ही है, पर आधुनिक तर्कशास्त्र परपरा से प्राप्त सामग्री मे कुछ जोड-घटाव भी करता है। प्रस्तुत पुस्तक मे उन स्थलो की ओर कुछ सकेत किया गया है। उन सबका विस्तार से वर्णन तो सभव नही था, पर एक भूमिका तैयार कर दी गई है। निगमन की पराकाष्ठा प्रतीकों मे हुई है, जो गणितशास्त्र का अग बन गया है। इसमे कुछ सामान्य प्रतीको का भी उल्लेख किया गया है। नवीन धारा मे निगमन और आगमन, तर्कशास्त्र के अविभाज्य अग माने जाते हैं। किसी एक को छोडना पुस्तक को अधूरा ही रखना है। अत, इस पुस्तक मे दोनो को सम्मिलित किया गया है। आगमन का आधार अनुभव है और निगमन का गणित। ये दोनो अलग-अलग मापदड हैं। किसी एक को दूसरे पर लागू करने मे केवल भ्राति का सामना करना पडता है। यदि हम आगमन से प्राप्त निष्कर्षों पर निगमन का मापदड लगाएँ तो वे सभी दोषपूर्ण दिखलाई पडेगे। पर, वास्तव मे वे वैसे दोषपूर्ण होते नही। आगमन मे हम अनुभव के आधार पर प्रमाण इकट्ठा करते है और उसी के आधार पर निष्कर्ष निकालते है। प्रमाणो के अनुसार ही निष्कर्ष विभिन्न कोटि की सत्यता वाले होते हैं। आगमन के निष्कर्षों पर निगमन के निष्कर्षों की तरह केवल वैध-अवैध या 'हाँ'-'ना' का उत्तर नही लागू हो सकता। दोनो अलग-अलग मापदड हैं और अलग-अलग क्षेत्रो पर लागू होते हैं। जीवन मे दोनों की उपादेयता है। दोनो मिलकर तर्क-पद्धति को पूरा करते हैं। अत, दोनो को साथ-साथ रखना आवश्यक है। अत मे मैंने व्याप्ति के स्वरूप और स्थापना तथा हेत्वाभास पर भारतीय तर्कशास्त्रियो का मत देने के लिये एक अलग अध्याय रखा है। इससे स्पष्ट होता है कि भारत मे आगमन पद्धति पर भी कितना वल दिया गया है।

इस ग्रथ के प्रणयन मे हमे डॉ० याकूब मसीह, आचार्य एव अध्यक्ष स्नातकोत्तर दर्शन विभाग, मगध विश्वविद्यालय, से बडी प्रेरणा मिली। सर्वप्रथम उन्होंने ही मुझे इस पुस्तक को लिखने के लिये प्रोत्साहित किया और समय-समय पर

मूल्यवान परामर्श भी दिए। अत, मै उनके प्रति अपना हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ। मेरे दो मित्रो, डॉ० भुवनेश्वर नाथ मिश्र 'माधव', प्राचार्य, गया कालेज, गया एव डॉ० पूर्णमासी राय, प्राध्यापक, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, मगध विश्वविद्यालय, ने भी मुझे इस पुस्तक को लिखने के लिये बहुत ही प्रोत्साहित किया। भाषा-परिष्कार मे हमे इनसे प्रर्याप्त सहायता मिली। डॉ० राय ने तो मेरी पाडुलिपि को आद्योपात पढकर स्थल-स्थल पर मूल्यवान सुझाव भी दिये। मैं अपने इन दोनो मित्रो के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। पाडुलिपि एव हिंदी-अग्रेजी शब्दावली तैयार करने मे मेरे दो विद्यार्थियो ने बडी सहायता की है। वे हैं श्री शिवजी पाडेय, एम० ए० (रिसर्च स्कालर, दर्शन विभाग) एव श्री श्रीनिवास तिवारी, एम० ए० (प्राध्यापक, दर्शन विभाग, गया कालेज)। मैं अपने इन दोनो शिष्यो के भविष्य की मगल-कामना करता हूँ।

बिहार हिंदी ग्र थ अकादमी, पटना के पदाधिकारियो ने अल्पकाल मे ही इस ग्र थ को प्रकाशित कर इतना उपकृत किया है कि धन्यवाद-ज्ञापन की औपचारिकता से उसका मूल्य नही चुकाया जा सकता। इन लोगो की अहैतुकी कृपा के बिना निश्चय ही यह पुस्तक इतना शीघ्र प्रकाश मे न आ पाती।

इस पुस्तक के निर्माण मे जिन ग्र थो एव व्यक्तियो से सहायता ली गई है, उन सबके प्रति आभार प्रकट करना अपना पुनीत कर्त्तव्य समझता हूँ। विषय-विवेचन एव रचना-शिल्प को उपादेय बनाने के लिये मै अपने सहृदय पाठको के बहुमूल्य सुझावो का हार्दिक स्वागत करूँगा। विद्वानो के द्वारा समादृत होने पर ही मुझे आत्मतोष प्राप्त होगा।

आ परितोषाद्विदुषा न साधु मन्ये प्रयोग विज्ञानम्।

सकठा प्रसाद

स्नातकोत्तर दर्शन विभाग
मगध विश्वविद्यालय
बोध गया
(महाशिवरात्रि, सवत् २०२८)
२३ फरवरी, सन् १९७१ ई०

विषय-सूची

अध्याय १

तर्कशास्त्र का अध्ययन

१. तर्कशील चितन का स्वरूप

किसी विज्ञान का अध्ययन उसकी परिभाषा से प्रारभ होता है। किंतु इस पद्धति मे कठिनाई है कि जब तक विषय का पर्याप्त ज्ञान न हो परिभाषा समझ मे नही आती। और कही परिभाषा पर विद्वानो मे मतैक्य न हो तो कठिनाई बहुत बढ जाती है, क्योकि सभी परिभाषाओ के तुलनात्मक अध्ययन के लिये विषय के गभीर ज्ञान की आवश्यकता होती है। अत विषय-वस्तु के कुछ सामान्य वर्णन से ही प्रारभ करना समीचीन है।

यदि आश्चर्य मे डालनेवाली, या अप्रिय बात हमसे कही जाती है तो वक्ता से पूछने की इच्छा होती है 'तुम इसे कैसे जानते हो?' प्राय ऐसे प्रश्न कारण पूछने के लिये होते हैं हम कही हुई बात का आधार जानना चाहते हैं, सूचना देनेवाले व्यक्ति के मन मे विचार की कैसी पद्धति उठी जिससे उसने ऐसी बात कही, इससे हमारा कोई प्रयोजन नही, हम यहा विश्वास योग्य कुछ आधार ढूढ रहे हैं, कथन को बिना प्रमाण मान लेने के लिये हम तैयार नही है। ऐसे प्रश्नकर्त्ता को सतुष्ट करने के लिये उत्तर का रूप इस प्रकार का होगा "क्योकि यह (जो बात पहले कही गई थी) इन-इन बातो से निकलती है।"

यह मान लिया जाता है कि पाठक को उपर्युक्त पैराग्राफ समझने मे कोई कठिनाई नही होगी, तर्कशास्त्र के अध्ययन मे युक्ति के आधार के रूप मे प्रमाण का कितना अधिक महत्व है, इससे हम पहले ही से अवगत हैं। इस पुस्तक मे यह निर्विवाद मान लिया गया है कि तर्क मे हमारी रुचि मुख्यत प्रमाण के क्षेत्र तक ही सीमित है। हमारा अभिप्राय है उन सिद्धातो की समीक्षा करना जिनके अनुसार हमारी या अन्य लोगो के कथित वक्तव्य को स्वीकार या इनकार करना न्यायसगत होता है, अपने नित्य-जीवन के बहुत बडे भाग मे हमलोग बिना किसी झिझक के जो सुनते है या

पढते है अथवा जो अपने प्रश्न के उत्तर के रूप मे पाते है, उसे स्वीकार करते है। यह शायद ही हमारे मन मे आता है कि जो सामान्यत. सत्य मान लिया गया है उसपर प्रश्न चिह्न लगायें, उदाहरणार्थ हमारी बिल्ली बिल्ली का बच्चा पैदा करेगी, कुत्ता का बच्चा नही, यदि हम गेहूं का बीज बोयेंगे तो गेहूँ मिलेगा मटर का दाना नही, पत्थर का टुकडा तालाब मे फेंका जाय तो वह डूब जायगा और छोटी-छोटी लहरें गिरने वाले स्थान से चारो ओर फैल जायगी, उत्तरी गोलार्द्ध मे हमे कभी भी सूर्य ठीक उत्तर नही दिखलाई पडेगा, अतन' हम सभी मरेंगे। ऐसे असख्य उदाहरण दिये जा सकते हैं। हममे से अधिकाश व्यक्ति इन विचारो के लिये कारण भी प्रस्तुत कर सकते है लेकिन प्राय इसकी आवश्यकता प्रतीत नही होती। हमारे जीवन के साधारण नित्य-कार्य अधिकाशत बिना किसी समीक्षा के चलते रहते हैं, लिफाफे मे चाकू डालकर चलाया जाय तो वह उसे फाड देगा, यदि काफी का प्याला उलट जाय तो मेजपोश पर दाग लग जायगा, यदि हम स्विच दबाये तो बिजली का प्रकाश हो जायगा। यदि हम इन बातो को मान न ले तो सामान्यत हमारा नियमित जीवन इस प्रकार नही चल सकता।

मन की यह अचिंतनशील अवस्था सदैव बनी नही रह सकती हमारे कथन पर आपत्ति उठाई जा सकती है या हमारी परिस्थितियो मे अनपेक्षित परिवर्तन हो सकते है। हमे पर्याप्त अवकाश हो सकता है और जिज्ञासु प्रवृति के कारण केवल अपनी ही जिज्ञासा को शात करने के लिये हम बुद्धिमान बालक की भाति प्रश्न पूछना प्रारभ कर सकते है। इसी प्रश्नशील विचारधारा को चिंतन कहते है कठिनाइयो के समाधान का प्रयास मुख्यत तर्कशील चिंतन है। अत प्रश्न पूछने और उन प्रश्नो के उत्तर ढूढने को, ताकि समस्या का समाधान हो सके, तर्कशील चिंतन कहते है।

अलीक कल्पना या दिवास्वप्न से तर्कशील चिंतन की भिन्नता स्पष्ट है। तर्कशील चिंतन मे हमारे विचार किसी लक्ष्य की ओर अग्रसर होते है—वही समस्या का समाधान होता है जिसने हमे चिंतन के लिए प्रेरित किया था। चिंतन एक मानसिक प्रक्रिया है जिसमे हम एक विचार से दूसरे विचार पर जाते है। इस प्रक्रिया मे विचार मूलतत्त्व है जिसे स्पष्ट करने के लिये पूर्ण वाक्य की आवश्यकता पडती है। जब एक विचार चेतनतापूर्वक दूसरे से सबधित हो ताकि उससे वह लक्ष्यीभूत निष्कर्ष निकल सके तो उसे तर्क करना (Reasoning) कहते है।

तर्क करना प्रचलित क्रिया है, हम सभी लोग अधिक या कम, अच्छे या बुरे रूप मे तर्क करते है। हम ज्ञान के विभिन्न प्रकरण को एक दसरे से जोडते है और

निष्कर्ष निकालते है, हम निश्चित करते हैं कि यदि किसी कथन का सत्य होना मालूम है तो कतिपय दूसरे बयान भी सत्य हैं और उन्हे अवश्य स्वीकार करना चाहिये। यह कहने मे कि दूसरा अवश्य स्वीकृत होना चाहिये, हम कह रहे है कि, यदि हम तार्किक रीति से चितन कर रहे हैं तो हम उन्हे स्वीकार करेंगे, अर्थात् यदि हम पहले को स्वीकार करे और दूसरे को अस्वीकार तो हमे चिंतनशील प्राणी नही कहना चाहिये।

२ युक्ति

निम्नलिखित परिच्छेद वासवेल्ट कृत जान्सन की जीवनी से लिया गया है, इसपर विचार करें।

मैने सहिष्णुता का प्रसग प्रारभ किया। जान्सन "सामाजिक शाति और व्यवस्था को सुरक्षित रखना प्रत्येक समुदाय का अधिकार है, इसलिये हानिकर प्रवृति रखनेवाले विचारो का प्रसारण रोकना उसका अच्छा अधिकार है। यह कहना कि मजिस्ट्रेट (दडाधिकारी) को यह अधिकार है, अपर्याप्त शब्द का व्यवहार करना है, वह समुदाय है जिसका मजिस्ट्रेट प्रतिनिधि है। ऐसे मत के प्रसारण मे जिन्हें वह हानिकारक समझता है, नैतिक या धार्मिक दृष्टि से गलत हो सकता है, पर राजनीति की दृष्टि से वह ठीक है।" मेयो "महाशय, मै समझता हूँ कि धर्म मे प्रत्येक व्यक्ति को अतरात्मा की स्वतत्रता का अधिकार है, उस अधिकार पर मजिस्ट्रेट प्रतिबध नही लगा सकता।" जान्सन "महाशय, मै आपसे सहमत हूँ। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी अतरात्मा की स्वतत्रता का अधिकार है और मजिस्ट्रेट उसमे हस्तक्षेप नही कर सकता। पर लोग सोचने की स्वतत्रता को बोलने की स्वतत्रता से मिला देते है, इतना ही नही उसे अपने मत के प्रचार की स्वतत्रता से भी सभ्रमित कर देते है। प्रत्येक मनुष्य को जैसा वह चाहे वैसा सोचने की शारीरिक स्वतत्रता है क्योकि यह तो मालूम भी नही हो सकता कि वह कैसे सोच रहा है। नैतिकता का कोई ऐसा प्रतिबध नही है कि वह उसकी सूचना दे और शुभ ही सोचे। लेकिन, महाशय, जिसे समाज ने सत्य स्वीकार किया, उसके प्रतिकूल किसी मत के प्रचार का अधिकार समाज के किसी सदस्य को नही है। मेरा कहना है कि मजिस्ट्रेट सोचने मे गलती कर सकता है पर जब वह अपने को ठीक समझता है तो जो सोचता है उसे वह लागू कर सकता है और उसे लागू करना भी चाहिये।" मेयो "तब तो महाशय, हमलोगो को सदैव असत्य मे रहना पडेगा, सत्य की कभी विजय नही हो सकती, और प्रथम ईसाई पर अत्याचार कर मजिस्ट्रेट ने ठीक किया।"

जान्सनः "महाशय, सत्य को स्थापित करने का केवल एक ही रीति है—वलिदान। जो सोचता है उसे लागू करने की मजिस्ट्रेट को अधिकार है, और जिसे सत्य का बोध है उसे कष्ट सहने का अधिकार है। मै समझता हूँ कि सत्य को खोज निकालने का दूसरा कोई मार्ग नही है, केवल एक ओर से अत्याचार, दूसरी ओर से उसका सहन।"*

यह बातचीत तार्किक वार्तालाप का उदाहरण है। यह तार्किक है क्योकि इसमे वक्ता के विचार इस प्रकार जुडे हुए है कि उससे निष्कर्ष निकलता है, अर्थात् इसमे ऐसे कथन की ओर निर्देश है जो तर्क का न्यायिक समापन करता है। कुछ कथन को तथ्यरूप मे मान लिया गया था जिनसे निष्कर्ष पाया गया। ये कथन आधार वाक्य (Premises) कहे जाते है। आधार वाक्य वह कथन है जिससे दूसरा कथन जिसे निष्कर्ष (Conclusion) या निगमन कहते है, निकाला जाता है। इस प्रकार आधार वाक्य और निगमन एक दूसरे से सबधित है। जैसे 'प्रत्येक मनुष्य को पति नहीं कहते वैसे ही प्रत्येक कथन को आधार वाक्य नही कहते'। पर जैसे मनुष्य वैवाहिक सबध के कारण पति हो जाते है वैसे ही कथन निगमन को प्रमाणित करने वाले सबध मे आने पर आधार वाक्य हो जाते है। सामान्यत किसी निगमन की स्थापना के लिये एक से अधिक आधार वाक्यो की आवश्यकता होती है, और एक तरह के कथन या कथन-समूह से एक से अधिक निगमन निकाले जा सकते है। जब कभी हमलोग ऐसे शब्द का व्यवहार करते है जैसे 'इसलिये', 'इससे यह निकलता है' 'अत' 'फलत' तो यहाँ दावा करते है कि आधार वाक्य दिये गये है जिनसे हमारा निष्कर्ष निकाला जा सकता है।

जब कभी हम 'क्योकि', 'चूँकि', 'इस कारण से', 'इस वजह से' कहते है तथा पहले से निकाले हुये निर्णय को आधार-वाक्य देने का प्रदर्शन करते है, अर्थात् अपने निगमन के लिये प्रमाण उपस्थित करते है। आधारवाक्य निगमन के लिये प्रमाण तभी बन सकते है जब वे उससे किसी विशेष रूप से सबधित हो। निगमन और आधार वाक्यो के बीच का सबध जो हमारे कथन की पुष्टि करता है कि निगमन आधार वाक्यो से निकलता है, निहितार्थ सबध (Relation of implication) कहा जाता है। जहा यह सबध होता है वहाँ निगमन आधार वाक्यो मे निहित रहता है, और निगमन आधार वाक्यो से क्रमश निकलता है (Follows from) उदाहरणार्थ दो बयानो का सयुक्त कथन लें प्रत्येक समाज को खतरनाक प्रवृत्ति वाले विचारो के प्रचार को रोकने का अधिकार है, और ये विचार खतरनाक प्रवृत्ति वाले

*बासवेल : जान्सन की जीवनी (ग्लोब सस्करण) १६२२ पृ० २६५

है, तो इसमे निहित है कि समाज को इन विचारो के प्रचार को रोकने का अधिकार है।

यहा यदि आधार वाक्य सत्य है तो निगमन भी सत्य है। उसमे से किसी एक आधार वाक्य की सत्यता को हम अस्वीकार कर सकते है, या दोनो को अस्वीकार कर सकते है, ऐसी परिस्थिति मे हम निगमन को तर्कसगत दृष्टि से मानने के लिए बाध्य नही है, पर हमे भी आधार वाक्य या वाक्यो को आमान्य सिद्ध करने का कारण देना पड़ेगा। ऐसा करना तर्क करना कहा जाता है।

बासवेल ने जिस बातचीत का वर्णन दिया है उस पर पाठक यदि पुन: ध्यान दें तो वे पायेंगे कि जान्सन अपने निष्कर्षो की पुष्टि के लिये आधार वाक्य देने मे लगे थे।* पाठक जान्सन के निगमन को अस्वीकार कर सकते हैं, पर यदि ऐसा हुआ तो वे स्वय तार्किक चिंतन मे लग जायँगे—आधार वाक्यो से निष्कर्ष निकालना अथवा निष्कर्ष रूप में किसी ऐसे कथन की पुष्टि मे आधार वाक्य ढूँढना जिसे पहले शायद बिना तर्क के मान लिया गया था। जान्सन का तर्क विवादास्पद विषय के प्रसग मे था और उन्होने बहुत कुछ विवादपूर्ण ढग से उसे चलाया भी था। तर्क करने की यह अनिवार्य रीति नही है। यद्यपि हमलोग एक दूसरे से गरमा-गरम बहस करते है फिर भी कभी-कभी तर्क-वितर्क करने का हमारा एकमात्र लक्ष्य होता है न्यायसगत निष्कर्ष पर पहुँचना। वाद-विवाद करने की यही भावना तार्किको का उद्देश्य है और इसी दृष्टि से कोई युक्ति कथनो का समूह मात्र है जिसमें एक कथन (निगमन) शेष कथनो (आधार वाक्य) के आधार पर स्वीकार किया जाता है। प्राय जिस निगमन की हम स्थापना करना चाहते है वह आधार वाक्यो से इतना सुदृढ तार्किक सबध से सबधित नही रहता कि वह उनमे निहित कहा जाये, निगमन को सिद्ध करने के लिये, बीना अकाट्य तार्किक प्रमाण हुये भी, आधार वाक्य प्रमाण की आवश्यकता की पूर्ति कर सकते है, ऐसे स्थल पर सबध को **सभाव्यता सबध**

*जान्सन की युक्ति को विद्यार्थियो को फिर पढना चाहिये और उसकी बनावट की व्याख्या की कोशिश करनी चाहिये। ध्यान देना चाहिये कि जान्सन (i) अपने विश्वास को दृढतापूर्वक कहते है (तर्क मे जिसका उल्लेख है) और उसके लिये कारण देते हैं (ii) (तर्क मे मान लेनेवाले व्यक्ति की टिप्पणी के उत्तर में) कुछ विशेष कथनो की आवश्यकता दिखाते हैं, (iii) उन विशेष कथनो के आधार पर फिर आगे कुछ कहते है, (iv) अपनी मूल धारणा पर लगाई गई आपत्ति का उत्तर देते हैं यह मानते हुये कि वह आपत्ति अनिवार्य निष्कर्ष है।

(Probability relation) कहते है। जब निष्कर्ष आधार वाक्यो मे निहित रहता है तो तर्क को निगमनात्मक (Deductive) कहते हैं, जब आधार वाक्य निष्कर्ष को सिद्ध करने के लिये पर्याप्त नही होते, लेकिन फिर भी निष्कर्ष के पक्ष मे प्रमाण का कुछ बल रखते है तो तर्क को आगमनिक (Inductive) कहते हैं। आगमनिक तर्क में आधार वाक्य सत्य हो सकते है फिर भी निष्कर्ष असत्य, इस प्रकार प्रमाण कितने भी सबल हैं पर अनिर्णयात्मक (Inconclusive), विवादग्रस्त। इस प्रकार के तर्क का अध्ययन हमलोग बाद में करेंगे। निगमनिक तर्क मे यह नही हो सकता कि आधार वाक्य सत्य हो और निष्कर्ष असत्य, अत ऐसे स्थल पर प्रमाण को यथार्थत निर्णयात्मक कहते हैं।

अपने निष्कर्ष की पुष्टि के लिये जिन आधार वाक्यो की आवश्यकता पडती है और जिन्हे चिंतनोपरात नि सकोच स्वीकार कर लेना चाहिये, साधारण बाद-विवाद मे हम प्राय: उन सबको नही कहते, इससे भी कम हमलोग ठीक पहचान कर पाते हैं कि निष्कर्ष की पुष्टि के लिये आधार वाक्य क्यो पर्याप्त होते है (जब वे पर्याप्त है)। व्यवहार में हमारे तर्क बहुधा बहुत अधिक सक्षिप्त रहते है, स्वत स्पष्ट अथवा सर्वमान्य होने के कारण हमलोग आधार वाक्यो को छोड देते है। हमारे अधिकाश प्रयोजनो के लिये यह रीति काफी अच्छी है तथा असह्य लबे-लबे कथनो से बचने के लिये इसकी और भी आवश्यकता पडती है। फिर भी यह निरापद नही है, क्योकि हो सकता है कि तर्क की वैधता किसी ऐसे अव्यक्त या अस्पष्ट आधार वाक्य पर आश्रित हो जिसे स्पष्ट कर देने के बाद न माना जाय। आगे हमलोग देखेंगे कि किस प्रकार आधार वाक्यो को छोडना हेत्वाभासिक तर्क का सामान्य कारण है।

३. वैधता और सत्य

हमने अभी एक वाक्याश का व्यवहार किया है 'वैधता और सत्य।' यदि आधार वाक्यों की सत्यता निगमन की सत्यता को अनिवार्य कर दे तो तर्क वैध है, यह कहना समतुल्य है कि निगमन असत्य है तो आधार वाक्य सत्य नही हो सकते, या, दूसरे शब्दो मे, तर्कानुसार आधार वाक्यो में निगमन निहित है। अभी हमने वैध तर्क में निगमन तथा आधार वाक्यो के बीच के सबध को प्रकट करने के लिये तीन वैकल्पिक अभिव्यजनायें दी है। ध्यान देने की बात है कि हम इन अभिव्यजनाओ की परिभाषा नही करते, केवल मान लेते हैं कि इनमें से कम-से-कम किसी एक को पाठक समझता है—जैसे, निगमन असत्य है तो आधार वाक्य सत्य नही हो सकते,

उसे समझ होनी चाहिये कि अन्य दूसरी अभिव्यजनाये उसी चीज को कहने की वैकल्पिक रीति है। इसके अलावा यह मान लिया गया है कि पाठक 'सत्य' और 'असत्य' के क्या अर्थ होते हैं वह उसे जानते है। निगमन और आधार वाक्यो के बीच का तार्किक निहितार्थ सबध यह निश्चित नही कर देता कि आधार वाक्य सत्य है, अत तर्क की वैधता किसी प्रकार की ऐसी गारटी या प्रतिश्रुति नही देती कि निगमन सत्य है। जैसे सरदार पटेल की मृत्यु महात्मा गाधी के पहले हुई, और महात्मा गाधी की मृत्यु जवाहरलाल के पहले हुई, इन दो सम्मिलित वाक्यो में 'सरदार पटेल की मृत्यु जवाहर लाल के पहले हुई' निहित है, केवल तार्किक दृष्टि से देखा जाय तो हमलोगो को विश्वास दिलाने के लिये यह पर्याप्त है कि यदि आधार वाक्य सत्य है तो निगमन भी सत्य है, क्योकि निगमन आधार वाक्यो में अवश्य हा निहित है, पर वास्तव में पहला आधार वाक्य गलत है, दूसरा ठीक तथा निगमन ठीक हैं, इसे हम तर्क से नही (यदि जानते हैं तो) बल्कि ऐतिहासिक विवरण (Records) से जानते है। फिर, यह सत्य हो सकता है कि कन्नौज की राजकुमारी सयुक्ता को पृथ्वीराज प्यार करता था और राजकुमारी भी पृथ्वीराज को प्यार करती थी। पर 'पृथ्वीराज राजकुमारी सयुक्ता को प्यार करता था' इससे आवश्यक रूप से यह नही निकलता कि 'राजकुमारी सयुक्ता पृथ्वीराज को प्यार करती थी'। दुर्भाग्यवश बहुत से अपुरस्कृत प्रेमी है। इनमे से दोनो कथन सत्य हो सकते हैं अथवा एक सत्य और दूसरा असत्य, अत इनमे से कोई एक दूसरे मे निहित नही है। पर 'गाधी ने कस्तूरबा से विवाह किया' से 'कस्तूरबा ने गाधी से विवाह किया' अवश्य निकला है और इसका विलोम, इसमे यदि एक कथन सत्य तो दूसरा भी सत्य है और यदि एक असत्य है तो दूसरा भी असत्य है। यह असभव है कि क की शादी ख से हुई हो और ख की क से नही। 'विवाह होने' के अर्थ मे यह तार्किक असभावना निहित है। पर तर्क यह नही निर्धारित करता कि कौन किससे विवाह करना है, कौन किससे प्रेम करता है, मनुष्य कब पैदा होते है या कब मरते है।

तर्क के निम्नलिखित उदाहरणो पर विचार करें

(१) सभी एथेनियन ग्रीक हैं और कोई ग्रीक बारबेरियन नही है, इसलिये कोई एथेनियन बारबेरियन नही है।

(२) सभी आस्ट्रियन जर्मन हैं और सभी जर्मन यूरोपीय हैं, इसलिये सभी आस्ट्रियन यूरोपीय है।

(३) किसी कीडे को छ पैर नही होते और सभी मकडे कीडे है, इसलिये किसी मकडे को छ पैर नही होते ।

(४) लोकसभा के सभी सदस्यो पर बहुत बडा दायित्व है, और जवाहरलाल पर बहुत बडा दायित्व है, इसलिये जवाहरलाल लोकसभा के सदस्य हैं ।

(५) कुछ कवि रोमन कैथोलिक नही हे और पोप की प्रभुसत्ता मानने वाले सभी रोमन कैथोलिक है, इसलिये पोप की प्रभुसत्ता मानने वालो मे कोई भी कवि नही है ।

दो प्रश्नो का उत्तर देने के लिये हम इन पाँचो उदाहरणो मे से प्रत्येक की समीक्षा करेंगे, ये प्रश्न है (i) क्या आधार वाक्य सत्य है ? (ii) क्या तर्क वैध है ? [विद्यार्थियो को चाहिये कि आगे पढने के पूर्व स्वय वे इसकी जाँच करें]

समीक्षा का फल हम सक्षिप्त मे नीचे देते है

क्या आधार वाक्य सत्य है ?	क्या निगमन सत्य है ?	क्या तर्क वैध है ?
(१) दोनो आधार वाक्य सत्य	निगमन सत्य	वैध
(२) पहला आधार वाक्य असत्य	निगमन सत्य	वैध
(३) दोनो आधार वाक्य असत्य	निगमन सत्य	वैध
(४) दोनो आधार वाक्य सत्य	निगमन सत्य	अवैध
(५) दोनो आधार वाक्य सत्य	निगमन असत्य	अवैध

हमारे समक्ष जो दो प्रश्न थे उनके उत्तर देने के अतिरिक्त हमने इसपर भी ध्यान दिया है कि निगमन सत्य है य . असत्य । इन उदाहरणो से हम तीन बात पाते है (क) वैध तर्क से सत्य निगमन मिल सकता है, यद्यपि आधार वाक्य असत्य हो, (ख) दोनो आधार वाक्य सत्य हो सकते है और निगमन भी सत्य हो सकता है फिर भी तर्क अवैध हो सकता है, (ग) आधार वाक्य सत्य हो फिर भी अवैध तर्क से असत्य निगमन मिल सकता है । अत वैधता सत्य पर आधारित नही है । चिंतन से हम पाते हैं कि ऐसा अवश्य होना चाहिये । प्रत्येक कथन के कुछ निहितार्थ (implication) होते है, या जैसा हम कभी-कभी कहते है, निष्कर्ष होते है । उदाहरणार्थ, कोई वैज्ञानिक यह निश्चित करना चाहेगा कि जिस सभावित कल्पना (hypothesis) से जाँच की जाने वाली घटना का स्पष्टीकरण होता है, वह सत्य है या असत्य । कल्पना का रूप इस प्रकार का होता है यदि ऐसी बात है तो ऐसा होगा (जैसे, यदि प्रकाश मे सीमित वेग है तो विभिन्न ग्रहो से प्रकाश, ग्रह से पृथ्वी की दूरी के अनुसार कम

या अधिक समय मे हमारे यहाँ तक पहुँचता है।) निष्कर्ष निकाले जाते है और जहाँ सभव होता है उनकी जाँच की जाती है। यदि निहित निष्कर्ष असत्य है, तो कल्पना को स्वीकार करने का कोई आधार नही है, यदि निहित निष्कर्ष सत्य है तो कल्पना सत्य हो सकती है। जब वैध तर्क के आधार वाक्य सत्य हैं तब तो निगमन भी अवश्य ही सत्य होगा। जब तर्क वैध है और आधार वाक्य असत्य है, तो यह नही कहा जा सकता कि निगमन सत्य होगा किंवा असत्य, फलत निगमन को सत्य के रूप मे स्वीकार करने के लिये हमारे पास कोई आधार नही होना चाहिये जब तर्क अवैध है। और आधार वाक्य सत्य हैं, तो फिर यहाँ भी निगमन को सत्य स्वीकार करने के लिये हमारे पास कोई आधार नही है, ऐसी परिस्थितियो मे हम कह सकते है कि निगमन युक्तिसगत निगमन नही है क्योकि आधार वाक्यो से यह तर्कानुसार नही निकलता अत तर्क अनिर्णयात्मक है। इसीलिये आगस्टस डी मॉरगन कहते है "तर्क का यह निश्चय करना ध्येय नही है कि निगमन सत्य है अथवा असत्य, बल्कि जिन्हें निश्चितपूर्वक निगमन कहा जा रहा है वे निगमन है"।

हमारे पाँचो उदाहरणो मे यह निश्चित करना कठिन नही था कि कथन (आधार वाक्य और निगमन) सत्य थे या असत्य, क्योकि ये कथन सुपरिचित विषय वस्तु के बारे मे थे। इस पुस्तक को पढनेवाला कोई भी व्यक्ति जानता है (ऐसा मान लिया जाता है) कि आस्ट्रियन जर्मन नही है पर आस्ट्रियन और जर्मन दोनो योरोपीय है, और ऐसी ही बात प्रत्येक उदाहरण पर लागू होती है। इन कथनो के सत्य होने का प्रश्न विशिष्ट वस्तुओ के सत्य होने का प्रश्न है या जैसा हम कहेंगे, यह तथ्यात्मक (factual) प्रश्न है। क्या निगमन को सिद्ध करने के लिये आधार वाक्य पर्याप्त है ? यह प्रश्न कथन के तार्किक रूप के बारे मे है। तार्किक रूप मे हम इसकी परवाह नही करते कि क्या आस्ट्रियन जर्मन है, या क्या एथेनियन बारवेरियन नही है, हमारा उद्देश्य पूर्णत तर्क की निर्णयात्मकता है, क्योकि जब तक हमारे तर्क निर्णयात्मक नही है तो हमारे पास निगमन को स्वीकार करने के लिये तार्किक आधार नही है। यदि निगमन आधार वाक्यो से अवश्य निकलता है तो तर्क वैध है, यदि निगमन आधार वाक्यो से नही निकलता तो तर्क अवैध है। तर्क की वैधता कथन के तार्किक रूप पर पूर्णत आश्रित है। तब प्रश्न होता है तार्किक रूप से हमारा क्या अभिप्राय है ?

४. रूप एवं तार्किक स्वरूप

रूप परिवर्तन मे हम सभी परिचित है धूप मे मक्खन की टिकिया छोड दी जाय तो वह तरल हो जाती है, पानी को खौलाने पर भाप

बन जाता है, ठठा करने पर वर्फ, नागरिको के शिष्ट जुलूस पर यदि घुडसवार पुलिस एकाएक धावा वोल दे तो वह अव्यवस्थित भीड हो जाती है, इत्यादि इत्यादि। अतिम वाक्य के 'इत्यादि इत्यादि' का क्या अर्थ है? अन्य और उदाहरण देने के लिये यह पाठको को आमन्त्रित करता है इस विश्वास के साथ कि वे ऐसा करने मे समर्थ होगे, क्योकि सभी उदाहरण एक तरह के है, इनमे कुछ बातें ऐसी है जो एक दृष्टि से समान है, दूसरी दृष्टि से भिन्न। भीड और सुव्यवस्थित जुलूस उन्ही आदमियो से बनता है, पर मिलावट के अनुसार नये-नये सघात बनते है, जब नागरिक सुव्यवस्थित जुलूस मे चलते है तो उमकी बनावट अन्य बनावटो से भिन्न होती है जिनमे वे एक दूसरे को धक्का देते है और दूसरी-दूसरी दिशाओ मे दौडने लगते हैं। सभवत. हमे कहना चाहिये कि भीड 'वेरूप समूह' है क्योकि हम बनावट शब्द वही व्यवहार करना चाहते है जहाँ बनावट मे आनेवाले तत्त्व एक दूमरे से समान और निश्चित सवध से मिले हो। पर बनावट का यह भेद मात्रा की वात है। रबर के एक टूकडे को हम दबाये तो उसकी बनावट वदल जाती है, जब फूँक कर हम उसे खेल का गुब्बारा बना देते हैं तो सापेक्ष रूप रहित टुकडे से उसे तरह-तरह की वनावट मे परिवर्तित कर देते है जिसका अत शायद छोटे से गोल गेंद मे होता है। बनावट (Shape) रूप शब्द (Form) का सबसे सामान्य अर्थ है पर हमलोग अक्सर उसे बहुत ही भिन्न-भिन्न और दूर के अर्थो में व्यवहार करते है। बनावट के अर्थ को हम कितने वृहद् रूप में लेते है यह प्रकट होता है इसके बहुत से एकार्यक या आशिक एकार्थक शब्दो से जैसे, क्रम-व्यवस्था (Arrangement) क्रमबद्धता (Orderliness), स्वरूप (Type), नमूना (Norm), कोटि (Standared), आकार (Design), प्रतिरूप (Pattern)। किसी पोशाक के कागजी प्रतिरूप (Pattern) का आकार और परिमाण उस पोशाक के अनुसार होता है जो उस प्रतिरूप के अनुसार काटा गया है। इसी अर्थ मे कागजी आकृति को प्रतिरूप (Pattern) कहते हैं। दस पैसे तथा बीस पैसे के प्रचलित डाक टिकट का आकार एक-सा है केवल उनमें रग-भेद है, एक रुपये वाले टिकट का रग और आकार इन दोनो टिकटो से भिन्न है। मीट-मोल्ड, जेली और अवलेह ये सभी एक स्वरूप के हो सकते हैं पर उनको बनाने बाले द्रव्यो मे, तत्त्व की दृष्टि से, भिन्नता होती है। सभी लोग भौतिक द्रव्य और स्वरूप के इस भेद को समझते हैं। इसी को हमलोग कभी द्रव्य और रूप (Matter and form) में भेद कहते है। जब कोई बालक अपने खिलौने वाली ईट से घर बनाता हैं तो वह उन ईटो को (भौतिक द्रव्य को) एक विशेष प्रकार से सजाकर रखता है जिसे हम घर का स्वरूप कहते हैं, यह है रचना। सभी वस्तुएँ जिनकी रचना होती है या जिनमें रूप होता है भौतिक द्रव्य

नही होती। उदाहरण के लिये सगीत के रूप पर ध्यान दें। स र ग म सगीत का रूप है जिसमें ध्वनि होती है, पर ये ध्वनिया जैसे-तैसे किसी भी क्रम मे नही रखी जा सकती, उनको सम्मिलित रखने का एक निश्चित ढग है। एक ही ध्वनि को विभिन्न क्रम मे रखकर गाने योग्य राग पा सकते हैं जो पहले के स र ग म से बिल्कुल भिन्न है। हमलोग स्तोत्र स्वरसगीतयुक्त पद और यान्त्रिक सुर (Sonata) के रूपो में भेद करते है, हम कह सकते हैं कि आर्केस्ट्रा (Orchestra) के लिये स्वरसगीत (Symphony) एक यान्त्रिक सुर या 'सोनाटा' है।

हमलोग सुरक्रम को सोपान क्यो कहते है? स्पष्ट है कि सगीत ध्वनि के क्रमिक स्वरो का उतार-चढाव सीढी (सोपान) में लगे डडो के समान लगता है। सोपान का मूल अर्थ होता है एक प्रकार की भौतिक वस्तु, पर हमलोग सोपान पद्धति का क्रम बहुत-सी दूसरी वस्तुओ में भी पाते हैं जैसे सचयन (Stocking) में सोपान या इससे और अव्यक्त रूप में हम शैक्षणिक सोपान की बात करते है (Educational Ladder), हमारे कहने के ढग से प्रकट होता है कि हम विभिन्न वस्तुओ में किसी समान रूप को अप्रत्यक्ष रीति से पहचानते है, सुरक्रम में ध्वनियो के उतार-चढाव और रगक्रम में गाढे से हल्के रग के बीच हम समान सबध पाते है। बहुत ही असमान वस्तुओ में कोई समान रूप या बनावट देखना समरूपता (Analogy) की सज्ञा से व्यक्त किया जाता है।

हमारे चितन के भी रूप है। जब हम सफलतापूर्वक तार्किक चितन मे व्यस्त रहते हैं तो हमारे विचार सुव्यवस्थित ढग से क्रमानुसार आते है, जो उसमे मेल नही खाते उनको, जहा तक सभव होता है, बाहर रखा जाता है। बहुत कुछ सदोष ही सही पर अपने विचारो को प्रकट करने के लिये भाषा को अनुकूल बनाया जाता है। अत व्याकरण सबधी रूप को अपनाने की आवश्यकता पडी। वाक्य बनाने के लिये शब्दो को किसी भी क्रम मे नही रखा जा सकता। थोडी लैटिन जानने वाला विद्यार्थी जिसे उसका पर्याप्त ज्ञान नही है, अपठित पाठ के अनुवाद करते समय पाता है कि कभी-कभी उसे सब शब्द मालूम है पर वाक्य के कौशल का ज्ञान उसे नही हो पाता है, वैसे ही कभी-कभी उसे कौशल तो मालूम हो जाता है पर वह यह नही जानता कि उनमे से कुछ शब्दो के क्या अर्थ है। परिस्थिति मे वाक्य-रचना विषयक उसका ज्ञान अपूर्ण है, दूसरी मे शब्द-भडार। वाक्य-रचना भाषा के नियमानुसार बनावट (Formal structure) है शब्द उसके द्रव्य (Material) है।

लैटिन वाक्य-विज्ञान को सीखने पर मालूम होगा कि कर्म कारक को स्पष्ट करने के लिये बिल्बस मरूम एडिफिकाविट (Balbus murum aedificavit), केयमपूलम

आमाविट (Caius puellam amavit) से अच्छा उदाहरण नही है, वल्कि दोनो ठीक एक ही तरह के काम करते है। वैसे ही तर्कशास्त्रज्ञ तार्किक रूप को स्पष्ट करने के लिये किसी द्रव्य (Material) का व्यवहार कर सकते है। जव हम शुद्ध वाक्य वनाने लगते है तो इसका अर्थ होता है कि हमे व्याकरण के रूप का अव्यक्त ज्ञान हो गया है, जव हम विचार-विमर्श करने लगते है, और कारण ढूढने लगते है तो अस्पष्ट है कि हमे तार्किक रूप का अव्यक्त ज्ञान हो गया है। हमारा वोध प्रारभ मे स्पष्ट होता है, यदि यह स्पष्ट होता तो हम अनजान ढग मे नही चलते वल्कि उसे समझते हुए चलते तव हमे ज्ञान हो जाता कि व्याकरण के रूप मे क्यो यही शव्द-सकलन हमारे काम के लिये ठीक है और क्यो शुद्ध तर्क के लिये ठीक यही कथन समूह समीचीन है। तर्कशास्त्र के अध्ययन मे हमलोग विभिन्न उदाहरणो मे से अस्पष्ट ज्ञान को निकाल कर उसे स्पष्ट रूप मे रखते है और इस प्रकार उन नैयायिक सिद्धात को देने मे सफल होते है जिनके अनुसार वैध तर्क को चलना ही पडेगा। कथन के नियमानुकूल गठन से ही यहाँ हमारा एक मात्र सवध रहता है।

इस कथन पर विचार करे यदि राम चित्रकार है, और सभी चित्रकार क्रोधी होते है, तो राम क्रोधी है। यह तीन कथन का एक मिश्रित कथन है जो प्रत्येक अलग-अलग दृढतापूर्वक कहे जा सकते है। जहाँ तक वनावट का सवध है यह मिश्रित कथन सत्य है, यदि प्रथम के दो कथन सत्य है तो तीसरा अवश्य ही सत्य होगा, लेकिन, जैसा हम पहले देख चुके हैं, यदि पहले के दोनो कथन (जिन्हे और से जोडा गया है) असत्य हो फिर भी निहितार्थ अपने स्थान पर सत्य रहेगा ही। अत पूरा मिश्रित तार्किक वाक्य वनावट की दृष्टि से सत्य है। निहितार्थ (Implication) किसी गुण पर आश्रित नही रहता। राम मे चित्रकार से अलग दूसरे गुण हो सकते हैं। वैसे ही हम किसी दूसरे व्यक्ति के बारे मे कह सकते थे यदि गोविंद चित्रकार है, और सभी चित्रकार क्रोधी होते हैं, तो गोविंद क्रोधी है। यह समझाना कठिन नही है कि हम चित्रकार की जगह गायक, शिक्षक या कोई दूसरे शब्द रख सकते है जिसका अर्थ निकलने पर उसे 'क्रोधी' की तरह दोनो कथन मे रखना होगा। जव हम राम के स्थान पर अ, चित्रकार के स्थान पर व, और क्रोधी मनुष्य के स्थान पर स रख दें, तो हमारे तर्क का यह रूप होगा यदि अ, व है, और सभी व, स है, तो अ, स है। यहाँ पर किसी व्यक्ति या वस्तु विशेष के बारे मे कोई निश्चित कथन नही हो रहा है, केवल तार्किक रूप या वनावट व्यक्त हो रहा है। यदि हम अ, व, स की जगह पर कोई अर्थसगत वाक्य रख दे तो हमे निहिताथक रूप (Implicational form) के वदले मे वैध निहितार्थ (Valid implication) का उदाहरण मिल जायगा निहितार्थ को वैध वनाने वाला (कथन को सत्यता प्रदान करने वाला)

विभिन्न वाक्यो का अलग-अलग रूप और उनके सकलन का ढग है जिसमे तीनों कथन आपस मे सबधित किये जाते है।

तर्कशास्त्र आकारिक (Formal) विज्ञान है। आकारिक का क्या यथार्थ तात्पर्य है, विभिन्न तार्किक रूपों का विस्तृत अध्ययन के पश्चात ही स्पष्ट होगा। इस कार्य के लिये जिन रूपो को हम अप्रत्यक्ष (Implicitly) ढग मे समझते हैं उन्हे व्यक्त करना पडेगा। फलत हमे समय-समय पर विशिष्ट प्रतिको (Symbols) का व्यवहार करना पडेगा, क्योकि किसी द्वारा तर्क का विषय अथवा द्रव्य-तत्व क्या है उसपर बिना ध्यान दिये हम चिनन के रूपो का अध्ययन करना चाहते है।

५ तार्किक प्रतीकवाद एवं रूप

हमलोग ऐसे प्रतिको से परिचित है जैसे राष्ट्रीय झडा, आधा झुका झडा, राजमुकुट। भाषा एक प्रकार का प्रतिकवाद है। केवल हम अपने सवेगो को प्रकट करने के लिए भाषा का व्यवहार नही करते बल्कि अपनी अनुभूतियो को भी इसमे दूसरो तक पहुँचाते है। जबतक मनुष्य कथित भाषा तक सीमित थे तबतक स्मृति रखने वाले जीवित प्राणियो से भिन्न औरो तक अपने अनुभव नही पहुँचा सकते थे। लिखित भाषा से यह सभव हो गया कि हम, अपनी और अपने समकालीन व्यक्तियों की मृत्यु के शताब्दियो बाद आनेवाली पीढी को अपने ज्ञान पहुँचा सकते है। प्रतीकात्मक चिह्नो का व्यवहार कर हम अपनी भावनाओ को एक दूसरे के यहाँ तक पहुँचाते हैं। शब्द एक विशिष्ट प्रकार का प्रतीकात्मक चिह्न है। यह चिह्न अपने से इतर किसी वस्तु को सूचित करता है। जैसे हाथ को शीघ्रता से ऊपर उठाना जब तक कि ऊँगलियो की नोक टोपी को न छू ले, परपरानुसार अपने से बडो के प्रति आदर की भावना प्रकट करने का दृश्य चिह्न है। पर यह चिह्न किनके लिये अर्थ-युक्त है? केवल उनके लिये जो प्रणाम की इस विशिष्ट रीति से परिचित है। द्योतक होना (Signifying) सबध है, जिसमे तीन पदो की आवश्यकता पडती है चिह्न, वह वस्तु जिसके लिये चिह्न द्योतक है, और अर्थ लगाने वाला जिसे चिह्न वस्तु का द्योतक है। ऋतु विशेषज्ञ ग्रामीण के लिये सूर्यास्त के आकाश का दृश्य एक चिह्न है कि कल का समय कैसा होगा, यह उसके लिये अर्थयुक्त है क्योकि उसे किसी विशिष्ट सूर्यास्त के प्रतीति को दूसरे दिन के किसी खास मौसम से सबधित करने का अनुभव है, अनभिज्ञ शहरी के लिये इसका कोई अर्थ नही हो सकता। चिकित्सा के अर्थ मे लक्षण किसी विशेष प्रकार के रोग के चिह्न हैं। ये प्राकृतिक चिह्न है, इन्हे परिपाटी वाले चिह्नो से भिन्न समझना चाहिये। परपरागत सकेतो का महत्व मनुष्यो

के कार्यो मे होता है जो अपनी इच्छाओ और आवश्यकताओ की पूर्ति के प्रयास मे लगे रहते है। हमारी भाषा के शब्द परपरागत चिह्न है। कथित भाषा को ध्यान मे रखते हुये अरस्तू ने इन्हे "परपरा के कारण महत्वपूर्ण ध्वनियाँ" कहा है। ये मात्र ध्वनियाँ नही है वरन् महत्त्वपूर्ण सार्थक ध्वनियाँ है (Significant sounds), लिखित भाषा मे शब्द सार्थक चिह्न है, पर किसी व्यक्ति द्वारा किसी अवसर विशेष पर की हुई ध्वनि से किसी शब्द का तादात्म्य (identify) स्थापित नही करना चाहिये, और न इसका तादात्म्य किसी के द्वारा किसी स्थान पर लिखित किसी चिह्न विशेष से ही करना चाहिये, जैसे इस पैराग्राफ मे 'ध्वनि' चिह्न कई बार आया है, लेकिन, सख्या मे भिन्न पर पहचान की दृष्टि से एक, ये अलग-अलग चिह्न प्रत्येक एक ही शब्द 'ध्वनि' के उदाहरण है। तार देने मे हम शब्दो की सख्या चिह्न की दृष्टि से ही गिनते है, यदि चिह्न पाँच दो बार आता है तो फी शब्द तार का खर्च निकालने मे हम उसे दो बार गिनते है, चिह्न के अर्थ की दृष्टि से पाँच एक ही शब्द है। कभी-कभी एक ही चिह्न एक से अधिक शब्द का द्योतक हो सकता है, जैसे 'बीमार', 'बैल'। बैल एक चिह्न है जो एक प्रकार के जानवर के लिये व्यवहार किया जा सकता है या यह एक प्रकार के बेतुका मजाक के लिये।

परपरागत चिह्न प्रतीक कहा जाता है। जिन प्रतीको से हम सबसे अधिक सुपरिचित है वे है साधारण शब्द, इन्हें शाब्दिक प्रतीक कहा जाता हे। हमारी भाषा को जानने वाला कोई भी व्यक्ति जानता है कि जब हम किसी शब्द का व्यवहार करते है तो हमारा सकेत किधर होता है। बहुत से वैज्ञानिक प्रयोजनो के लिये अशाब्दिक प्रतीक अधिक सुगम पडते है। अशाब्दिक प्रतीक कई प्रकार के है, हम यहाँ उनमे से केवल दो की विशिष्टता दिखालायेंगे। एक तीसरे पर बाद मे विचार होगा।

(i) आशुलिपि प्रतीक (Short hand symbols)

ये शब्दो से सकेतित वस्तु का सीधा प्रतिनिधि करने वाले या तो शब्द-सक्षेप हैं या शब्दो के बदले मे आने वाले सक्षिप्त चिह्न। उदाहरण के लिये किस दिशा मे जाना है उसके लिये प्रयोग होता है ↑ जिसका अर्थ है कि इस दिशा मे आगे बढे चौराहे पर पहुँचने पर यदि किसी व्यक्ति को पता नही चलता कि दिल्ली जाने के लिये कौन सडक पकडे तो वह सकेत चिह्न को देखता है। वहा उसे यह सकेत मिलता है + → दिल्ली। और वह उधर चल देता है। वैसे ही गाडी को तेजी से चलाने वाले चालक की दृष्टि पडती है 2 चिह्न पर और वह तुरत समझ जाता है कि आगे दोहरा मोड है। यह प्रतीक 'आगे दोहरा मोड है' को पढकर समझने की अपेक्षा अधिक आसान है। गणित मे आशुलिपि प्रतीक किसी जटिल विचार को इतने सक्षेप मे प्रकट करना सभव कर देता

है कि वह एक सरसरी दृष्टि मे समझा जा सकता है। उदाहरण के लिये, √ को किसी फार्मूला मे 'वर्गमूल' (the Square root of) के बदले मे समझना अधिक आसान है, उसी प्रकार, + 'जोड' के बदले मे, × 'गुणा' के बदले मे, इत्यादि। विद्यार्थियो को मालूम है कि यदि हमलोग बीजगणित की साधारण पदावली को भी आसानी से समझना चाहे तो आशुलिपि प्रतीक अनिवार्य है। उदाहरण के लिये,

$$ax^2+bx+c=a\left(x+\frac{b+\sqrt{b^2-4ac}}{2a}\right)\left(x+\frac{b-\sqrt{b^2-4ac}}{2a}\right)$$

बीजगणित के बहुत प्रारभिक ज्ञान से ही वडी आसानी से समझा जा सकेगा, यदि विद्यार्थी इस समीकरण (equation) को शब्दो के सहारे लिखना चाहे तो उसे शीघ्र ही अनुभव होने लगेगा कि इसे याद रखना बहुत कठिन है। समीचीन चिह्नो का चुनाव, अर्थात् आशुलिपि प्रतीक अक्सर बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। उदाहरण के लिये रोमन अको के व्यवहार से गुणा के एक वडे प्रश्न के हल की कठिनाई की तुलना अरबिक सकेत-चिह्नो के व्यवहार से उसी को हल करने की सरलता से करे।* तर्कशास्त्र मे हमे ऐसे आशुलिपि प्रतीक मिलते है जैसे ≡ 'समानार्थ' के लिये, = 'बराबर' के लिये, ⊃ 'निहितार्थ, के विशिष्ट अर्थ के लिये। समझने की आसानी तथा सक्षिप्तता दोनो दृष्टि से यह अत्यत सुविधाजनक है। आगे हम देखेगे कि 'है' शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थो को स्पष्ट करने मे भिन्न-भिन्न आशुलिपि प्रतीक का व्यवहार सहायक होता है।

(ii) निदर्शी प्रतीक (Illustrative symbols) कल्पना कीजिए कि कोई कहता है, "जिन्होने सार्वजनिक स्कूल मे शिक्षा पाई है वे सभी निष्पक्ष हैं।" दूसरा उत्तर देता है, "मै सहमत नही हूँ। क, जिसने सार्वजनिक स्कूल मे शिक्षा पाई है वह अत्यत ही पक्षपाती है।" यदि दूसरे वक्ता की बात मानली जाय तो 'सार्वजनिक स्कूल मे पढे सभी व्यक्ति निष्पक्ष होते हैं', 'यह सामान्यीकरण असिद्ध हो जाता है। किसी व्यक्ति विशेष के लिये प्रतीक 'क' का व्यवहार किया गया था, उसका नाम

---

*आशुलिपि प्रतीक के एक साधारण उदाहरण $10^{7^{10}}$ से इस विधि की बहुत बडी उपादेयता प्रकट होती है, यह थोडे मे आसानी से समझ मे आ जाता है (सकेत चिह्नो के नियम का ज्ञान यदि एक बार हो जाय), लेकिन सामान्य ढग से यदि इसे पूरा लिखा जाय तो १ पर बहुत से शून्य देने होगे और वह कौन-सा अक बना यह भी समझना कठिन हो जायगा। सर आर्थर एडिगटन का विश्वास है कि विश्व में एलेक्ट्रास (electrons) की सख्या 136×2^{256} है, इसे पूरा लिखने मे १ पर ७९ अन्य अक रखना पडेगा (देखिये द फिलासफी आव् फिजिकल साइस, पृ० १७१)।

नही लिया गया था। भयादोहक (Blackmailers) के मुकदमे में कभी-कभी सार्वजनिक पत्र (Public Press) से अपराधी का नाम छिपाना आवश्यक हो जाता है, फलत उसका सबोधन 'श्रीमान् क' से होता है। यह सुगम रीति है क्योकि इससे जनता को विना नाम बताये मुकदमे की पेचीदगी समझाई जा सकती है। ऊपर के उदाहरणो मे 'क' और 'श्रीमान् क' का व्यवहार निदर्शी प्रतीक हैं। तर्कशास्त्र मे निदर्शी प्रतीको का व्यवहार ऊपर के उदाहरण मे किये गये व्यवहार के ही समान है, हम किसी निश्चित वस्तु की ओर सकेत करना चाहते हैं, पर पहचानने योग्य वस्तु की ओर नही, अत स्वेच्छा से चुने हुये अवर्णनात्मक नामो के लिए हम वर्णमाला के अक्षरो का व्यवहार करते हैं। निदर्शी प्रतीक किसी निश्चित वस्तु या गुण का द्योतक है पर किसी नामधारी वस्तु का नही। बीजगणित के समीकरणो को हल करते समय 'अज्ञात' के लिये x का व्यवहार निदर्शी प्रतीक के व्यवहार का उदाहरण है।

आशुलिपि तथा निदर्शी प्रतीको का सयोग हमे इस योग्य बनाता है कि हम तर्क के रूपो को स्पष्ट प्रकट कर सके। कोई तर्क क्यो वैध और दूसरा अवैध है, यह समझने के लिये उनके अलग-अलग रूपो मे भेद समझने की क्षमता होनी चाहिये क्योकि उनके रूपो पर ही उनकी वैधता आश्रित है।

— ० —

प्रतिज्ञप्तियाँ एवं उनके संबंध

१. प्रतिज्ञप्ति एवं वाक्य

तर्क के उदाहरण पर विचार करते समय किसी के द्वारा कही गई बात की ओर सकेत करने के लिए हमने अभी तक 'कथन' शब्द का व्यवहार किया है। यह शब्द अस्पष्ट है, क्योकि इसका तात्पर्य या तो जो कुछ कहा गया है उससे हो सकता है, या कुछ कहने के लिए वक्ता द्वारा व्यवहृत शाब्दिक अभिव्यक्ति से। अस्पष्ट शब्द का व्यवहार जानबूझ कर किया था, क्योकि उस समय इन दो अर्थों की भिन्नता का प्रश्न नही उठाना चाहते थे। पहले के लिए प्राय 'प्रतिज्ञप्ति' (Proposition) शब्द का व्यवहार होता है। अर्थपूर्ण ढग से सत्य या असत्य कहे जाने योग्य किसी भी वाक्य को 'प्रतिज्ञप्ति' कहते है। मन मे वाणी से या लिखित रूप मे कही गई प्रतिज्ञप्ति अवश्य ही एक प्रकार की सुव्यवस्थित शब्दो अथवा प्रतीको की अभिव्यजना है, जिसे हम वाक्य के रूप मे पहचानते हैं। पर प्रतिज्ञप्ति को वाक्य से नही मिलाना चाहिए, सभी वाक्य प्रतिज्ञप्ति की अभिव्यक्ति नहीं करते। यदि कोई व्यक्ति अपने किसी नौकर के आलस्य-भरे जीवन से ऊब कर कहता है—

"क्यो एक कुत्ता, घोडा, चूहा मे जीवन पाया जाता है और
तुम्हारे मे श्वास भी नही ?"

तो वह प्रश्न पूछता है, कोई सत्य या असत्य कथन नही करता यद्यपि अवश्य ही उसने अपने नौकर के जीवन के तुलनात्मक मूल्य को प्रदर्शित करने वाली प्रतिज्ञप्ति की सत्यता की पूर्व मान्यता कर ली है। फिर जब वह चिल्लाकर कहता है, "मैं विनती करता हूँ, इस दरवाजे को खोलिये", तो वह प्रार्थना करता है, कुछ कहता नही। बातचीत के सदर्भ मे किसी प्रश्नवाची वाक्य को प्रतिज्ञप्ति की तरह अर्थपूर्न पाया जा सकता है। लेकिन, यदि ऐसी बात है, तो उसके वाक्य रूप पर दृष्टि नही रहती। आलकारिक प्रश्न कथन के रूप मे समझना चाहिए।

भावावेश मे अपने से पूछे गये इस प्रश्न में कोई व्यक्ति अनिवार्य उत्तर पर बल देने के लिए प्रश्न का रूप व्यवहार करता है—इस उत्तर को उसका आगे वाला तर्क मान लेता है। वह वास्तविक प्रश्न नही होता, क्योकि यहाँ प्रश्न का भाव उपस्थित नही रहता। किंतु, यदि उसी आत्मभाषण मे जब वह अपने से पूछता है, "क्या मैं बुजदिल हूँ?" तो यहाँ वह भाव उपस्थित है। इस बार वह निश्चित नही है कि इसका क्या उत्तर होगा।

विभिन्न वाक्यो के व्यवहार से एक ही प्रतिज्ञप्ति कही जा सकती है। जैसे—"वह धन रखता है।", "उसके पास धन है।", "वह धनी है", "वह धनवान है।" ये चार विभिन्न वाक्य एक ही प्रतिज्ञप्ति के द्योतक हैं। आगे हम देखेगे कि कभी एक ही वाक्य भिन्न-भिन्न प्रतिज्ञप्ति के लिए आ सकता है, क्योकि वाक्य शब्दो से कम सदिग्ध नही होते।

२. प्रतिज्ञप्ति, मानसिक अवस्था एवं तथ्य

उपर्युक्त चारों वाक्यो का अर्थ एक है, वे एक ही प्रतिज्ञप्ति के द्योतक हैं, वस्तुत इन वाक्यो का जो अर्थ है ठीक वही प्रतिज्ञप्ति है। वाक्य से जो बात निकलती है उसपर विश्वास, अविश्वास या शका हो सकती है, अथवा उसे केवल कल्पना के रूप मे ले सकते हैं। चिंतक मे एक ही प्रतिज्ञप्ति के प्रति विभिन्न समय पर इनमे से कोई मनोभाव हो सकता है। अभी कहा गया वाक्य एक प्रतिज्ञप्ति का द्योतक है, जिसे मैं इस पुस्तक के लेखक के रूप मे, विश्वास करता हूँ, पाठक के रूप मे आप इस प्रतिज्ञप्ति को सत्य मानने के लिए तैयार हो सकते है, ताकि आप आगे पूछ सके कि यदि यह सत्य है तो फिर क्या होता है, आप इस पर शका कर सकते है और बाद मे उस शका को दूर कर उस प्रतिज्ञप्ति पर विश्वास करने का मनोभाव ले आ सकते है, किंवा आप उस पर अविश्वास कर सकते हैं।

सामान्य रूप मे 'विश्वास' शब्द अस्पष्ट हो सकता है, क्योकि इसका अर्थ विश्वास करने के मानसिक कार्य या जिन पर प्रतीति की जाती है, से हो सकता है। इस पुस्तक मे 'विश्वास' जिस पर विश्वास किया जाता है, के लिए सदैव व्यवहार मे आयेगा। इस अर्थ मे विश्वास किये जाने वाले किसी प्रतिज्ञप्ति का द्योतक है। तब सभी प्रतीति प्रतिज्ञप्ति हैं। लेकिन, बहुत सी प्रतिज्ञप्तियाँ विश्वास योग्य नही होती। बहुत से विश्वास सत्य नही है पर, (प्रतिज्ञप्ति के रूप मे) ये सभी या तो सत्य है या असत्य। सत्य और असत्य दोनो नही। प्रतिज्ञप्ति विश्वसनीय हो अथवा नही, पर यह *सत्य या असत्य अवश्य होगी*। प्रतिज्ञप्ति सत्य

है या असत्य, इसका निश्चय वस्तुस्थिति को देखकर होता है। या और सक्षेप मे कह सकते हैं कि तथ्य की दृष्टि से होता है। तथ्य की केवल सत्ता होती है, वे न सत्य होते है और न असत्य। यदि कोई व्यक्ति कहता है कि तुलसीदास ने रामायण लिखी तो उसका कथन सत्य है यह वस्तुस्थिति है कि तुलसीदास ने रामायण लिखी और यदि तुलसीदास को छोड कोई दूसरा न जाने कि ऐसी बात है, तब भी यह तथ्य ही रहेगा। स्पष्टत कोई ऐसा उदाहरण नही दिया जा सकता जिसे किसी ने कभी सोचा ही न हो, पर बहुत से ऐसे तथ्य है जो सोचे नही गये है और कभी नही सोचे जायेंगे। दार्शनिक भी सत्य और असत्य के स्वरूप पर सहमत नही है और न वे महमत है तथ्यो एव प्रतिज्ञप्तियो के सवध पर जिसकी दृष्टि से कोई दी हुई प्रतिज्ञप्ति सत्य या असत्य कही जाय। इस प्रसग पर विचार-विमर्श दर्शन की उस शाखा मे होता है, जिसे ज्ञानशास्त्र या प्रमाणवाद कहा जाता है, इस पुस्तक की सीमा से यह बाहर है। हमे इस रूढिवद्ध कथन से सतोप कर लेना होगा कि प्रतिज्ञप्ति सत्य है अथवा असत्य, इसे तथ्य निश्चित करते है।

लुब्धक पृथ्वी के सबसे निकट का नक्षत्र है, पर अविश्वास ' करना लुब्धक पृथ्वी के सबसे निकट का नक्षत्र नहीं है, पर विश्वास करना है। इस प्रकार प्रतिज्ञप्तियाँ सदैव जोडे मे रखी जा सकती है जो एक दूसरे को खडित करती है, अर्थात् एक अवश्य सत्य होगी और दूसरी अवश्य असत्य। किसी प्रतिज्ञप्ति पर अविश्वास करना तार्किक दृष्टि से उसके व्याघाती पर विश्वास करने के समतुल्य है। विश्वास करने और न करने मे मानसिक वृत्तियो मे जो अतर आते है, उससे हमारा कोई प्रयोजन नही, वरन् प्रतीति तथा अप्रतीति योग्य कथन के परस्पर तार्किक सवध हमारा एक मात्र लक्ष्य होता है। विश्वास एव अविश्वास करने से स्वीकार एव अस्वीकार करना सबधित है। ये मानसिक कार्य है और सभी लोग इनसे परिचित है। यदि कोई मुझसे पूछता है "क्या आय-साम्य अपेक्षित है?" और मैं उत्तर देता हूँ 'हाँ', तब मैं वस्तुत स्वीकार कर रहा हूँ कि आमदनी की समानता अपेक्षित है, यदि मैं कहता हूँ "नही", तो मैं अस्वीकार कर रहा हूँ कि आय-साम्य अपेक्षित है। मान लें कि मेरे अनुसार इनमे से कोई उत्तर ठीक नही है, तब मैं कह सकता हूँ "आय-साम्य अपेक्षित नही हैं।" पर, मैं ठीक इसी अर्थ मे यह भी कह सकता था कि "आय-साम्य अनपेक्षित है।" मेरे विश्वास को प्रकट करने के लिए एक मे स्वीकारात्मक वाक्य है और दूसरे मे अस्वीकारात्मक, लेकिन दोनो वाक्य समान रूप से प्रकट करते हैं कि मैं 'आय-साम्य अपेक्षित है' को अस्वीकार कर रहा हूँ। स्वीकार करने (affirming) एव अस्वीकार करने (denying) मे मूल भेद है मेरा किन्ही वस्तुओ के बीच सबध स्वीकार या अस्वीकार करना

बहुत ही महत्त्वपूर्ण हो सकता है, और यदि मैं स्वीकार करने की जगह अस्वीकार करने लग जाऊँ तो इसका अर्थ है कि मेरी मानसिक स्थिति मे परिवर्तन आ गया है, फिर भी मेरे भाव या अभाव पक्ष को प्रकट करने के लिए विधायक या निपेधक वाक्यो का भेद कोई तार्किक भेद नही है, शाब्दिक कथन में भेद होगा पर दोनो ही एक तरह के विश्वास या प्रतिज्ञप्ति को प्रकट करने के लिए व्यवहार मे आते है। सभी विधायक वाक्य समतुल्य निपेधात्मक वाक्य मे परिवर्तित हो सकते हे, तथा इसका विलोम भी, जैसे 'उसे बुद्धि नही है' को कह सकते है 'वह मूर्ख है'।

३. अभिकथन, अनुमान एवं आपादन

तर्कशास्त्र के अध्ययन की विशेपता है कि प्रारभ म हम कुछ शब्दो का व्यवहार इस विश्वास के साथ करते हैं कि इन्हे सब लोग समझते होगे, पर बाद मे उन्ही शब्दो के बारे में वाद-विवाद करने लगते है। सभवत ऐसी कठिनाइयाँ उठायी जाती हैं जिन पर, जब हम अपने नित्य के कार्यो मे व्यस्त रहते है, अनुमान करते रहते है और दूसरो के कथन के निहितार्थ देखते रहते हैं, तो हमारी दृष्टि सामान्य रूप मे नही जाती। 'कथन करना' 'स्वीकार करना' 'अस्वीकार करना' ऐसे ही उदाहरण हैं। हमारे इन शब्दो के व्यवहार में पाठक को कोई कठिनाई नही होती होगी। तो फिर हमें देखना चाहिए कि 'प्रतिज्ञप्ति व्यक्त करने' का ठीक अर्थ क्या होता है व्यक्त प्रतिज्ञप्ति अव्यक्त प्रतिज्ञप्ति से कैसे भिन्न होती है ?

सामान्य बातचीत में जब हम किसी वाक्य का व्यवहार एक निश्चित अर्थ मे करते हैं, तो हमारा अभिप्राय रहता है कि श्रोता प्रतिज्ञप्ति में हमारी प्रतीति समझें। यदि हम कहें "स्तालिनग्राद पर रूसियो का प्रतिरोध उत्कृष्ट है" तो समझना चाहिए कि इस प्रतिज्ञप्ति मे मैं अपनी प्रतीति व्यक्त कर रहा हूँ, केवल विचारार्थ यहाँ नही रख रहा हूँ। हाँ, यह देखना होगा कि यह वाक्य मैं वाद-विवाद के सदर्भ मे अथवा सितबर १९४८ की युद्ध-परिस्थिति को ध्यानपूर्वक समझकर कह रहा हूँ। तर्कशास्त्र पढाते समय हम प्रतिज्ञप्तियो के उदाहरण केवल विभिन्न रूप वाले प्रतिज्ञप्तियो के आपसी तार्किक सबध का पता लगाने के लिए लेते हैं, पर इन उदाहरणो के व्यवहार से यह नही निकलता कि इनके बारे मे कोई निश्चित कथन करने का हमारा अभिप्राय है। उदाहरण के प्रति हमारा दृष्टिकोण मात्र चितनशील है। हम इस बात का अभिकथन अवश्य करना चाहते हैं कि दिये हुए प्रतिज्ञप्ति (उदाहरण के रूप मे) का किसी दूसरी प्रतिज्ञप्ति (उदाहरण बनने योग्य) से यह

सबध हैं। प्राय इस सपूर्ण पुस्तक मे अभिकथन (assertions) हैं, जिन पर लेखक विश्वास करता है और आशा करता है कि पाठक भी उन पर विश्वास करेंगे।

बिना अभिकथन के तर्क-वितर्क नही हो सकता, यह समतुल्य है इस कथन के कि बिना अभिकथन का अनुमान (inference) नही हो सकता। चूकि हमारा सामान्य रुख घोषणा करने, अपने दृष्टिकोण को सामने रखने, एक दूसरे के प्रति अपना विश्वास व्यक्त करने का होता है, इसलिए प्राय प्रतिज्ञप्ति के चितन और उसके अभिकथन के बीच भेद पर ध्यान देने की आवश्यकता नही पडती। फिर भी यह भेद बहुत महत्त्वपूर्ण है। सामान्य बातचीत मे भी हमारा अभिप्राय सदैव व्यक्त प्रतिज्ञप्ति के अभिकथन का नहीं होता, कभी-कभी जानने के लिए कि इससे क्या निकलता है (follows from) हम किसी प्रतिज्ञप्ति को काल्पनिक रूप मे (hypothetically) लेते हैं। लेकिन, हमारी इच्छा अवश्य रहती है कि प्रतिज्ञप्ति की कल्पित कडी को कही न-कही तोडा जाय और निश्चित कथन किया जाय, 'अत यह सत्य है।" उदाहरण के लिए, "यदि रूस के सतत प्रतिरोध का निहितार्थ होता कि जर्मन सेना अकेले रूस के द्वारा हरायी जा सकती थी, और रूसी अपना प्रतिरोध कायम रखते, तो जर्मन सेना अकेले रूस द्वारा हरायी गई होती।" इस दावे मे आगे वाले कथन से कुछ अधिक नही कहा गया है। इसमे केवल इतनी बात है 'यदि कोई दिया हुआ निहितार्थ सत्य है और दी गई प्रतिज्ञप्ति सत्य है, तो दिया हुआ निष्कर्ष निकलेगा'। यदि हम उत्सुकतापूर्वक युद्ध के सभव परिणाम पर विचार कर रहे है, तो ऐसे कथन करने की हमारी इच्छा नही होती (कितने भी, कलाप्रेमी हो)। भेद दिखलाने के लिए आगेवाले वाक्य से तुलना की जाय, "चू कि रूसी प्रतिरोध जारी रख सकते हैं, और चू कि उनके सतत् प्रतिरोध का अर्थ है कि जर्मन सेना केवल रूसियो द्वारा हरायी जा सकती है, अत जर्मन सेना केवल रूसियों द्वारा हरायी जा सकती है।" यहाँ दो कथन होते है, यदि यह तो वह के स्थान पर चू कि यह, इसलिए वह। निगमन यह तो कथन से पृथक् कर सत्य है के रूप मे रखा गया है। इस प्रकार इसमे स्वय खडे होने की शक्ति प्रदर्शित होती है। किसी प्रतिज्ञप्ति के बारे मे अभिकथन का अर्थ है उसके सत्य होने का दावा करना। वक्ता के दृष्टिकोण से प्रतिज्ञप्ति का अभिकथन किसी विश्वास को प्रकट करना है। प्रतिज्ञप्ति का अभिकथन करना स्वय प्रतिज्ञप्ति का अग नही है। स्वीकारोक्ति एव अस्वीकारोक्ति निश्चयात्मक कार्य हैं। निश्चयात्मक तथा मननशील अवस्थाओ मे मूल भेद है, अनुमान निश्चयात्मक है। किसी के ध्यान मे हो अथवा नही, पर प्रतिज्ञप्तियो के उपलक्षित आशय होते हैं। अनुमान चितक को सम्मिलित करता है।

अनुमान चिंतन की प्रक्रिया है, जिसमे चितक एक प्रतिज्ञप्ति (आधार वाक्य) से दूसरी प्रतिज्ञप्ति (निगमन) पर जाता है, क्योकि वह आधार वाक्य तथा निगमन के बीच प्रमाणकारक सवध देखता है अथवा देखने का उसे विश्वास होता है, उन्ही सवधो के वल पर वह निगमन का अभिकथन करता है। इस पर ध्यान देना चाहिए कि (i) प्रमाणकारक सवध (evidential relations) अवश्य ही निर्णायक (conclusive) नही होते, वे सभाव्यता सवध हो सकते हैं (probability relations), (ii) चिंतक भूल से विश्वास कर सकता है कि उसे प्रमाणकारक सवध दिखलाई पड रहा है, जवकि वस्तुत ऐसा कोई सवध उपस्थित नही है। फिर भी वह अनुमान करता है, पर जव तक प्रमाणकारक सवधो की उपस्थिति के वारे मे उसकी धारणाएँ सिद्ध नही होती, उसके निगमन निकालने का औचित्य नही है। दुर्भाग्यवश हमलोग ऐसी भूल प्राय करते हैं। अनुमान को इतने सकीर्ण रूप से परिभाषित करना जिससे केवल निगमन की व्याख्या हो सके, भूल है। यह भूल साधारणत होती रहती है। इससे भी वडी भूल तब होती है, जव अनुमान से (अवैध अनुमान) को अलग करके परिभाषा की जाती है। कोई अनुमान आगमनात्मक है या निगमनात्मक—यह निष्कर्ष और आधार वाक्य के बीच के सवध पर आधारित होता है।

४. प्रतिज्ञप्तियों का पारंपरिक विश्लेषण

अरस्तू सामान्यत (तथा ठीक ही) तर्कशास्त्र के प्रवर्त्तक माने जाते है। ए एन ह्वाइटहेड के शब्दो मे "प्रतिज्ञप्ति के रूप पर विचार करते हुए और समझते हुए कि इन रूपो के कारण ही निगमन घटित होता है, अरस्तू ने इस विज्ञान की सस्थापना की।"* दुर्भाग्यवश उनके अनुयायियो ने लगभग दो हजार वर्षों तक प्रतिज्ञप्तियो के बहुत रूपो का विस्तार से अध्ययन किया। कोई जो कुछ भी कहना चाहता हो, उसे उनलोगो ने प्रतिज्ञप्ति के चार रूपो मे से किन्ही एक मे व्यक्त करने का प्रयास किया। बहुत ही थोडे अन्य रूपो को भी मान्यता दी गई पर।' उनका अध्ययन ध्यानपूर्वक नही हुआ। वाक्य एव प्रतिज्ञप्ति के बीच स्पष्ट भेद नही किया गया, फलत कुछ महत्त्वपूर्ण भेद अपेक्षाकृत उपेक्षित रहे और वाचिक कथनो मे भेद प्रतिज्ञप्तियो के रूपभेद मान लिये गये। इस परिच्छेद मे हम पारपरिक पद्धति की ही व्याख्या करेंगे।

---

* प्रोसीडिंग्स आव् द अरिस्टोटेलियन सोसाइटी N S xvii, पृष्ठ ७२।

निम्नलिखि प्रतिज्ञप्तियो पर विचार करें

(१) सभी भारतीय स्त्रियाँ अच्छा भोजन बनानेवाली है।

(२) कोई पाकिस्तान का राजदूत स्त्री नही है।

(३) कुछ कवि शातिवादी हैं।

(४) कुछ मतदाता मजदूर नही हैं।

इनमे से प्रत्येक प्रतिज्ञप्ति मे तीन अवयव है—उद्देश्य, योजक, विधेय—और इनके अतिरिक्त परिमाण-चिह्न। उद्देश्य, और विधेय को प्रतिज्ञप्ति के 'पद' कहते हैं, (योजक होना का कोई रूप) विधेय को उद्देश्य से जोडता है, परिमाण-चिह्न बतलाता है कि उद्देश्य-पद के वर्ग मे आने वाले सभी सदस्यो के बारे मे उल्लेख है अथवा कुछ (१) और (२), (३) और (४) से परिमाण मे भिन्न हैं, पहलेवाली सर्वव्यापी तथा दूसरे वाली अशव्यापी प्रतिज्ञप्तियाँ कही जाती हैं। (१) और (३) विधायक हैं, (२) और (४) निषेधक हैं, इसे गुण-भेद कहते हैं। प्रतिज्ञप्तियो का यह वर्गीकरण इस मान्यता पर आधारित है कि प्रत्येक प्रतिज्ञप्ति यह व्यक्त करने का कथन है कि एक वर्ग-पूर्ण या आशिक रूप से किसी दूसरे वर्ग मे सम्मिलित है अथवा उससे बाहर है। अवश्य ही बहुत-सी प्रतिज्ञप्तियाँ बिल्कुल स्वाभाविक ढग से उपर्युक्त चार रूपो मे से किसी एक में व्यक्त होती हैं, हमारे ये उदाहरण किसी प्रकार बेढगे नहीं हैं। पर, बहुत से कथन ऐसे भी हो सकते हैं, जो इन चार रूपो में से किसी के सदृश न हो तथा अर्थ को बिना विकृत (तोड-मोड) किये इन किन्ही रूपो में न रखे जा सकें। उदाहरणार्थ 'सबको जानना सबको क्षमा करना है'।

तत्काल हम इन कठिनाइयो की उपेक्षा करते हैं, पर इन्हें हमें बिल्कुल ही भूल नही जाना चाहिए। अब हम निदर्शी प्रतीको (illustrative symbols) का व्यवहार करेंगे, स, प, क्रमश प्रतिज्ञप्ति के उद्देश्य तथा विधेय के लिए आते हैं, इस तरह चारो पारपरिक रूप प्रतीकात्मक ढग से निम्न प्रकार से रखे जा सकते हैं —

सभी स, प हैं	स आ प	आ (A) सर्वव्यापी विधायक
कोई स, प नही हैं	स ए प	ए (E) सर्वव्यापी निषेधक
कुछ स, प हैं	स ई प	ई (I) अशव्यापी विधायक
कुछ स, प नही हैं	स ओ प	ओ (0) अशव्यापी निषेधक

इन रूपो के नामकरण के लिए तीसरे स्तभ (कालम) में दिये गये अक्षरो के व्यवहार की प्रथा है। ये अक्षर स्वरो से लिये गये है दो विधायक के लिए तथा दो निषेधक के लिए। ये सुविधाजनक आशुलिपि प्रतीक (Short-hand symbolism) उपलब्ध कराते हैं। दूसरे स्तभ मे निदर्शी प्रतीक स और प के मध्य रखे गये उपयुक्त स्वर, प्रतिज्ञप्ति के गुण तथा परिमाण व्यक्त करते हैं। यदि प्रतिज्ञप्ति के पदो के प्रतीक म और न होते, तो चारो प्रतिज्ञप्तिया इस प्रकार लिखी जाती

म आ न, म ए न, म ई न, म आ न

विद्यार्थियो को चाहिए कि इस आशुलिपि प्रतीकवाद से सुपरिचित हो जायें। केवल सुविधा के लिए यह बहुत दिनो से व्यवहार मे आ रहा है पर इससे एक विशेष लाभ है- यह याद दिलाने का कार्य करता है कि हमारा प्रयोजन किसी विशिष्ट वर्ग जैसे भारतीय स्त्रियाँ और अच्छे भोजन बनानेवाली से नही है, वरन् किसी वर्ग से है। पृष्ठ २३ पर सूचीबद्ध की गई चार प्रतिज्ञप्तियाँ सत्य हैं अथवा असत्य, अर्थात् वे वास्तव मे प्रतिज्ञप्तियाँ हैं। दूसरी सूची प्रतिज्ञप्तियो के रूपों की सूची है सभी स, प है किसी सत्य या असत्य वस्तु का निश्चित कथन नही करता। इसे खोखला चित्र समझना चाहिए जिसमे कोई प्रतिज्ञप्ति रखी जा सकती है—जैसे। पृष्ठ २३ पर न० १।

ध्यान रहे कि सर्वव्यापी प्रतिज्ञप्ति की अशव्यापी प्रतिज्ञप्ति से इस बात मे भिन्नता है कि पहली मे मुक्त रूप से सामान्यीकरण होता है और दूसरी सीमित होती है। जब कहा जाता है कि 'सभी शिक्षक पुरुष है', तो शिक्षक वर्ग के प्रत्येक सदस्य की ओर सकेत होता है। जब कहा जाता है कि 'कुछ शिक्षक स्त्री है' तो यहाँ शिक्षक वर्ग के प्रत्येक सदस्य की ओर निर्देश नही होता। पारिभाषिक शब्दावली मे इस भेद को व्याप्ति मे भेद कहा जाता है। कुछ अनुमानो की वैधता निश्चित करने के लिए, कोई पद व्याप्त है या नही, इसका निर्णय बहुत ही महत्त्वपूर्ण होता है। अत, इस विचार

से सुपरिचित हो जाना विद्यार्थियो के लिए वाछनीय है। निम्नलिखित परिभाषा याद कर लेनी चाहिए —

यदि किसी प्रतिज्ञप्ति मे किसी वर्ग का द्योतक पद उस वर्ग के प्रत्येक सदस्य की ओर सकेत करे, तो उसे व्याप्त कहते हैं।

यदि किसी प्रतिज्ञप्ति मे किसी वर्ग का द्योतक पद उस वर्ग के प्रत्येक सदस्य की ओर सकेत न करे, तो उसे अव्याप्त कहते है।

यह समझना सरल है कि सर्वव्यापी प्रतिज्ञप्ति के उद्देश्य पद व्याप्त होते हैं तथा अशव्यापी प्रतिज्ञप्ति के उद्देश्य पद अव्याप्त। जहाँ तक विधेय-पदो का प्रश्न है, उनके बारे मे निर्णय इतना सरल नही है। 'कोई पहाडी मूर्त्तिकार नही है,' मे मूर्त्तिकार का सपूर्ण वर्ग स्पष्टत पहाडी वर्ग से अलग कर दिया जाता है, वैसे ही दूर पहाडी का सपूर्ण वर्ग मूर्त्तिकार से अलग कर दिया जाता है। अत, विधेय-पद भी व्याप्त है। अशव्यापी प्रतिज्ञप्ति 'कुछ समाजवादी मार्क्सवादी नही है' मे कहा जाता है कि मार्क्सवादी का सपूर्ण वर्ग कुछ समाजवादी से अलग कर दिया गया है। इस प्रकार विधेय-पद व्याप्त है। प्रतिज्ञप्ति 'मन्त्रिमडल के सभी मन्त्री लोकसभा के सदस्य हैं' मे लोकसभा के सपूर्ण सदस्यो की ओर सकेत नही है, फलत विधेय-पद व्याप्त नही है। इसी प्रकार प्रतिज्ञप्ति 'कुछ सिपाही गुप्तचर है' मे विधेय-पद व्याप्त नही है। चारो रूपो के विशिष्ट उदाहरणो का अध्ययन करने पर जो निष्कर्ष निकला है, उसे सक्षेप मे इस प्रकार रख सकते है—

	प्रतिज्ञप्ति		उद्देश्य	विधेय
आ	सभी	स, प है	व्याप्त	अव्याप्त
ए	कोई	स, प नही है	व्याप्त	व्याप्त
ई	कुछ	स, प हैं	अव्याप्त	अव्याप्त
ओ	कुछ	स, प नही हैं	अव्याप्त	व्याप्त

ध्यान देने योग्य है कि इन रूपो 'कुछ' का अर्थ 'कम से कम कुछ' होता है, यह 'कुछ और सभवत सब' का समानार्थक है। भाषा के सामान्य व्यवहार मे हम 'कुछ' का अर्थ प्राय 'केवल कुछ' कर समझते हैं। यदि कहें कि कुछ कार्यकर्त्ताओं के पारिश्रमिक का भुगतान हो जाता है, तो सभवत यह समझा जायगा कि कुछ

पारिश्रमिक पा जाते है और कुछ नही। पर 'इसका व्यवहार 'कम से कम कुछ' पारिश्रमिक पा जाते है, के अर्थ मे हो सकता है, इससे सबका रास्ता खुला हुआ है—सब अपना पारिश्रमिक पा सकते है। अब यदि हम 'कुछ स, प है' मे कुछ का अर्थ 'केवल कुछ' करें, तो वाचिक रूप मे तो नही पर तात्त्विक रूप मे यह प्रतिज्ञप्ति ई तथा ओ प्रतिज्ञप्तियो का सम्मिलित कथन हो जायगा, क्योकि यह अभिकथन होगा कि 'कुछ कार्यकर्त्ताओ के पारिश्रमिक का भुगतान हो जाता है और कुछ का नही।' अत यह वाछनीय है कि 'कुछ' को न्यूनतम अर्थ मे प्रतिपादित किया जाय, इस तरह हमलोग 'कुछ' की ऐसी व्याख्या करते है कि 'सब' के मेल मे हो। परतु, 'कोई नही' का अर्थ अलग रहे। इस दृष्टि से आ और ई तथा ए और ओ प्रतिज्ञप्तियाँ सगत हैं।

यदि दो अनिर्दिष्ट वर्ग के लिए स और प मान ले, तो उनमे पूर्ण सपात (Coincidence) से लेकर पूर्ण आपसी बिलगाव तक पाँच सभव सबध होते हैं

१. दोनो वर्ग आपस मे पूर्ण अनुरूप हो सकते है।
२. पहला दूसरे के बिना अनुरूप हुए पूर्णत उसके अदर हो सकता है।
३. पहला दूसरे को पूर्णत अपने अदर ले ले सकता है, परतु उसके अनुरूप नही हो सकता।
४. दोनो वर्ग कुछ अश तक एक दूसरे को ढँक ले सकते है, अर्थात् प्रत्येक एक दूसरे को आशिक रूप से अपने अदर रखते हैं तथा आशिक रूप से अपने बाहर भी।
५ दोनो वर्ग पूर्णत एक दूसरे के बाहर हो सकते हैं।

गणितज्ञ यूलर (१७०७-८३) ने इन वर्ग-सबधो को रेखाकृति द्वारा व्यक्त किया है। इसके लिए इन्होने वृत्तो का व्यवहार किया है, जिनके स्थानिक सबध दो वर्गों के तार्किक सबधो से कुछ सादृश्य रखते हैं। ये रेखाचित्र 'यूलर के वृत्त' (Euler's circle) के नाम से प्रसिद्ध है। ये इस प्रकार हैं —
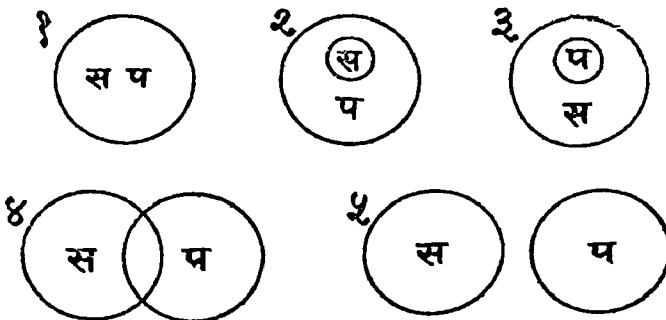
ध्यान देने योग्य महत्त्वपूर्ण बात है कि प्रतिज्ञप्ति के चार रूप हैं और पांच रेखाकृतियां हैं, अत प्रतिज्ञप्तियो के रूपो तथा वृत्तो मे सामान्य तदनुरूपता नही पायी जाती। इसका कारण यह है कि प्रतिज्ञप्तियो का व्यवहार अपने ज्ञान या विश्वास को व्यक्त करने के लिए होता है, और जो कुछ हम जानते है, वह प्राय व्यवस्थित नही होता। यदि हम किसी वर्ग 'म' एव दूसरे वर्ग 'प' के बारे मे जानते हैं कि वे एक दूसरे से ठीक उसी प्रकार सबधित है जिस प्रकार रेखाचित्र ४ मे दो वृत्त, तो आ, ए, ई, ओ, प्रतिज्ञप्तियो मे से किसी एक के द्वारा व्यक्त किये जाने वाले तथ्य, से हम अधिक जानते हैं। चू कि अव्याप्त पद अपने निर्देशन मे अनिर्धारित होता है, इसलिए किसी प्रतिज्ञप्ति की जिसमे अव्याप्त पद है यूलर की किसी एक रेखाकृति से प्रतिनिधित्व नही हो सकता। केवल रेखाकृति ५ चारो रूपो मे से अकेले एक प्रतिज्ञप्ति ए से मेल खाता है। यह एकमात्र प्रतिज्ञप्ति है, जिसके दोनो पद व्याप्त होते हैं। इसलिए यह हमे दोनोपदो के पूर्ण विस्तार के बारे मे ज्ञान देता है। प्रथम चार रेखाकृतियो मे से प्रत्येक से जो ज्ञान प्राप्त होता है, उसे व्यक्त करने के लिए दो या अधिक प्रतिज्ञप्तियो का सम्मिलित कथन आवश्यक होता हैं। निम्न तालिका चारो प्रतिज्ञप्तियो मे से प्रत्येक को यूलर की रेखाकृतियो की भाषा मे व्यक्त करती है—

(A)	आ	स्वीकार करता है	१,२,	अलग करता है	३,४,५
(E)	ए	—	५,	—	१,२,३,४
(I)	ई	—	१,२,३,४,	—	५
(O)	ओ	—	३,४,५,	—	१,२

जब तक पांचो रेखाकृतियो से व्यक्त सभावनाओ मे से कम-से-कम एक सभावना अलग नही रहती, तब तक कोई सूचना नही प्राप्त होती। यह जानना कि मनुष्य प्राणी वर्ग मे आशिक या पूर्णरूपेण अदर या बाहर है, तर्कशास्त्र द्वारा दिये गये ज्ञान से अधिक कुछ नही जानना हुआ। हम मनुष्य के स्थान पर ट, और प्राणी के स्थान पर E भी रख सकते हैं। यह ठीक वैसा ही है, जो हमने किन्ही दो वर्गो को निर्देशित करने के लिए स प प्रतीको का व्यवहार किया है। यदि हमसे कहा जाय कि मनुष्य प्राणी वर्ग के पूर्णत अदर है, तो हम समझेंगे कि रेखाकृतियाँ ३,४, और ५ अलग कर दी गई हैं। अब यदि हम इसके आगे जाने कि मनुष्य प्राणी मे बिना इस वर्ग को अत किये पूर्णत आ जाता है तो हम समझेंगे कि उनका सबध मुख्यत रेखाकृति २ से मेल खाता है। यह बात हमे आ और ओ प्रतिज्ञप्तियो के सम्मिलित कथन से प्राप्त हो सकती है सभी मनुष्य प्राणी हैं और कुछ प्राणी मनुष्य नही हैं।

ऐसे अवसर पर कोई जिज्ञासु विद्यार्थी निम्न प्रश्न पूछ सकता है :

१. उन वस्तुओ के बारे मे क्या कहा जायगा जो न मनुष्य हैं और न प्राणी (ये चाहे जो हो) ? क्या उन्हे इन वृत्तो से अलग मान लिया गया है ? यदि हाँ, तो रेखाकृति मे उनके लिए कहाँ स्थान है ?

२ यदि मैं कहूँ, 'भूत चद्दरो मे सदैव आच्छादित नही किये जाते ।" तो क्या मुझे वृत्त खीचकर भूतो को चित्रित करना है जब कि ससार मे कही भूत पाये भी नही जाते ?

इन प्रश्नो के उत्तर के लिए दूसरे प्रश्नो का उठाना आवश्यक हो जाता है, जो प्रतिज्ञप्तियो की पारपरिक व्याख्या के परे हो जाते है। इसलिए इन प्रश्नो का उत्तर परवर्ती आधार मे दिया जायगा ।

५. सरल, मिश्र, एवं सामान्य प्रतिज्ञप्तियाँ

हमारे सबसे साधारण कथन वे है जिनमे हम किसी वस्तु पर कोई लक्षण या गुण आरोपित करते है। जैसे—वह पत्ती हरी है, वह मेज गोल है, राजेंद्र प्रसाद बुद्धिमान हैं। हम इस परपरा को मानेंगे कि इस प्रकार की प्रतिज्ञप्तियाँ सरल (Simple) हैं तथा ये उद्देश्य-विधेय (Subject-predicate) आकार की प्रतिज्ञप्तियां हैं। उद्देश्य वह है जिस पर कुछ विशिष्टता का आरोप होता है, विधेय वह है जो उद्देश्य पर आरोपित होता है। अब सरल प्रतिज्ञप्ति का सयुक्त एव सामान्य प्रतिज्ञप्ति से विभेद करना है। निम्नलिखित पर विचार करें —

अ (१) अ ई रेखा ब च रेखा के बराबर है।

(२) अरस्तू सिकदर महान के ट्यूटर थे ।

ब (३) यदि कोण ब अ च कोण ई ड फ के बराबर नही है, या उससे छोटा नही है, तब कोण ब अ च कोण ई ड फ से बडा है।

(४) यदि लालबहादुर शास्त्री ताशकद गये है, तो कोसिजिन प्रसन्न होगे ।

(५) यदि श्याम ने मैट्रीकुलेशन परीक्षा पास कर ली, तो वह सोलह वर्ष से छोटा नही हो सकता ।

(६) या तो लुब्धक सूर्य से बडा नही है, या पृथ्वी से सूर्य की बनिस्पत बहुत दूर है ।

(७) ये दोनो बातें नही हो सकती—एक ओर कहा जाय कि ईंधन की मितव्ययता व्यर्थ है और फिर कहा जाय कि कोयले का उत्पादन घट रहा है।

(८) राम आर० ए० एफ० मे है और मोहन ए० टी० एस० मे सम्मिलित हुआ है।

स्वीकृत परपरा के अनुसार समूह अ तथा उपर्युक्त प्रथम पैराग्राफ की प्रतिज्ञप्ति सरल है। समूह ब मे आने वाले सयुक्त है। किसी सयुक्त प्रतिज्ञप्ति मे दो या अधिक अगभूत प्रतिज्ञप्तियाँ होती है। जैसे (४) मे दो अवयव हैं, 'लालबहादुर शास्त्री ने ताशकद की यात्रा की है' और 'कोसिजिन प्रसन्न होगे'। इसमे से प्रत्येक का अलग-अलग अर्थपूर्ण ढग मे अभिकथन हो सकता था परतु ऐसा नही हुआ है, जिसकी पुष्टोक्ति हुई है वह यह है कि दूसरा पहले का परिणाम है, अत दूसरे को अनुवर्त्ती तथा पहले को पूर्ववर्त्ती कहते हैं। (३) और (५) इसी रूप के दूसरे उदाहरण है, इन्हें हेत्वाश्रित प्रतिज्ञप्तियाँ कहते हैं। इन तीनो प्रतिज्ञप्तियो मे जो सर्वनिष्ठ है, वह यह है कि प्रत्येक समग्र रूप से अनुवर्त्ती के पूर्ववर्त्ती मे निहित होने का अभिकथन करते हैं, अर्थात् पूर्ववर्त्ती अनुवर्त्ती के भी सत्य हुए बिना अकेले सत्य नही हो सकता। पूर्ववर्त्ती आपादान करने वाली प्रतिज्ञप्ति है और अनुवर्त्ती आपादित होने वाली। आपादन (implication) के लिये इनका आपसी सबध भिन्न-भिन्न स्थान पर भिन्न-भिन्न हुआ करता है जैसे (३) मे ज्यामिति की विशिष्ट परिभाषाओ के कारण है, (४) मे १९६५ मे भारत की विशिष्ट राजनीतिक तथा सैनिक अवस्थाओ के कारण, (५) मे विश्वविद्यालय के विशिष्ट नियमो के कारण। ध्यान देने की बात है कि हेत्वाश्रित का सत्य पूर्ववर्त्ती या अनुवर्त्ती के अलग-अलग सत्य पर आश्रित नही है, वरन् यह आश्रित है दोनो के अभिकथित सबध पर। कभी-कभी कहा जाता है कि हेत्वाश्रित प्रतिज्ञप्ति सदेह व्यक्त करती है। यह गलत है। उदाहरण के लिए जो (४) का अभिकथन करता है, उसका अभिप्राय लालबहादुर शास्त्री के ताशकद की यात्रा मे सदेह व्यक्त करना नही है, बल्कि यदि यात्रा वस्तुत हो तो उसके परिणाम का अभिकथन है।*

(६) वैकल्पिक प्रतिज्ञप्ति का उदाहरण है—इसका अभिकथन है कि दो अगभूत प्रतिज्ञप्तियो मे कम-से-कम एक सत्य है, पर दोनो के सत्य होने की सभावना हटाई नही गई है। अगभूत प्रतिज्ञप्तियाँ विकल्प कही जाती हैं,

---

*जो विद्यार्थी कुछ लैटिन जानते हैं, उन्हे इस दृष्टिकोण से लैटिन मे हेत्वाश्रित वाक्यो के नियमो की तार्किक पृष्ठभूमि पर विचार करना चाहिए।

विकल्पो की कोई भी सख्या हो सकती है। या तो या (either . or) की अलगाव न करने की व्याख्या के पीछे वही तार्किक नीति है जो ई और ओ प्रतिज्ञप्तियो मे कुछ की व्याख्या के लिए अपनाई गई है, जिसका अर्थ होता है कम-से-कम कुछ और सभवत सपूर्ण, अर्थात् अस्पष्ट उद्धरणो का न्यूनतम अर्थ करना चाहिए। या तो . या के सामान्य व्यवहार मे भिन्नता होती है। कहा जाय कि 'प्रमोद या तो मूर्ख है या सुस्त' तो यह दोनो सभावनाओ को आवश्यक रूप से अलग नही रखता। इससे भिन्न दूसरी बात कही जाय 'या तो नेपाल को तुरत मदद दी जायगी, या राष्ट्रीय एकता ऊपर से नीचे तक खडित हो जायगी'। यहाँ सभवत् विकल्पो के अलग रहने के अभिकथन का आशय है।

(७) वियोजक प्रतिज्ञप्ति (disjunctive proposition) का उदाहरण है, यह अभिकथन करता है कि दो अगभूत प्रतिज्ञप्तियो मे दोनो सत्य नही हैं, तथा किसी के सत्य न होने से मेल खाता है। अगभूत प्रतिज्ञप्तियो को वियुक्त (disjunct) कहा जाता है, वियोक्तो की कोई भी सख्या हो सकती है।

मिश्र प्रतिज्ञप्तियाँ दो विशिष्ट श्रेणियो मे विभक्त होती हैं

(i) सयुक्त (Composite) जिसमे हेत्वाश्रित वैकल्पिक, तथा वियोजक प्रतिज्ञप्ति आते हैं,

(ii) सयोजक (Conjunctive) प्रतिज्ञप्ति।

(८) सयोजक प्रतिज्ञप्ति का उदाहरण है। सयुक्त प्रतिज्ञप्ति के तीनो रूप आपस मे इस प्रकार सबधित हैं कि कोई बात जो किसी एक रूप मे व्यक्त की जाती है, समान अर्थ मे दूसरे दो रूपो मे भी व्यक्त हो सकती हैं। यह कैसे हो सकता है, इसका स्पष्टीकरण परिच्छेद ६ मे किया जायगा।

इस अनुच्छेद के प्रारभ मे हमने कहा है कि कुछ विशिष्ट प्रतिज्ञप्तियाँ, जिनके उदाहरण दिये गये हैं, सरल उद्देश्य-विधेय प्रतिज्ञप्तियाँ मानी जायँगी। समूह अ सरल प्रतिज्ञप्तियो के अन्य उदाहरण प्रस्तुत करता है पर ये उद्देश्य-विधेय प्रतिज्ञप्तियाँ नही हैं, ये सबधात्मक प्रतिज्ञप्तियाँ हैं 'रेखा अ ई रेखा ब च के बराबर है' बतलाता है कि दो रेखाओ अ ई और ब च मे समता (equality) का सबध है। सबध बहुत तरह के होते है, इनकी व्याख्या बाद मे होगी। अभी इतना समझ लेना पर्याप्त है कि किसी सबध के लिए कम-से-कम दो वस्तुओ की आवश्यकता होती है, जिन वस्तुओ मे सबध होता है, उन्हे सबध के पद कहा जाता है। प्रतिज्ञप्ति 'कमला एव श्यामा जोड़वा हैं' मे कमला तथा श्यामा स्पष्टत पद है।

सरल प्रतिज्ञप्ति की धारणा स्वय सरल नही है। जैसे कुछ तार्किको के अनुसार 'यह' सफेद है' विलकुल सरल प्रतिज्ञप्ति है,। हमें यह मत मान्य नही है, पर यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि हम ऐसी ही प्रतिज्ञप्तियों को सरल कहते हैं (i) जो दूसरी प्रतिज्ञप्तियो को अगभूत प्रतिज्ञप्तियो के रूप मे सम्मिलित नही करती, (ii) और जिसके वाचिक उद्धरण मे ऐसे शव्द या शव्द-समूह होते हैं जो विशिष्ट रूप से किसी अभिज्ञेय वस्तु को सूचित करते हैं*। पारपरिक तर्कशास्त्रियो ने प्रतिज्ञप्तियो की व्याख्या मे यह दृष्टिकोण नही अपनाया है। वे सभवत ऐसा मान लेते हैं कि व्याकरण के सरल वाक्य सदैव सरल प्रतिज्ञप्ति, तथा व्याकरण के मिश्रित वाक्य सदैव मिश्र प्रतिज्ञप्ति व्यक्त करते हैं। जैसे वाक्य 'सभी स्कूल शिक्षक अविश्वसनीय हैं' तथा वाक्य 'सत्यनारायण प्रसाद अविश्वसनीय है' समान रूप से सरल प्रतिज्ञप्ति के उदाहरण माने गये, वैसे ही वाक्य 'यदि कोई मनुष्य स्कूल-शिक्षक है, तो वह अविश्वसनीय है' मिश्र प्रतिज्ञप्ति का उदाहरण माना गया। यह दोषपूर्ण है। 'सभी स्कूल-शिक्षक अविश्वसनीय हैं' तथा 'यदि कोई मनुष्य स्कूल-शिक्षक है, तो वह अविश्वसनीय है' एक ही प्रतिज्ञप्ति के वाचिक भेद वाले दो कथन हैं। प्रतिज्ञप्ति 'सभी स्कूल-शिक्षक अविश्वसनीय हैं।' स्पष्टत 'आ' प्रतिज्ञप्ति है। प्रतिज्ञप्ति जिनमे कहा जाता है कि एक वर्ग पूणत या आशिक रूप से दूसरे वर्ग मे सम्मिलित हैं या उससे अलग है, सामान्य प्रतिज्ञप्ति हैं। ध्यान देने की बात है पारपरिक पद्धति की आ, ए, ई, ओ ऐसी ही प्रतिज्ञप्तियाँ हैं। इन्हें सरल प्रतिज्ञप्ति मानना कोरी भ्रामकता है यद्यपि यह भी सत्य है कि इनकी दो या अधिक प्रतिज्ञप्तियो के मेल वाली व्याख्या नही हो सकती। अत, हमने अभी तक जिन सरल एव मिश्र प्रतिज्ञप्तियो का वर्णन किया है उन दोनो से भिन्न रूप मे सामान्य प्रतिज्ञप्तियो को समझना होगा। बाद मे हम ठीक-ठीक देखेंगे कि अशव्यापी प्रतिज्ञप्ति (ई ओ) क्यो यथार्थत सामान्य प्रतिज्ञप्ति कही जाती हैं।

६. प्रतिज्ञप्तियों के बीच सात संबंध एवं विरोध-आकृति

हमने पहले ही विचार किया है किस प्रकार एक या अधिक प्रतिज्ञप्तियो की सभावित सत्यता या असत्यता दूसरे की सत्यता या असत्यता को सीमित करती है, तथा पूर्व परिच्छेदो मे व्याघाती प्रतिज्ञप्तियो एव तुल्य प्रतिज्ञप्तियो के जोडो की पहचानने मे हमे कोई कठिनाई नही हुई हैं। जब तक हम कुछ व्याघाती उदाहरणो को

*आगे हम देखेंगे कि यह इस कथन के समतुल्य है सरल प्रतिज्ञप्ति वह है जिसकी व्याख्या मे चर (variables) का कोई सकेत सम्मिलित नही होता।

पहचानने और वाचिक भिन्नता होते हुए भी समतुल्यता को देखने मे समर्थ नही हैं, तब तक तर्कशास्त्र का अध्ययन आरभ नही कर सकते, क्योंकि समस्याओ के चिंतन के प्रयास मे ही तर्कशास्त्र उद्भूत होता है। परतु, कुछ उदाहरणो मे तार्किक सबधों को पहचान लेना इन सबधो को स्पष्टत ठीक-ठीक जानना नही है। इस परिच्छेद मे हम तार्किक प्रतिज्ञप्तियो के बीच उन सात सबधो का उल्लेख करेंगे, जो मूलभूत महत्त्व रखते हैं। इस पुस्तक मे वैध अनुमान के प्रत्येक विचार-विमर्श को इन्ही सात सबधो के किसी एक का उदाहरण समझना चाहिए। अत, इन्हे अच्छी तरह समझ लेना अति आवश्यक है। निम्नलिखित आठ प्रतिज्ञप्तियो पर विचार करें —

(अ) मनुष्य-स्वभाव कभी परिवर्तित नही होता।

(ब) यदि मनुष्य-स्वभाव कभी परिवर्तित नही होता, तो युद्ध का अत नही होगा।

(च) यदि मनुष्य-स्वभाव परिवर्तनशील है, तो युद्ध का अत हो जायगा।

(द) युद्ध सदैव नही चलता रहेगा।

(ई) युद्ध का कभी अंत नही होगा।

(फ) मनुष्य-स्वभाव सदैव एक-सा रहता है।

(ग) मनुष्य-स्वभाव उदात्त ऊँचाई तक उठ सकता है।

(ह) मनुष्य-स्वभाव मे परिवर्तन होता है।

ये प्रतिज्ञप्तियाँ या तो मनुष्य-स्वभाव के बारे मे, या युद्ध के बारे मे अथवा मनुष्य-स्वभाव एव युद्ध के सबध मे कही गई हैं। लेकिन, एक ही विषय के बारे मे होते हुए भी प्रतिज्ञप्तियाँ तार्किक दृष्टि से सबधित नही हो सकती, जैसे (अ) एव (ग)। ये दोनो सत्य हो सकते हैं या दोनो असत्य हो सकते है या एक सत्य और एक असत्य। इस प्रकार एक की सत्यता या असत्यता दूसरे की सत्यता या असत्यता से तर्कानुसार स्वतत्र (logically independent) हैं। इस सूची मे अन्य स्वतत्र प्रतिज्ञप्तियाँ भी हैं, जैसे (ग) एव (ह)। विद्यार्थियो को स्वय दूसरे जोडे ढूढना चाहिए। इस सूची की कुछ प्रतिज्ञप्तियाँ आपस मे एक दूसरे से स्वतत्र नही हैं, (ह) के अभिकथन को (अ) अस्वीकार करता है, ये एक दूसरे के व्याघाती हैं। सरसरी दृष्टि से देखने पर (ब) और (च) एक दूसरे के व्याघाती लगेंगे। लेकिन ध्यान देने पर स्पष्ट हो जायगा कि ऐसी बात नही है। यह कहने मे कोई व्याघात नही है कि विशिष्ट परिस्थिति मे युद्ध चलता रहेगा (जैसे, यदि मनुष्य-

स्वभाव मे कोई परिवर्तन नही हुआ) परतु, दूसरी परिस्थितियो मे नही (जैसे, यदि मनुष्य-स्वभाव मे परिवर्तन होता है)। अत, (ब) और (च) भी आपस मे स्वतत्र है।

अब हम (ब) का (अ) के साथ अभिकथन करे, इससे सयोजक प्रतिज्ञप्ति मिलेगी यदि मनुष्य-स्वभाव मे परिवर्तन नही होता, तो युद्ध का अत नही होगा और मनुष्य-स्वभाव मे कभी भी परिवर्तन नही होता। इस सयोजक प्रतिज्ञप्ति एव उपर्युक्त (इ) मे क्या सबध है? यदि (ब) और (अ) दोनो सत्य है, तब (इ) भी अवश्य सत्य होगी, परतु (इ) सत्य हो सकती है यद्यपि (ब) और (अ) से प्राप्त सयोजक असत्य भी हो। अत, (इ) की सत्यता (ब) और (अ) के सयोजक की सत्यता को अनिश्चित छोड देती है। इसी प्रकार इस सूची मे अन्य प्रतिज्ञप्तियाँ भी सबधित है, प्रतिज्ञप्तियाँ इस प्रकार सबधित हो कि यदि प्रथम सत्य हो तो द्वितीय भी सत्य हो, पर यदि द्वितीय सत्य हो, तो प्रथम की सत्यता या असत्यता अनिश्चित रहे, तो अध्यापादक (Superimplicant) उपापादक (Subimplicant) के साथ सबधित कहा जाता है।

(अ) एव (फ) मे वाचिक भेद है। पर, दोनो एक ही तथ्य का अभिकथन करती है। अत, या तो ये दोनो सत्य हैं या दोनो असत्य। इन्हे तुल्य प्रतिज्ञप्ति (equivalent) कहते है।

विशिष्ट उदाहरणो द्वारा अभी तक हमलोगो ने दो प्रतिज्ञप्तियो या प्रतिज्ञप्ति-समूहो मे पाये जाने वाले विभिन्न सात तार्किक सबधो मे से चार को स्वीकार किया है। अब हम इन सबधो की परिभाषा करेगे और शेष तीन का भी अध्ययन करेगे। दो भिन्न प्रतिज्ञप्तियो के लिए प, क दृष्टात-प्रतीक लेकर परिभाषाएँ निम्नलिखित होगी

(१) तुल्यता या सह-आपादन (Equivalence or co-implication) प और क तुल्य या सह-आपादक तब कही जाती है, जब वे आपस मे इस प्रकार सबधित हो कि यदि प सत्य है तो क सत्य है, और यदि क सत्य है तो प सत्य है, और यदि प असत्य है तो क असत्य है, और यदि क असत्य है तो प असत्य है। अत, प ≡ क, यदि वे साथ-साथ सत्य या असत्य है। यह सबध उस समय होता है, जब प से क तथा क से प का आपादन होता है। सह-आपादन शब्द इस सबध को व्यक्त करता है।

(२) अध्यापादन या अध्याश्रयण (Superimplication or superalternation) प, क का अध्यापादक कहा जाता है जब यदि प सत्य है तो क सत्य है,

पहचानने और वाचिक भिन्नता होते हुए भी समतुल्यता को देखने मे समर्थ नही हैं, तब तक तर्कशास्त्र का अध्ययन आरभ नही कर सकते, क्योंकि समस्याओ के चिंतन के प्रयास मे ही तर्कशास्त्र उद्भूत होता है। परतु, कुछ उदाहरणो मे तार्किक सबधों को पहचान लेना इन सबधो को स्पष्टत ठीक-ठीक जानना नही है। इस परिच्छेद मे हम तार्किक प्रतिज्ञप्तियो के बीच उन सात सबधो का उल्लेख करेंगे, जो मूलभूत महत्त्व रखते है। इस पुस्तक मे वैध अनुमान के प्रत्येक विचार-विमर्श को इन्ही सात सबधो के किसी एक का उदाहरण समझना चाहिए। अत, इन्हे अच्छी तरह समझ लेना अति आवश्यक है। निम्नलिखित आठ प्रतिज्ञप्तियो पर विचार करे —

(अ) मनुष्य-स्वभाव कभी परिवर्तित नही होता।

(ब) यदि मनुष्य-स्वभाव कभी परिवर्तित नही होता, तो युद्ध का अत नही होगा।

(च) यदि मनुष्य-स्वभाव परिवर्तनशील है, तो युद्ध का अत हो जायगा।

(द) युद्ध सदैव नही चलता रहेगा।

(ई) युद्ध का कभी अंत नही होगा।

(फ) मनुष्य-स्वभाव सदैव एक-सा रहता है।

(ग) मनुष्य-स्वभाव उदात्त ऊँचाई तक उठ सकता है।

(ह) मनुष्य-स्वभाव मे परिवर्तन होता है।

ये प्रतिज्ञप्तियाँ या तो मनुष्य-स्वभाव के बारे मे, या युद्ध के बारे मे अथवा मनुष्य-स्वभाव एव युद्ध के सबध मे कही गई हैं। लेकिन, एक ही विषय के बारे में होते हुए भी प्रतिज्ञप्तियाँ तार्किक दृष्टि से सबधित नही हो सकती, जैसे (अ) एव (ग)। ये दोनो सत्य हो सकते है या दोनो असत्य हो सकते है या एक सत्य और एक असत्य। इस प्रकार एक की सत्यता या असत्यता दूसरे की सत्यता या असत्यता से तर्कानुसार स्वतत्र (logically independent) हैं। इस सूची मे अन्य स्वतत्र प्रतिज्ञप्तियाँ भी हैं, जैसे (ग) एव (ह)। विद्यार्थियो को स्वय दूसरे जोडे ढूढना चाहिए। इस सूची की कुछ प्रतिज्ञप्तियाँ आपस मे एक दूसरे से स्वतत्र नही हैं, (ह) के अभिकथन को (अ) अस्वीकार करता है, ये एक दूसरे के व्याघाती है। सरसरी दृष्टि से देखने पर (ब) और (च) एक दूसरे के व्याघाती लगेंगे। लेकिन ध्यान देने पर स्पष्ट हो जायगा कि ऐसी बात नही है। यह कहने मे कोई व्याघात नही है कि विशिष्ट परिस्थिति मे युद्ध चलता रहेगा (जैसे, यदि मनुष्य-

स्वभाव मे कोई परिवर्तन नही हुआ) परतु, दूसरी परिस्थितियो मे नही (जैसे, यदि मनुष्य-स्वभाव मे परिवर्तन होता है)। अत, (ब) और (च) भी आपस मे स्वतत्र है।

अब हम (ब) का (अ) के साथ अभिकथन करे, इससे सयोजक प्रतिज्ञप्ति मिलेगी यदि मनुष्य-स्वभाव मे परिवर्तन नही होता, तो युद्ध का अत नही होगा और मनुष्य-स्वभाव मे कभी भी परिवर्तन नही होता। इस सयोजक प्रतिज्ञप्ति एव उपर्युक्त (इ) मे क्या सबध है? यदि (ब) और (अ) दोनो सत्य हैं, तब (इ) भी अवश्य सत्य होगी, परतु (इ) सत्य हो सकती है यद्यपि (ब) और (अ) से प्राप्त सयोजक असत्य भी हो। अत, (इ) की सत्यता (ब) और (अ) के सयोजक की सत्यता को अनिश्चित छोड देती है। इसी प्रकार इस सूची मे अन्य प्रतिज्ञप्तियाँ भी सबधित हैं, प्रतिज्ञप्तियाँ इस प्रकार सबधित हो कि यदि प्रथम सत्य हो तो द्वितीय भी सत्य हो, पर यदि द्वितीय सत्य हो, तो प्रथम की सत्यता या असत्यता अनिश्चित रहे, तो अध्यापादक (Superimplicant) उपापादक (Sub-implicant) के साथ सबधित कहा जाता है।

(अ) एव (फ) मे वाचिक भेद है। पर, दोनो एक ही तथ्य का अभिकथन करती है। अत, या तो ये दोनो सत्य हैं या दोनो असत्य। इन्हे तुल्य प्रतिज्ञप्ति (equivalent) कहते हैं।

विशिष्ट उदाहरणो द्वारा अभी तक हमलोगो ने दो प्रतिज्ञप्तियो या प्रतिज्ञप्ति-समूहो मे पाये जाने वाले विभिन्न सात तार्किक सबधो मे से चार को स्वीकार किया है। अब हम इन सबधो की परिभाषा करेंगे और शेष तीन का भी अध्ययन करेंगे। दो भिन्न प्रतिज्ञप्तियो के लिए प, क दृष्टात-प्रतीक लेकर परिभाषाएँ निम्नलिखित होगी .

(१) तुल्यता या सह-आपादन (Equivalence or co-implication) प और क तुल्य या सह-आपादक तब कही जाती हैं, जब वे आपस मे इस प्रकार सबधित हो कि यदि प सत्य है तो क सत्य है, और यदि क सत्य है तो प सत्य है, और यदि प असत्य है तो क असत्य है, और यदि क असत्य है तो प असत्य है। अत, प $\equiv$ क, यदि वे साथ-साथ सत्य या असत्य है। यह सबध उस समय होता है, जब प से क तथा क से प का आपादन होता है। सह-आपादन शब्द इस सबध को व्यक्त करता है।

(२) अध्यापादन या अध्याश्रयण (Superimplication or superalternation) प, क का अध्यापादक कहा जाता है जब यदि प सत्य है तो क सत्य है,

परतु क सत्य हो मानता है यद्यपि प असत्य। अर्थात् क की सत्यता प की सत्यता को अनिश्चित छोड देती है।

(३) उपापादन या उपाश्रयण (Subimplication or subalternation) प क का उपापादक कहा जाता है जब यदि क सत्य हो तो प सत्य हो, परतु प सत्य हो सकता है यद्यपि क असत्य। उपापादन-सबध अध्यापादन-सबध का परिवर्तित सबध है, अर्थात जब प क का अध्यापादक है, तो क प का उपापादक है।

(४) स्वतत्रता (Independence) जब प की न तो सत्यता या न असत्यता क की सत्यता या असत्यता को निर्धारित करे, तो प, क से स्वतत्र कहा जाता है, वैसे ही इसका परिवर्तित स्वरूप।

(५) उपवैपरीत्य (Subcontrariety) प, क का विपरीत कहा जाता है जब यदि प असत्य है तो क सत्य है, और यदि क असत्य है तो प सत्य है, यद्यपि प एव क साथ-ही-साथ सत्य हो सकते है। प एव क की साथ-साथ असत्यता लागू नही होती।

(६) वैपरीत्य (Contrariety) प, क का विपरीत कहा जाता है जब यदि प सत्य है तो क असत्य है, और यदि क सत्य है तो प असत्य, यद्यपि प एव क साथ-साथ असत्य हो सकते है। प एव क की साथ-साथ सत्यता लागू नही होती।

(७) व्याघात (Contradiction) प एव क एक दूसरे के व्याघाती कहे जाते है जब यदि प सत्य है तो क असत्य है, और यदि प असत्य है तो क सत्य, अत प एव क साथ-साथ सत्य या असत्य नही हो सकते, अर्थात् जब एक सत्य होगा, तो दूसरा असत्य।

ये सगति (consistency) या असगति के सबध कहे जाते है, यदि प्रतिज्ञप्तियो मे प्रथम पाच मे से कोई एक लागू हो तो वे सगत है, यदि अतिम दो मे से कोई लागू हो, तो वे असगत है। स्वतत्रता का सबध सगति को, अनुमान के लिए आवश्यक परिस्थितियो की पूर्ण कमी के साथ, सम्मिलित करता है। उदाहरण के लिए पृष्ठ ३० पर (ग) एव (द) प्रतिज्ञप्तियो द्वारा सभावित आनुमानिक सयोजन की कमी स्पष्ट दिखलाई गई है, (ब) एव (च) उदाहरणो मे भी समान रूप से यह उपस्थित है यद्यपि सरलतापूर्वक समझ मे नही आता। विपरीत वाक्य आपस मे व्याघाती से कम परस्परविरोधी या असगत नही होते। पहले की दूसरे से इस बात मे भिन्नता है कि दो विपरीत प्रतिज्ञप्तियो मे अतुल्य विकल्प (Non-equivalent alternatives) होते है।

ये सातो संबंध संक्षेप में निम्न तालिका में रखे जाते है जिसमे प सत्य है के स्थान पर प, प असत्य है के स्थान पर प̄ का व्यवहार हुआ है, और इसी प्रकार क एवं क̄

संबंध	दिया हुआ	तब क या क̄	दिया हुआ	तब क या क̄
प तुल्य क के	प	क	प̄	क̄
प अध्यापादक क का	प	क	प̄	अनिश्चित
प उपापादक क का	प	अनिश्चित	प̄	क̄
प स्वतंत्र क से	प	अनिश्चित	प̄	अनिश्चित
प उपविपरीत क का	प	अनिश्चित	प̄	क
प विपरीत क का	प	क̄	प̄	अनिश्चित
प व्याघाती क का	प	क̄	प̄	क

प्रतिज्ञप्तियो के आपसी संबंध पर विचार करते समय हमने आ, ए, ई, ओ वाले पारंपरिक वर्गीकरण पर ध्यान सीमित नही रखा है। चूँकि प्रत्येक प्रतिज्ञप्ति दूसरी प्रतिज्ञप्ति से इन सातो संबधो मे से किसी एक से संबधित रहती है, अत उनकी ऐसी परिभाषा होनी चाहिए कि किसी रूप की प्रतिज्ञप्तियो मे हो, वे पहचान मे आ जायँ। पारंपरिक तर्कशास्त्रियो ने यह सोचकर कि प्रतिज्ञप्तियाँ केवल गुण या परिमाण या गुण परिमाण दोनो मे एक दूसरे से भिन्न हो सकती है, विरोध चतुस्र (Square of opposition) की रचना की। यहाँ शब्द 'विरोध' विशिष्ट पारिभाषिक अर्थ मे प्रयुक्त होता है, जिसके अनुसार संगत प्रतिज्ञप्तियाँ भी आपस मे विरोधी होती है। अत, विरोध की परिभाषा इस प्रकार करनी चाहिए दो प्रतिज्ञप्तियाँ विरोधी हैं यदि वे गुण या परिमाण या गुण एवं परिमाण दोनो मे भिन्न हैं। यदि गुण मे भेद हो, पर परिमाण मे भेद न हो, तो वे प्रतिज्ञप्तियाँ विपरीत (यदि गुण सर्वव्यापी है) अथवा उपविपरीत (यदि गुण अंशव्यापी है) कही जाती है। गुण एवं परिमाण दोनो की भिन्नता वाली व्याघाती कही जाती है। परिमाण मे भिन्नता हो पर गुण मे भिन्नता न हो, वे उपाश्रित कही जाती है। वर्ग के दो कर्णो को दो व्याघाती प्रतिज्ञप्तियो आ एवं ओ, ए एवं ई मानकर विरोध-चतुस्र बनाना आसान है। विद्यार्थी इसकी स्वयं

रचना कर। यहाँ पारपरिक विरोध अपूर्ण ममभित आकृति (Incomplete Symmetrical figuio) द्वारा प्रदर्शित होगी, क्योंकि वर्ग के पूर्ण सममित (Symmetry) असममित गवध को प्रदर्शित करने के उपयुक्त नही है।
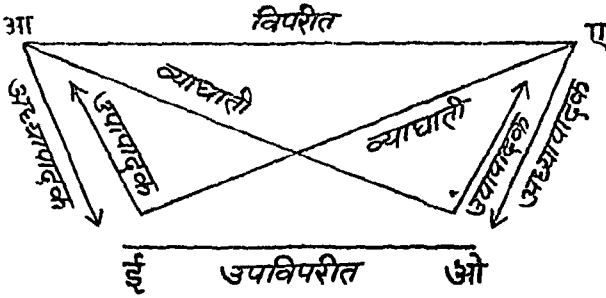
विरोधचतु निम्न तथ्यो को स्पष्ट करता है

(1) पारपरिक आ, ए, ई, ओ प्रतिज्ञप्तियो मे कोई दो तुल्य नही है तथा कोई दो स्वतत्र नही है।

(11) दोनो सर्वव्यापी रूप विपरीत है।

(111) दोनो अशव्यापी रूप उपविपरीत है।

(iv) गुण मे भिन्न सर्वव्यापी एव अशव्यापी प्रतिज्ञप्तियाँ व्याघाती हैं।

(v) सर्वव्यापी रूप उसी गुण के अशव्यापी का अध्यापादक है, अशव्यापी सर्वव्यापी का उपापादक है।

पारपरिक वर्ग अध्यापादन एव इसके विलोम (Converse) के महत्त्वपूर्ण भेद को स्पष्ट निर्दशित नही करता।

निम्न तालिका सक्षेप मे स्पष्ट करती है कि दी हुई प्रतिज्ञप्ति की सत्यता या असत्यता ज्ञात होने पर क्या बँध निष्कर्ष हो सकता है

दिया हुआ	निष्कर्ष हो सकता है		
आ सत्य	ए असत्य	ई सत्य	ओ असत्य
ए सत्य	आ असत्य	ई असत्य	ओ सत्य
ई सत्य	आ अनिश्चित	ए असत्य	ओ अनिश्चित
ओ सत्य	आ असत्य	ए अनिश्चित	ई अनिश्चित
आ असत्य	ए अनिश्चित	ई अनिश्चित	ओ सत्य
ए असत्य	आ अनिश्चित	ई सत्य	ओ अनिश्चित
ई असत्य	आ असत्य	ए सत्य	ओ सत्य
ओ असत्य	आ सत्य	ए असत्य	ई सत्य

यह देखा जायगा कि सर्वव्यापी प्रतिज्ञप्तियो मे से किसी एक की भी सत्यता अन्य तीन की सत्यता या असत्यता निर्धारित करती है, अशव्यापी प्रतिज्ञप्तियो मे से किसी एक की असत्यता अन्य तीन की सत्यता या असत्यता निर्धारित करती है। परतु अशव्यापी की सत्यता दो अनिर्धारित अवस्थाओ को छोड देती है और सर्वव्यापी की असत्यता दो अनिर्धारित अवस्थाओ को छोड देती है।

७ अव्यवहित अनुमान

हमने पहले ही देखा है कि ऐसी प्रतिज्ञप्तियाँ जिनके वाचिक कथन मे ही भिन्नता होती है, तुल्य हो सकती है। निम्नलिखित दो जोडे प्रतिज्ञप्तियो पर विचार किया जाय

(१) सभी डिब्बाबद मक्खन नियन्त्रित वस्तु है, कोई डिब्बाबद मक्खन अनियन्त्रित वस्तु नही है,

(२) मन्त्रिमडल के कुछ मत्री बुद्धिमान हैं, मन्त्रिमडल के कुछ मत्री मूर्ख नही हैं।

प्रत्येक युग्म मे प्रतिज्ञप्तियाँ तुल्य हैं, उनके उद्देश्य-पद एक ही है। पर, उनके विधेय-पद व्याघाती हैं। वे पद व्याघाती है, जो क्रमश दो परस्पर असगत वर्गों के लिए आते है तथा दोनो मिलकर उस बडे वर्ग को पूर्ण कर देते हैं, जिसके अदर दोनो होते हैं। जैसे यदि बडा वर्ग है वस्तु तो इस वर्ग का प्रत्येक सदस्य नियन्त्रित वस्तु अथवा अनियन्त्रित वस्तु उपवर्गो मे से किसी एक मे अवश्य होगा। अत अभिकथन—सभी डिब्बाबद मक्खन नियन्त्रित वस्तु वर्ग के अदर आता है, तुल्य है कोई डिब्बाबद मक्खन अनियन्त्रित वस्तु वर्ग के अदर नही

आता। आपत्ति उठायी जा सकती हे कि जोडा (11) पर यह वात लागू नही होती, क्योकि वुद्धिमान होना, मूर्ख न होने के विल्कुल समान नही है। यह स्वीकार किया जा सकता हे, क्योकि प्राय हम 'मूर्ख न होने' का ऐसा व्यवहार करते हैं जिससे वुद्धिमत्ता की पर्याप्त माना का वोध होता है। यह पर्यायोक्ति अलकार का दृष्टात है, जिसमे जितना कहा जाता है उससे वास्तविकता मे कम की धारणा वनती है। अत, इन पदो को विपरीत समझना चाहिए, व्याघाती नही। भ्रम के लिए स्थान न रहे, इसलिए विधायक पद के पूर्व हमेशा अ, अन्, या नि लगाया जा सकता है। जैसे—निर्बुद्धि। यह सदैव याद रखना चाहिए कि सामान्य वातचीत मे जो हम व्यक्त करते है, वह केवल सदर्भ पर ही नही, वल्कि अशत स्वर-शैली (intonation), वल (emphasis) एव मुखाकृति की सूक्ष्म अभिव्यजना पर भी आधारित होता है। तार्किक सवधों के विवेचन में हम भाषा के इन गुणो पर ध्यान नही देते * ।

तुल्य प्रतिज्ञप्तियो का विशेप गुण है कि किसी तर्क मे आनेवाली ऐसी एक प्रतिज्ञप्ति के स्थान पर दूसरी, तर्क की वैधता पर विना कोई प्रभाव डाले, रखी जा सकती है। तुल्य प्रतिज्ञप्तियाँ एक से दूसरी अनुमिति हो सकती हैं।

अनुमान की व्यवहित (mediate) एव अव्यवहित (immediate) मे बाँटने की प्रचलित प्रथा है। प्राय निष्कर्ष दो या अधिक आधारवाक्यो से निकाला जाता है, ऐसी परिस्थिति मे अनुमान को व्यवहित अनुमान कहते है। यदि निष्कर्ष एक ही प्रतिज्ञप्ति से निकाला जाय, तो उस अनुमान को अव्यवहित कहते हैं। यह भेद मूलत तार्किक महत्त्व का नही है, पर इसे वनाये रखना सुविधाजनक है। अव्यवहित अनुमान के कुछ रूप परपरा से चले आ रहे है, हम उनका वर्णन सक्षेप मे करेंगे।

एक प्रतिज्ञप्ति को दूसरी प्रतिज्ञप्ति से निष्कर्ष के रूप मे निकालते समय इस वात का ध्यान रखना चाहिए कि अनुमिति प्रतिज्ञप्ति मे (निष्कर्ष मे) किसी ऐसी वात का अभिकथन न हो, जो आधार वाक्य बनानेवाली एकमात्र मूल प्रतिज्ञप्ति मे निहित न हो, यद्यपि कम कहना न्यायसगत है। यह वधन निगमन के एक महत्त्वपूर्ण सिद्धात का विशिष्ट विनियोग (application) है प्रमाण के परे न जाओ (Do not go beyond the evidence)। अत, यदि किसी दी हुई प्रतिज्ञप्ति मे कोई पद अव्याप्त हो, तो वह अनुमिति प्रतिज्ञप्ति मे कदापि व्याप्त नही होना

---

*प्रारभिक पुस्तक मे इन पर ध्यान न देना न्यायसगत कहा जा सकता है, लेकिन इसका यह अर्थ नही कि इनका अध्ययन होना ही नहीं चाहिए।

चाहिए। यदि आधारवाक्य मे कोई पद व्याप्त हो तो उसे अव्याप्त रखकर निष्कर्ष निकालना प्रचलित है। ऐसी परिस्थिति मे दी हुई प्रतिज्ञप्ति निष्कर्ष का अध्यापादक होगी *।

परपरागत रीति से अव्यवहित अनुमान का वर्णन करने के पूर्व हमे एक ऐसी पूर्व मान्यता पर अवश्य विचार कर लेना चाहिये, जिस पर कुछ अवस्थाओं मे, उनकी वैधता आधारित होती है। कल्पना की जाय कि हम विद्यार्थियो के एक समूह का अध्ययन करना चाहते है, जिनमे योग्य एव परिश्रमी होने के गुण है अथवा नही हैं। तो हमे ये दृष्टात पाने की आशा करनी चाहिए वे जो योग्य एव परिश्रमी दोनो है, वे जो योग्य हैं पर परिश्रमी नही है, वे जो योग्य नही है पर परिश्रमी है, वे जो न तो परिश्रमी है और न योग्य। ऐसी परिस्थिति मे हमे विद्यार्थियो के चार परस्पर व्यावर्तक तथा सामूहिक रूप मे सर्वांगपूर्ण वर्ग मिलते हैं। परिश्रमी के लिए ह, उसके व्याघाती के लिए न ह, योग्य के लिए अ, उसके व्याघाती के लिए न-अ मानकर चारो वर्ग प्रतीकात्मक ढग से इस प्रकार रखे जा सकते है अ ह, अ न-ह, न-अ ह, न-अ न-ह। हमने मान लिया है कि इन चारो वर्गो मे से प्रत्येक मे विद्यार्थी है। यह भी हो सकता है कि न-ह एव न-अ वाले कोई विद्यार्थी न हो, तो चौथा वर्ग रिक्त कहा जायगा। यदि किसी वर्ग मे सदस्य हैं, तो हम कहते हैं कि उस वर्ग की सत्ता है (यदि एक भी गुण सदस्यो मे पाये जाते हैं)। उद्देश्य एव विधेय पद तथा उनके व्याघाती पदो के लिए क्रमश स, न-स, प, न-प रख लिया जाय, तो पारपरिक अव्यवहित अनुमान की वैधता जिस मान्यता पर आधारित है, उसे इस प्रकार कहा जा सकता है स, न-स, प, न-प इन सबकी सत्ता है, अर्थात् कोई वर्ग रिक्त नही है।

पारपरिक अव्यवहित अनुमान दो मूल प्रक्रिया पर आधारित है। वे हैं—प्रतिवर्तन (obversion) एव परिवर्तन (Conversion)।

(१) प्रतिवर्तन—स, प है की स्वीकारोक्ति स न-प है की अस्वीकारोक्ति के तुल्य है। अत, किसी दी हुई प्रतिज्ञप्ति के मूल विधेय के स्थान पर उसका व्याघाती रख तथा प्रतिज्ञप्ति का गुण-परिवर्तित कर उसका तुल्य परिज्ञप्ति पाना सदा सभव है। इसकी विशिष्ट परिभाषा इस प्रकार होगी प्रतिवर्तन अव्यवहित अनुमान की एक प्रक्रिया है, जिसमे किसी दी हुई प्रतिज्ञप्ति से दूसरी प्रतिज्ञप्ति अनुमिति होती है, जिसका विधेय-पद मूल विधेय पद का व्याघाती होता है।

---

*हम इस पर आगे विचार करेंगे, ऐसे अनुमान सही अर्थ मे वैध नही होते।

आता। आपत्ति उठायी जा सकती है कि जोडा (ii) पर यह बात लागू नही होती, क्योकि बुद्धिमान होना, मूर्ख न होने के बिल्कुल समान नही है। यह स्वीकार किया जा सकता है, क्योकि प्राय हम 'मूर्ख न होने' का ऐसा व्यवहार करते है जिससे बुद्धिमत्ता की पर्याप्त मात्रा का बोध होता है। यह पर्यायोक्ति अलकार का दृष्टात है, जिसमे जितना कहा जाता है उससे वास्तविकता मे कम की धारणा बनती है। अत, इन पदो को विपरीत समझना चाहिए, व्याघाती नही। भ्रम के लिए स्थान न रहे, इसलिए विधायक पद के पूर्व हमेशा अ, अन्, या नि लगाया जा सकता है। जैसे—निर्बुद्धि। यह सदैव याद रखना चाहिए कि सामान्य बातचीत मे जो हम व्यक्त करते है, वह केवल सदर्भ पर ही नही, बल्कि अशत स्वर-शैली (intonation), बल (emphasis) एव मुखाकृति की सूक्ष्म अभिव्यजना पर भी आधारित होता है। तार्किक सबधों के विवेचन में हम भाषा के इन गुणो पर ध्यान नही देते * ।

तुल्य प्रतिज्ञप्तियो का विशेष गुण है कि किसी तर्क मे आनेवाली ऐसी एक प्रतिज्ञप्ति के स्थान पर दूसरी, तर्क की वैधता पर बिना कोई प्रभाव डाले, रखी जा सकती है। तुल्य प्रतिज्ञप्तियाँ एक से दूसरी अनुमिति हो सकती हैं।

अनुमान को व्यवहित (mediate) एव अव्यवहित (immediate) मे बाँटने की प्रचलित प्रथा है। प्राय निष्कर्ष दो या अधिक आधारवाक्यो से निकाला जाता है, ऐसी परिस्थिति मे अनुमान को व्यवहित अनुमान कहते हैं। यदि निष्कर्ष एक ही प्रतिज्ञप्ति से निकाला जाय, तो उस अनुमान को अव्यवहित कहते हैं। यह भेद मूलत तार्किक महत्त्व का नही है, पर इसे बनाये रखना सुविधाजनक है। अव्यवहित अनुमान के कुछ रूप परपरा से चले आ रहे हैं, हम उनका वर्णन सक्षेप मे करेंगे।

एक प्रतिज्ञप्ति को दूसरी प्रतिज्ञप्ति से निष्कर्ष के रूप मे निकालते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि अनुमिति प्रतिज्ञप्ति मे (निष्कर्ष मे) किसी ऐसी बात का अभिकथन न हो, जो आधार वाक्य बनानेवाली एकमात्र मूल प्रतिज्ञप्ति मे निहित न हो, यद्यपि कम कहना न्यायसगत है। यह बधन निगमन के एक महत्त्वपूर्ण सिद्धात का विशिष्ट विनियोग (application) है प्रमाण के परे न जाओ (Do not go beyond the evidence)। अत, यदि किसी दी हुई प्रतिज्ञप्ति मे कोई पद अव्याप्त हो, तो वह अनुमिति प्रतिज्ञप्ति मे कदापि व्याप्त नही होना

---

*प्रारभिक पुस्तक मे इन पर ध्यान न देना न्यायसगत कहा जा सकता है, लेकिन इसका यह अर्थ नही कि इनका अध्ययन होना ही नही चाहिए।

चाहिए। यदि आधारवाक्य मे कोई पद व्याप्त हो तो उसे अव्याप्त रखकर निष्कर्ष निकालना प्रचलित है। ऐसी परिस्थिति मे दी हुई प्रतिज्ञप्ति निष्कर्ष का अध्यापादक होगी *।

परपरागत रीति मे अव्यवहित अनुमान का वर्णन करने के पूर्व हमे एक ऐसी पूर्व मान्यता पर अवश्य विचार कर लेना चाहिये, जिस पर कुछ अवस्थाओ मे, उनकी वैधता आधारित होती है। कल्पना की जाय कि हम विद्यार्थियो के एक समूह का अध्ययन करना चाहते है, जिनमे योग्य एव परिश्रमी होने के गुण है अथवा नही है। तो हमे ये दृष्टात पाने की आशा करनी चाहिए वे जो योग्य एव परिश्रमी दोनो है, वे जो योग्य हैं पर परिश्रमी नही है, वे जो योग्य नही है पर परिश्रमी हैं, वे जो न तो परिश्रमी हैं और न योग्य। ऐसी परिस्थिति मे हमे विद्यार्थियो के चार परस्पर व्यावर्त्तक तथा सामूहिक रूप मे सर्वागपूर्ण वर्ग मिलते हैं। परिश्रमी के लिए ह, उसके व्याघाती के लिए न ह, योग्य के लिए अ, उसके व्याघाती के लिए न-अ मानकर चारो वर्ग प्रतीकात्मक ढग से इस प्रकार रखे जा सकते है अ ह, अ न-ह, न-अ ह, न-अ न-ह। हमने मान लिया है कि इन चारो वर्गो मे से प्रत्येक मे विद्यार्थी हे। यह भी हो सकता है कि न-ह एव न-अ वाले कोई विद्यार्थी न हो, तो चौथा वग रिक्त कहा जायगा। यदि किसी वर्ग मे सदस्य हैं, तो हम कहते हैं कि उस वर्ग की सत्ता है (यदि एक भी गुण सदस्यो मे पाये जाते हैं)। उद्देश्य एव विधेय पद तथा उनके व्याघाती पदो के लिए क्रमश स, न-स, प, न-प रख लिया जाय, तो पारपरिक अव्यवहित अनुमान की वैधता जिस मान्यता पर आधारित है, उसे इस प्रकार कहा जा सकता है स, न-स, प, न-प इन सबकी सत्ता है, अर्थात्- कोई वर्ग रिक्त नही हे।

पारपरिक अव्यवहित अनुमान दो मूल प्रक्रिया पर आधारित है। वे हैं—प्रतिवर्तन (obversion) एव परिवर्तन (Conversion)।

(१) प्रतिवर्तन—स, प है की स्वीकारोक्ति स न-प है की अस्वीकारोक्ति के तुल्य है। अत, किसी दी हुई प्रतिज्ञप्ति के मूल विधेय के स्थान पर उसका व्याघाती रख तथा प्रतिज्ञप्ति का गुण-परिवर्तित कर उसका तुल्य परिज्ञप्ति पाना सदा सभव है। इसकी विशिष्ट परिभाषा इस प्रकार होगी प्रतिवर्तन अव्यवहित अनुमान की एक प्रक्रिया है, जिसमे किसी दी हुई प्रतिज्ञप्ति से दूसरी प्रतिज्ञप्ति अनुमिति होती है, जिसका विधेय-पद मूल विधेय पद का व्याघाती होता हे।

---

*हम इस पर आगे विचार करेंगे, ऐसे अनुमान सही अर्थ मे वैध नही होते।

प्रतिवर्तन की समाकृति

मूल प्रतिज्ञप्ति		प्रतिवर्तित रूप	
आ सभी स प हैं	≡	कोई स न-प नही है	ए
ए कोई स प नही है	≡	सभी स न-प है	आ
ई कुछ स प हैं	≡	कुछ स न-प नही है	ओ
ओ कुछ स प नही हैं	≡	कुछ स न-प है	ई

मूल प्रतिज्ञप्ति (जिसे प्रतिवर्त्य कहते हैं) एव प्रतिवर्तित रूप के बीच का प्रतीक '≡' प्रदर्शित करता है कि वे तुल्य (equivalent) हैं गुण मे भेद हो जाता है पर परिमाण अपरिवर्तित रहता है।

सार्थक प्रतिवर्तन के उदाहरण

प्रतिवर्त्य (obvertend)		प्रतिवर्तित (obvert)
कोई दभी अभिनदनीय अतिथि नही होता	≡	सभी दभी अनभिनदनीय अतिथि होते है।
सभी जयचद घृणास्पद हैं	≡	कोई जयचद अघृणास्पद नही है।

परिवर्तन (Conversion) किसी प्रतिज्ञप्ति के परिवर्तन का सामान्य अर्थ होता है, दूसरी प्रतिज्ञप्ति जिसके पद स्थानातरित हो गये हैं। उदाहरणार्थ "सभी समत्रिबाहु त्रिभुज के कोण बराबर होते हैं" तथा "सभी बराबर कोण वाले त्रिभुज समत्रिबाहु होते हैं" को आपस मे परिवर्तित कथन समझना चाहिए। परतु, इनमे से कोई अव्यवहित अनुमान के रूप मे एक दूसरे के निष्कर्ष नही कहे जा सकते, क्योकि ऐसा अनुमान नियम के विरुद्ध हो जायगा। नियम है कोई पद जबतक मूल प्रतिज्ञप्ति मे व्याप्त नही है, तबतक निष्कर्ष-प्रतिज्ञप्ति मे व्याप्त नही हो सकता। ये दोनो 'आ' प्रतिज्ञप्ति हैं, जिनमे उद्देश्य-पद तो व्याप्त है, परतु विधेय-पद अव्याप्त है। इसकी विशिष्ट परिभाषा इस प्रकार होगी परिवर्तन अव्यवहित अनुमान की एक प्रक्रिया है, जिसमे एक दी हुई प्रतिज्ञप्ति से दूसरी निष्कर्ष रूप मे निकाली जाती है, जिसका उद्देश्य मूल का विधेय होता है।

'कोई दभी अभिनदनीय नही होता' से हम अनुमान कर सकते है कि 'कोई अभिनदनीय अतिथि दभी नही होता'। इन प्रतिज्ञप्तियो मे से प्रत्येक के दोनो पद व्याप्त हैं ये प्रतिज्ञप्तियाँ तुल्य है। "कुछ जापानी परिश्रमी है" से हम अनुमान निकाल सकते है कि 'कुछ परिश्रमी मनुष्य जापानी है।' ये प्रतिज्ञप्तियाँ भी तुल्य है, क्योकि इनके दोनो पद अव्याप्त हैं।

'सभी उद्योगपति पूँजीपति है' से निष्कर्ष नही निकाला जा सकता कि 'सभी पूँजीपति उद्योगपति हैं', क्योकि परिवर्ती का उद्देश्य-पद व्याप्त हो जाता है, जबकि मूल विधेयक प्रतिज्ञप्ति मे जहाँ यह विधेय है, यह अव्याप्त है। अत, ऐसा परिवर्तन अवैध है, हमे दुर्बल प्रतिज्ञप्ति (Weaker proposition) निकालना चाहिए, 'कुछ पूँजीपति उद्योगपति है।' इस प्रकार अनुमिति प्रतिज्ञप्ति मूल से 'दुर्बल' कही जाती है, क्योकि इससे मूल पर लौट आना सभव नही, आ प्रतिज्ञप्ति का परिवर्तित वाक्य मूल का उपापादक है। अत, यह कहा जाता है कि आ प्रतिज्ञप्ति मे परिमित परिवर्तन (Conversion by Limittation) सभव है। लैटिन पदो मे इसे प्राय कानभर्शन पर ऐक्सिडेन्स (Convertion per accidens) कहा जाता है।

प्रतिज्ञप्ति 'कुछ बगाली मगोल नही हैं' से यह परिणाम नही निकाल सकते कि कुछ मगोल बगाली नही हैं, क्योकि अनुमानित प्रतिज्ञप्ति मे विधेय-पद बगाली व्याप्त है जबकि अशव्यापी प्रतिज्ञप्ति का उद्देश्य होने के नाते मूल वाक्य मे यह अव्याप्त है। यह सत्य है कि कुछ मगोल बगाली नही हैं, और वास्तव मे कोई बगाली मगोल नही हैं। पर, यह हम मूल कथन के आधार पर नही कह सकते जो ओ प्रतिज्ञप्ति का रूप है, ए का नही।

परिवर्तन की समाकृति

	मूल प्रतिज्ञप्ति		परिवर्तित रूप	
आ	सभी स, प है	⟶	कुछ प, स है	ई
ए	कोई स, प नही है	=	कोई प, स नही है	ए
ई	कुछ स, प है	=	कुछ प, स है	ई
ओ	कुछ स, प नही है		नही	

ध्यान रहे कि परिवर्तित वाक्य के गुण मूल के गुण के समान हैं। प्रतीक ⟶ व्यक्त करता है कि आ का परिवर्ती आ के तुल्य नही है, बल्कि उसका उपापादक है।

(३) प्रतिपरिवर्तन (Contraposition) —किसी प्रतिज्ञप्ति के परिवर्तित वाक्य का भी प्रतिवर्तन हो सकता है तथा प्रतिवर्ती का परिवर्तन हो सकता है। अत, क्रमश परिवर्तन एव प्रतिवर्तन द्वारा अथवा विपरीत क्रम से अव्यवहित अनुमान के अन्य रूप प्राप्त किये जा सकते है। दो रूप और हैं,—(जिनके विशिष्ट नामकरण हुए है) प्रतिपरिवर्तन एव विपरिवर्तन (Inversion)

प्रतिपरिवर्तन अव्यवहित अनुमान की प्रक्रिया है, जिसमे किसी दी हुई प्रतिज्ञप्ति से दूसरी अनुमित होती है, जिसका उद्देश्य मूल विधेय का व्याघाती होता है। 'कोई शेर कुत्ता नही है' से प्रतिवर्तन द्वारा मिलता है सभी शेर न-कुत्ता हैं, इसमे परिवर्तन द्वारा मिलता है कुछ न-कुत्ता शेर हैं और फिर इसको प्रतिवर्तित करने पर मिलता है कुछ न-कुत्ता न-शेर नही है। अतिम दो प्रतिवर्तन की परिभाषा मे आते है, और ये एक दूसरे के प्रतिवर्ती हैं।

प्रतिपरिवर्तन की समाकृति

मूल प्रतिज्ञप्ति	प्रतिपरिवर्तित रूप	प्रतिवर्तित—प्रतिपरिवर्तित रूप
(आ) सभी स, प हैं ==	कोई न-प, स नही है (ए) ==	सभी न-प, न-स है (आ)
(ए) कोई स, प नही है —>	कुछ न-प, स हैं (ई) —>	कुछ न-प न-स नही हैं (ओ)
(ई) कुछ स, प हैं	नही	नही
(ओ) कुछ स, प नही हैं ==	कुछ न-प, स हैं (ई) ==	कुछ न-प न-स नही हैं (ओ)

ध्यान रहे कि ई का प्रतिपरिवर्ती नही होता, क्योंकि ई का प्रतिवर्ती ओ होता है और ओ का परिवर्तन नही हो सकता। ए का प्रतिपरिवर्ती उसका तुल्य नही होता, क्योकि ए का प्रतिवर्ती आ होता है और आ का परिवर्ती तुल्य नही होता है।

(४) **विपरिवर्तन** (Inversion)—यह अव्यवहित अनुमान की प्रक्रिया है, जिसमे दी हुई प्रतिज्ञप्ति से दूसरी अनुमित होती है, जिसका उद्देश्य मूल उद्देश्य का व्याघाती रहता है। अत स--प रूप की प्रतिज्ञप्ति से (जहाँ गुण एव परिमाण का निर्देशन न हो) न-स—न-प, या न--स--प प्राप्त किया जा सकता है। प्रतिवर्तन के द्वारा विधेय पद का व्याघाती प्राप्त होता है। इसलिए, यदि हम ऐसी प्रतिज्ञप्ति अनुमित कर सकें, जिसका विधेय स हो, तो इसके प्रतिवर्ती का विधेय न--स होगा, यदि इस प्रतिज्ञप्ति का परिवर्तन हो सके, तो हमे अपेक्षित रूप

की प्रतिज्ञप्ति प्राप्त हो जायगी। यदि अतिम प्रतिज्ञप्ति ओ है, तो इसका परिवर्तन नही हो सकता। परीक्षण से मालूम होगा कि वारी-बारी से प्रतिवर्तन एव परिवर्तन कर (इसी क्रम से) आ से अपेक्षित प्रतिज्ञप्ति पायी जा सकती, है, बारी-बारी से परिवर्तन एव प्रतिवर्तन कर (इसी क्रम से) ए से अपेक्षित प्रतिज्ञप्ति पायी जा सकती है। ई या ओ प्रतिज्ञप्तियो से विपरिवर्तित रूप नही प्राप्त हो सकता, क्योकि इनमे से किसी से न--स उद्देश्य रूप मे प्राप्त करने के प्रयास मे न--स ओ प्रतिज्ञप्ति के विधेय रूप मे मिल जाता है, जिसका परिवर्तन नही हो सकता। आ एव ए से विपरिवर्तित रूप प्राप्त करने का नमूना नीचे दिया जाता है—

आ सभी स, प है।

प्रति—कोई स, न-प नही है।	ए कोई स-प नही है।
परि—कोई न-प, स नही है।	परि—कोई प-स नही है।
प्रति—सभी न-प न-स है।	प्रति—सभी प न-स हैं।
परि—कुछ न-स न-प है।	परि—कुछ न-स प हैं।
प्रति—कुछ न-स, प नही है।	प्रति—कुछ न-स, न-प नही हैं।

जिन प्रतिज्ञप्तियो के नीचे रेखा खीची गई है, वे अपेक्षित विपरिवर्ती हैं। ध्यान देने योग्य है कि आ का प्रतिवर्तित विपरिवर्ती 'कुछ न-स, प नही हैं' है। इस अनुमान से व्याप्तता-नियम का उल्लघन हो जाता है—क्योकि 'सभी स, प हैं' मे प व्याप्त नही था। फिर भी यह निष्कर्ष परिवर्तन एव प्रतिवर्तन की रीतियो से प्राप्त होता है, जिन्हें वैध माना जाता है। इस निष्कर्ष से हमे भ्रमित होना चाहिए। यदि हम सार्थक उदाहरण ले, तो परिणाम स्पष्टत असगत मालूम पडेगा। जैसे— 'सभी ईमानदार राजनीतिज्ञ मरणशील हैं' का प्रतिवर्तित विपरिवर्ती होना, 'कुछ बेईमान राजनीतिज्ञ मरणशील नही है,' और दूसरा विपरिवर्ती होगा, 'कुछ बेईमान राजनीतिज्ञ अमर हैं।' निष्कर्ष असगत है, क्योकि तर्कतर ससार के बारे मे हमे जो कुछ ज्ञान है, उसके आधार पर हम कह सकते हैं,कि मूल प्रतिज्ञप्ति सत्य है तथा विपरिवर्ती असत्य है। पर, सत्य प्रतिज्ञप्ति मे निहित प्रतिज्ञप्ति सत्य होती है,

अत. यदि केवल परिवर्तन एव प्रतिवर्तन रीतियो के व्यवहार से हमे सर्वमान्य सत्य प्रतिज्ञप्ति से असत्य प्रतिज्ञप्ति प्राप्त होती है, तो अवश्य ही इन रीतियो की वैधता पर हमे प्रश्न-चिह्न लगाना चाहिए। तथा उन मान्यताओ का विवेचन भी आवश्यक हो जाता है, जिन पर परिवर्तन एव प्रतिवर्तन की वैधता आधारित है। 'कुछ बेईमान राजनीतिज्ञ अमर हैं' को असत्य कहने का हमारा कारण है कि किसी व्यक्ति के अमर होने मे हमारा विश्वास नही है, इसीलिए 'सभी ईमानदार राजनीतिज्ञ मरणशील हैं' वाले कथन को स्वीकार किया गया है। फिर यदि अमर मनुष्य हो, और ईमानदार राजनीतिज्ञ व्याघाती वर्ग मरणशील मनुष्य मे पूर्णत आ जाते हो, तो अमर मनुष्य अवश्य ही बेईमान राजनीतिज्ञो को अपने भीतर सम्मिलित कर लेंगे। परन्तु, तार्किक दृष्टि से यह बिलकुल आवश्यक नही कि स, न-स, प, न-प से प्रदर्शित प्रत्येक वर्ग मे सदस्य हो, अत यह मान्यता अवश्य ही स्पष्ट हो जानी चाहिए कि इनमे से कोई वर्ग रिक्त नही है। यदि हम कहें कि 'कुछ वस्तु प नही हैं' तो हमे एक अतिरिक्त प्रतिज्ञप्ति भी माननी होगी, जिसमे प व्याप्त हो। पर, यदि विपरिवर्तन के लिए इस अतिरिक्त प्रतिज्ञप्ति की आवश्यकता होती है, तो जिस अर्थ मे 'अव्यवहित अनुमान' की परिभाषा हुई है, उस अर्थ मे विपरिवर्तन को अव्यवहित अनुमान नही माना जा सकता। 'सभी स प हैं' से 'कुछ न-स, प नही हैं' तक पहुँचने मे विधेय-पद की जिस अवैध रीति की कठिनाई का हमे सामना करना पडता है उससे सूचित होता है, कि अव्यवहित अनुमान बिना अव्यक्त मान्यताओ के वैध नही हो सकते, उन अव्यक्त मान्यताओ को अवश्य व्यक्त करना पडेगा। प्रासगिक मान्यता है, कि स, न-स, प न-प मे कोई वर्ग रिक्त नही है। यदि इसे मान लिया जाय तो 'सभी स, प हैं' से उपलक्षित होता है कि न-प, स नही हो सकता, इसलिए न-प अवश्य ही न-स है, अर्थात् 'कुछ न-स, न-प हैं' बाद मे हमलोग देखेंगे कि सर्वव्यापी प्रतिज्ञप्ति से अशव्यापी प्रतिज्ञप्ति के अनुमान को वैध करने के लिए सत्ता की मान्यता की आवश्यकता सदैव पडती है।

जिस पारपरिक अव्यवहित अनुमान की व्याख्या हमने अभी तक की है, उसे सुविधापूर्वक सक्षेप मे निम्न तालिका मे रखा जा सकता है। आगे से हम न-स के लिए स̄, एव न-प के लिए प̄ लिखेंगे।

अव्यवहित अनुमान के सक्षिप्त रूप

से	आ	ए	ई	ओ
मूल प्रतिज्ञप्ति	स आ प	स ए प	स ई प	स ओ प
परिवर्ती	प ई स	प ए स	प ई स	
प्रतिवर्ती	स ए प̅	स आ प̅	स ओ प̅	स ई प̅
प्रतिवर्तित परिवर्ती	प ओ स̅	प अ स̅	प ओ स̅	
प्रतिपरिवर्ती	प̅ ई स	प̅ ई स		प̅ ई स
प्रतिवर्तित प्रतिपरिवर्ती	प̅ आ स̅	प̅ ओ स̅		प̅ ओ स̅
विपरिवर्ती	प̅ ई स̅	स̅ ई प		
प्रविवर्तित विपरिवर्ती	स̅ ओ प	स̅ ओ प̅		

—.०—

अध्याय ३

मिश्र प्रतिज्ञप्तियाँ एवं युक्तियाँ

१ तुल्य एवं व्याघाती प्रतिज्ञप्तियाँ

अन्तिम अध्याय ५ मे हमने दो तरह की मिश्र प्रतिज्ञप्तियो की चर्चा की है, वे है सयोजक (Conjunctive) एव सयुक्त (Composite)। इस अध्याय मे हम यह देखने का प्रयास करेगे कि इनमे से किसी प्रतिज्ञप्ति के कहने से वस्तुत किसी बात का अभिकथन होता है। दो प्रतिज्ञप्तियो के विवेचन से हम प्रारभ करेगे। प्रतीक रूप मे इन्हे क्रमश प एव क तथा इनके व्याघाती को प̄ एव क̄ कहेगे। इनके सयोजक रूप इस प्रकार होगे (१) प एव क, (२) प̄ एव क (३) प̄ एव क̄, (४) प एव क̄। इस सयोजन मे भाग लेने वाले घटको का क्रम नगण्य है। उदाहरणार्थ, प्रेमचद एक बडे उपन्यासकार है एव तुलसीदास एक अच्छे कवि हैं, तथा तुलसीदास एक अच्छे कवि है एव प्रेमचद एक अच्छे उपन्यासकार है, मे कोई तार्किक भेद नही है। प्रत्येक प्रतिज्ञप्ति के दो अगीभूत घटको मे से किसका अभिकथन पहले होगा, वाद-विवाद के सदर्भ से निश्चित किया जायेगा। यदि एक मिश्र वाक्य का अभिकथन हो जाय, तो किसी को दूसरे के अभिकथन की कोई आवश्यकता नही रह जाती।

किसी प्रतिज्ञप्ति की अस्वीकारोक्ति सरल मालूम हो सकती है। हम सभी जानते है कि अपने पडोसी का कैसे खडन किया जाय। पर, सहसा यह भेद कर लेना आसान नही होता कि विपरीत के समर्थन से प्रतिवाद किया जाय अथवा व्याघाती के समर्थन से प्रतिवाद हो। कभी-कभी हम चरम सीमा पर पहुँच जाते है और आवश्यकता से अधिक का अभिकथन कर देते हैं। नित्य के वाद-विवाद मे कभी हम दो स्वतत्र प्रतिज्ञप्तियो को व्याघाती समझ लेने की भी भूल कर बैठते है। जैसे यदि हम दो प्रतिज्ञप्तियाँ ले (१) यदि मनुष्य-स्वभाव मे परिवर्तन नही होता, तो युद्ध कभी बद नही होगे, (२) यदि मनुष्य-स्वभाव मे सचमुच परिवर्तन होता है, तो युद्ध बद हो जायेगा। ये प्रतिज्ञप्तियाँ स्वतत्र है, व्याघाती नही। 'प्रत्येक प्रत्याशा सुख देती है तथा केवल मनुष्य नीच होता है' इसका व्याघात कैसे किया जाय? यहाँ दोनो घटको सत्य अभिकथन होता है। इनके व्याघात का अर्थ होगा या तो दोनो घटको के

असत्य होने का अभिकथन किया जाय या कम-से-कम एक के असत्य होने का मूल सयोजक प्रतिज्ञप्ति के विपरीत का अभिकथन रहता है, तथा व्याघाती का अभिकथन दूसरा है। इनमे प्राय भ्रम हो जाया करता है। विपरीत है न तो प्रत्येक प्रत्याशा सुखद होती है और न केवल मनुष्य नीच होता है। व्याघाती है या तो प्रत्येक प्रत्याशा सुखद नही होती या केवल मनुष्य नीच नही होता। यह व्याघाती दूसरे रूप मे भी कहा जा सकता है, 'ऐसी बात नही है कि प्रत्येक प्रत्याशा सुखद होती है और यह भी कि केवल मनुष्य नीच होता है।' विद्यार्थियो को चाहिये कि अपनी शका दूर कर ले कि ये दोनो मूल प्रतिज्ञप्तियो के व्याघाती है। प का क के साथ सयुक्त अभिकथन प एव क के असयुक्त कथन के प्रतिवाद के तुल्य है। अत, वियोजक प एव क दोनो नहीं, प एव क दोनो का व्याघात करता है, यह भी स्पष्ट है कि यदि दो प्रतिज्ञप्तियो मे दोनो का सयुक्त अभिकथन नही हो सकता तो कम-से-कम एक का निपेध अवश्य होना चाहिये, अत एक सयोजक का उतनी ही अच्छाई के साथ एक वैकल्पिक प्रतिज्ञप्ति द्वारा निपेध हो सकता है।

विभिन्न सयुक्त रूपो मे सामान्य कथन सरलतापूर्वक देखे जा सकते है कि ये तुल्य है। निम्नलिखित पर विचार करे —

(1) या तो देवदत्त मूर्ख है या श्याम बुरे शिक्षक है।

(11) यदि देवदत्त मूर्ख नही है, तो श्याम बुरे शिक्षक हैं।

(111) यदि श्याम बुरे शिक्षक नही है, तो देवदत्त मूर्ख है।

(1v) दोनो नही हो सकता कि देवदत्त मूर्ख नही है तथा श्याम बुरे शिक्षक नही हैं।

यदि देवदत्त मूर्ख है के स्थान पर प, श्याम बुरे शिक्षक है के स्थान पर क तथा इनके व्याघातियो के लिये $\bar{प}$ एव $\bar{क}$ लिखा जाय, तो इन चारो प्रतिज्ञप्तियो के रूप को हम इस प्रकार प्रदर्शित कर सकते है (1) या तो प या क, (11) यदि $\bar{प}$ तो क, (111) यदि $\bar{क}$ तो प, (1v) $\bar{प}$ एव $\bar{क}$ दोनो नही। ये सभी एक दूसरे के तुल्य है, अत इन सबका समान रूप से सयोजक दोनो $\bar{प}$ एव $\bar{क}$ से व्याघात होता है।

ध्यान देने योग्य है कि उपर्युक्त तालिका मे दो हेत्वाश्रित प्रतिज्ञप्तियाँ है और वे तुल्य है। मूल पूर्ववर्त्ती एव अनुवर्त्ती का अलग-अलग व्याघात कर, तब उनका स्थान-परिवतन कर उनकी एक दूसरे से रचना होती है। ऐसा इसलिये किया जाता है कि ताकि मूल अनुवर्त्ती का व्याघाती नवीन पूर्ववर्त्ती हो जाय तथा इसका विलोम। हम देख चुके है कि सयोजक प्रतिज्ञप्ति के अगभूत वाक्यो का क्रम तर्कदृष्टि से नगण्य है, यही बात वियोजक प्रतिज्ञप्ति के वियुतको (disjuncts) तथा वैकल्पिक के विकल्पो के क्रम के बारे मे भी लागू होती है। हेत्वाश्रित प्रतिज्ञप्तियो के सदर्भ मे यह नही लागू होती।

अध्याय ३

मिश्र प्रतिज्ञप्तियाँ एवं युक्तियाँ

१ तुल्य एवं व्याघाती प्रतिज्ञप्तियाँ

अन्तिम अध्याय ५ मे हमने दो तरह की मिश्र प्रतिज्ञप्तियो की चर्चा की है, वे है सयोजक (Conjunctive) एव सयुक्त (Composite)। इस अध्याय मे हम यह देखने का प्रयास करेंगे कि इनमे से किसी प्रतिज्ञप्ति के कहने से वस्तुत किसी बात का अभिकथन होता है। दो प्रतिज्ञप्तियो के विवेचन से हम प्रारभ करेंगे। प्रतीक रूप मे इन्हे क्रमश प एव क तथा इनके व्याघाती को प̄ एव क̄ कहेगे। इनके सयोजक रूप इस प्रकार होगे (१) प एव क, (२) प̄ एव क (३) प̄ एव क̄, (४) प एव क̄। इस सयोजन मे भाग लेने वाले घटको का क्रम नगण्य है। उदाहरणार्थ, प्रेमचद एक बडे उपन्यासकार है एव तुलसीदास एक अच्छे कवि है, तथा तुलसीदास एक अच्छे कवि है एव प्रेमचद एक अच्छे उपन्यासकार है, मे कोई तार्किक भेद नही है। प्रत्येक प्रतिज्ञप्ति के दो अगीभूत घटको मे से किसका अभिकथन पहले होगा, वाद-विवाद के सदर्भ से निश्चित किया जायेगा। यदि एक मिश्र वाक्य का अभिकथन हो जाय, तो किसी को दूसरे के अभिकथन की कोई आवश्यकता नही रह जाती।

किसी प्रतिज्ञप्ति की अस्वीकारोक्ति सरल मालूम हो सकती है। हम सभी जानते है कि अपने पडोसी का कैसे खडन किया जाय। पर, सहसा यह भेद कर लेना आसान नही होता कि विपरीत के समर्थन से प्रतिवाद किया जाय अथवा व्याघाती के समर्थन से प्रतिवाद हो। कभी-कभी हम चरम सीमा पर पहुँच जाते है और आवश्यकता से अधिक का अभिकथन कर देते हैं। नित्य के वाद-विवाद मे कभी हम दो स्वतत्र प्रतिज्ञप्तियो को व्याघाती समझ लेने की भी भूल कर बैठते हैं। जैसे यदि हम दो प्रतिज्ञप्तियाँ ले (१) यदि मनुष्य-स्वभाव मे परिवर्तन नही होता, तो युद्ध कभी बद नही होगे, (२) यदि मनुष्य-स्वभाव मे सचमुच परिवर्तन होता है, तो युद्ध बद हो जायेगा। ये प्रतिज्ञप्तियाँ स्वतत्र है, व्याघाती नही। 'प्रत्येक प्रत्याशा सुख देती है तथा केवल मनुष्य नीच होता है' इसका व्याघात कैसे किया जाय? यहाँ दोनो घटको सत्य अभिकथन होता है। इसके व्याघात का अर्थ होगा या तो दोनो घटको के

असत्य होने का अभिकथन किया जाय या कम-से-कम एक के असत्य होने का मूल सयोजक प्रतिज्ञप्ति के विपरीत का अभिकथन रहता है, तथा व्याघाती का अभिकथन दूसरा है। इनमे प्राय भ्रम हो जाया करता है। विपरीत है न तो प्रत्येक प्रत्याशा सुखद होती है और न केवल मनुष्य नीच होता है। व्याघाती है या तो प्रत्येक प्रत्याशा सुखद नही होती या केवल मनुष्य नीच नही होता। यह व्याघाती दूसरे रूप मे भी कहा जा सकता है, 'ऐसी बात नही है कि प्रत्येक प्रत्याशा सुखद होती है और यह भी कि केवल मनुष्य नीच होता है।' विद्यार्थियों को चाहिये कि अपनी शका दूर कर लें कि ये दोनो मूल प्रतिज्ञप्तियो के व्याघाती है। प का क के साथ सयुक्त अभिकथन प एव क के असयुक्त कथन के प्रतिवाद के तुल्य है। अत, वियोजक प एव क दोनो नहीं, प एव क दोनो का व्याघात करता है, यह भी स्पष्ट है कि यदि दो प्रतिज्ञप्तियो मे दोनो का सयुक्त अभिकथन नही हो सकता तो कम-से-कम एक का निषेध अवश्य होना चाहिये, अत एक सयोजक का उतनी ही अच्छाई के साथ एक वैकल्पिक प्रतिज्ञप्ति द्वारा निषेध हो सकता है।

विभिन्न सयुक्त रूपो मे सामान्य कथन सरलतापूर्वक देखे जा सकते हैं कि ये तुल्य है। निम्नलिखित पर विचार करें —

(i) या तो देवदत्त मूर्ख है या श्याम बुरे शिक्षक है।

(ii) यदि देवदत्त मूर्ख नही है, तो श्याम बुरे शिक्षक है।

(iii) यदि श्याम बुरे शिक्षक नही है, तो देवदत्त मूर्ख है।

(iv) दोनो नही हो सकता कि देवदत्त मूर्ख नही है तथा श्याम बुरे शिक्षक नही है।

यदि देवदत्त मूर्ख है के स्थान पर प, श्याम बुरे शिक्षक है के स्थान पर क तथा इनके व्याघातियो के लिये $\bar{प}$ एव $\bar{क}$ लिखा जाय, तो इन चारो प्रतिज्ञप्तियो के रूप को हम इस प्रकार प्रदर्शित कर सकते हैं (i) या तो प या क, ii) यदि $\bar{प}$ तो क, (iii) यदि $\bar{क}$ तो प, (iv) $\bar{प}$ एव $\bar{क}$ दोनो नही। ये सभी एक दूसरे के तुल्य हैं, अत इन सबका समान रूप से सयोजक दोनो $\bar{प}$ एव $\bar{क}$ से व्याघात होता है।

ध्यान देने योग्य है कि उपर्युक्त तालिका मे दो हेत्वाश्रित प्रतिज्ञप्तियाँ है और वे तुल्य है। मूल पूर्ववर्त्ती एव अनुवर्त्ती का अलग-अलग व्याघात कर, तब उनका स्थान-परिवर्तन कर उनकी एक दूसरे से रचना होती है। ऐसा इसलिये किया जाता है कि ताकि मूल अनुवर्त्ती का व्याघाती नवीन पूर्ववर्त्ती हो जाय तथा इसका विलोम। हम देख चुके है कि सयोजक प्रतिज्ञप्ति के अगभूत वाक्यो का क्रम तर्कदृष्टि से नगण्य है, यही बात वियोजक प्रतिज्ञप्ति के वियुतको (disjuncts) तथा वैकल्पिक के विकल्पो के क्रम के बारे मे भी लागू होती है। हेत्वाश्रित प्रतिज्ञप्तियो के सदर्भ मे यह नही लागू होती।

यदि वह परिश्रमी है तो वह सफल होगा, यह प्रतिज्ञप्ति यदि वह सफल होगा तो वह परिश्रमी हे के तुल्य नही है, सफलता के लिये अन्य परिस्थितियाँ भी हैं--वह भाग्यशाली हो सकता हे अथवा असाधारण चतुर। किसी एक कथन के लिये अ तथा दूसरे के लिये व मानकर हम देख सकते हैं कि यदि अ, तो व की प्रतिज्ञप्ति यदि व, तो अ से तर्कानुसार स्वतत्र है पहले मे कहा जाता है कि अ, व की सत्यता के लिये पर्याप्त है, दूसरे मे कहा जाता है कि व, अ की सत्यता के लिये पर्याप्त है। ये दोनो सत्य हो सकते है। इनमे से कोई एक दूसरे के विना सत्य हुए भी अकेले सत्य हो सकता है। इस पर भी अवश्य ध्यान देना चाहिये कि जवतक कि नही (Unless) का सामान्य अर्थ होता है यदि नही (If not), यह केवल यदि नहीं , (only if-not.... .) के समतुल्य नही है, पहले मे कही हुई परिस्थिति पर्याप्त होती है तथा दूसरे मे कही हुई परिस्थिति आवश्यक होती है, पर कोई परिस्थिति विना आवश्यक हुए पर्याप्त हो सकती है, उदाहरण के लिये, यदि पानी न पडे तो म टहलने जाऊँगा, मे कहा जा रहा है कि यदि पानी न पडता रहा, तो मैं टहलने जाऊँगा। पर, यह उस कथन के तुल्य नही कि 'केवल यदि पानी न पडे, तो मैं टहलने जाऊँगा, क्योकि पानी पडते रहने पर भी मैं घूमने जा सकता हूँ, क्योकि घर के भीतर रहते-रहते मन ऊव जा सकता है, अथवा मैं किसी मित्र को प्रसन्न करना चाहता हूँ। सामान्य वार्तालाप मे सदर्भ को यह प्रदर्शित करने योग्य होना चाहिये कि 'जब तक कि नही' का व्यवहार किस अर्थ मे हो रहा है। चूँकि हमलोग 'यदि प, तो क' मे, 'या तो प या क' की तरह, कथन का न्यूनतम अर्थ स्वीकार करते है। इसलिये प एव क के सबध मे सममिति (Symmetry) का अभाव रहता है, और इसलिये इसका सरल परिवर्तन 'यदि क, तो प' अवैध हो जाता है। या तो या (either or) की व्याख्या व्यावर्तक (exclusive) रूप मे करना या तो प या क तथा प एव क दोनो नहीं के तुल्य है, अर्थात् एक वैकल्पिक एव एक वियोजक प्रतिज्ञप्ति के सयोजन के। 'यदि प, तो क' की ऐसी व्याख्या करना कि क की सत्यता के लिए प पर्याप्त कथन हो साथ-ही-साथ यह भी स्पष्ट न हो कि प, क की सत्यता के लिए अनिवार्य है। तो प को अधिकतम अर्थ देने से बचना है, अर्थात् यह नही कहना है कि क की सत्यता के लिए प पर्याप्त एव अनिवार्य है। यदि हम अतिम तथ्य का अभिकथन करना चाहे, तो इसके लिए सयोजक वाक्य का व्यवहार करना पडेगा—यदि प तो क, और यदि क तो प। विज्ञान मे हम प्राय यह कथन करना चाहते हैं कि प मे क निहित है, और क मे भी प निहित है अर्थात्त वहाँ प्रतिज्ञप्ति के ऐसे जोडे की खोज रहती है कि निहित करने वाला एक अगभूत घटक दूसरे मे स्वय निहित रहता है। फिर भी बहुधा यह सभव नही होता हम जानते हैं कि भूख की कमी विशिष्ट-शारीरिक वीमारी का परिणाम है, पर यह गभीर दु ख का भी परिणाम हो सकता है। चिकित्साशास्त्री औषधि के चुनाव के लिए इन दोनो

मे उभयनिष्ट तथ्य पाने का प्रयास करते ह, और यदि ऐसी बात हे तो वे कौन से तथ्य है ? पर, चिकित्साशास्त्री इसमे सदैव सफलता नही पाते । अत , यदि प तो क से यदि क तो प का अवैध निष्कर्ष निकालने की भूल से बचना चाहिए । ज्ञान की उन्नति के लिए इन दोनो प्रतिज्ञप्तियो का सयुक्त अभिकथन विशिष्ट महत्त्व रखता है, इन्हे पूरक प्रतिज्ञप्ति कहते है । इसी प्रकार या तो प या क तथा प एव क दोनो नही पूरक प्रतिज्ञप्तियाँ कही जाती है ।

डब्लू० ई० जॉन्सन कहते ह, "पूरक पद विशेष रूप से वहाँ लागू होता है, जहाँ प्रतिज्ञप्तियाँ इन दोनो मे से किसी एक ढग से सयोजित होती ह, क्योकि प्रतिज्ञप्तियाँ अलग-अलग आशिक तथ्य को व्यक्त करती हैं और सयुक्त रूप से इसी तथ्य को अपेक्षाकृत पूर्ण रूप से व्यक्त करती हैं ।"*

सर्वव्यापी प्रतिज्ञप्तियो के जोडा जैसे स $_{आ}$ प, प आ स से इस तथ्य की आगे व्याख्या हो सकती हे । ये पूरक है, ये सगत है । पर, इनमे से किसी एक का दूसरे से वैध अनुमान नही हो सकता । दोनो का सयुक्त अभिकथन व्यक्त करता है कि वर्ग स वर्ग प मे एव वर्ग प वर्ग स मे पूर्णत समाविष्ट है अर्थात् वर्ग स एव वर्ग प सह-विस्तृत (Co-extensive) है । उदाहरणार्थ, प्रत्येक त्रिभुज जिसके आधार पर के कोण बरावर है समद्विवाहु होता है, तथा प्रत्येक समद्विवाहु त्रिभुज के आधार पर के कोण वरावर होते है । सयोजक प्रतिज्ञप्ति स $_{आ}$ प एव प $_{आ}$ स का व्याघाती या तो स $_{ओ}$ प या प $_{ओ}$ स है । इसी प्रकार 'सभी पाकिस्तानी मुसलमान हे' एव केवल 'पाकिस्तानी मुसलमान है' यह प्रतिज्ञप्ति 'या तो कुछ पाकिस्तानी मुसलमान नही हैं या कुछ मुसलमान पाकिस्तानी नही है ' से व्याघातित होता है । इसका ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि या तो ... या की व्याख्या अव्यावर्तक होती है ।

नीचे की तालिका मे सयुक्त रूपो की तुल्यता, प्रत्येक की व्याघाती के साथ सक्षेप मे व्यक्त होती है ।

---

* डब्लु० ई० जॉन्सन, लॉजिक, भाग १, पृष्ठ ३७, श्री जॉन्सन बतलाते है कि पूरक प्रतिज्ञप्तियाँ "विचार-विमर्श मे प्राय उलझन पैदा करती है एव तथ्य मे प्राय सयुक्त होती है ।" पर, इस पर भी ध्यान देना चाहिये कि कभी-कभी ये तथ्य मे भी सयोजित नही होती । अत , विचार-विमर्श मे उलझन पैदा करने की इनकी क्षमता हमलोगो से भूल करा सकती हे ।

यदि वह परिश्रमी है तो वह सफल होगा, यह प्रतिज्ञप्ति यदि वह सफल होगा तो वह परिश्रमी है के तुल्य नही है, सफलता के लिये अन्य परिस्थितियाँ भी है--वह भाग्यशाली हो सकता है अथवा असाधारण चतुर। किसी एक कथन के लिये अ तथा दूसरे के लिये व मानकर हम देख सकते हैं कि यदि अ, तो व की प्रतिज्ञप्ति यदि व, तो अ से तर्कानुसार स्वतत्र है पहले मे कहा जाता है कि अ, व की सत्यता के लिये पर्याप्त है, दूसरे मे कहा जाता है कि व, अ की सत्यता के लिये पर्याप्त है। ये दोनो सत्य हो सकते है। इनमे से कोई एक दूसरे के विना सत्य हुए भी अकेले सत्य हो सकता है। इस पर भी अवश्य ध्यान देना चाहिये कि जबतक कि नही (Unloss) का सामान्य अर्थ होता है यदि नहीं (if not), यह केवल यदि नही , (only if-not...) के समतुल्य नही है, पहले मे कही हुई परिस्थिति पर्याप्त होती है तथा दूसरे मे कही हुई परिस्थिति आवश्यक होती है, पर कोई परिस्थिति विना आवश्यक हुए पर्याप्त हो सकती है, उदाहरण के लिये, यदि पानी न पडे तो म टहलने जाऊँगा, मे कहा जा रहा है कि यदि पानी न पडता रहा, तो मैं टहलने जाऊँगा। पर, यह उस कथन के तुल्य नही कि 'केवल यदि पानी न पडे, तो मैं टहलने जाऊँगा, क्योकि पानी पडते रहने पर भी मैं घूमने जा सकता हूँ, क्योकि घर के भीतर रहते-रहते मन ऊब जा सकता है, अथवा मैं किसी मित्र को प्रसन्न करना चाहता हूँ। सामान्य वार्तालाप मे सदर्भ को यह प्रदर्शित करने योग्य होना चाहिये कि 'जब तक कि नही' का व्यवहार किस अर्थ मे हो रहा है। चूँकि हमलोग 'यदि प, तो क' मे, 'या तो प या क' की तरह, कथन का न्यूनतम अर्थ स्वीकार करते है। इसलिये प एव क के सबध मे सममिति (Symmetry) का अभाव रहता है, और इसलिये इसका सरल परिवर्तन 'यदि क, तो प' अवैध हो जाता है। या तो या (either or) की व्याख्या व्यावर्तक (exclusive) रूप मे करना या तो प या क तथा प एव क दोनो नहीं के तुल्य है, अर्थात् एक वैकल्पिक एव एक वियोजक प्रतिज्ञप्ति के सयोजन के। 'यदि प, तो क' की ऐसी व्याख्या करना कि क की सत्यता के लिए प पर्याप्त कथन हो साथ-ही-साथ यह भी स्पष्ट न हो कि प, क की सत्यता के लिए अनिवार्य है। तो प को अधिकतम अर्थ देने से वचना है, अर्थात् यह नही कहना है कि क की सत्यता के लिए प पर्याप्त एव अनिवार्य है। यदि हम अतिम तथ्य का अभिकथन करना चाहे, तो इसके लिए सयोजक वाक्य का व्यवहार करना पडेगा—यदि प तो क, और यदि क तो प। विज्ञान मे हम प्राय यह कथन करना चाहते हैं कि प मे क निहित है, और क मे भी प निहित है अर्थात वहाँ प्रतिज्ञप्ति के ऐसे जोडे की खोज रहती है कि निहित करने वाला एक अगभूत घटक दूसरे मे स्वय निहित रहता है। फिर भी बहुधा यह सभव नही होता हम जानते हैं कि भूख की कमी विशिष्ट-शारीरिक बीमारी का परिणाम है, पर यह गभीर दु ख का भी परिणाम हो सकता है। चिकित्साशास्त्री औषधि के चुनाव के लिए इन दोनो

मे उभयनिष्ट तथ्य पाने का प्रयास करते है, और यदि ऐसी बात है तो वे कौन से तथ्य है ? पर, चिकित्साशास्त्री इसमे सदैव सफलता नही पाते । अत , यदि प तो क से यदि क तो प का अवैध निष्कर्ष निकालने की भूल से बचना चाहिए । ज्ञान की उन्नति के लिए इन दोनो प्रतिज्ञप्तियो का सयुक्त अभिकथन विशिष्ट महत्त्व रखता है, इन्हे पूरक प्रतिज्ञप्ति कहते है । इसी प्रकार या तो प या क तथा प एव क दोनो नहीं पूरक प्रतिज्ञप्तियाँ कही जाती है ।

डब्लू० ई० जॉन्सन कहते है, "पूरक पद विशेष रूप से वहाँ लागू होता है, जहाँ प्रतिज्ञप्तियाँ इन दोनो मे से किसी एक ढग से सयोजित होती हे, क्योकि प्रतिज्ञप्तियाँ अलग-अलग आशिक तथ्य को व्यक्त करती हैं और सयुक्त रूप से इसी तथ्य को अपेक्षाकृत पूर्ण रूप से व्यक्त करती है ।"*

सर्वव्यापी प्रतिज्ञप्तियो के जोडा जैसे $स_{आ}प$, $प_{आ}स$ से इस तथ्य की आगे व्याख्या हो सकती है । ये पूरक है, ये सगत है । पर, इनमे से किसी एक का दूसरे से वैध अनुमान नही हो सकता । दोनो का सयुक्त अभिकथन व्यक्त करता है कि वर्ग स वर्ग प मे एव वर्ग प वर्ग स मे पूर्णत समाविष्ट है अर्थात् वर्ग स एव वर्ग प सह-विस्तृत (Co-extensive) है । उदाहरणार्थ, प्रत्येक त्रिभुज जिसके आधार पर के कोण बराबर है समद्विवाहु होता है, तथा प्रत्येक समद्विवाहु त्रिभुज के आधार पर के कोण बराबर होते है । सयोजक प्रतिज्ञप्ति $स_{आ}प$ एव $प_{आ}स$ का व्याघाती या तो $स_{ओ}प$ या $प_{ओ}स$ है । इसी प्रकार 'सभी पाकिस्तानी मुसलमान हैं' एव केवल 'पाकिस्तानी मुसलमान है' यह प्रतिज्ञप्ति 'या तो कुछ पाकिस्तानी मुसलमान नही हैं या कुछ मुसलमान पाकिस्तानी नही है ' से व्याघातित होता है । इसका ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि या तो .... या की व्याख्या अव्यावर्तक होती है ।

नीचे की तालिका मे सयुक्त रूपो की तुल्यता, प्रत्येक की व्याघाती के साथ सक्षेप मे व्यक्त होती है ।

---

* डब्लु० ई० जॉन्सन, लॉजिक, भाग १, पृष्ठ ३७, श्री जॉनसन बतलाते है कि पूरक प्रतिज्ञप्तियाँ "विचार-विमर्श मे प्राय उलझन पैदा करती है एव तथ्य मे प्राय सयुक्त होती हैं ।" पर, इस पर भी ध्यान देना चाहिये कि कभी-कभी ये तथ्य मे भी सयोजित नही होती । अत , विचार-विमर्श मे उलझन पैदा करने की इनकी क्षमता हमलोगो से भूल करा सकती है ।

सयुक्त प्रतिज्ञप्तियो की तुल्यता एव व्याघात

	तुल्य हेत्वाश्रित		वियोजक	वैकल्पिक	व्याघाती
(१)	यदि प तो क ≡	यदि क̄ तो प̄ ≡	प एव क̄ दोनो नही ≡	या तो प̄ या क	प एव क̄
(२)	यदि प̄ तो क̄ ≡	यदि क तो प ≡	प̄ एव क दोनो नही ≡	या तो प या क̄	प̄ एव क
(३)	यदि प तो क̄ ≡	यदि क तो प̄ ≡	प एव क दोनो नही ≡	या तो प̄ या क̄	प एव क
(४)	यदि प̄ तो क ≡	यदि क̄ तो प ≡	प̄ एव क̄ दोनो नही ≡	या तो प या क	प̄ एव क̄

ध्यान रहे कि 'यदि प तो क' एव 'यदि क तो प' के रूप एक हे, क्योकि तर्कानुसार नगण्य है कि निदर्शी प्रतीक मे किस अक्षर का व्यवहार हो, पूर्ववर्त्ती एव अनुवर्त्ती के लिए अन्य स्थल पर हमने अ, व प्रतीक लिया था। लेकिन, यह मानकर कि कि ी एक निश्चित प्रतिज्ञप्ति के लिए प तथा किसी दूसरी निश्चित प्रतिज्ञप्ति के लिए क रखा गया है, तो 'यदि प तो क' 'यदि क तो प' से उसके पूरक के रूप मे उससे भिन्न है। अत, सूची मे दोनो सम्मिलित कर लिए जायँगे।

इस तालिका के कुछ तथ्य महत्वपूर्ण है, उन पर ध्यान देना चाहिए।

(i) अलग अलग रेखाओ मे लिखित प्रतिज्ञप्तियाँ स्वतत्र हैं,

(ii) यदि कोई प्रतिज्ञप्ति किसी दी हुई प्रतिज्ञप्ति का व्याघात करे, तो वह सभी तुल्य प्रतिज्ञप्तियो का व्याघात करेगी, खडी रेखा के दाहिने वाली प्रतिज्ञप्ति अपने बायें एक रेखा मे लिखी चारो प्रतिज्ञप्तियो का व्याघात करती है,

(iii) विभिन्न रेखा तथा मुख्य कर्ण पर की प्रतिज्ञप्तियाँ प, क प्रतीको मे लिखी गई है, ये स्पष्टत स्वतत्र है

(iv) एक ही स्थभ की प्रतिज्ञप्तियाँ बनावट मे एक-सी हैं। हमारी मान्यता के अनुसार प सत्य है के लिए प, प असत्य है के लिए प̄ (वैसे ही क, क̄,), इन प्रतिज्ञप्तियो मे सरलतापूर्वक भेद किया जा सकता है, इसीलिए इन्हें अलग-अलग मान कर विचार हुआ है।

यदि एक मालूम हो, तो दूसरे को अनुमित करने के लिए विशिष्ट नियमो का प्रतिपादन कर सयुक्त प्रतिज्ञप्तियो के रूपो का महत्त्व प्रदर्शित किया जा सकता है।

हेत्वाश्रित प्रतिज्ञप्ति यदि प तो क का उदाहरण लेकर इन नियमो को व्यक्त करने मे इस पर अवश्य ध्यान रहना चाहिये कि यदि तो की व्याख्या "निहित है' से

करनी चाहिये, इसका अर्थ है कि, जब प मे क निहित है, तो क तभी सत्य होगा, जब प सत्य होगा। दिया हुआ है यदि प, तो क

(१) पूर्ववर्त्ती का अस्वीकरण (denial) अनुवर्त्ती के अस्वीकरण मे निहित है, अत यदि क̄ तो प̄ ।

(२) या तो पूर्ववर्त्ती अस्वीकार किया जाय या अनुवर्त्ती का अभिकथन, अत या तो प̄ या क।

(३) पूर्ववर्त्ती का अभिकथन अनुवर्त्ती के अस्वीकरण के साथ असगत है, अत प एव क̄ दोनो नही ।

अन्य दो सयुक्त रूपो मे से किसी एक के तुल्य प्रतिज्ञप्ति प्राप्त करने के लिए अनुरूप नियम सूत्रवद्ध करना कठिन नही है। विद्यार्थियो को चाहिये कि वे सार्थक उदाहरण ले एव उन्हे तुल्य प्रतिज्ञप्तियो मे वदलें, तव उन्हें इन प्रतिज्ञप्तियो की वैधता अपने आप-स्पष्ट हो जायेगी। हम एक उदाहरण लेकर देखेंगे।

उदाहरण—कुछ दिन पहले भारत सरकार ने लोगो को कोयले की मितव्ययता बताने की इच्छा की, ताकि कोयले की कमी से रेलगाडी के चलने मे वाधा न पडे। सरकार के प्रबोधन को सक्षेप मे यो रखा जा सकता है

यदि हम कोयले को बरबाद करेंगे, तो रेलगाडी का चलना वद हो जायेगा। इस प्रतिज्ञप्ति से हम तीन वाक्य और वना सकते है, जो इसके तुल्य होगे—

(१) यदि रेलगाडी का चलना वद नही होता, तो हमने कोयले की वरबादी नही की है।

(२) या तो हम कोयले की वरवादी न करे, या रेलगाडी का चलना वद हो।

(३) ये दोनो वातें नही हो सकती कि हम कोयले की वरबादी करे और रेलगाडी का चलना वद न हो ।

दूसरे अनुच्छेद मे हम देखेंगे कि यदि एक बार हमने अच्छी तरह इन नियमो को समझ लिया है तथा विभिन्न सयुक्त रूपो के महत्त्व को ठीक-ठीक मन मे विठा लिया है, तो नित्य के जीवन मे आने वाले सामान्य तर्क के विशिष्ट रूपो को समझने मे वहुत सुविधा होगी। इन रूपो से अवगत हो जाने पर आधारवाक्यो मे अभिकथित तथ्य के अपूर्ण ज्ञान से वहुधा उत्पन्न तर्क-दोपो से भी हम अपनी रक्षा कर सकते है।

२ एक या अधिक संयुक्त प्रतिज्ञप्तियो से मिश्र युक्ति

सामान्य व्यवहार मे प्रयुक्त युक्तियो के निम्नलिखित उदाहरणो पर विचार करें। यहाँ हम पाएँगे कि कुछ वैध है, कुछ अवैध।

(१) कुछ लडके एक हवाई जहाज का निरीक्षण कर रहे ह। एक कहता है, 'यह एक वावर है, मै सोचता हूँ कि यह एक स्टर्लिंग हे।' दूसरा उत्तर देता है, 'इसमे चार इजिन है, इसलिये मैं सोचता हू कि यह अवश्य ही एक स्टर्लिंग अथवा एक लिवरेटर होगा, पर मैं समझता हू कि यह स्टर्लिंग नही है।' हवाई जहाज जव निकट आ जाता है, तो पहला लडका कहता हे, 'तुम सत्य कह रहे हो, इसमे दो पख एव रडर (Rudders) है, इसलिये यह लिवरेटर है।'

(२) 'आप नही कह सकते है कि युद्धोपरात ससार के साधनो के लिए राष्ट्रो मे अनियन्त्रित प्रतिद्वद्विता चलती रहे और फिर भी आप साथ-साथ कहते रहे कि हमलोगो को सभी राष्ट्रो को आर्थिक सरक्षण देने का लक्ष्य रखना चाहिये। आप दूसरा विकल्प स्वीकार करते है, अत आपको अनियन्त्रित प्रतिद्वद्विता अवश्य अस्वीकार करनी चाहिये। इसके अतिरिक्त, यदि अनियन्त्रित प्रतिद्वद्विता रहे, तो और अधिक विश्वयुद्ध होगे पर आप इसपर सहमत हे कि और अधिक विश्वयुद्ध नही होने चाहिये।'

(३) 'यदि निराला की कवितायें हमारे मानवीय मूल्यो के विचारो को गहरा करती हैं, तो युद्धकाल मे भी ये लिखने योग्य है, पर ये अवश्य ही युद्धकाल मे लिखने योग्य है, अत मेरा निष्कर्ष है कि इनकी कवितायें मानवीय मूल्यो के विचारो को गहरा करती है।'

(४) 'यदि कोई मनुष्य कायर है तो वह सैनिक कर्त्तव्य मे टालमटोल करेगा, पर हमीद कायर नही है, अत वह सैनिक कर्त्तव्य से अलग रहने का प्रयास नही करेगा।'

(५) 'किसी उपन्यासकार की पुस्तको की ठीक-ठीक समीक्षा हो, इसके निश्चय के लिए उसे या तो पहले से ही प्रसिद्ध होना चाहिये या उसने वस्तुत प्रथम श्रेणी की पुस्तक लिखी हो, परतु रामकुमार पहले से ही प्रसिद्ध है, अत उनका उपन्यास प्रथम श्रेणी का नही है।'

इन युक्तियो की बनावट निश्चित करना कठिन नही है।* विस्तार से केवल प्रथम की समीक्षा पर्याप्त होगी। इसमे तर्क का सामान्य रूप पाया जाता हे। यह या वह के रूप मे कुछ चीजो की पहचान हो गई है, तव कुछ गुणो की खोज रह गई है, जो इसको उससे भिन्न करने मे पर्याप्त हो। आकार की दृष्टि से युक्ति की निम्नलिखित व्याख्या हो सकती है—

*आगे पढने के पहले विद्यार्थियो को स्वय निश्चित करना चाहिये कि प्रत्येक दृष्टात मे निष्कर्ष वस्तुत आधारवाक्यो से निकलता हे कि नही।

(i) या तो हवाई जहाज स्टर्लिंग है या लिबरेटर,

(ii) यदि इसमे दो पख एव रडर्स है, तो यह स्टर्लिग नही है, लेकिन इसमे दो पख एव रडर्स है, अत यह स्टर्लिंग नही है।

(iii) (i) एव (ii) के निष्कर्ष के सयोग मे निगमन निकलता है, यह लिबरेटर है।

तार्किक आकार निम्न रीति से व्यक्त हो सकता है :

या तो अ या व	(i)
यदि फ, तो न-अ फ न-अ	(ii)
∴ व	(iii)

नीचे की तालिका मे आकार की दृष्टि से सयुक्त आधारवाक्यो के चार प्रकार से मेल खाते हुए युक्ति के चार पर्याय [modes] दिये जा रहे हैं, साथ-साथ प्रत्येक दृष्टात मे पारपरिक लैटिन नाम भी दिया गया है

मिश्र पर्याय

प्रकार [Modes]*	सयुक्त आधारवाक्यो के रूप	
(१) [Ponendo ponens] विधि विध्यात्मक	यदि प तो क, लेकिन प, क	हेत्वाश्रित
(२) [Tollendo tollens] निषेध निषेधात्मक	यदि प तो क, लेकिन क̄, प̄	हेत्वाश्रित
(३) [Ponendo tollens] विधि निषेधात्मक	प एव क दोनो नही, लेकिन प, क̄	वियोजक
(४) [Tollendo ponens] निषेध विध्यात्मक	या तो प̄ या क, लेकिन प, क	वैकल्पिक

*ये असस्कृत नाम लैटिन क्रिया से लिये गये हैं पोनेरे [Ponere] = विधि करना, टोलेरे [tollere] = निषेध करना, इनकी व्याख्या इस प्रकार हो सकती है (१) विधि से विधि करता है, (२) निषेध से निषेध करता है, (३) विधि से निषेध करता है, (४) निषेध से विधि करता है।

(१) कुछ लडके एक हवाई जहाज का निरीक्षण कर रहे ह । एक कहता है, 'यह एक बावर है, मै सोचता हू कि यह एक स्टर्लिग हे ।' दूसरा उत्तर देता है, 'इसमे चार इजिन है, इसलिये मे सोचता हू कि यह अवश्य ही एक स्टर्लिग अथवा एक लिवरेटर होगा, पर मै समझता हूँ कि यह स्टर्लिग नही है ।' हवाई जहाज जब निकट आ जाता है, तो पहला लडका कहता हे, 'तुम सत्य कह रहे हो, इसमे दो पख एव रडर (Rudders) है, इसलिये यह लिवरेटर है ।'

(२) 'आप नही कह सकते है कि युद्धोपरात ससार के साधनो के लिए राष्ट्रो मे अनियत्रित प्रतिद्व द्विता चलती रहे और फिर भी आप साथ-साथ कहते रहे कि हम-लोगो को सभी राष्ट्रो को आर्थिक सरक्षण देने का लक्ष्य रखना चाहिये । आप दूसरा विकल्प स्वीकार करते ह, अत आपको अनियत्रित प्रतिद्व द्विता अवश्य अस्वीकार करनी चाहिये । इसके अतिरिक्त, यदि अनियत्रित प्रतिद्व द्विता रहे, तो और अधिक विश्वयुद्ध होगे पर आप इसपर सहमत है कि और अधिक विश्वयुद्ध नही होने चाहिये ।'

(३) 'यदि निराला की कवितायें हमारे मानवीय मूल्यो के विचारो को गहरा करती है, तो युद्धकाल मे भी ये लिखने योग्य हैं, पर ये अवश्य ही युद्धकाल मे लिखने योग्य है, अत मेरा निष्कर्ष है कि इनकी कवितायें मानवीय मूल्यों के विचारो को गहरा करती हैं ।'

(४) 'यदि कोई मनुष्य कायर हे तो वह सैनिक कर्त्तव्य मे टालमटोल करेगा, पर हमीद कायर नही है, अत वह सैनिक कर्त्तव्य से अलग रहने का प्रयास नही करेगा ।'

(५) 'किसी उपन्यासकार की पुस्तको की ठीक-ठीक समीक्षा हो, इसके निश्चय के लिए उसे या तो पहले से ही प्रसिद्ध होना चाहिये या उसने वस्तुत प्रथम श्रेणी की पुस्तक लिखी हो, परतु रामकुमार पहले से ही प्रसिद्ध है, अत उनका उपन्यास प्रथम श्रेणी का नही है ।'

इन युक्तियो की बनावट निश्चित करना कठिन नही हे ।* विस्तार से केवल प्रथम की समीक्षा पर्याप्त होगी । इसमे तर्क का सामान्य रूप पाया जाता है । यह या वह के रूप मे कुछ चीजो की पहचान हो गई हे, तब कुछ गुणो की खोज रह गई है, जो इसको उससे भिन्न करने मे पर्याप्त हो । आकार की दृष्टि से युक्ति की निम्न-लिखित व्याख्या हो सकती है—

---

*आगे पढने के पहले विद्यार्थियो को स्वय निश्चित करना चाहिये कि प्रत्येक दृष्टात मे निष्कर्ष वस्तुत आधारवाक्यो से निकलता हे कि नहीं ।

तुल्य युक्तिया

विधि विध्यात्मक Ponendo Ponens		निषेध विध्यात्मक Tollendo Ponens
यदि आपने २० रुपये दिया तो उसने आपको ठग लिया,	≡	या तो आपने २० रुपये नही दिया या उसने आपको ठग लिया,
अपने २० रुपये दिया,		आपने २० रुपये दिया,
उसने आपको ठग लिया।	∴	उसने आपको ठग लिया।

इसी प्रकार विधि-निषेधात्मक (पोनेन्डो टोलेन्स) एव निषेध-निषेधात्मक (टोलेन्डो टोलेन्स) वियोजनानुमान प्राप्त किये जा सकते हैं, हर दशा मे निष्कर्ष एक ही होगा।

उभयत पाश (Dilemma) प्रचलित वाक्य कि 'मैं उभयत पाश मे हूँ' प्रदर्शित करता है कि उभयत पाश युक्ति का एक रूप है। इसका लक्ष्य है प्रदर्शित करना कि किसी भी दो विकल्प से अप्रिय निष्कर्ष निकलता है। यदि प्रवीणता से व्यवहार किया जाय, तो वक्ता इसे प्रभावशाली बना सकता है और श्रोता के लिए मनोरजक हो सकता है। इसका सफल प्रयोग भी हो सकता है।

इन्ही कारणो से तर्कशास्त्र की पुस्तको मे इसे आवश्यकता से अधिक स्थान मिल जाता है—'आवश्यकता से अधिक' इसलिए कहा जा रहा है कि इसमे किसी नये तार्किक सिद्धात की अभिव्यक्ति नही होती। हम इसका सक्षेप मे वर्णन करेगे। उभयत पाश एक मिश्र युक्ति है, जिसके एक आधारवाक्य मे दो हेत्वाश्रित प्रतिज्ञप्तियो का सयुक्त विधि होता है, और दूसरे आधारवाक्य मे पूर्ववर्त्ती का विकल्पत विधि अथवा अनुवर्त्ती का विकल्पत निषेध होता है। यदि तीन हेत्वाश्रित का सयुक्त विधि हो, तो युक्ति को त्रिधापाश (Trilemma), यदि चार तो चतुष्पाश (quadrilemma), यदि चार से अधिक तो बहुतपाश (Polylemma) कहते हैं। इनका व्यवहार बहुत ही कम होता है, कभी-कभी 'उभयत पाश' का प्रयोग सबके लिए होता है।

उभयत पाश के चार रूप प्रधान हैं।

(१) मिश्र विधायक

यदि प तो क, और यदि र तो ट,
लेकिन या तो प या र,
या तो प या ट।

(२) सरल विधायक

यदि प तो क, और यदि र तो क
लेकिन या तो प या र,
क।

इन पर्याय के नियम निम्नलिखित हैं —

(१) पोनेन्डो पोनेन्स (विधि विध्यात्मक) पूर्ववर्त्ती के विधि से अनुवर्त्ती का विधि निर्णीत होता है।

(२) टोलेन्डो टोलेन्स (निषेध निषेधात्मक) अनुवर्त्ती के निषेध से पूर्ववर्त्ती का निषेध होता है।

(३) पोनेन्डो टोलेन्स (विधि निषेधात्मक) एक वियुनक के विधि से दूसरे वियुतक (disjunct) का निषेध होता है।

(४) टोलेन्डो पोनेन्स (निषेध विध्यात्मक) एक विकल्प के निषेध से दूसरे विकल्प का विधि होता है।

ऊपर के उदाहरणो मे यह देखना आसान है कि इन नियमो के अनुसार (३)अवैध है, क्योकि इसमे अनुवर्त्ती की विधि से पूर्ववर्त्ती की विधि होती है, (४) अवैध है, क्योकि इसमे पूर्ववर्त्ती के निषेध से अनुवर्त्ती का निषेध किया जाता है (५) अवैध है; क्योकि इसमे एक विकल्प की विधि से निष्कर्ष मे दूसरे विकल्प का निषेध होता है। ये तीनो तर्क-दोष इसलिये हो रहे है कि हम सयुक्त आधारवाक्यो मे अभिकथित वास्तविक तथ्य को ठीक से नही समझ रहे है। अनुवर्त्ती की स्वीकारोक्ति से पूर्ववर्त्ती को स्वीकार करना हेत्वाश्रित को पूरक मान लेने का भ्रम करना है, यही बात पूर्ववर्त्ती के निषेध से अनुवर्त्ती के निषेध मे भी है। एक विकल्प की स्वीकारोक्ति के बल पर दूसरे विकल्प का निषेध करना वैकल्पिक प्रतिज्ञप्ति को पूरक वियोजक समझने का भ्रम करना है, या उसे समझ लेना है कि मानो यह वैकल्पिक का पूरक वियोजक के साथ सयोजन है। सयुक्त प्रतिज्ञप्तियो की हमारी पूर्व व्याख्या से स्पष्ट हो जाना चाहिये कि यह भ्रम है। अनुमान के इन अवैध पर्यायो का सक्षेपीकरण निम्न रीति से हो सकता है

(१) हेत्वाश्रित यदि प तो क, लेकिन क, · प (अनुवर्त्ती का विधि है)

(२) हेत्वाश्रित यदि प तो क, लेकिन प̄, . क̄ (पूर्ववर्त्ती का निषेध है)

(३) वैकल्पिक या तो प या क, लेकिन प, · क̄ (विकल्प की विधि है

(४) वियोजक प एव क दोनो नही, लेकिन क̄, प (वियुतक का निषेध है)

चूँकि एक ही कथन इन चार सयुक्त प्रतिज्ञप्तियो के किसी एक मे रखा जा सकता है, इसलिए मिश्र पर्यायो का एक दूसरे मे रूपातर हो सकता है।

तुल्य युक्तियां

विधि विध्यात्मक		निषेध विध्यात्मक
Ponendo Ponens		Tollendo Ponens
यदि आपने १० रुपये दिया तो उसने आपको ठग लिया,	≡	या तो आपने २० रुपये नही दिया या उसने आपको ठग लिया,
अपने २० रुपये दिया,		आपने २० रुपये दिया,
उसने आपको ठग लिया।		∴ उसने आपको ठग लिया।

इसी प्रकार विधि-निषेधात्मक (पोनेन्डो टोलेन्स) एव निषेध-निषेधात्मक (टोलेन्डो टोलेन्स) वियोजनानुमान प्राप्त किये जा सकते है, हर दशा मे निष्कर्ष एक ही होगा।

उभयत पाश (Dilemma) प्रचलित वाक्य कि 'मैं उभयत पाश मे हूँ'- प्रदर्शित करता है कि उभयत पाश युक्ति का एक रूप है। इसका लक्ष्य है प्रदर्शित करना कि किसी भी दो विकल्प से अप्रिय निष्कर्ष निकलता है। यदि प्रवीणता से व्यवहार किया जाय, तो वक्ता इसे प्रभावशाली बना सकता है और श्रोता के लिए मनोरजक हो सकता है। इसका सफल प्रयोग भी हो सकता है।

इन्ही कारणो से तर्कशास्त्र की पुस्तको मे इसे आवश्यकता से अधिक स्थान मिल जाता है—'आवश्यकता से अधिक' इसलिए कहा जा रहा है कि इसमे किसी नये तार्किक सिद्धात की अभिव्यक्ति नही होती। हम इसका सक्षेप मे वर्णन करेंगे। उभयत पाश एक मिश्र युक्ति है, जिसके एक आधारवाक्य मे दो हेत्वाश्रित प्रतिज्ञप्तियो का सयुक्त विधि होता है, और दूसरे आधारवाक्य मे पूर्ववर्त्ती का विकल्पत विधि अथवा अनुवर्त्ती का विकल्पत निषेध होता है। यदि तीन हेत्वाश्रित का सयुक्त विधि हो, तो युक्ति को त्रिधापाश (Trilemma), यदि चार तो चतुष्पाश (quadrilemma), यदि चार से अधिक तो बहुतपाश (Polylemma) कहते हैं। इनका व्यवहार बहुत ही कम होता है, कभी-कभी 'उभयत पाश' का प्रयोग सबके लिए होता है।

उभयत पाश के चार रूप प्रधान हैं।

(१) मिश्र विधायक
यदि प तो क, और यदि र तो ट,
लेकिन या तो प या र,
या तो प या ट।

(२) सरल विधायक
यदि प तो क, और यदि र तो क
लेकिन या तो प या र,
क।

(३) मिश्र निषेधक

यदि प तो क, और यदि र तो ट,
लेकिन या तो न-क या न ट
∴ या तो न-प या न-र।

(४) सरल निषेधक

यदि प तो क, और यदि प तो र
लेकिन या तो न-क या न-र
∴ न-प।

यह स्पष्ट है कि हेत्वाश्रित एव वैकल्पिक युक्तियो के नियम उभयत पाश के रूपो पर सीधे लागू होते हैं। अत, उनका पुनर्कथन यहाँ आवश्यक नही है।

उभयता·पाश को युक्ति का प्राय विशिष्ट तर्क-दोषी रूप माना जाता है। पर, यह भूल है। इस युक्ति के किसी रूप का सदोष व्यवहार हो सकता है और प्राय किया भी जाता है। पर, या तो मूर्खतावश या धूर्ततावश। वैध उभयत पाश की जो कुछ कठिनाई है, वह सार्थक एव वैध आधार-वाक्यो के पाने की कठिनाई है जो सत्य हो और साथ-साथ विशिष्ट रूप के अपेक्षित नियमो का पालन करें। वैकल्पिक आधारवाक्य मे प्रदर्शित उभयत पाश की परिस्थिति का बल, विकल्पो की सर्वागपूर्णता पर आधारित होता है। यदि तीसरा विकल्प भी है तो 'उभयत पाश-विनिर्मुक्ति'* (escaping between the horns of the dilemma) हो सकती है। जैसे आवश्यकता से अधिक उत्सुक मा-बाप युक्ति दे सकते है, यदि मेरा पुत्र सुस्त है, तो वह परीक्षा मे असफल हो जायगा, और यदि वह बहुत अधिक परिश्रम करता है, तो बीमार हो जायगा, पर या तो वह सुस्त होगा या बहुत अधिक परिश्रम करेगा, अत. मेरा पुत्र या तो परीक्षा मे असफल हो जायगा या बीमार हो जायगा।

यहाँ तीसरा विकल्प इतना स्पष्ट है कि उसे व्यक्त करने की आवश्यकता नही है, फिर भी सभव है कि कुछ लोग ऐसे मूर्ख हो, जैसा इस युक्ति मे सकेत है। वैध उभयत पाश का दृष्टात आगे है "यदि आप ध्यान से देखते, तो आपको अपनी भूल मालूम हो जाती, और यदि आप ईमानदार होते, तो उसे स्वीकार कर लिए होते, पर या तो आप अपनी भूल को नही देखते या आप उसे स्वीकार नही करते, अत या तो आपने ध्यान से देखा नही है या आप ईमानदार

*यह वाक्याश इस पर बल देता है कि उभयत पाश मूलत विवादात्मक तर्क है, वक्ता अपने प्रतिद्वद्वी को 'किसी एक सीध पर अर्थात् अप्रिय विकल्प पर पहुँचने के लिए वाध्य करता है, पर हम सदैव प्रतिद्वद्वी के खडनार्थ ही तर्क नही करते, जो हमारे दृष्टिकोण का विरोध करते है उनको समझाने के लिए, या कभी-कभी अपने को ही समझाने के लिए तर्क करते है।

नही हैं।" यह मिश्र निषेधक उभयत पाश है, हेत्वाश्रित आधारवाक्य की सत्यता को सदोष सिद्ध करके इस निष्कर्ष का परिहार हो सकता है। पर, निष्कर्ष को अस्वीकार करने की यह रीति उभयत पाश युक्तियो तक ही सीमित नही हो सकती।

यदि दूसरा उभयत पाश बनाया जाय, जिसका निष्कर्ष मूल निष्कर्ष का व्याघातक जान पडे, तो प्रथम उभयत पाश विखडित (Rebutted) कहा जाता है। कहा जाता है कि एक अथेनियन माँ ने अपने पुत्र के समक्ष उभयत पाश रखा

"यदि तुम सत्य कहते हो तो मनुष्य घृणा करेगे, और यदि तुम असत्य कहते हो तो देवता घृणा करेगे, पर तुम अवश्य ही या तो सत्य कहोगे या असत्य, अत या तो मनुष्य घृणा करेंगे या देवता घृणा करेंगे।"

पुत्र ने इसका उत्तर दिया "यदि मैं सत्य कहता हूँ तो देवता मुझे प्यार करेंगे; और यदि मैं असत्य कहता हूँ तो मनुष्य मुझे प्यार करेगे, पर मैं अवश्य ही सत्य या असत्य कहूँगा, अत या तो देवता प्यार करेगे या मनुष्य प्यार करेगे।"

विखडन (Rebuttal) दो अनुवर्त्तियो के अतर्विनिमय एव उनके व्याघात करने से सिद्ध होता है।* इसलिए माँ के उभयत पाश का रूप है, यदि प तो क, और यदि न-प तो र, लेकिन या तो प या न-प, अत क या र।

पुत्र के विखडन का रूप है यदि प तो न-र, और यदि न-प तो न-क, लेकिन या तो प या न-प, इसलिए या तो न-र या न-क।

यह स्पष्ट है कि क या र का न-र या न-क से व्याघात नही होता, ये प्रतिज्ञप्तियाँ स्वतत्र है। माँ के डर को दूर करने के लिए पुत्र के लिए जो सिद्ध करना था, वह था कि मनुष्य एव देवता दोनो प्यार करेंगे।

उभयत पाश का 'पाशभेदन' (taking by the horns) उस समय कहा जाता है जब विकल्प स्वीकार कर लिए जाते है पर उनसे निकाले गये निष्कर्ष अस्वीकार। युक्ति के इस विलक्षण रूप मे कोई विशिष्ट तार्किक महत्त्व नही है। तार्किक सिद्धातो के व्यवहार एव उनके अतिक्रमण की पहचान को योग्यता के रूप मे इनकी कुछ उपादेयता है, पर विशेष नही।

—o—

*स्टेबिंग 'प्यार करना' एव 'घृणा करना' को व्याघाती पद मानती हैं, यद्यपि ये सामान्यत विपरीत पद माने जाते है।

अध्याय ४

पारंपरिक न्यायवाक्य

१. न्यायवाक्य की विशेषताओं का निरूपण

आकारिक अव्यवहित अनुमान नगण्य हैं। यदि हम कभी एक ही आधारवाक्य से कोई गभीर निष्कर्ष निकालते हुए मालूम पडते है, तो इसका कारण है कि हमने अव्यक्त रूप से कुछ मान्यताये निश्चित कर ली है अथवा किसी अन्य आधारवाक्य को मान लिया है, जिसपर अभी हमारा ध्यान नही गया है। किसी वास्तविक आकारिक अनुमान के लिए कम-से-कम दो आधारवाक्यो की आवश्यकता होती है। ऐसा अनुमान व्यवहित (mediate) अनुमान होता है। प्राय हम दोनो आधारवाक्य व्यक्त रूप मे नही कहा करते, फिर भी ऐसे उदाहरण पाना सभव है। एक बार हमारे शिक्षक हमलोगो के साथ अनौपचारिक वातचीत कर रहे थे। इसी सदर्भ मे उन्होंने कहा—"जो मनुष्य सीधी सडक पर चलता है, वह कभी अपना रास्ता नही भूलता।" अस्तु, 'मैं अपने को सतोष देता हूँ कि मैं बहुत कुछ सीधी सडक पर चला हूँ, क्योकि शायद यह अपेक्षाकृत सरल है, इसलिए मैं अपना रास्ता नही भूला हूँ।' दो आधारवाक्यो, मनुष्य जो सीधी सडक पर चलता है, अपना रास्ता नहीं भूलता एवं मैं बहुत कुछ सीधी सडक पर चला हूँ, के सयुक्त अभिकथन मे निष्कर्ष मैं अपना रास्ता नहीं भूला हूँ, निहित है। किसी को यह देखने मे कोई कठिनाई नही होगी कि निष्कर्ष आधारवाक्यो से निकलता है। इस प्रकार की युक्तियो को, जिनमे दो आधारवाक्यो से निष्कर्ष अनुमित होता है, न्यायवाक्य कहा जाता है। सामान्यत इसे पारपरिक आकार मे व्यक्त किया जा सकता है। उदाहरण के लिए

(१) सभी मनुष्यो मे भूल करने की सभावना है।
    सभी दार्शनिक मनुष्य है।
    सभी दार्शनिको मे भूल करने की सभावना है।

(२) कोई दभी मनुष्य विश्वसनीय नही हैं।
सभी विद्वान पुरुष विश्वसनीय है।
. कोई विद्वान पुरुष दभी नही है।

(३) सभी सिपाही लबे है।
कुछ सिपाही पहाडी है।
कुछ पहाडी लबे है।

इन उदाहरणो मे से प्रत्येक मे तीन प्रतिज्ञप्तियाँ एव तीन भिन्न पद है, ये पद प्रत्येक दो बार आते है। जो पद दोनो आधारवाक्यो मे आता है, पर निष्कर्ष मे नही आता, मध्य (Middle) पद कहा जाता है, एक आधारवाक्य मे यह निष्कर्ष के विधेय तथा दूसरे आधारवाक्य मे निष्कर्ष के उद्देश्य के साथ सबधित होता है। निष्कर्ष के उद्देश्य एव विधेय को अरस्तू ने 'अतिम पद' (The stremeterms) कहा है, क्योकि ये मध्य पद के द्वारा जुडते है। निष्कर्ष का विधेय साध्यपद (major term) कहा जाता है, निष्कर्ष का उद्देश्य पक्ष पद (Minor term) कहा जाता है। जिस आधारवाक्य मे साध्य पद होता है, उसे साध्य आधारवाक्य कहते हैं। जिस आधारवाक्य मे पक्ष पद होता है, उसे पक्ष-आधारवाक्य कहते है। पारपरिक रीति मे साध्य आधारवाक्य पहले कहा जाता है, तब पक्ष आधारवाक्य और तब निष्कर्ष। उपर्युक्त तीनो उदाहरणो मे इसी क्रम का पालन हुआ है। पर तर्कानुसार तर्कवाक्यो का क्रम नगण्य है। निष्कर्ष एव आधारवाक्यो के बीच की रेखा इनके भेद स्पष्ट करने के अभिप्राय से खीची गई है—आधारवाक्यो को सत्य मान लिया जाता है अथवा उनका सत्य रूप मे अभिकथन होता है, निष्कर्ष उन्ही आधारवाक्यो से निकाला जाता है।

अरस्तू ने न्यायवाक्य की परिभाषा विस्तृत ढग से की है। वे कहते है 'न्यायवाक्य वह कथन है (Zo'ys) जिसमे कुछ कही हुई चीजो से उससे भिन्न कुछ चीज आवश्यक ढग से निकलती है', और फिर वह कहते हैं, 'अतिम वाक्याश से मेरा तात्पर्य है कि वह निष्कर्ष होता है और इसका अर्थ है कि निष्कर्ष को आवश्यक बनाने के लिए बाहर से किसी अन्य पद की आवश्यकता नही होती।'* परतु न्यायवाक्य की पारपरिक व्याख्या और सकीर्ण हुई है, फलस्वरूप कुछ युक्तियाँ इस परिभाषा के अनुरूप होते हुए भी विभिन्न ढग से न्यायवाक्य के आकार मे आने योग्य नही होती। पारपरिक न्याय-युक्तियो का यह सकीर्ण वर्णन तीन पारिभाषिक नियमो मे व्यक्त हो सकता है

---

* अनलिटिका प्रायोरा, २४^{b} १८

(१) प्रत्येक न्यायवाक्य मे तीन प्रतिज्ञप्तियाँ होनी है।

(२) न्यायवाक्य की प्रत्येक प्रतिज्ञप्ति को आ, ए, ई, ओ रूपो मे से किसी एक मे होना चाहिये।

(३) प्रत्येक न्यायवाक्य मे तीन, केवल तीन, पद होते है।

इन नियमो की समीक्षा—(१) न्यायवाक्य की युक्तियाँ प्राय सक्षेप मे कही जाती हैं, यहाँ तक कि एक आधारवाक्य अव्यक्त रहता है, केवल सदर्भ से उसे निकाला जा सकता है या शायद इस रूप मे मान लिया जाता है कि इसके विना युक्ति वैध नही होगी। इस प्रकार के अपूर्ण व्यक्त न्यायवाक्य को **लुप्तावयव न्यायवाक्य (enthymeme)** कहते हैं। प्राय वक्रोक्ति की आलकारिक अभिव्यक्ति के लिए निष्कर्ष को लुप्त कर दिया जाता है। लुप्तावयव न्यायवाक्य के उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं, जो सामान्य बातचीत मे बहुधा आते है। यद्यपि इतने सुगठित ढग से नही।

(i) तानाशाह निष्ठुर होते है, क्योकि सभी महत्वाकाक्षी निष्ठुर होते हैं।

(ii) कोई ईमानदार व्यक्ति विज्ञापक नही होता, क्योकि सभी विज्ञापक वृत्ति से ही मिथ्याभाषी होते है।

(iii) नाविक सुविधाजनक व्यक्ति है, इसलिये वे सदैव अभिनदनीय होते है।

(i) एव (ii) मे पक्ष आधारवाक्य लुप्त है, (iii) मे साध्य-आधारवाक्य लुप्त है।*

(२) एकव्यापी प्रतिज्ञप्ति, (singular proposition) जैसे महात्मा गाँधी देवता नही हैं, वह असावधान रहती है, इस नियम की परिधि से अलग नही हैं, क्योकि न्यायिक अनुमान के लिए एकव्यापी प्रतिज्ञप्तियाँ आ या ए प्रतिज्ञप्तियाँ मान ली जाती है।

(३) अनेकार्थक (equivocal) शब्दो के कारण इस नियम का प्राय उल्लघन होता रहता है, अर्थात् विभिन्न अर्थवाले एक ही शब्द या वाक्याश दो स्थानो पर आ जाते हैं। ऐसी परिस्थिति मे न्यायवाक्य मे तीन से अधिक पद हो जाते हैं या, अधिक समीचीन शब्दो मे, युक्ति न्यायिक नही रह जाती, यद्यपि उसका ऊपरी दिखावटी रूप ऐसा मालूम होता है, क्योकि उसके एक शब्द या वाक्याश का अनेकार्थक रूप मे व्यवहार हो रहा है।*

---

*बहुन्यायवाक्य (Polysyllogism) भी लुप्तावयव न्यायवाक्य की तरह होते हैं। इनका वर्णन आगे परिच्छेद ४ मे होगा।

*इस विषय पर आगे अध्याय ६ मे देखिये।

ये नियम निरुपाधिक न्यायवाक्य (Categorical syllogism) की व्याख्या के लिए पर्याप्त हैं, किंतु इनसे सभी प्रकार की वैध युक्तियो की परिस्थितियो का स्पष्टीकरण नही हो पाता। पृष्ठ ५५ पर दी हुई युक्तियाँ वैध है, यह सरलतापूर्वक देखा जा सकता है, पर ऐसा 'देखना' प्रमाण नही है। हमे आगे और देखना है कि क्यो किसी वैध न्यायवाक्य का निष्कर्ष वैध होता है। हमे यह भी ठीक-ठीक समझ लेना है कि क्यो हमारे अनुमान के कुछ निष्कर्ष वस्तुत अवध होते हे। इसके लिए हमे अवश्य ही कुछ नियमो या स्वयसिद्धियो को समझ लेना चाहिये।

I व्याप्ति-सबधी स्वयसिद्धियाँ

१ मध्यपद को कम-से-कम एक आधारवाक्य मे अवश्य ही व्याप्त होना चाहिये।

२ जो पद निष्कर्ष मे व्याप्त हो, उसे अपने आधारवाक्य मे अवश्य व्याप्त होना चाहिये।

II गुण-सबधी स्वयसिद्धियाँ

३ कम-से-कम एक आधारवाक्य को अवश्य ही विधायक (affirmative) होना चाहिये।

४ यदि एक आधारवाक्य निषेधक है, तो निष्कर्ष अवश्य ही निषेधक होगा।

५ दोनो विधायक आधारवाक्यो से निष्कर्ष अवश्य ही विधायक होगा।

इन स्वयसिद्धियो से हम तीन उपनियम निकाल सकते हैं। ये उपनियम यह निश्चित करने मे सहायक होगे कि आ, ए, ई, ओ प्रतिज्ञप्तियो के किन-किन सयोगो से वैध न्यायवाक्य बनते है। तर्कशास्त्र की प्रारभिक पाठ्यपुस्तक के कुछ लेखक इन उपनियमो को, नियमो या स्वयसिद्धियो की श्रेणी मे रखते है, पर इन्हे सिद्ध करना अधिक समीचीन है। उपनियम प्रमेय, (Theorem) है, और प्रमेय एक सामान्य प्रतिज्ञप्ति है, जो बिल्कुल ही स्वयसिद्धियो एव परिभाषाओ से प्रमाणित होती है। निम्नलिखित तीन प्रमेयो के लिए हम पारपरिक शब्द उपनियम (Corollary) का व्यवहार करेंगे। उपनियम (1) कम-से-कम एक आधारवाक्य को अवश्य ही सर्वव्यापी होना चाहिये। यह अप्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा सिद्ध किया जा सकता है, अर्थात्

मान लिया जाय कि दोनो आधारवाक्य अशव्यापी है, यह अभिकथित प्रमेय का व्याघाती है। प्रमाण यहाँ तीन प्रकार के दृष्टातो पर विचार करना है।

(अ) दोनो आधारवाक्य निपेधक हैं। यह स्वयसिद्धि तीन का उल्लघन करता है, अत मूल मान्यता असभव है, इसलिये इसका व्याघाती प्रमेय प्रमाणित हो गया।

(ब) दोनो आधारवाक्य विधायक है। तब चू कि दोनो अशव्यापी है (मान्यतानुसार), इसलिये किसी भी आधारवाक्य का कोई भी पद व्याप्त नही है, अत मध्य-पद अव्याप्त रह जाता है, इसके अनुसार स्वयसिद्धि १ का उल्लघन होता है।

(स) एक आधारवाक्य विधायक एव दूसरा निपेधक है। चू कि इनमे केवल एक पद व्याप्त होता है, इसलिए स्वयसिद्धि के अनुसार वह अवश्य ही मध्य-पद होगा, पर स्वयसिद्धि ४ के अनुसार निष्कर्ष अवश्य निषेधक होगा (और उसका एक पद व्याप्त होगा, अर्थात् उसका विधेय), अत स्वयसिद्धि २ का उल्लघन होता है।

(ii) दिया हुआ है कि एक आधारवाक्य अशव्यापी है, तो निष्कर्ष अवश्य ही अशव्यापी होगा।

प्रमाण यहाँ भी विचारार्थ तीन दृष्टात है (अ) दोनो आधारवाक्य निपेधक हैं। स्वयसिद्धि ३ के अनुसार यह नही हो सकता।

(ब) दोनो आधारवाक्य विधायक हैं। चू कि एक आधारवाक्य अशव्यापी है (दिया हुआ है) और दोनो विधायक है, तो इन दोनो आधारवाक्यो मे केवल एक पद व्याप्त होता है, यह स्वयसिद्धि १ के अनुसार अवश्य ही मध्य-पद होगा, इसलिए स्वयसिद्धि २ के अनुसार पक्ष-पद निष्कर्ष मे व्याप्त नही हो सकता, अर्थात् निष्कर्ष अवश्य अशव्यापी होगा।

(स) एक आधारवाक्य विधायक और दूसरा निपेधक है। चू कि एक आधारवाक्य विधायक और एक निषेधक है, तो आधारवाक्यो मे केवल दो पद-व्याप्त हो सकते है, इनमे से एक पद, स्वयसिद्धि १ के अनुसार, अवश्य ही मध्य-पद होगा, और दूसरा, स्वयसिद्धि ४ एव २ के अनुसार अवश्य ही साध्य-पद होगा, इसलिए पक्ष-पद व्याप्त नही हो सकता, अर्थात् निष्कर्ष अवश्य अशव्यापी होगा।

(iii) साध्य-आधारवाक्य अशव्यापी दिया हुआ है, तो पक्ष-आधारवाक्य निषेधक नही हो सकता। कल्पना की जाय कि पक्ष-आधारवाक्य निषेधक है, तो स्वयसिद्धि ४ के अनुसार निष्कर्ष अवश्य ही निषेधक होगा, फलत साध्य पद-निष्कर्ष मे व्याप्त होगा। पर साध्य-आधारवाक्य अशव्यापी (दिया हुआ) एव स्वयसिद्धि ३ के अनुसार विधायक है, अत साध्य आधारवाक्य मे कोई पद व्याप्त नही है, इसलिए स्वयसिद्धि २ के अनुसार यदि साध्य-आधारवाक्य अशव्यापी है, तो, पक्ष-आधारवाक्य निषेधक नही हो सकता।

२ न्यायवाक्य के आकृति एवं विन्यास

(Figures and Moods of the Syllogism)

आ, ए, ई, ओ, प्रतिज्ञप्तियों के सभी संयोग से वैध न्यायवाक्य नहीं बनेगा। इसलिए हमे निश्चित करना होगा कि कौन संयोग वैध है। सर्वप्रथम हम निम्नलिखित चार युक्तियों पर विचार करें

I सभी जुगाली करने वाले पशु सींग वाले हैं।
सभी गायें जुगाली करने वाली हैं।
∴ सभी गायें सींग वाली हैं।

II कोई साम्यवादी शांतिवादी नहीं है।
सभी योगी शांतिवादी हैं।
∴ कोई योगी साम्यवादी नहीं है।

III सभी फिल्म-नायिका प्रसिद्ध हैं।
कुछ फिल्म-नायिका क्षुद्र हैं।
∴ कुछ क्षुद्र प्रसिद्ध हैं।

सभी दंभी चापलूस हैं।
कोई चापलूस पूँजीपति नहीं है।
∴ कोई पूँजीपति दंभी नहीं है।

विद्यार्थियों को यह समझने में कोई कठिनाई नहीं होगी कि ये सभी युक्तियाँ वैध हैं। इनके रूपों में केवल दो प्रकार के भेद हैं (i) मध्य-पद के स्थान का, (ii) संलग्न प्रतिज्ञप्तियों के गुण एवं परिमाण का।

(i) १ में मध्य-पद साध्य-आधारवाक्य का उद्देश्य एवं पक्ष-आधारवाक्य का विधेय है, (ii) में मध्य-पद दोनों आधारवाक्यों में विधेय है, (iii) में मध्य-पद दोनों आधारवाक्यों में उद्देश्य है, (iv) में मध्य पद-साध्य-आधारवाक्य में विधेय एवं पक्ष-आधारवाक्य में उद्देश्य है। पक्ष, मध्य, एवं साध्य-पद के स्थान पर क्रमशः स, म, प रखकर हम इन आकारों का निम्न प्रतीकात्मक रूप पा सकते हैं :

I	II	III	IV *
म—प	प—म	म—प	प—म
स—म	स—म	म—स	म—स
स—प	स—प	स—प	स—प

*चारों आकृतियों में मध्य-पद के स्थान को सरलतापूर्वक याद किया जा सकता है। यदि ध्यान दें कि ऊपर की योजना में मध्य-पद से होकर खींची गई रेखा से लगभग W बन जाता है, जैसे (ii)

ये भेद न्यायवाक्य के आकृति (Figuro) के भेद कहे जाते है। अत , किसी न्यायवाक्य की आकृति मध्य-पद के स्थान से निश्चित की जाती है।

(ii) विभिन्न उदाहरणो मे यदि प्रतिज्ञप्तियो का सयोग देखा जाय, तो मिलता है कि I मे आ, आ, आ, II मे ए आ, ए, III मे आ, ई, ई, IV मे आ, ए, ए, है। इस भेद को विन्यास (mood) भेद कहते है। अत , न्यायवाक्य का विन्यास उसमे आई हुई प्रतिज्ञप्तियो के गुण एव परिमाण से निश्चित किया जाता है। इस प्रकार I आ, आ, आ विन्यास मे है, II ए, आ ए मे इत्यादि।

इस युक्ति पर विचार करें .

सभी शिष्ट मनुष्य दयालु है।
कुछ राज्य-पदाधिकारी शिष्ट नही है।
∴ कुछ राज्य-पदाधिकारी दयालु नही है।

क्या यह निष्कर्ष आधारवाक्यो से निकलता है ? कुछ ही ध्यान देने पर हमे ज्ञात हो जाता है कि नही कोई मनुष्य अशिष्ट हो सकता है और फिर भी दूसरे रूप मे दयालु। यदि युक्ति की परीक्षा की जाय, तो ज्ञात होगा कि साध्यपद 'दयालु' निष्कर्ष मे व्याप्त है (निषेधक प्रतिज्ञप्ति को विधेय होने से) पर यह साध्य-आधार-वाक्य मे व्याप्त नही है, अत स्वयसिद्धि २ का उल्लघन हो जाता है। युक्ति आकृति I मे है और विन्यास आ, ओ, ओ मे। अवैधता इसके आकार के कारण हैं, शिष्ट मनुष्य, दयालु मनुष्य एव राज्य-पदाधिकारी के गुणो से इसका कोई सबध नही। अत , हम कह सकते है कि विन्यास आ, ओ, ओ आकृति I मे अवैध है, सलग्न प्रति-ज्ञप्तियाँ चाहे किसी के बारे मे हो। यह अवैध इसलिये है कि निष्कर्ष मे साध्य-पद अवैध रूप से व्याप्त है। इस तर्क-दोष को साध्य-पद के अव्याप्त होने का दोष कहते है, या, सक्षेप मे अव्याप्त-साध्य-दोष कहते है। अब एक और युक्ति पर विचार करें .

कुछ वायुयान-चालक कलाप्रेमी है।
सभी वायुयान-चालक बुद्धिमान हैं।
सभी बुद्धिमान मनुष्य कलाप्रेमी हैं।

यह भी अवैध है, पक्ष पद-अवैध रूप से व्याप्त है। अर्थात् न्यायवाक्य मे अव्याप्त-पक्ष-दोष है। अत मे एक तीसरी युक्ति पर विचार करें

सभी शास्त्रीय सगीतज्ञ तुनुकमिजाजी है।
सभी छायावादी कवि तुनुकमिजाजी है।
∴ सभी छायावादी कवि शास्त्रीय सगीतज्ञ है।

यहाँ निष्कर्ष वैध रूप से नही निकलता, स्वयसिद्धि १ का उल्लघन हो जाता है, क्योकि दोनो आधारवाक्य विधायक हे और मध्य-पद दोनो मे विधेय हे, इसलिये मध्य-पद किसी मे व्याप्त नही हे। इस दोष का नाम हे अव्याप्त-हेतु-दोष। हमारी युक्तियो मे यह दोप प्राय पाया जाता हे और यदि युक्ति सुगठित ढग से व्यक्त न की गई हो, तो उसे पहचानना सरल नही होता।

चार पारपरिक निरुपाधिक रूपो मे न्यायवाक्य के रूढिगत बधन के कारण निष्कर्ष की भी सीमाबद्धता हो जाती है, वह $स_{आ}प$, $स_{ए}प$, $स_{ई}प$, $स_{ओ}प$ मे से कोई एक हो सकता है। निषेधक पद सम्मिलित नही किये जाते, इसलिये हम ऐसे निष्कर्ष नही पा सकते जिसमे, $\bar{स}$ या $\bar{प}$ हो। साध्य-आधारवाक्य आ, ए, ई, ओ मे से किसी एक रूप मे हो सकता हे, वैसे ही पक्ष-आधारवाक्य भी। इस प्रकार सोलह सभव सयोग बनते हैं। वे नीचे लिखे जाते हे, पहला अक्षर साध्य तथा दूसरा पक्ष-आधारवाक्य का द्योतक है

आ आ	आ ए	आ ई	आ ओ
ए आ	ए ए	ए ई	ए ओ
ई आ	ई ए	ई ई	ई ओ
ओ आ	ओ ए	ओ ई	ओ ओ

स्वयसिद्धियो के आधार पर इनमे से कुछ सयोग तुरत हटा दिये जा सकते हैं। गुण की स्वयसिद्धियो से ए ए, ए ओ, ओ ए, ओ ओ हट जाते हैं * उपनियम (i) से ई ई, ई ओ, आ ई हट जाता है, उपनियम (iii) से ई ए हट जाता है। अब आठ सयोग बच जाते है, जिनमे से प्रत्येक किसी-न-किसी आकृति मे वैध न्यायवाक्य की रचना करेगे। ये हैं आ आ, आ ए, आ ई, आ ओ, ए आ, ए ई, ई आ, ओ आ।

चूँकि इन प्रतिज्ञप्तियो के किसी पद की व्याप्ति उसके स्थान उद्देश्य या विधेय पर आश्रित है, इसलिये जो सयोग व्याप्ति की स्वयसिद्धियो द्वारा अलग नही किये गये हैं, वे भी सभी आकृति मे वैध निष्कर्ष नही देंगे। इस प्रकार के अवैध सयोगो का अध्ययन हमने पहले ही किया है। अब हमे स्वयसिद्धियो से प्रत्येक आकृति के विशिष्ट नियम निकालने है। +

---

* ध्यान रहे कि ओ ओ उपनियम (i) से तथा ओ ए उपनियग (iii) से भी अलग किये जाते है।

+ यह रीति बडी ही सुरुचिपूर्ण है और लाभदायक फल देती हे। जिस विद्यार्थी को अनुमान करने मे कठिनाई हो, उसे चाहिए कि स्वयसिद्धियो को फिर से

आकृति I के विशेष नियम. आरेख

म—प
स—म
———
स—प

[I] पक्ष-आधारवाक्य अवश्य विधायक होगा। प्रमाण —

कल्पना की जाय कि पक्ष-आधारवाक्य निषेधक है तो निष्कर्ष अवश्य निषेधक होगा (स्व ४) तथा साध्य-आधारवाक्य विधायक (स्व ३)। तब निष्कर्ष मे साध्य-पद व्याप्त होगा, पर अपने आधारवाक्य मे नही, इससे स्वयसिद्धि २ का उल्लघन होता है। अत', पक्ष-आधारवाक्य निषेधक नही हो सकता, अर्थात् यह अवश्य विधायक होगा।

[II] साध्य-आधारवाक्य अवश्य सर्वव्यापी होगा

प्रमाण ' चूँकि पक्ष-आधारवाक्य अवश्य विधायक होगा, इसलिये मध्य-पद जो विधेय है, पक्ष-आधारवाक्य मे अव्याप्त होगा, अत मध्य-पद साध्य-आधारवाक्य मे अवश्य व्याप्त होना चाहिए। (स्व. १), यहाँ यह उद्देश्य है, इसलिये साध्य-आधारवाक्य अवश्य सर्वव्यापी होगा।

इन नियमो के आधार पर हम तुरत आकृति I के वैध विन्यास निश्चित कर सकते है। इस कल्पना को ठीक मानते हुए कि क्रमश स एव प द्वारा द्योतित वर्गों मे सदस्य है, हम कह सकते है कि आधारवाक्यो का कोई सयोग जो सर्वव्यापी निष्कर्ष को वैध बनाता है, अशव्यापी निष्कर्ष को भी वैध बनायेगा, क्योंकि इस परिस्थिति मे, अशव्यापी निष्कर्ष सर्वव्यापी निष्कर्ष का उपापादक होगा। **आकृति I के वैध विन्यास,** विशेष नियमो द्वारा वाधित सयोग नियम (I) से आ ए, आ ओ, नियम (II) से ई आ, ओ आ वाधित होते हैं, इसलिये वैध विन्यास है आ आ आ (आ आ ई), आ ई ई, ए आ ए (ए आ ओ), ए ई ओ, कोष्ठ मे दिये गये दो विन्यास दुर्बलित विन्यास (Weakened moods) हैं, उनको छोडा जा सकता है। अदुर्बलित विन्यासो के व्यक्तिगत नाम हैं, जिनसे तर्कशास्त्र के विद्यार्थी १३ वी शताब्दी

देखे। यह याद रखना बडा महत्त्वपूर्ण है कि कोई पद तभी व्याप्त होता है, जब वह **सर्वव्याप्ति** प्रतिज्ञप्ति का उद्देश्य या **निषेधक** प्रतिज्ञप्ति का विधेय होता है, यदि यह **अशव्यापी** प्रतिज्ञप्ति का उद्देश्य या विधायक प्रतिज्ञप्ति का विधेय है, तो अव्याप्त होगा।

से परिचित है। अब ये मूलत पुरातत्त्वविषयक रुचि के है, फिर भी निर्देश के खयाल से इनकी कुछ उपादेयता है। दुर्बलित विन्यासो को छोडकर, वैध विन्यास जिस वाक्य मे रखे गये हैं, उनके नाम है बार्बारा, डारीरी केलारेन्ट, फेरीयो (BARBARA DARIRI, CELARENT, FERIO)*

आकृति के विशेष नियम—आरेख

प--म
स--म
———
स--प

(i) एक आधारवाक्य अवश्य निषेधक होगा — +

मध्य पद की व्याप्ति के लिए यह नियम आवश्यक है, क्योकि वह दोनो आधारवाक्यो मे विधेय है।

(ii) साध्य-आधारवाक्य अवश्य सर्वव्यापी होगा। —

इसकी आवश्यकता अव्याप्त-साध्य-दोष से बचने के लिए पडती है, क्योकि नियम (i) के परिणामस्वरूप निष्कर्ष सदैव निषेधक होगा।

आकृति (ii) के वैध विन्यास—विशेष नियमो द्वारा बाधित सयोग है आ आ, आ ई, ई आ (नियम i के द्वारा), ओ आ (नियम ii के द्वारा), इसलिए वैध विन्यास है आ ए ए (आ ए ओ), ए आ ए (ए आ ओ) ए ई ओ, आ ओ ओ, और इनके नाम है केसारे, कामेस्ट्रेस, फेस्टीनो, बारोचो (CESARE, CAMESTRES, FESTINO, BAROCO)

आकृति III के विशेष नियम—आरेख

म--प
म--स
———
स--प

---

* स्मृति के लिये इन नामो का आविष्कार हुआ और आकृति II, III, IV के न्यायवाक्यो का आकृति I मे आकृत्यतरण इनसे अपने-आप हो जाता है। ध्यान देना चाहिये कि किसी न्यायवाक्य मे आई हुई प्रतिज्ञप्तियो के गुण एव परिमाण इन नामो मे आये हुए स्वरो से प्रदर्शित होता है तथा साध्य, पक्ष, निष्कर्ष के पारपरिक क्रम की भी रक्षा होती है, जैसे केलारेन्ट (Celarent)। इनके अतिरिक्त अन्य अक्षरो को हम छोड सकते है।

+ इन विशेष नियमो के प्रमाण बहुत सरल है, आकृति I के सदर्भ मे प्रमाण पूर्ण रूप से दिये गये है, दूसरी आकृतियो मे'प्रमाणो का केवल सकेत कर दिया गया है।

(i) पक्ष-आधारवाक्य अवश्य विधायक होगा

आकृति I मे जिस कारणवश ऐसा होता, वही कारण यहाँ भी लागू होगा, क्योकि इस नियम की आवश्यकता साध्य-पद प के स्थान के कारण पडती है, जो दोनो आकृतियो मे एक है, पक्ष-पद स का कोई निर्देशन नही है, क्योकि यह दोनो आकृतियो मे भिन्न-भिन्न स्थान पर है।

(ii) निष्कर्प अवश्य अशव्यापी होगा—यह विशेप नियम (i) एव स्वय सिद्धि २ के मेल से निकलता है।

आकृति (iii) के वैध विन्यास , विशेप नियमो द्वारा वाधित सयोग है आ ए, आ ओ (नियम I के द्वारा), अन्य सभी सयोग वैध हैं, पर निष्कर्प सर्वव्यापी नही होना चाहिये। इस कारण छह अदुर्वलित विन्यास है आ आ ई, आ ई ई, ई अ। ई, ए आ ओ, ए ई ओ, ओ आ ओ, उनके नाम है

डाराप्टी, डाटीसी, डीसामीस, फेलाप्टोन, फेरीसोन, वोचार्डो

(DARAPTI, DATISI, DISAMIS, FELAPTON, FERISON, BOCARDO)

आकृति IV के विशेप नियम आरेख

प—म
म—स
———
स—प

(i) यदि कोई आधारवाक्य निषेधक है,तो साध्य-आधारवाक्य अशव्यापी नहीं हो सकता।

इस नियम के उल्लघन से अव्याप्त-साध्य-दोप होता है, क्योकि साध्य-पद अपने आधारवाक्य मे उद्देश्य है।

(ii) यदि साध्य-आधारवाक्य विधायक है, तो पक्ष-आधारवाक्य अशव्यापी नहीं हो सकता।

इस नियम के उल्लघन से अव्याप्त मध्य-पद का दोष होता है, क्योकि पक्ष-आधारवाक्य मे मध्य-पद उद्देश्य है और साध्य-आधारवाक्य मे विधेय।

(iii) यदि पक्ष-आधारवाक्य विधायक है, तो निष्कर्ष सर्वव्यापी नहीं हो सकता। इस नियम के उल्लघन से अव्याप्त-पक्ष-दोप होता है।

ध्यान देने योग्य है कि नियम (i) आकृति II के दोनो नियम सम्मिलित हैं, तथा नियम (iii) मे आकृति III के दोनो नियम सम्मिलित है। नियम (ii) आकृति I के दोनो नियमो के अनुरूप है। पर, पक्ष एव साध्य-पदो के विपरीत स्थानो के कारण विधायक साध्य-आधारवाक्य सर्वव्यापी पक्ष-आधारवाक्य आने के लिये आवश्यक बना देता है, ताकि मध्य-पद व्याप्त हो जाय।

आकृति IV के वैध विन्यास—विशेष नियम सयोग आ ओ, ओ आ, आ ई को बाधित कर देते है तथा आवश्यक बना देते हैं कि आ आ का निष्कर्ष ई हो। इसलिय वैध विन्यास है आ आ ई, आ ए ए (आ ए ओ), ए आ ओ, ए ई ओ, ई आ ई, । इनके नाम है

ब्रामान्टीप, कामेनेस, फेसापो, फ्रेसीसोन, डीमारीस

(Bramantip, Camenes, Fesapo, Fresison, Dimaris)

ध्यान देने योग्य है कि प्रथम तीन आकृतियो मे, दुर्बलित विन्यासो को मिलाकर प्रत्येक मे छह विन्यास हैं। आकृति III मे दुर्बलित विन्यास नही हैं, पर डाराप्टी एव फेलाप्टोन मे दो सर्वव्यापी आधारवाक्यो से अशव्यापी निष्कर्ष निकलते हैं। मध्य-पद दोनो आधारवाक्यो मे अनावश्यक ही व्याप्त है। आकृति IV मे छह विन्यासो मे एक दुर्बलित है तथा एक मे (ब्रामान्टीप) साध्य ऐसा आधारवाक्य है, जो निष्कर्ष की वैधता को बिना प्रभावित किये दुर्बलित किया जा सकता है, ऐसी परिस्थिति मे विन्यास आ आ ई के स्थान पर ई आ ई (डीमारीस) होगा। ब्रामान्टीप मे हमे आवश्यकता से अधिक व्याप्त पद का उदाहरण मिलता है।

अर्थात, आधारवाक्य मे एक पद व्याप्त है, पर निष्कर्ष मे नही। बाद मे हम देखेंगे कि इस विन्यास मे कठिनाई है तथा वस्तुत सभी दुर्बलित विन्यासो के साथ यह बात है।* यदि किसी न्यायवाक्य मे एक आधारवाक्य के दुर्बलित होने पर भी वही निष्कर्ष निकले, तो न्यायवाक्य को अतिबल न्यायवाक्य कहते है। +

---

* देखिये, अध्याय ५ (परिच्छेद ७)

\+ बाद मे हम देखेंगे कि प्रत्येक न्यायवाक्य, जिसमे दो सर्वव्यापी आधारवाक्य से अशव्यापी निष्कर्ष निकलता है, अतिबल न्यायवाक्य हैं, इसमे केवल एक अपवाद है वह है आकृति IV मे, आ—ए—ओ।

आकृति IV को प्राय गैलेनियन आकृति (Galenian Figure) कहते है, क्योकि माना जाता है कि गैलेन ने इसे चलाया है। अठारहवी शताब्दी के पूर्व तर्कशास्त्र की पुस्तक मे शायद ही इसका उल्लेख मिलता है। उदाहरण हे

ए— कोई वायुयान गुब्बारा नही है।
आ— सभी गुब्बारे एयरक्राफ्टर है।
ओ—∴ कुछ एयरक्राफ्ट वायुयान नही हैं।
आ— सभी बडे आदमी प्रसन्नचित रहने वाले हैं।
ए — कोई प्रसन्नचित रहने वाला मनुष्य धूम्रपान न करने वाला नही है।
ए — कोई धूम्रपान न करने वाला वडा आदमी नही है।

विद्यार्थियो को ध्यान देना चाहिये कि प्रत्येक परिस्थिति मे आकृति I के न्यायवाक्य से यही निष्कर्ष प्राप्त हो सकता है। यह कैसे सभव है, इसे दूसरे परिच्छेद मे स्पष्ट किया जायगा।

३. आकृत्यंतरण एवं विहेतु-न्यायवाक्य

न्यायिक स्वयसिद्धियो के आधार पर आकृतियो के लिए विशेष नियम अनुमित करना और इस प्रकार दिखलाना कि कुछ विन्यास वाधित हो जाते हैं, निरूपण नही करता कि शेप विन्यास वैध हैं। अरस्तू ने, जो न्याय-सिद्धात के अनुवेषक कहे जा सकते हैं, वैधता प्रमाणित करने की यह रीति नही अपनायी। उन्होने एक स्वयसिद्धि का प्रतिपादन किया, जिससे आकृति I के वैध विन्यासो की परोक्ष निश्चयात्मकता स्पष्ट हो जा सकती है। इस स्वयसिद्धि का नाम है यज्जातिविधेयम् तदव्याक्तिविधेयम् (Dictum de ommi etnullo), क्योकि यह स्वयसिद्धि वर्ग के सब या किसी नही के वारे मे अभिकथन करती है। इसके विभिन्न सूत्रीकरण हुए हैं, हम से जो कुछ किसी वर्ग के सभी सदस्यो पर लागू होता है, उसी रीति से वह उस वर्ग के प्रत्येक व्यक्ति पर भी लागू होता है। उदाहरणार्थ, यदि सभी विद्वान् व्यावहारिक कार्यों मे अकुशल हैं, और सभी शैक्षिक आचार्य विद्वान है, तो निष्कर्ष निकलता है कि सभी शैक्षिक आचार्य व्यावहारिक कामो मे अकुशल है। सभी स्वीकार करेंगे कि आधारवाक्यो को (मिश्र प्रतिज्ञप्ति के रूप मे कहे गये) सत्य मान लेन पर निष्कष अवश्य ही सत्य है। अरस्तू ने इसी स्वीकारोक्ति के आधार का सामान्यीकरण कर दिया। अभी हम अरस्तू का ही अनुसरण करेंगे एव स्वीकार करेंगे कि अभ्युक्ति (Dictum) केवल सत्य तो नही, वरन् अवश्य सत्य है तथा इसे स्वयसिद्धि की मान्यता दी जा सकती है। केवल आकृति I पर यह परोक्षत (Directly) लागू होती है। अभ्युक्ति के आधार पर उसी प्रकार यह भी कहा जा

सकता है कि कोई विद्वान अकुशल नही है, या कहा जा सकता है कि कुछ शैक्षिक आचार्य विद्वान हैं, यद्यपि इस परिस्थिति मे हमारा निष्कर्ष कुछ शैक्षिक आचार्यो के बारे का अभिकथन होगा, सपूर्ण के बारे मे नही। अत अभ्युक्ति से आकृति I का आरेख मिलता है

यदि सभी म, प है (या नही है),
और सभी (या कुछ) स, म हैं,

तो सभी (या कुछ) स, प हैं (या नही है)। इस आरेख से आकृति के दो विशेष नियम हम तुरत पा सकते है तथा स्पष्टत देख सकते हैं कि मध्य-पद को साध्य-आधारवाक्य मे क्यो अवश्य व्याप्त रहना चाहिये और पक्ष-आधारवाक्य को क्यो विधायक होना चाहिये।

अपने दार्शनिक सिद्धातो के कारण अरस्तू को केवल आकृति I के नियमो का ही निरूपण करना पडा। अब यदि मान लिया जाय कि अभ्युक्ति वस्तुत स्वयसिद्धिवत् है तथा न्यायिक विन्यासो की वैधता का एकमात्र आधार है, तो इसे अवश्य स्वीकार करना पडेगा कि प्रथम आकृति के अतिरिक्त अन्य आकृतियो के विन्यासो की वैधता तभी निश्चित की जा सकती है, जब यह प्रदर्शित कर दिया जाय कि ये विन्यास तर्कानुसार प्रथम आकृति के विन्यासो के तुल्य हैं। यह किया जा सकता है। यहाँ यह दिखलाना होगा कि वही या उससे उपलक्षित निष्कर्ष, मूल या उससे उपलक्षित आधारवाक्यो से आकृति I मे प्राप्त होता है। विन्यासो की वैधता की परीक्षा करने की इस रीति को आकृत्यतरण (Reduction) कहते हैं। अरस्तू ने इसके दो रूप स्वीकार किये हैं

(१) साक्षात् आकृत्यतरण, यह प्रतिज्ञप्तियो के परिवर्तन अथवा आधारवाक्य-विनिमय (transposing) से सिद्ध होता है, (२) असाक्षात् आकृत्यतरण, जो असभवापत्ति (reductio per impossibile) के प्रमाण से सिद्ध होता है। इन विधियो की अब व्याख्या करेंगे।

(1) साक्षात् आकृत्यतरण निम्नलिखित न्यायवाक्य के एक युग्म पर विचार करें।

(अ)	(ब)
सभी आनदमार्गी शातिवादी हैं	कोई शातिवादी साम्यवादी नही है,
कोई साम्यवादी शातिवादी नही है,	सभी आनदमार्गी शातिवादी हैं,
कोई साम्यवादी आनदमार्गी नही है ≡	कोई आनदमार्गी साम्यवादी नही है।

(अ) आकृति II मे आ ए ए मे एक न्यायवाक्य है (कामेस्ट्रेस)

(ब) आकृति I मे ए आ ए मे (केलारेन्ट), दोनो न्यायवाक्य तुल्य हैं। (ब) मे साध्य-आधारवाक्य, (अ) के पक्ष-आधारवाक्य का परिवर्त्ती है। इस प्रकार आधारवाक्यो का विनिमय हो गया है और मूल पक्ष-आधारवाक्य का, जो नया साध्य-आधारवाक्य हो गया है, परिवर्तन हो गया है। चूँकि पक्ष-आधारवाक्य मे निष्कर्ष का उद्देश्य है, इसलिये नये निष्कर्ष का अवश्य परिवर्तन होना चाहिये, ताकि मूल निष्कर्ष प्राप्त किया जा सके। ध्यान रहे कि हम केलारेन्ट की वैधता का निश्चय अभ्युक्ति के आधार पर मान रहे है, और इस प्रकार प्रदर्शित कर दिये हैं कि आकृति II मे विन्यास कामेस्ट्रेस वैध है। हम यह नही कह रहे है कि आकृति I के विन्यास आकृति II के विन्यासो से स्वप्रमाण मे श्रेष्ठ है। स्वप्रमाण ज्ञात होने वाली वस्तुओ के प्रति हम सशंकित रहने का दृष्टिकोण अपनाते है और यह दिखलाकर शंका का निवारण करते है कि वही निष्कर्ष अभ्युक्ति के द्वारा निश्चित किये हुए विन्यास से प्राप्त किया जा सकता है। ऐसा करने मे हमने केवल सरल परिवर्तन, जिसे हमने वैध स्वीकार किया है एव आधारवाक्य-विनिमय का सहारा लिया है। अब हम साक्षात् आकृत्यतरण का एक उदाहरण और देंगे

आकृति III (आ आ ई)	(आ ई, ई) आकृति I
सभी विद्याडबरी बकवादी हैं	सभी विद्याडबरी बकवादी हैं।
सभी विद्याडबरी विद्वान् है	कुछ विद्वान् विद्याडबरी हैं।
∴ कुछ विद्वान बकवादी है।	कुछ विद्वान बकवादी हैं।

वही निष्कर्ष निकालने के लिये आकृति III आ आ ई (डाराप्टी) मे जितनी सूचना सन्निहित है, उतनी की हमे आवश्यकता नही होती, क्योकि मध्य-पद अनावश्यक ही दो बार व्याप्त है, इसलिये हम पक्ष-आधारवाक्य (आ) का परिमित परिवर्तन (ई) कर सकते है।

यदि किसी न्यायवाक्य के दोनो आधारवाक्यो का सरल परिवर्तन हो सके, तो स्पष्ट है कि पद का क्रम तर्क-दृष्टि से नगण्य है। जब साध्य-आधारवाक्य ए और पक्ष-आधारवाक्य ई हो, तो ऐसी परिस्थिति आती है, अत विन्यास ए ई ओ प्रत्येक आकृति मे वैध होता है। इसे नीचे दिखलाया गया है

I फेरीयो		II फेस्टीनो		III फेरीसोन		IV फ्रेसीसोन
म ए प	≡	प ए म	≡	म ए प	≡	प ए म
स ई म	≡	स ई म	≡	म ई स	≡	म ई स
∴ म ओ प	≡	स ओ प	≡	म ओ प	≡	स ओ प

ये चारो न्यायवाक्य आपस मे तुल्य है, किसी आकृति मे पडते है, इससे कोई प्रयोजन नही। एक ही तरह के कथन के लिये ये चार विधियाँ हमारे समक्ष रखते है। न्यायवाक्य जिनके आधारवाक्य आ एव ई (किसी भी क्रम मे) अथवा आ एव ए (किसी भी क्रम मे) हो, तो वे भी आपस मे तुल्य हैं। अर्थात् दिये हुए आधारवाक्यो से बहुत-सी आकृतियो मे एक ही तरह का निष्कर्ष प्राप्त किया जा सकता है यदि आधारवाक्यो के विनिमय की छूट हो।* ये तुल्य न्यायवाक्य नीचे प्रदर्शित हैं

I केलारेन्ट		II केसारे +		III कामेस्टेस		IV कामेनेस
म ए र	≡	र ए म	≡	र ए म	≡	म ए र
य आ म	≡	य आ म	≡	य आ म	≡	य आ म
य ए र	≡	य ए र	≡	र ए य	≡	र ए य

I डारीरी		II डाटीसी		III डीसामीस		IV डीमारीस
म आ र	≡	म आ र	≡	म आ र	≡	म आ र
य ई म	≡	म ई य	≡	म ई य	≡	य ई म
य ई र	≡	य ई र	≡	र ई य	≡	र ई य

III फेलाटोन		IV फेसापो
म ए र	≡	र ए म
म आ य	≡	म आ य
य ओ र	≡	य ओ र

* सक्षेप मे तुल्य वाक्यो को व्यक्त करने के लिये आधारवाक्यो का सामान्य क्रम प्राय नही माना जाता। पक्ष-आधारवाक्य वह है, जिसमे निष्कर्ष का उद्देश्य रहता है, साध्य-आधारवाक्य वह है जिसमे निष्कर्ष का विधेय रहता है। अत पक्ष एव साध्य-पदो की पहचान निष्कर्ष की दृष्टि से होती है। आधारवाक्यो का क्रम तर्कानुसार नगण्य है।

+ ध्यान देने योग्य है कि आकृति III मे, जिसमे निष्कर्ष अवश्य अशव्यापी होता है, कोई तुल्य युक्ति नही है।

(२) असाक्षात् आकृत्यतरण विन्यास वारोचो

(आकृति II मे आ, ओ ओ) एव वोचार्डो (आकृति III) मे ओ आ ओ) तुल्य युक्तियो की परिधि के वाहर हैं।

उनका प्रथम आकृति मे आकृत्यतरण नही हो सकता, इसलिये असाक्षात् आकृत्यतरण की आवश्यकता पड ही जाती है। इस वात का अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि हमारी मान्यता के अनुसार सिद्ध करने का अर्थ है दिखलाना कि निष्कर्ष वैध ढग से अनुमित है और हमने प्रथम आकृति के विन्यासो की वैधता को स्वीकार कर लिया है। वोचार्डो के सदर्भ मे इस विधि का प्रदर्शन पर्याप्त होगा, अर्थात्

म ओ प

म आ स

. स ओ प

हम अनुमान इस प्रकार करते है यदि स ओ प सत्य नही है, तो इसका व्याघाती, स आ प, अवश्य सत्य होगा, स आ प का पक्ष-आधारवाक्य म आ स के साथ सयोग कर हमे प्राप्त होता है

स आ प

म आ स

∴ म आ प

जो बार्बारा मे है। किंतु, नया निष्कर्ष म आ प, म ओ प का व्याघात कर देता है, जो मूल न्यायवाक्य मे आधारवाक्य के रूप मे सत्य मान लिया गया है। अत, इसका व्याघाती म आ प, अवश्य असत्य होगा, पर म आ प आकृति I मे वैध न्यायवाक्य का निष्कर्ष है, इसलिये यह सत्य है यदि आधारवाक्य सत्य हैं। चूंकि यह सत्य नही है और कम-से-कम एक आधारवाक्य अवश्य ही असत्य होगा, यह म आ स नही हो सकता, क्योंकि यह सत्य, के रूप मे दिया

हुआ है, इसलिये इसका दूसरा आधारवाक्य स आ प अवश्य असत्य होगा, इस-लिये स ओ प सत्य है, यही मूल निष्कर्ष है।

असाक्षात् आकृत्यतरण का मूलभूत तर्क इस सिद्धात पर आधारित है कि यदि वैध न्यायवाक्य का निष्कर्ष असत्य है, तो कम-से-कम एक आधारवाक्य अवश्य असत्य होगा। मिश्र पूर्ववर्त्ती के साथ हेत्वाश्रित प्रतिज्ञप्ति के रूप मे इस सिद्धात को व्यापक ढग से कहा जा सकता है। मान लिया जाय कि प, क, र क्रम से वैध न्यायवाक्य के साध्य-आधारवाक्य, पक्ष-आधारवाक्य एव निष्कर्ष के निदर्शी प्रतीक हैं। तब रूप होगा यदि प एव क, तो र। यह तुल्य होगा यदि नही र, तो या तो न-प या न-क के, अर्थात् यदि निष्कर्ष र असत्य है, तो प, क आधारवाक्यो मे कम-से-कम एक असत्य है। फिर, यदि प एव क, तो र तुल्य है नही (प एव क) एव न-र के। इस वियोजन को फ्रैंकलिन असगत त्रिपाद (inconsistent triad) कहती है, उन्होने विहेतु-न्यायवाक्य (antilogism) शब्द का आविष्कार किया। इसमे तीन प्रतिज्ञप्तियो का मेल रहता है, किसी न्यायवाक्य के दो आधारवाक्य तथा उसके निष्कर्ष का व्याघात। विहेतु-न्यायवाक्य का एक उदाहरण नीचे दिया जा रहा है —

प कोई पालतू पशु कुरूप नही है।
क सभी बिल्लियाँ पालतू पशु है।
*र कुछ बिल्लियाँ कुरूप हैं।

इनमे से किन्ही दो प्रतिज्ञप्तियो के सयोग मे तीसरे की असत्यता निहित है; अत, हम तीन वैध न्यायवाक्य पाते हैं।

प	कोई पालतू पशु कुरूप नही है।	केलारेन्ट
क	सभी बिल्लयाँ पालतू हैं।	
र̄	कोई बिल्ली कुरूप नही है।	(आ I)
प	कोई पालतू पशु कुरूप नही है।	फेस्टीनो
र	कुछ बिल्लियाँ कुरूप हैं।	
क̄	कुछ बिल्लियाँ पालतू नही हैं।	(आ II)
र	कुछ बिल्लियाँ कुरूप हैं।	डीसामीस
क	सभी बिल्लियाँ पालतू हैं।	
प̄	कुछ पालतू पशु कुरूप हैं।	(आ III)

* र̄, प̄, क̄, क्रमश न-र, न-प, न-क के प्रतीक हैं।

ये तीनो न्यायवाक्यक्रमश आकृति I, II, एव III मे है। ज्ञातव्य है कि इन तीनो आकृतियो मे से किसी एक के वैध न्यायवाक्य से प्रारभ करके, यदि प्रथम निष्कर्ष का व्याघाती पहले एक आधारवाक्य से और फिर दूसरे से जोड दिया जाय, तो अन्य दो न्यायवाक्य, दूसरी आकृतियो मे से प्रत्येक मे एक-एक प्राप्त होंगे। इस प्रकार प्राप्त नया निष्कर्ष छोडे हुए आधारवाक्य का व्याघाती होगा। इससे परिणाम निकलता है कि प्रथम तीन आकृतियो मे से प्रत्येक मे वैध न्यायवाक्यो की सख्या अवश्य बराबर होनी चाहिये और वे तुल्य त्रयी के समूह मे रखे जा सकते हैं।*

आकृति I मे कहा जाता है कि सामान्य नियम व्यक्तिगत उदाहरण पर लागू होता है, जैसे उपर्युक्त केलारेन्ट के उदाहरण मे नियम का निषेधक अभिकथन हुआ है . कोई पालतू पशु कुरूप नहीं है, बिल्ली का उदाहरण इसके अदर रखा जाता है, और निष्कर्ष निकाला जाता है कि उनमे कोई कुरूप नही है। हम देखेंगे कि इस दृष्टि से भी प्रथम तीन आकृतियाँ अन्योन्याश्रित है। उदाहरणार्थ

यदि सभी बडे राजनेता कभी-कभी झूठ बोलते है और जवाहरलाल बडे राजनेता हैं, तो जवाहरलाल कभी-कभी झूठ बोलते हैं। अब यदि हम जवाहरलाल का कभी-कभी झूठ बोलना इन्कार करें, पर नियम को स्वीकार करें, तो हमे अवश्य अस्वीकार करना पडेगा कि वे एक बडे राजनेता हैं, तब हम पाते है कि निष्कर्ष की अस्वीकारोक्ति,नियम के साथ सयुक्त होकर उदाहरण का निषेध निर्णीत करती है। यह आकृति II मे न्यायवाक्य होगा। फिर यदि इन्कार करें कि जार्ज वाशिंगटन कभी-कभी झूठ बोलते है, पर साथ-साथ यह भी स्वीकार करें कि वह बडे राजनेता है, तो हमे नियम के निषेध के लिये बाध्य होना पडेगा। तब हम पाते है कि निष्कर्ष की अस्वीकारोक्ति उदाहरण की स्वीकारोक्ति से सयुक्त होकर नियम का निषेध निर्णीत करती है। यह आकृति III मे न्यायवाक्य होगा।

इन तीन आकृतियो के अतर्सबध से सकेत मिलता है कि हम आकृति I की अभ्युक्ति के अनुरूप आकृति II एव III के लिए भी अभ्युक्तियाँ सरलतापूर्वक बना सकते हैं। आकृति II के लिए अभ्युक्ति यदि किसी वर्ग के प्रत्येक व्यक्ति

* ये त्रिपाद है बार्बारा, बारोचो, बोचार्डो, (आ, आ ई, आ ए ओ, फेलाप्टोन), केलारेन्ट, फेस्टीनो, डीसामीस, (ए आ ओ, ए आ ओ, डाराप्टी), डारीरी, कामेस्ट्रेस, फेरीसन, फेरीयो, केसारे, डारीसी। त्रिपाद जिनमे दुर्बलित निष्कर्ष या अतिबल आधारवाक्य हैं, कोष्ठ मे रखे गये हैं। आकृति IV अपने मे पर्याप्त है, तुल्य समूह सभी इसी आकृति मे हैं, वे हैं (ब्रामान्टीप, आ, ए ओ, फेसापो), कामेनेस, फेसीसोन, डीमारीस।

मे एक विशेष गुण पाया जाता ह (नही पाया जाता), तो कोई व्यक्ति (या व्यक्तिसमूह) जिसमे वह गुण नही पाया जाता (या पाया जाता है) उसे उस वर्ग-से अवश्य हटा दिया जायेगा । आकृति III के लिये अभ्युक्ति . यदि कुछ व्यक्तियो मे एक विशेष गुण पाया जाता है (या नही पाया जाता) और ये व्यक्ति किसी वर्ग-विशेष मे आते है, तो उस वर्ग के प्रत्येक व्यक्ति मे उस गुण का अभाव (या भाव) नही कहा जा सकता ।

यज्जातिविधेयम् वाली अभ्युक्ति जैसे स्वप्रमाण्य है, वैसे ही ये अभ्युक्तियाँ भी स्वप्रमाण्य है, सभवत इनका प्रथम ज्ञान किसी व्यक्त सार्थक उदाहरण द्वारा सबसे अधिक सरलतापूर्वक होगा, एकवार अभ्युक्ति उदाहरणविशेष मे स्पष्टत देख ली जाती है, तो अन्य उदाहरणो पर लागू होने के लिये इसका सामान्यीकरण किया जा सकता है । *

चारो आकृतियो मे अपने विशेष गुण है । केवल प्रथम आकृति मे सभी आ, ए, ई, ओ आकार सिद्ध हो सकते हैं और इसी आकृति मे निष्कर्ष आ हो सकता है ।

यही एक आकृति है, जिसमे साध्य एव पक्ष-पद अपने-अपने आधारवाक्यो मे भी उसी स्थान पर हैं, जिस स्थान पर निष्कर्ष मे, अवश्य यही गुण आकृति I के अनुमान को अत्यत स्वाभाविक प्रदर्शित करता है । आकृति II मे निष्कर्ष सदैव निषेधक है और यह दिखलाने के लिये सबसे उपयुक्त है कि कोई व्यक्ति (या व्यक्ति-समूह) किसी वर्गविशेष से अवश्य अलग कर दिया जायगा । अत , इसे कभी-कभी बिलगाव की आकृति कहते है । आकृति III में केवल अशव्यापी निष्कर्ष निकलते है, यह आकृति यह दिखलाने के लिये विशेष रूप से उपयुक्त है कि किसी वर्ग के प्रत्येक सदस्य में कोई गुणविशेष नही पाया जाता, या दो गुण आपस में अनुकूल है, क्योकि एक ही व्यक्ति या व्यक्ति-समूह में दोनो साथ-साथ पाये जाते हैं ।

---

* उदाहरणार्थ, यदि वर्ग वायु-सैनिक के प्रत्येक व्यक्ति मे अच्छी दृष्टिशक्ति का गुण है, तो वे सिपाही जिनमे अच्छी दृष्टिशक्ति के गुण का अभाव है, वर्ग वायु-सैनिक से निकाल दिये जाते है । यज्जातिविधेयम् की अभ्युक्ति की तरह अन्य आकृतियो मे भी उनकी अभ्युक्तियो के आधार पर उनके विशेष नियम निकाल लेना बडा ही आसान है । चौथी आकृति पर भी यही बात समान रूप से लागू होती है,- पर इस पुस्तक मे उसके अभ्युक्ति का कथन सम्मिलित नही किया जायेगा । जो लोग इसमे रुचि रखते है, उन्हे चाहिए कि वे देखें जान्सन लॉजिक, पाट II, पृष्ठ ८७ ।

यदि मध्य पद-व्यक्तिवाचक हो, केवल एक व्यक्ति का निर्देश करनेवाला, तो इस आकृति का उपयोग सबसे अधिक स्वाभाविक होता है। उदाहरण के लिये, माओ तानाशाह हैं, माओ को अपने देश के प्रति अत्यत प्रेम है, से उपलक्षित होता है कि तानाशाह होना देशप्रेम के विरुद्ध नही है। फिर रमेश शतरज के बडे खिलाडी हैं, रमेश सनकी हैं से सकेत मिल सकता है कि शतरज के बडे खिलाडी होने तथा सनकी होने में आवश्यक सबध है। इसीलिये आकृति III को कभी-कभी आगमनिक आकृति कहते हैं। पर इसका अवश्य ध्यान रहना चाहिये कि निष्कर्ष से गुणो की अनुकूलता (या विरुद्धता) से अधिक कुछ नही प्रदर्शित कर सकता, उस मार्ग को ढूँढ निकालना बाकी रहता है, जो अनुकूलता को किसी विशेष सबध पर और विरुद्धता को किसी विशेष विरोध पर आधारित दिखला सके। ऐसे निष्कर्षो को प्रमाणित करने के लिए हमें न्यायवाक्य के परे जाना होगा।

* ४. बहुन्यायवाक्य

बहुन्यायवाक्य न्यायवाक्यो को शृखला है, जिसमे एक न्यायवाक्य का निष्कर्ष दूसरे का आधारवाक्य हो जाता है। अतिम को छोड अन्य सभी न्यायवाक्यो के निष्कर्ष व्यक्त नही किये जाते, इस तरह की युक्ति की यह एक मात्र विशेषता है। जिस न्यायवाक्य का निष्कर्ष अगले न्यायवाक्य का (अव्यक्त) आधारवाक्य है, उसे पूर्व-न्यायवाक्य (prosyllogism) कहते हैं। जिस न्यायवाक्य का कोई एक आधारवाक्य पहले आनेवाले न्यायवाक्य का (अव्यक्त) निष्कर्ष हो, तो उसे उत्तर-न्यायवाक्य (episyllogism) कहते हैं।

सक्षिप्त प्रगामी तर्कमाला (sorites) एक प्रकार का बहुन्यायवाक्य है, जिसमे केवल अतिम निष्कर्ष व्यक्त किया जाता है तथा आधारवाक्यो को इस प्रकार रखते हैं कि किसी दो क्रमिक आधारवाक्यो मे एक उभयनिष्ठ पद हो।

उदाहरण के लिए

सभी तानाशाह महत्त्वाकाक्षी है।
सभी महत्त्वाकाक्षी मनुष्य निर्दयी हैं।
सभी निर्दयी मनुष्य निष्ठुर हैं।
सभी निष्ठुर मनुष्यो से भय होता है।
सभी भय उत्पन्न करने वाले मनुष्य दयनीय है।
सभी तानाशाह दयनीय हैं।

---

* इस परिच्छेद एव इसके बाद वाले को परीक्षा की चालाकी से सबधित समझना चाहिये। जिन्हें रूढिगत परीक्षको द्वारा बनाई तर्कशास्त्र की प्रारभिक परीक्षाओ से प्रयोजन नही है, वे इन्हे छोड सकते हैं।

सक्षिप्त प्रगामी तर्कमाला के दो रूप परपरा से प्रचलित है

(१) अरिस्टोटेलियन सक्षिप्त प्रगामी तर्कमाला—सर्वप्रथम पक्ष-आधारवाक्य कहा जाता है और जो पद दो क्रमिक आधारवाक्यो मे उभयनिष्ठ रहता है, वह पहले विधेय के रूप मे और तब उद्देश्य के रूप मे आता है, अत इसका आकार है

सभी अ ब है।

सभी ब स है।

सभी स द है।

सभी द ई है।

सभी अ ई हैं।

इस आकार के विशेष नियम हैं (i) केवल एक आधारवाक्य अर्थात् अतिम निषेधक हो सकता है। (इस नियम के उल्लघन से एक अगभूत न्यायवाक्य मे दो निषेधक आधारवाक्य हो जायेंगे) (ii) केवल एक आधारवाक्य अर्थात् प्रथम अंशव्यापी हो सकता है। (इस नियम के उल्लघन से अव्याप्त हेतु-दोष होगा)।

(२) गोक्लीनियन सक्षिप्त प्रगामी तर्कमाला—यह नाम गोक्लीनियस के नाम पर है, जो इस आकार को प्रारभ करने वाले कहे जाते हैं। इसमे साध्य-आधारवाक्य पहले कहा जाता है और दो क्रमिक आधारवाक्यो मे उभयनिष्ठ पद पहले उद्देश्य के रूप मे और तब विधेय के रूप मे आता है, अत इसका आकार है

सभी द ई हैं।

सभी स द है।

सभी ब स हैं।

सभी अ ब हैं।

∴ सभी अ ई है।

इस आकार के विशेष नियम हैं (i) केवल एक आधारवाक्य अर्थात् प्रथम निषेधक हो सकता है। (ii) केवल एक आधारवाक्य अर्थात् अतिम, अंशव्यापी हो सकता है। गोक्लीनियन सक्षिप्त प्रगामी तर्कमाला का एक उदाहरण आगे दिया जा रहा है

यदि वे जो मित्रविहीन है दु खी, है और वे जो नीच है मित्रविहीन है, और वे जो अपने देश के साथ विश्वासघात करते है नीच है, और वे जो शक्ति

के लिये शक्ति को प्यार करते हैं अपने देश के साथ विश्वासघात करते है, और सभी जयचद शक्ति के लिए शक्ति को प्यार करते हैं, तो सभी जयचद दुखी है।

यह अभिकथित आधारवाक्यो के रूप मे नही, बल्कि 'निहितार्थक सेट के रूप मे व्यक्त है।

५ सक्षिप्त युक्तियाँ एवं संक्षिप्त प्रतिगामी तर्कमाला

जिस न्यायवाक्य का एक आधारवाक्य छोड दिया गया हो, उसे लुप्तावयव न्यायवाक्य कहते है, जैसे ह्वेल मछली नही है, क्योकि वह स्तनधारी है। यहाँ साध्य-आधारवाक्य, कोई मछली स्तनधारी नही है, लुप्त है। इसे लुप्त साध्य-न्यायवाक्य कहते है (enthymeme of the first order)। यदि पक्ष-आधारवाक्य लुप्त हो, तो लुप्तपक्ष-न्यायवाक्य होता है (enthymeme of the second order), यदि निष्कर्ष लुप्त हो, तो लुप्तनिष्कर्ष न्यायवाक्य (enthymeme of the third order)। ये नाम महत्त्वहीन है, इसमे महत्त्वपूर्ण बात है कि जिसके लिए लुप्तावयव न्यायवाक्य कहा गया है, उसे पहचानने मे समर्थ हो अर्थात् ऐसी युक्ति जिसमे कोई आधारवाक्य या निष्कर्ष नही कहा गया हो। अपने तर्क को पूर्णरूपेण व्यक्त करना बहुत ही असाधारण है। प्राय हम साध्य-आधारवाक्य छोड देते है। हममे यह कहने की आदत-सी है कि अमुक मे कुछ गुण हैं, क्योकि यह एक विशिष्ट उदाहरण है, उस नियम को, जिसके अदर यह उदाहरण आता है, व्यक्त करने की परवाह नही करते, पर कभी-कभी हम नियम कहते है और निष्कर्ष, नियम के अदर आनेवाले अध्ययनार्थ उदाहरण को केवल मान लेते है, बहुत कम अवस्था मे हम नियम कहते हैं एव उदाहरण, निष्कर्ष को उपलक्षित रूप मे समझने के लिए छोड देते है।

सक्षिप्त प्रतिगामी तर्कमाला (epicheirema) एक न्यायवाक्य है, जिसमे एक या दोनो आधारवाक्य लुप्तावयव न्यायवाक्य के निष्कर्ष के रूप मे व्यक्त होते है। उदाहरण के लिए कोई मार्क्सवादी वैज्ञानिक यूक्लिड की उपलब्धि के प्रति न्यायशील नही हैं, क्योकि वे इसकी समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि को नापसद करते हैं।

प्रोफेसर क एक मार्क्सवादी वैज्ञानिक हैं,
प्रोफेसर क यूक्लिड की उपलब्धि के प्रति न्यायशील नही हैं।

यह एकपक्षीय सक्षिप्त प्रतिगामी तर्कमाला है, जब दोनो आधारवाक्य लुप्तावयवी न्यायवाक्य के निष्कर्ष के रूप मे व्यक्त होते हैं, तो सक्षिप्त प्रतिगामी तर्कमाला उभयपक्षीय कही जाती है।

किसी तर्कपूर्ण युक्ति में हम प्राय अव्यक्तत मान्य न्यायवाक्य के केवल एक आधारवाक्य ही नही, बल्कि सपूर्ण न्यायवाक्य को छोड देते है। कभी-कभी युक्ति की सूचना मात्र दे दी जाती है। लुप्त कडियो को जोडना प्राय कठिन नही हुआ करता। पर, योजक आधारवाक्य की लुप्ति तर्क-दोप का कारण बन सकती है, जो (दोष) युक्ति की पूर्ण अभिव्यक्ति पर ही पहचाना जा सकता है। इसीलिये तर्कशास्त्र की पाठ्य-पुस्तको मे दिये हुए साक्षिप्त उदाहरण इतने स्पष्ट होते है कि उनके उल्लेख मूर्खतापूर्ण मालूम पडते है—पाठक अनुभव करता है कि वह ऐसी भूल कभी नही करेगा। फिर भी तर्क में प्रारंभिक भूल साधारण घटना है।

कभी-कभी कोई युक्ति एक मात्र आधारवाक्य के रूप मे व्यक्त की जाती है, इसके पीछे मान्यता रहती है कि आधारवाक्य एव निष्कर्ष इतने स्पष्ट है कि उन्हे व्यक्त करने की आवश्यकता नही है।

उदाहरण के लिए

(१) 'यदि वह लडका लौट आता है, तो मैं अपना सर फोड दूँगा' निषेधानिषेधात्मक वियोजनानुमान को पूरा करने के लिए श्रोता आधारवाक्य एव निष्कर्ष को व्यक्त कर देता हैं।

(२) 'यदि हमे मरना ही है तो देश को खूब हानि पहुँचाये, और यदि जीना है, तो जितने ही कम मनुश्य होंगे, उतना ही अधिक ऐश्वर्य मे भाग मिलेगा' (हेनरी V)। यह उभयत पाश दोपपूर्ण है, क्योकि विकल्प मरना है, जीना है नि शेष नही हैं, विजय एव पराजय मे अधिक मनुष्य अतर ला सकते हैं।

—.o—

यहाँ व्यक्ति की परिभाषा करने का प्रयास नही किया जायगा, यह मान लिया जाता है कि हम सभी, इस शब्द का व्यवहार करना जानते है, जैसे, श्रीमान् क एक मद्रासी हे, एक विशिष्ट व्यक्ति श्रीमान् क के बारे मे प्रतिज्ञप्ति है और मद्रासी होना इस व्यक्ति पर विधेय के रूप मे लागू किया गया है। जब कभी हम व्यक्तियो के बारे मे कुछ कथन करते है, तो हम कहते हैं कि उनमे कुछ विशिष्ट गुण हैं अथवा नही हैं—यह विद्यार्थी कुशाग्रबुद्धि है, वह मेज गोल है, पिछली सध्या मे सूर्यास्त सु दर था, यह कार्य बुद्धिमानी का है, यह अनुभव सुखद है, इत्यादि। व्यक्तियो मे हम जो आरोपित करते है, वह विशिष्टता होती है या जो कभी-कभी गुण कहा जाता है। गोलापन विशिष्टता का उदाहरण है, चाहे हम कहे 'गोलापन इस मेज की विशिष्टता है'.या 'इस मेज मे गोल होने की विशिप्टता है,' 'या यह मेज गोल है' ये तर्क-दृष्टि से सभी समान है। अतिम उद्धरण व्यक्त करने की सामान्य रीति है। हम वस्तुओ को विशिष्ट गुण के साथ सोचते है, इसका गुण क्या है या इस पर कौन सी विशेषता लागू होती है, इस पर हमारा ध्यान नियमानुसार नही होता। पर, उपर्युक्त तीनो वाक्यो का तात्पर्य एक है।

विशिष्टताओं का सकेत केवल एक शब्द से सदैव नही मिलता, जैसे 'पानी मे घुलनशीलता' चीनी का गुण व्यक्त करता है, हम इसे यो भी कह सकते है, 'पानी मे घुल जाने की क्षमता'। कुछ दाशनिक समस्याओ के लिए गुणो के विभिन्न प्रकारो मे तथा जटिलता की विभिन्न मात्राओ मे भेद करना महत्त्वपूर्ण हो जाता है। यहाँ पर इसकी आवश्यकता नही है। फिर भी हमे ध्यान रखना चाहिए कि गुण व्यक्ति के अतिरिक्त अन्य वस्तुओ की भी विशेषता प्रकट करते हैं, जैसे लघुकरण बडा ही सूक्ष्म है कोई विशेप प्रतिज्ञप्ति सत्य है, किसी सबध को समझना कठिन है।

व्यक्ति मे विशेषताएँ होती हैं, पर वह स्वय आरोपित नही करता, वह सबधित होता है, पर स्वय सबध नही है। व्यक्ति की तुलना मे गुण सूक्ष्म होते है। कुछ तार्किको ने गुणो के स्थान पर सप्रत्यय (Concept) शब्द का व्यवहार किया ह। इससे लाभ है कि गुणो के सदृश्य इनके अवश्य आरोपित होने का सकेत नही मिलता। विशिष्टताएँ ऐसी भी हो सकती हैं, जो किसी पर आरोपित न हो, क्योकि सभी गुण का व्यघाती गुण होता है, जैसे पूर्ण-अपूर्ण, न्याय-अन्याय, पशुता-अपशुता। सप्रत्ययो के बारे मे बातचीत प्रारभ करने के पहले ही हम उनके प्रयोग सरलतापूर्वक करते है। दुर्भाग्यवश दार्शनिक जब सप्रत्ययो की बात प्रारभ करते हैं, तो उनके बारे मे निरर्थक प्रश्न पूछते हैं। 'सप्रत्यय क्या है ?' और ऐसे ही उत्तर की आशा करते ह जैसे 'नीलगाय क्या है ?' प्रश्न का उत्तर होता है। यहाँ इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि मन मे प्रत्यय बनाना कोई बहुत कठिन बुद्धिमानी का

अध्याय ५

संबंध एवं संबंधी अनुमान

(सबधो एव उन पर आधारित अनुमानो को समझने के लिए व्यक्ति एव गुणो का पूर्ण विवेचन समीचीन होगा।)

१. व्यक्ति एवं गुण

हमने देखा है कि अनुमान की वैधता आपादन-सवध (Relation of implication) पर आश्रित होता है, आधारवाक्यो की सत्यता या असत्यता पर नही। कभी-कभी प्रतिज्ञप्तियो की भीतरी बनावट या आकार पर विना कुछ भी ध्यान दिये जानना सभव होता है कि उनमे आपादन-सवध है। जैस यदि प एव क, तो र, मे निहित है या तो (प̄ या क̄) या र इसमे भी निहित है यदि र̄, तो या तो प̄ या क̄। यहाँ इस पर ध्यान नही है कि प, क, र किस प्रकार की प्रतिज्ञप्तियाँ हैं। फिर भी प्राय ऐसा नही होता। जब-जब हमने वैध न्यायवाक्य के आधारवाक्य एव निष्कर्ष के लिए प, क, र को निदर्शी प्रतीक के रूप मे व्यवहार किया है,तव-तव हमने न्यायवाक्य को आपादन रूप मे रखा है—यदि प एव क, तो र। पर, 'इस रूप मे कोई ऐसी बात नही है' जिसमे हम यह जानने मे समर्थ हो कि कोई पालतू पशु कुरूप नहीं है, सभी बिल्लियाँ पालतू हैं, कोई बिल्ली कुरूप नहीं है, आपस मे इस प्रकार सवधित है कि इन प्रतिज्ञप्तियो मे प्रथम दो सयुक्त रूप से तीसरे का आपादन करती हैं। हम यह केवल इसलिए जानते है कि कोई म प नहीं है, सभी स म हें, कोई स म नहीं है मे हम इन प्रतिज्ञप्तियो का विश्लेषण कर सकते हैं। ये रूप व्यक्त करते है कि प्रथम दो सयुक्त होकर तीसरे का आपादन करती हैं।

पारपरिक तर्कशास्त्र केवल विश्लेषित ससृष्टियो (Complexes) के रूप मे प्रतिज्ञप्तियो का व्यवहार करता है। ये ससृष्ट प्रतिज्ञप्तियाँ नही होते। आ, ए ई, ओ प्रतिज्ञप्पियो के पद वर्ग होते है, ये ही प्रतिज्ञप्तियो के विषय होते हैं। पर, सभी पद वर्ग नही हैं, व्यक्ति भी हैं। इस प्रकार पदो के दो समूह हुए वर्ग एव व्यक्ति।

यहाँ व्यक्ति की परिभाषा करने का प्रयास नही किया जायगा, यह मान लिया जाता है कि हम सभी, इस शब्द का व्यवहार करना जानते है, जैसे, श्रीमान् क एक मद्रासी हे, एक विशिष्ट व्यक्ति श्रीमान् क के बारे मे प्रतिज्ञप्ति है और मद्रासी होना इस व्यक्ति पर विधेय के रूप मे लागू किया गया है। जब कभी हम व्यक्तियो के बारे मे कुछ कथन करते है, तो हम कहते हैं कि उनमे कुछ विशिष्ट गुण हैं अथवा नही हैं—यह विद्यार्थी कुशाग्रबुद्धि है, वह मेज गोल है, पिछली सध्या मे सूर्यास्त सुदर था, यह कार्य बुद्धिमानी का है, यह अनुभव सुखद है, इत्यादि। व्यक्तियो मे हम जो आरोपित करते हैं, वह विशिष्टता होती है या जो कभी-कभी गुण कहा जाता है। गोलापन विशिष्टता का उदाहरण है, चाहे हम कहें 'गोलापन इस मेज की विशिष्टता है'.या 'इस मेज मे गोल होने की विशिप्टता है,' 'या यह मेज गोल है' ये तर्क-दृष्टि से सभी समान हैं। अतिम उद्धरण व्यक्त करने की सामान्य रीति है। हम वस्तुओ को विशिष्ट गुण के साथ सोचते है, इसका गुण क्या है या इस पर कौन सी विशेषता लागू होती है, इस पर हमारा ध्यान नियमानुसार नही होता। पर, उपर्युक्त तीनो वाक्यो का तात्पर्य एक है।

विशिष्टताओ का सकेत केवल एक शब्द से सदैव नही मिलता, जैसे 'पानी मे घुलनशीलता' चीनी का गुण व्यक्त करता है, हम इसे यो भी कह सकते है, 'पानी मे घुल जाने की क्षमता। कुछ दार्शनिक समस्याओ के लिए गुणो के विभिन्न प्रकारो मे तथा जटिलता की विभिन्न मात्राओ मे भेद करना महत्त्वपूर्ण हो जाता है। यहाँ पर इसकी आवश्यकता नही है। फिर भी हमे ध्यान रखना चाहिए कि गुण व्यक्ति के अतिरिक्त अन्य वस्तुओ की भी विशेषता प्रकट करते हैं, जैसे लघुकरण बडा ही सूक्ष्म है कोई विशेष प्रतिज्ञप्ति सत्य है, किसी सबध को समझना कठिन है।

व्यक्ति मे विशेषताएँ होती हैं, पर वह स्वय आरोपित नही करता, वह सबधित होता है, पर स्वय सबध नही है। व्यक्ति की तुलना मे गुण सूक्ष्म होते है। कुछ तार्किको ने गुणो के स्थान पर सप्रत्यय (Concept) शब्द का व्यवहार किया ह। इससे लाभ है कि गुणो के सदृश्य इनके अवश्य आरोपित होने का सकेत नही मिलता। विशिष्टताएँ ऐसी भी हो सकती हैं, जो किसी पर आरोपित न हो, क्योकि सभी गुण का व्यघाती गुण होता है, जैसे पूर्ण-अपूर्ण, न्याय-अन्याय, पशुता-अपशुता। सप्रत्ययो के बारे मे बातचीत प्रारभ करने के पहले ही हम उनके प्रयोग सरलतापूर्वक करते है। दुर्भाग्यवश दार्शनिक जब सप्रत्ययो की बात प्रारभ करते हैं, तो उनके बारे मे निरर्थक प्रश्न पूछते हैं। 'सप्रत्यय क्या है ?' और ऐसे ही उत्तर की आशा करते है जैसे 'नीलगाय क्या है ?' प्रश्न का उत्तर होता है। यहाँ इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि मन मे प्रत्यय बनाना कोई बहुत कठिन बुद्धिमानी का

कार्य नही है; जब कभी हम सोचते हैं तो प्रत्यय बनाते है, किसी वस्तु पर ध्यान देते हैं और किसी पर नही, समानता एव भिन्नता को जानने की क्रिया पर बिना ध्यान दिये ही पहचानते हैं। 'विशिष्टता' के स्थान पर 'सप्रत्यय' के व्यवहार मे कठिनाई है कि सप्रत्यय चितन-क्रिया पर आश्रित होने का सकेत देता-सा मालूम पडता है। यह भूल है। मिश्र विशिष्टताएँ, जैसे मनुष्य सरलतापूर्वक सप्रत्यय कहा जा सकता है। हाँ, यह याद रखना होगा कि सप्रत्यय उस विशिष्टता या विशिष्टताओ के किसी खास मिश्रण के पूर्णतः समरूप है। जब हम किसी सप्रत्यय को पूरी तरह समझ लेते हैं, तभी इन विशिष्टताओ को वास्तव मे क्षमतापूर्वक पहचान पाते है। विद्वता, घर, इन सप्रत्ययो से जो मैं समझता हूँ, वह आपके समझने से भिन्न हो सकता है, ऐसी परिस्थिति मे एक ही सप्रत्यय के बारे मे हममे विभिन्न विचार (Different conception) कहे जाएँगे। इस प्रकार शक्ति के बारे मे न्यूटन ऐंस्टाइन से अवश्य भिन्न विचार रखते थे, पर वस्तुतः वे दोनो एक ही सप्रत्यय के बारे मे विचार करने की इच्छा रखते थे। वैज्ञानिक चितन की प्रगति आशिक रूप मे हमारे विचारो के स्पष्टीकरण से है, हमारा लक्ष्य अपने व्यक्तिगत चितन की आदत, अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण, आशाएँ तथा डर से अलग होकर सप्रत्यय बनाने का होता है, और हम स्पष्ट देखते रहते हैं कि बार-बार आनेवाले विभिन्न उदाहरणो मे क्या स्थिर है। वही स्थिर तत्त्व विचारणीय है।

विशेषता-सबध का विलोम (Converse) है दृष्टात-प्रतिपादन (Exemplification), कोई वस्तु या तत्त्व जिस पर लाल आरोपित होता है वह (लालपन) का दृष्टात प्रतिपादन करना है, अर्थात् वह उसका (लालपन का) उदाहरण होता है। इस प्रकार महात्मा गाधी, अरस्तू, अब्राहम लिंकन, विलियम शेक्सपियर, कान्ट इत्यादि मनुष्य के उदाहरण हैं, ये व्यक्ति कुछ मिश्र गुणो से जो मनुष्य, शब्द से उपलक्षित होता है, आभूषित हैं।

ऐसा गुण जिसका वास्तविक उदाहरण न हो, फिर भी सदृष्टात प्रतिपादित किया जा सके, तो उसे अस्तित्ववान् (Existent) कहते हैं। यह गणित मे 'अस्तित्व' शब्द का व्यवहार है, जैसे जब हम कहते है 'सम अभाज्य सख्या का अस्तित्व हैं'। इस तरह के अस्तित्व (या तत्त्व) का शरीरवान अस्तित्व से भेद करना आवश्यक है जो काल एव स्थान की सीमा मे रहते हैं और जो व्यक्ति के गुण होते हैं। बर्ट्रेन्ड रसेल पहलेवालो को वर्तिता (Subsistence) और दूसरे को अस्तित्व (Existence) कहते है। इस पुस्तक मे हम 'वर्तिता' शब्द का व्यवहार नही करेंगे, जब हम कहते हैं कि किसी गुण का अस्तित्व है तो हमारा स्पष्टत यही तात्पर्य है कि इसके उदाहरण हैं और जब कहते हैं कि इसके उदाहरण हैं तो यह असगत नही है।

व्यक्तियो के सदर्भ मे हमे इन बातो मे अवश्य भेद करना चाहिए कि सगत ढग की किनकी सत्ता हो सकती है और वस्तुत किनकी सत्ता है। उदाहरण के लिए रूस का राजा हो सकता है पर वास्तव मे नही है, आदर्श राज्य (Utopia) का कोई राजा हो सकता है, पर वास्तव मे आदर्श राज्य नाम का कोई राज्य नही, अत आदर्श राज्य का कोई राजा नही। ऐसी वस्तुओ के बारे मे अधिक तर्क-वितर्क करना तथा अनुलघनीय कठिनाइयो मे पडना आसान है। पर, हम बहुत अच्छी तरह समझते है कि ईश्वर है या ईश्वर नहीं है कहने का क्या अर्थ है। जिसकी वास्तविक सत्ता है (जैसे यह, वह या अन्य व्यक्तियो की सत्ता) उनके बीच भेद करना तथ्य एव कल्पना के बीच भेद करने के समान है।

अस्तित्व का प्रश्न दो तरह से हल हो सकता है। यदि हम कहें 'क्या न्यायशील मनुष्य हैं ?' तो हम इस मान्यता से आरम कर सकते हैं कि कुछ न्यायशील कहलाने वाले मनुष्य हैं। जैसे—विनोबाजी, जयप्रकाश। पर, हम पूछना चाहते हैं कि क्या वे वास्तव मे न्यायशील हैं ? यह प्रश्न न्यायशील सप्रत्यय के बारे मे है अर्थात् इसमे पूछा जाता है कि गुण न्यायशील क्या है। इस प्रश्न का उत्तर 'न्याय' शब्द की परिभाषा से दिया जाता है, अर्थात् 'न्याय' के प्रतीक सप्रत्यय के स्पष्टीकरण से। इस स्पष्टीकरण को हम मान लेते हैं, पर फिर पूछना चाहते हैं कि क्या मनुष्य मे न्याय का उदाहरण मिलता है ? ऐसे प्रश्न का उत्तर केवल इद्रियानुभविक खोज के आधार पर दिया जा सकता है, ठीक जैसे प्रश्न क्या किन्नर की सत्ता है ?' का उत्तर हर जगह देखकर ही कि किन्नर है कि नही दिया जाता है। वैसे ही जब प्रश्न पूछे जाते हैं, 'क्या ईश्वर की सत्ता है' ? 'क्या शैतान की सत्ता है ?' तो उनके अर्थ इन्ही दो मे से किसी एक विधि से लगाना चाहिए और इसका समाधान या तो शब्द 'ईश्वर' या 'शैतान' के स्पष्टीकरण से होना चाहिए कि हमारा उससे क्या तात्पर्य है, या अनुभव के सहारे से। *

२ वर्ग

हम प्राय किसी विशिष्ट गुण वाले सभी उदाहरणो के बारे मे एक साथ कुछ कहना चाहते हैं। जब हमारा सकेत किसी गुण के (सरल या मिश्र) के सभी सभव दृष्टातो की ओर होता है, तो हम उस गुण द्वारा सीमावद्ध किये गये किसी वर्ग के

---

* इसे अवश्य मान लेना चाहिए कि अनुभव का अर्थ है इद्रियगम्य होने की सीमा मे रहना। ऐसा हो सकता है कि नही, यह दार्शनिक प्रश्न है, जो तर्कशास्त्री की सीमा से बाहर है।

वारे में कहते हैं। वर्ग के वे उदाहरण जिनकी सत्ता है, वर्ग के सदस्य (Members) कहे जाते है या कभी-कभी उन्हे वर्ग के तत्त्व (Elements) भी कहते है। कहा जाता है कि वर्ग ने सदस्यो को अपने मे अतर्विष्ट किया है।

हम सभी वर्ग की धारणा से परिचित हैं और जैसा हमने देखा है, अरस्तू के तर्कशास्त्र मे मुख्यत वर्गों के आपसी सवध के वारे मे विचार-विमर्श है। केवल जहाँ-तहाँ व्यक्तियो के वारे मे उल्लेख पाते हैं। वर्ग, वर्ग-सदस्यता, वर्ग-अतर्विष्टता की धारणाओ को अरस्तू ने पूर्वमान्यता के रूप मे मान लिया है, पारपरिक तर्कशास्त्रियो ने इस पर विचार-विमर्श नही किया है, और यदि कभी किया भी है, तो वडी ही असावधानी से।

वर्ग को उसके सदस्यो से अवश्य भिन्न रखना चाहिए, क्योकि जैसा हम अभी देखेंगे, वर्ग मे कुछ ऐसे गुण होते है, जिनका सदस्यो मे अभाव होता है। इसका भेद इसके लिए उपयुक्त शब्द या प्रतीक से भी करना आवश्यक है। यह वर्गों की ही विशेषता नही है; हमे प्रतीक एव प्रतीक से सकेतिक वस्तु के बीच सदैव भेद करना चाहिए, यद्यपि वास्तविकता मे इस भेद को हम सदैव स्पष्ट नही रखते, मुख्यत' जब हम वर्गों के बारे मे वातचीत करने लगते है।

वर्ग की सदस्यता मे आने वाले व्यक्तियो को चुनने की दो विधियाँ हैं। एक है व्यक्तियो का नाम लेकर एक के वाद एक वताना। इस गिनती मे क्रम का ध्यान बिचारणीय नही है। उदाहरण के लिए हम व्यक्तियो के नाम लेकर वता सकते हैं, स्तालिन, मुसोलिनी, हिटलर और इस प्रकार उस वर्ग को व्यक्त कर सकते है, जिसके सदस्य स्तालिन, मुसोलिनी एव हिटलर हैं। दूसरी विधि है किसी विशिष्ट गुण को चुन लेना, जैसे यूरोप मे १९४० मे तानाशाह होना, जो वहुत व्यक्तियो पर लागू हो सकता है। वास्तव मे, इस वर्ग की सदस्यता मे उपर्युक्त तीन व्यक्ति आते हैं, पर इस मिश्र गुण मे कोई ऐसा बधन नही कि वह तीन सदस्यो तक सीमित रहे। * विश्व-तानाशाह एक गुण है, जिससे एक वर्ग की रचना होती है। पर, इसमें कोई सदस्य नही है, यद्यपि हिटलर अवश्य वैसा एक सदस्य होना चाहता था।

गणना के आधार पर वर्ग-रचना तभी सभव है, जब उसमे सदस्यो की सीमित सख्या हो, तव इसे ससीम वर्ग कहते है। असीम वर्ग मे स्पष्टत गणना सभव नही

---

* वास्तव मे यदि जनरल फ्राको एव डॉ० सालाजार को अपने-अपने देशो मे तानाशाह माना जाय, तो उन तीन सदस्यो के अतिरिक्त इस वर्ग मे सदस्य हो जाते हैं। यदि हम गुण मे परिवर्तन कर दें और कहें 'यूरोप मे १९४२ के सितवर मे युद्ध-लिप्त तानाशाह' तो इन तीन विशिष्ट सदस्यो तक यह वर्ग सीमित हो सकता है।

है । इस वर्ग को गुण से निश्चित करना चाहिए । ससीम वर्ग प्राय इस प्रकार नही निश्चित किया जाता । उदाहरण के लिए, भारत के निवासी की पूर्ण जनगणना भारत के निवासी वर्ग के सभी सदस्यो की गणना करती है । हम निम्नलिखित सदस्यो से निर्मित एक वर्ग की गणना कर सकते है

सोने का मृग, कु भकर्ण की नीद, शकु तला की अगूठी, सयुक्ता के प्रथम दर्शन पर पृथ्वीराज का सवेग । किसी तर्कशास्त्री (या मूर्ख) को छोड कोई दूसरा ऐसा वर्ग चुनना नही चाहेगा । पर, हमने एक अभिप्राय से अभी ऐसा किया है । इस चार सदस्यो वाले वर्ग के लिए कहा जा सकता है कि 'यह वह वर्ग है, जिसे मैंने अभी चुना है', और इन सदस्यो मे एक-एक ऐसे गुण हैं, जो ससार मे अन्य कही नही मिलते जैसे गुण या तो सोने का मृग होना, या कु भकर्ण की नींद का होना, या शकु तला की अगूठी का होना, या सयुक्ता के प्रथम दर्शन पर पृथ्वीराज को सवेग होना । ऐसे कृत्रिम वर्ग वैज्ञानिक कार्य के लिए उपयोगी नही होते । पर, इस बनावटी वर्ग का एक लाभ है, जो हमने अभी व्यक्त किया है ।

कोई विशेष गुण किसी वर्ग को निश्चित करता है और उसके प्रत्येक सदस्य मे वह गुण पाया जाता है । जैसे मनुष्य इस वर्ग को निश्चित करता है, जिसमे महात्मा गाधी, अरस्तू गौतम बुद्ध एव ऊथाँ सदस्य के रूप मे पाये जाते हैं, यहाँ बिंदु उन मनुष्यो को सूचित करते है, जिनकी गणना करने मे हम समर्थ नहीं हो सके हैं और मानते हैं कि ईश्वर ही कर सकता है, प्रत्येक क्षण मनुष्य पैदा हो रहे हैं जिन्हें इस गणना में जोडना पडेगा । इस प्रकार मनुष्य की परिधि मे मृतक, जीवित एव भविष्य मे जन्म लेनेवाले सभी आते हैं ।

जिस गुण से वर्ग निश्चित होता है, उसे वर्ग-गुण कहते हैं । यह वाक्याश भ्रामक है, क्योकि वर्ग-गुण किसी वर्ग के सभी सदस्यो मे पाया जानेवाला एक विशेष गुण है, यह वर्ग का गुण कदापि नही है । विवेकशील पशु होना मनुष्य का गुण है, न कि वर्ग मनुष्य का ।

यद्यपि हम व्यक्ति सरदार पटेल से परिचित नही हैं, फिर भी उनसे परिचित हो सकते हैं, पर हम उस वर्ग से परिचित नही हो सकते, जिसकी विशेषता है १९४२ मे 'भारत छोडो' आदोलन मे भाग लेना । इसलिए जब हम वर्ग-प्रतीक द्वारा किसी वर्ग का सकेत करते हैं, तो वह व्यक्तिवाचक नाम द्वारा सूचित किसी व्यक्ति के सकेत से बिल्कुल ही भिन्न होता है । वर्ग-प्रतीक वर्णनात्मक होते हैं, हमारे समक्ष कोई सदस्य न भी हो, अथवा हम यह भी नही जानते हो कि इस वर्ग मे सदस्य है कि नही, फिर भी वर्ग-प्रतीक का हम सार्थक प्रयोग कर सकते हैं । इसलिए वर्ग-प्रतीको के पहले सार्थक ढग से हम ऐसे शब्दो का व्यवहार कर सकते हैं । जैसे—'सभी' 'कुछ' 'कोई' 'एक' 'उस' ।

जब हम किसी वर्ग के 'सभी सदस्यो' के बारे मे कुछ कहते हैं, तो शब्द 'सभी' का प्रयोग अनेकार्थक ढग से हो सकता है, हमारा तात्पर्य हो सकता है 'प्रत्येक अलग-अलग सदस्य' या 'सभी सदस्य एक साथ'। सामान्यत अभिप्राय को स्पष्ट करने मे सदर्भ पर्याप्त होता है, पर कभी-कभी हम सदेह मे पड सकते है जैसे 'सभी मनुष्य गाडी को नही हिला सके' का अर्थ हो सकता है कि उनमे से कोई एक अकेले गाडी को नही हिला सका अथवा इसका यह भी अर्थ हो सकता है कि सब एक साथ नही हिला सके। 'पुलिस ने भीड को भगा दिया' का अर्थ है कि पुलिस के सभी सदस्य साथ मिलकर, 'पुलिस लाठी लिये थी' का अर्थ है कि पुलिस का प्रत्येक सदस्य लाठी लिये था। जब हम किसी पद का व्यवहार अलग-अलग प्रत्येक सदस्य के लिए करते हैं, तो उसे व्यष्टिवाचक व्यवहार (Distributively) कहते हैं। जब हम किसी पद का सब को सकेत करते हुए व्यवहार करते हैं, तो इसे समष्टिवाचक व्यवहार (Collectively) कहते है। यह भेद व्यवहार मे भेद कहा जाता है।

'सभी' के समष्टिवाचक प्रयोग मे, किसी वर्ग के सभी सदस्य एक साथ मिलकर उसकी सम्मिलित सदस्यता की रचना करते है। उदाहरण के लिए, यदि शत्रु की सेना किसी देश पर अधिकार कर लेती है, तो अधिकार करने वाली सेना के इस वर्ग की सम्मिलित सदस्यता है, स्पष्टत अधिकार करने वाला प्रत्येक व्यक्तिगत सिपाही नही होता और न तो वर्ग ही, क्योकि वर्ग न तो शस्त्र धारण कर सकता है और न उसका प्रयोग—केवल व्यक्ति ही कार्य कर सकते हैं।

अत मे हम वर्ग (Class) एव सघ (Association) या सस्थान (Organisation) मे स्पष्ट भेद समझ लेना चाहिए, जैसे पोस्ट ऑफिस सस्थान, टी० यू० सी०, यूनाइटेड स्टेट्स, सयुक्त राष्ट्रसघ। जो वर्ग राष्ट्रसघ मे राष्ट्रो को सदस्य के रूप मे समाविष्ट करता है, उसे राष्ट्रसघ से अवश्य भिन्न समझना चाहिए राष्ट्रसघ का सदस्य होना भारत का वर्ग-गुण है तथा अन्य प्रत्येक सदस्य राष्ट्र का भी, पर राष्ट्रसघ होना किसी सदस्य का गुण नही। यदि कोई ऐसा कहता है, तो वह निरर्थक बात करता है।

३ संबंध

सभी निगमन सबध के तर्कीय गुण-धर्म (Logical properties) पर आश्रित हैं। सबध की परिभाषा बहुत कुछ समानार्थक शब्दो का बिना व्यवहार किये नही की जा सकती। हम सभी मानते हैं कि ससार मे व्यक्ति अकेले नहीं है, वे भिन्न-भिन्न रूप से आपस मे सबधित हैं।

भौतिक वस्तुएँ स्थानिक एव गुरुत्वाकर्षी सवधो मे हैं, मनुष्य अनगिनत प्रकार से सवधित है, जैसे सगोत्रता से, शत्रुता से, मित्रता से, वरीयता से इत्यादि। सक्षेप मे सभी प्रकार की प्रत्येक वस्तु किसी दूसरे व्यक्ति या वस्तु से सवधित है एव वह उन गुणो से भी सवधित है, जिनके वह उदाहरण वनती है या नही वनती। गुण भी अन्य गुणो से सवधित होते है, जैसे—आपादन, सगति, असगति।

सवध पदो को सवधति करते है। किसी सवध के सवसे प्रारभिक गुण सार्थकता के लिए पदो की सख्या की आवश्यकता है। 'का पिता' मे दो पदो की सख्या की आवश्यकता है, प्रेम करना, शासन करना, मारना भी द्विपदीय है। ऐसे सवधो को द्विपदी सबध कहते हैं। तीन पदो की आवश्यकता वाले सबध त्रिपदी, चार पद वाले चतुष्पदी, पाँच पद वाले पचपदी इत्यादि कहे जाते हैं। पदो की अनिश्चित सख्या वाले सवधो को बहुपदी कहते है। (जैसे मे)। कुछ तर्कशास्त्री तीन से अधिक पद वाले सवधो को बहुपदी कहते हैं। सामान्य वार्तालाप मे हम चार पदो से अधिक वाले सवधो का व्यवहार वहुत ही कम-कम करते हैं। देना त्रिपदी है राम ने श्याम को गेंद दिया, यह देनेवाले दी हुई वस्तु, एव पानेवाले को सवधति करता है। पढाना, त्रिपदी संबध का दूसरा उदाहरण हैं, कर्ज लेना चतुष्पदी है देवदत्त ने इम घडी के लिए प्रमोद से १० रुपये कर्ज लिए हैं। हमारा विवेचन द्विपदी सबधो तक सीमित रहेगा।

प्रत्येक सवध मे अभिदिशा (Sense) होती है अर्थात् इसके प्रगति का दिशा-बोध जैसे प्रेम करना, प्रेमी से प्रेम की गई वस्तु की ओर जाता है, का पिता, पुल्लिग दपति बच्चे की ओर जाता है। पद जिससे सबध जाता है, उसे निर्देश्य (Referent) कहते हैं, जिस पद पर सबध पहुँचता है उसे सबधी (Relatum) कहते हैं। मीरा कृष्ण को प्यार करती है मे (जैसा शब्दो का क्रम है) मीरा निर्देश्य है, कृष्ण-सवधी। हम इनके लिए क्रम से अ, ब निदर्शी प्रतीक रखेंगे और सबध के लिए र, तव हमे प्राप्त होता है अ र ब, जिसका अर्थ है किसी वस्तु का किसी वस्तु से सबध है। कभी-कभी र (अ, ब) लिखना अ र ब की अपेक्षा सुगम होता, ताकि प्रतीकात्मक पद्धति त्रिपदी सवध एव तीन से अधिक पदो वाले सवधो पर लागू हो सके। उदाहरण के लिए र (अ, ब, स) ऐसा सवधात्मक रूप है, जिसमे सवध-सूचक कथन राम श्याम को पैसा देता है, वैठा सकता है। लेकिन, यह तभी होगा जब हमने पदो के क्रम के लिए कोई पद्धति अपना ली हो। चूँकि हम यहाँ द्विपदी सवधो के सदर्भ मे वात करेंगे, इसलिए अ र ब का व्यवहार करेंगे। र से किसी एक सवध का प्रतीकात्मक निदर्शन होगा, किसी विशिष्ट सबध का नही।

सबध दिये हुए पदो को पकडे हुए या छोडते हुए कहा जाता है। जब र अ से ब को जोडता है, तो कुछ सबध ब से अ की ओर भी होता है। यह सबध मूल सबध का परिवर्त्ती (Converse) होगा। र के परिवर्त्ती का प्रतीक हम रc दे सकते हैं। अ र ब सदैव ब र अ के तुल्य होता है, पर र एव रc अवश्य ही एक तरह के सबध होगे, यह आवश्यक नही। उदाहरण के लिए, अ ब से प्यार करता है यह ब अ से प्यार करता है के तुल्य नही है, क्योंकि जिसको प्यार किया जाता है वह बदले मे अवश्य प्यारकर्त्ता को भी प्यार करेगा ऐसी बात नही है, प्रेमी और प्रेयसी मे भी यह आवश्यक नही। र का परिवर्त्तित सबध कभी-कभी र̆ लिखा जाता है, उदाहरणार्थ बर्ट्रेन्ड रसल एव ए० एन० ह्वाइटहेड ने प्रिंसिपिया मैथेमेटिका मे यही लिखा है। हम र के परिवर्त्ती के लिए रc का व्यवहार करेगे, क्योकि सबध के परिवर्त्ती होने का यह साक्षात् सकेत देता है। किस प्रतीक का हम व्यवहार करते है यह तार्किक दृष्टि से नगण्य है। सकेत-चिह्न सुविधा या रुचि से तय किये जाते हैं।

सबधो के तार्किय गुण-धर्म सबधो मे निहित गुण-धर्म है। ये पदो के बिना भी चलते रहते हैं। इनमे से बहुत से तभी गुण कहे जा सकते हैं, जब सभव निर्देश और सबंधी के बीच कुछ सीमावद्धता हो। अत, किसी सबध के क्षेत्र (Field) एव उसके प्रात (Domain) तथा परिवर्त्ती प्रात (Converse Domain) के बीच भेद समझ लेना सुविधाजनक है।

यदि र कोई सबध है, तो र का प्रात (Domain) वे सभी पद हैं जो र को कुछ निर्देश देते हैं अर्थात् र के सभी सभव निर्देश्य (Referent)। प्रात का परिवर्त्तित प्रात वे सभी पद हैं जहाँ र पहुँचता है, अर्थात् र के सभी सभव सबधी। र का क्षेत्र (Field), प्रात (Domain) एव परिवर्त्ती प्रात (Converse domain) का योग है। प्रात एव परिवर्त्ती प्रात एक दूसरे को कुछ ढँके भी हो सकते हैं, जैसे उदाहरण के लिए सबध का पूर्वज लें जो जार्ज I के साक्षात् वशजो तक ही सीमित हो। प्रात मे वे सभी आ जाते हैं, जिनके वशज हैं, परिवर्त्ती प्रात मे वे सब आते हैं जो उनके वशज हैं। इस क्षेत्र में एडवर्ड VII जार्ज V, जार्ज VI के निर्देश्य हैं और क्वीन विक्टोरिया जार्ज I के सबधी (Relatum)।

एक ही परिवार के सदस्यो मे पाये जाने वाले सबधो से हम सुपरिचित हैं, उनका व्यवहार सबधो के महत्त्वपूर्ण कुछ गुण-धर्मो को स्पष्ट करने के लिए किया जा सकता है। यदि पाठक विचार करें कि से विवाह हुआ, का पिता, का चाचा, का पूर्वज का परिवर्त्ती क्या है, तो वह सरलतापूर्वक समझ जाएँगे कि कभी-कभी एक ही सबध अ, ब (कोई दो पद) और ब अ को सबधित करते हैं और कभी-कभी

भिन्न सबध। फिर पिता के पिता, पिता नहीं होते, दादा होते हैं पर पूर्वज के पूर्वज भी पूर्वज होते हैं। ये पारिवारिक सबध अपने अलग-अलग गुण-धर्म के आधार पर सबधो मे भेद के महत्त्व की ओर सकेत करते हैं। अब हम सबधो के उन गुण-धर्मो पर विचार करेगे, जिनका अनुमान के लिए महत्त्व है।

सममिति (Symmetry)—सबध र सममित कहा जाता है जब अ र ब = ब र अ। इस प्रकार यदि अ र ब, तो ब र अ। जैसे के दपति, के बराबर, से भिन्न, का भाई, की बहन।

सबंध र असममित (Asymmetical) कहा जाता है जब अ र ब असगत है ब र अ के। इस प्रकार यदि अ र ब, तो ब र अ कभी नही हो सकता। जैसे का पिता, उससे धु धला, स बडा, पूर्ववर्त्ती।

संबध र नसममित (Non-Symmetrical) कहा जाता है जब अ र ब, ब र अ के न तो तुल्य है और न असगत। इस प्रकार, यदि अ र ब तो सभवत. ब र अ और सभवत ब र अ नही। जैसे आपादन, का मित्र, की बहन।

(२) सचारिता (Tranistiveness) यह भेद किसी सबध र के सदर्भ मे पदो के जोडो के विचार पर आश्रित हैं। सबध र (Transitive) कहा जाता है जब यदि अ से ब और ब से स तो अवश्य अ से स होगा। इस प्रकार यदि अ र ब एव ब र स, तो अ र स, जैसे के पूर्वज, के ठीक समकालीन, के समानातर, आपादन।

सबध र असचारी (Intransitive) कहा जाता है जब वह ऐसा है कि यदि अ र ब एव ब र स तो अ र स कभी नही हो सकता। जैसे—ठीक उसके बाद, का पिता, एक वर्ष से बडा।

सबध र न-सचारी (Non-transitive) कहा जाता है जब वह ऐसा है कि यदि अ र ब एव ब र स, तो सभवत अ र स, और सभवत अ र स नही। जैसे की बहन, समय की दृष्टि से एक दूसरे को ढंकते हुए, धोखा देखा, से भिन्न।

सममिति एव सचारिता के गुण-धर्म तथा उनके विलोम तर्कानुसार स्वतत्र हैं। अत सबधो को हम निम्नलिखित चार समूहो मे रख सकते हैं—

(i) सममित सचारी (Symmetrical transitive) . के बराबर, रग मे ठीक एक समान।

(ii) सममित असचारी (Symmetrical intransitive) : का दापत्य युग्म (Sponse of), को जोडवा।

(iii) असममित सचारी (Asymmetrical transitive) के पूर्वज, से बडा, ऊपर, सामने ।

(iv) असममित असचारी (Asymmetrical in transitive) : का पिता, मुकाबले मे दो से बडा ।

जो सवध सममित एव सचारी दोनों हैं, उनमे समानता (Equality) का अकारिक गुण होता है । ऐसे सवधो मे एक तीसरा महत्वपूर्ण भी होता है, इस गुण को परावर्तित्व (Reflexiveness) कहते हैं । इसकी परिभाषा इस प्रकार कर सकते हैं संवध र परावर्त्ती है यदि वह अ एव स्वय अपने मे लागू हो, अर्थात् अ र अ । तादात्मय (identity) परावर्त्ती है, इतना ऊँचा जितना परावर्त्ती है, इत्यादि । कोई सवध विना परावर्त्ती हुए सममित हो सकता है, जैसे का दाम्पत्य युग्म (Sponse of) एक मात्र सवध जो बिना किसी सीमावद्धता के परावर्त्ती कहा जा सकता है, वो वह है तादात्म्य । परावर्त्तित्व, सममिति, सचारिता ये तादात्म्य होने के आकारिक गुण हैं, और इसलिए के बराबर । कोई सवध जिनमे ये गुण-धर्म पाये जाते हैं, वे तादात्म्य के आकारिक स्वभाव के हैं, जैसे ठीक समान, सपातित्व (Coincidence), सह-आपादन (Co-implication) ।

सवध जो संचारी एव असममित दोनो है, उसमे दूसरा गुण, जिसे अपवर्त्तिता (aliorelativeness) कहते हैं, भी पाया जाता है । सवध र अपवर्ती कहा जाता है जब वह ऐसा है कि कोई पद अ अपने मे र नही रखता, जैसे का उत्तराधिकारी । असचारी सवध अवश्य ही अपवर्त्ती (Aliorelative) होते हैं, पर विलोम (Converse) के साथ ऐसी बात नही, क्योकि का दापत्य युग्म (Sponse of), के जोड़ वा सममित हैं, पर अपवर्त्ती (aliorelative) भी किंतु, यदि सवध सचारी एव असममित दोनो है, तो वह अपवर्त्ती भी है ।

(३) सयोजन—(Connescity) कोई सवध र एव उसका क्षेत्र दिया हुआ है, तो यह आवश्यक नही है कि उस क्षेत्र के कोई दो-पद, र या रc से सवधित हो । उदाहरण के लिए, दिया हुआ क्षेत्र है मनुष्य जाति (Human being) और सवध है का पूर्वज, तो इससे यह नही उपलक्षित होता कि पदो के प्रत्येक जोडो मे अवश्य यह सबध होगा । जब यह सवध पदो में होगा, तो वे संबधित कहे जाएँगे । सयोजन (Connescity) की परिभाषा हम यों कर सकते हैं सवध र तब सवधित कहा

जाता है जब उसके क्षेत्र के कोई दो पद अ ब ऐसे हो कि या तो अ र ब या ब र अ (अर्थात् अ र ब या अ रc ब) हो सके। यदि यह सवध नही लागू होता, तो र को असबधित कहा जाता है।

जो सवध सममित, असचारी एव सबधित है, वह क्रमिक सबध (Serial relation) कहा जाता है, अर्थात् किसी श्रेणी (Series) की रचना मे वह पर्याप्त है जैसे गणित की श्रेणी (Arithmetical progression) स्वाभाविक अको के क्षेत्र तक सीमाबद्ध, से बडा (greater than) सबधित है, क्योकि किही दो अंको मे एक दूसरे से बडा होगा, का घटक (Factor of) असबधित है। से बडा (Greater than) श्रेणी १, २, ३, ४ की रचना के लिए पर्याप्त है।

दिये हुए सवध र मे निर्देश्य या सबधी जिन पदो से सबधित रहते हैं, उनकी सख्या के आधार पर भी सबंधो का वर्गीकरण हो सकता है। यदि देवदत्त श्याम का ऋणी है, तो इससे यह नही निकलता कि केवल श्याम ही देवदत्त से इस प्रकार सबधित है, श्याम के और बहुत से ऋणी हो सकते हैं, स्वय देवदत्त के भी ऋणी हो सकते है। यदि मीना की बहने हैं, तो रघुनाथ की वह एकलौती बेटी नही हो, सकती। हाँ, पर उसके पिता एक ही हैं। जिस देश मे एकविवाही पद्धति है, वहाँ यदि मीना गोपाल की पत्नी है तो उसका को दूसरा पति नही हो सकता और कोई दूसरी स्त्री गोपाल की पत्नी नही हो सकती। इन उदाहरणो से जैसा सकेत मिलता है, उस दृष्टिकोण से हम चार प्रकार के सबधो मे भेद कर सकते हैं।

(i) अनेक-अनेक सवध (Many-many relations)— सबध र उस समय अनेक-अनेक कहा जाता है जब प्रात एव परिवर्तित प्रात दोनो मे एक से अधिक सदस्य हो, और दोनो मे से किसी एक मे का पद-चयन दूसरे में किसी पद के चयन के लिए अनिवार्य नही कर देता। जैसे—उत्तर के अक्षाश का १° म ऋणदाता, की बहन।

(ii) अनेक-एक सबध सवध र अनेक—एक कहा जाता है जब प्रात से किसी पद का चयन परिवर्त्तित प्रात से दूसरे पद का चयन निर्धारित कर देता है, पर इसका विलोम नही होता, जैसे—का बच्चा।

(iii) एक-अनेक सबध सवध र एक-अनेक कहा जाता है जब परिवर्त्तित प्रात से किसी पद का चयन प्रात से दूसरे पद के चयन को निर्धारित कर देता है, पर इसका विलोम नही होता, जैसे—का पिता।

(iv) एक-एक सबध सबध र एकैक कहा जाता है जब किसी दिये हुए निर्देश्य का चयन सबधी के चयन को निर्धारित करता है और इसका विलाम भी होता है। र के प्रात तथा परिवर्त्तित प्रात मे बहुत से सदस्य हो सकते हैं, पर इनमे से किसी एक पद का निर्देश्य के रूप मे चयन सबधी के चयन को निश्चित रूप से निर्धारित कर देता है, और इसका विलोम। उदाहरण के लिए किसी पिता सबसे बडा पुत्र, एक से बड़ा।

ध्यान देने योग्य है कि के पितृ एक अनेक सबध नही है, क्योकि यदि अ ब के पितृ है तो अ या तो पिता हो सकते है या माता, अत इस दिये हुए सबध मे ब से दो पद सबधित है। हाँ यदि निर्देश्य केवल पुल्लिग तक सोमित हो, तो एक-अनेक होगा, यदि सबधी सबसे बडे पुत्र तक सीमित हो, तो सबध एक-एक होगा। इस पर ध्यान देना महत्त्वपूर्ण है कि गणित के प्रकार्य (Mathematical functions) एक-अनेक सबधो से फलित होते है, जैसे अ का कोसाइन, ब का लागरथिम। पूर्ण विज्ञानो मे एकैक सबध अधिक महत्त्वपूर्ण है, सह-सबध Co-relation) एकैक सबध है।

इस पर ध्यान देना रूचिकर होगा कि सबधो का सयोजन हो सकता है। मान लिया जाय कि एक सबध र ऐसा है कि अ र ब होता है, और एक दूसरा सबध ल ऐसा है कि ब ल स होता है, तो अ एव स के बीच जो सबध है वह र,ल सबधो के सयोग से बनता है। यह सबध र एव ल का सापेक्ष फल (Relative product) कहा जाता है। र एव ल के सापेक्ष फल को बर्ट्रेन्ड रसेल ने प्रतीक दिया है र/ल। की बहन एव का पिता का सापेक्ष फल है बूआ। जिस क्रम मे र, ल लिये जाते हैं, वह महत्त्वपूर्ण है। यदि उनका क्रम उलट दिया जाय, तो कोई भिन्न-सबध प्राप्त हो सकता है। उदाहरण के लिए, का पिता, की बहन सापेक्षफल का पिता है। सापेक्षफल का परिवर्त्ती, घटको के क्रम को उलट कर उनके स्थान पर उनके परिवर्त्ती रखने पर, प्राप्त होता है, अर्थात सॅ/रॅ का परिवर्त्ती स/र है (रc के स्थान पर रॅ लिया गया है)। जैसे, का पिता एव पुत्रवधू के सापेक्षफल का परिवर्त्ती का पिता या की माँ है। र एव र का सापेक्षफल र का वर्ग कहा जाता है। इस प्रकार र/र को $र^2$ लिखा जा सकता है। पिता एव पिता का सापेक्षफल दादा है, पिता के वर्ग का परिवर्त्ती पोता है। का पूर्वज का वर्ग का पूर्वज है।

४. वर्ग-अंतर्वेश एवं वर्ग-सदस्यता; एक सदस्यीय वर्ग

हम कहते हैं 'सभी मार्क्सवादी सकल्पवादी हैं,' और 'घनश्याम मार्क्सवादी हैं,' इस प्रकार हम मान लेते हैं कि 'हैं' तथा 'है' से एक ही प्रकार का सबध

मिलता है। यह भूल है। 'सभी मार्क्सवादी संकल्पवादी है' मे 'हैं' अतर्वेश-सबध का अर्थ रखता है, घनश्याम मार्क्सवादी है मे 'है' किसी वर्ग की सदस्यता का अर्थ रखता है। ये दो सवध तार्किक गुण-धर्म मे एक दूसरे से भिन्न है.

अतर्वेश (Inclusion) नसममित एव सचारी है। जबकि वर्ग-सदस्यता असममित एव असचारी है। ऐसा हो सकता है कि अ ब मे समाविष्ट हो और व अ मे समाविष्ट न हो, पर ऐसा भी सभव है कि जहाँ अ ब मे समाविप्ट हो, वही व भी अ मे समाविष्ट हो। इसके प्रतिकूल वर्ग-सदस्यता स्पष्टत सममित नही है, वल्कि यह वस्तुत असममित है। घनश्याम (उदाहरण मे) मार्क्सवादी वर्ग का एक सदस्य है, पर वर्ग मार्क्सवादी घनश्याम का कोई सदस्य नही है। सभी व्यक्ति वर्गो के सदस्य है, पर कोई वर्ग किसी व्यक्ति का सदस्य नही है। वर्ग-अतर्वेश स्पष्टत सचारी है, पर वर्ग-सदस्यता नही। उदाहरण के लिए, मोती मेरे कुत्तो के वर्ग का एक सदस्य है, मेरे कुत्तो का वर्ग एक सदस्यीय वर्गो की कोटि मे आनेवाले वर्ग का एक सदस्य है पर मोती एक सदस्यीय वर्ग नही है, क्योकि मोती एक व्यक्तिवाचक कुत्ता होने के कारण किसी तरह का वर्ग नही है। जब हम वर्गो को दूसरे वर्गो के सदस्य के रूप मे लाकर बात करते है, तो वस्तुत हम 'का सदस्य' का अथ बदल रहे हैं। इस पुस्तक मे वर्ग-सदस्यता वाली प्रतिज्ञाति को हम सदैव एक व्यापी प्रतिज्ञाति समझेंगे।

एक व्यापी प्रतिज्ञाति किसी विशिष्ट निर्देशनोय वस्तु के बारे मे प्रतिज्ञाप्त होती हैं, जैसे डेविड ह्यूम एक दार्शनिक है, यह एक कलम है। एक विशिष्ट निर्देशनीय वस्तु (जैसे यह कलम) किसी वर्ग का एकमात्र सदस्य हो सकती है (जैसे कलम, जिसका इस समय मै मालिक हूँ)। पारपरिक तर्कशास्त्री प्रत्येक एक व्यापी प्रतिज्ञाप्त को किसी एक सदस्यीय वर्ग के बारे मे अभिकथन-सा मानते थे। इसके अनुसार डेविड ह्म एक दार्शनिक हैं तुल्य है सभी डेविड ह्यूम (यद्यपि केवल एक है) दाशनिक हैं। हमने कोई आलोचना किये बिना इस मत का उल्लेख पहल किया है (पृष्ठ ५६ पुस्तक)। अव हम अवश्य कहेंगे कि इस मत का अनुसरण करते समय पारपरिक तर्कशास्त्रियो ने स्पष्ट नही समझा कि वे क्या कर रहे हैं और न यही समझा कि, निरूपाधिक प्रतिज्ञप्तियो का उनका यह विश्लेषण एक व्यापी प्रतिज्ञप्तियो की, इस व्याख्या की अपेक्षा क्यो रखता है।

ध्यान देने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्ग-अतर्वेश का कथन वर्ग-सदस्यता के कथन से प्रकार मे भिन्न है। यदि हम कहे दशरथ-पुत्र श्रीरामचद्र एक आदर्शवादी मनुष्य है, तो हम कह रहे है कि एक विशिष्ट व्यक्ति किसी वर्ग का सदस्य है, जिसे आदर्शवादी मनुष्य कहा जाता है। यदि हम कहें आदर्शवादी मनुष्य देवता है, तो हम कह रहे है कि वर्ग आदर्शवादी मनुष्य का प्रत्येक सदस्य देवता वर्ग का भी

सदस्य है। वस्तुत एक मनुष्य ही आदर्शवादी हो सकता है, वर्ग नही। हमे एक सदस्यीय वर्ग के बारे मे कथन एव किसी वर्ग के बारे मे कथन एव किसी वर्ग मे केवल एक सदस्य है, इस कथन मे अवश्य भेद करना चाहिए और वैसे ही एक सदस्यीय वर्ग का उसके एकमात्र सदस्य से भेद करना चाहिए। एक और केवल एक ही अक ऐसा है, जो पूर्ण सख्याओ के किसी निश्चित समूह मे आनेवाली प्रत्येक सख्या का गुणन खड है, यह कथन व्यक्त करता है कि किसी वर्गविशेष मे केवल एक सदस्य है, यह सख्या दी हुई सख्याओ का महत्तम समापवर्त्तक है। यदि कुछ ससीम सख्याएँ दी हुई है, तो उपर्युक्तनियम द्वारा निश्चित किये गये हुए वर्ग का महत्तम समापवर्त्तक एक मात्र सदस्य है। सम सख्याओ का वर्ग एक सदस्यीय वर्ग है और इसका एकमात्र सदस्य सख्या २ है। कुत्तो मे सबसे गुणी वर्ग मे अवश्य ही एक सदस्य है, क्योकि यदि दो कुत्ते समान गुणी है तो उनमे से किसी एक के लिए सबसे गुणी का व्यवहार नही होगा। मेरे कुत्तो का वर्ग (यह मान लिया जाय कि मेरे पास केवल एक कुत्ता है) एक सदस्यीय है। इस वर्ग मे मेरी पुस्तको के वर्ग के कम सदस्य है, पर इस कथन का कोई अर्थ नही है कि मेरा कुत्ता मे मेरी पुस्तको या किसी अन्य वर्ग से कम सदस्य हैं।

उपर्युक्त वर्ग के आधार पर हम कह सकते हैं कि जो कुछ किसी वर्ग के लिए सार्थक कथन हो सकता है, वही एक व्यक्ति के लिए सार्थक कथन नही हो सकता। तर्कशास्त्री व्यक्ति एव वर्ग को अलग-अलग तार्किक प्ररूपो (Logical types) मे रखकर इस भेद को मान्यता देते है। इसी दृष्टि से इस परिच्छेद के प्रारभ मे दिये हुए दो वाक्यो मे 'हैं' एव 'है' अर्थ मे भिन्न है।

५. उपवर्ग एवं रिक्त वर्ग

वर्ग अ जो वर्ग ब मे समाविष्ट है, ब का उपवर्ग कहा जाता है। वर्ग ब को वर्ग अ का अति वर्ग (Superclass) कहना सुविधाजनक है वर्ग भारतवासी, एशियावासी वर्ग का उपवर्ग है, वर्ग पाकिस्तानी भी एशियावासी का उपवर्ग है। किसी वर्ग के उपवर्गों मे भेद दिखलाना बहुत से स्थलो पर उपयोगी होता है। अगले अध्याय मे उपवर्गों के बीच भेद करने की रीतियो पर विचार किया जाएगा। कभी-कभी हम किसी उपवर्ग को अलग करते हैं और तब पाते है कि इसमे कोई सदस्य नही है। उदाहरण के लिए १९४० के ग्रीष्मकाल मे 'अफवाह एव निराशा फैलाने वालो' को ब्रिटिश पार्लियामेंट द्वारा दड देने का नियम बनाया गया। इस वर्ग को दडित करना ब्रिटिश सरकार को अच्छा लगा। पर, ऐसी परिस्थिति आ सकती थी कि

अफवाह एव निराशा फैलाने के मिश्र गुण-धर्म वाले वर्ग मे कोई दृष्टांत ही न हो या, दूसरे शब्दो मे इस गुण द्वारा निर्धारित वर्ग रिक्त पाया गया हो। रिक्त 'वर्ग वह वर्ग है, जिसमे कोई सदस्य न हो। अध्याय II मे हमने देखा कि बेईमान अमरणशील राजनीतिज्ञ नही है। पाठशाला जानेवाले बच्चों के किसी विशेष वर्ग में सभवत कोई ऐसा नही हो सकता, जो परिश्रमी एव योग्य दोनो हो। यह समझने मे हमे कोई कठिनाई नही होती कि मिश्र गुणो के दृष्टात नही भी पाये जा सकते। ऐसी परिस्थिति मे यह कहना सुविधाजनक है कि ऐसे गुणो द्वारा निर्धारित किया हुआ वर्ग रिक्त है। यह कहने का ढग है या दूसरे शब्दो मे, परपरा है। 'वर्ग' के अर्थ को इस प्रकार बढाना कि उसकी पकड मे रिक्त वर्ग भी आ जाय, अपरिचित-सा लगता है। परतु, जैसा ऊपर के उदाहरणो से सकेत मिलता है, यदि हम ऐसा करें तो बहुत सी कठिनाइयो से बच जाएँगे। जैसे, हम यदि आ, ए, ई, ओ प्रतिज्ञप्तियों को वर्ग-अतर्वेश एव बहिष्करण के कथन मानें, तो हमे ऐसी कठिनाइयो मे पडना पडेगा, जैसी विपरिवर्तन के सदर्भ मे देखी गई। इन कठिनाइयो का हल तभी मिलेगा, जब हम स्वीकार करे कि किसी वर्ग मे सदस्य नही भी हो सकते हैं। यदि हम मान ले कि वर्ग रिक्त भी हो सकते है, तो सर्वव्यापी प्रतिज्ञप्ति आ, ए एव अशव्यापी प्रतिज्ञप्ति ई, ओ मे हम मूल भेद स्पष्ट दिखला सकते हैं।

दो प्रतिज्ञप्तियो पर विचार करे अफवाह एव निराशा फैलानेवाले सभी व्यक्तियो को दडित किया जायगा, बीस से तीस वर्ष के बीच सभी पुरूषो को सेना मे कार्य करने के लिए कहा जायगा। हमारे देश के निवासियो ने अबतक जो समझा है, उसके अनुसार यह अवश्य ही मानना पडेगा कि इनमे से पहली प्रतिज्ञप्ति का महत्त्व किसी वास्तविक दृष्टात पर नही आश्रित है। अफवाह एव निराशा फैलाना मिश्र गुण है। सभव है कि वह कही न पाया जाय। असल मे कोई सरकार आशा करती है कि दड देने का भय दिखलाने से अफवाह एव निराशा फैलाने के गुण से निर्धारित होनेवाला वर्ग रिक्त रहेगा। दूसरी प्रतिज्ञप्ति के बारे मे हम निर्विवाद रूप से कह सकते हैं बीस से तीस वर्ष के बीच की आयुवाले पुरुष हैं, अर्थात् हम सत्य मान लेते है कि उद्देश्य पद का निर्माण करने वाला वर्ग रिक्त नही है। हम ऐसा इसलिए करते हैं कि हम अपने देश के निवासियो के बारे मे जो कुछ जानते हैं, उसके सदर्भ मे इस प्रतिज्ञप्ति का निश्चयात्मक अभिकथन हुआ है (यदि वास्तव मे कोई ऐसा निश्चयात्मक अभिकथन करें)। यदि कोई पुरुष बीस और तीस वर्ष के बीच की आयु का न होता, तो किसी को ऐसे अभिकथन करने की रूचि न होती। कुछ क्षण के लिए हम जो कुछ जानते हैं उसे भूल जायँ, तो हमे यह स्वीकार करने मे कोई कठिनाई नही होगी कि इनमे से किसी उदाहरण मे प्रतिज्ञप्ति का महत्त्व उद्देश्य पद पर आने वाले वर्ग मे सदस्य पाये जाने पर नही है।

ऐसी परिस्थिति मे इन प्रतिज्ञप्तियो को सार्थक बनाने के लिए क्या न्यूनतम अर्थ किया जाय ? न्यूनतम अर्थ प्रतिज्ञप्ति मे कोई ज्ञान ऐसा नही लाता, जो उस प्रतिज्ञप्ति के अतिरिक्त कही बाहर से प्राप्त हो। तब स्पष्टत प्रतिज्ञप्तियो को ऐसा अर्थ देना उचित है कि उनकी सार्थकता किसी भी प्रकार उद्देश्य पद पर आने वर्ग मे सदस्य होने पर आश्रित न हो। अर्थ करने की इस प्रक्रिया को सुविधापूर्वक एक वाक्य मे रखा जा सकता है "यदि कोई व्यक्ति अफवाह एव निराशा फैलाता है तो उसे अर्थ-दड या कारावास-दड दिया जायगा," और इसी प्रकार दूसरी प्रतिज्ञप्ति के बारे मे भी किया जा सकता है। इस प्रणाली से प्रदर्शित होता है कि प्रतिज्ञप्ति जो अभिकथन कर रही है, उसके अनुसार वर्गविशेष रिक्त है, अर्थात् इस मिश्र गुण से निर्धारित वर्ग मे अफवाह एव निराशा फैलानेवाला और अर्थ-दड या कारावास-दड पानेवाला कोई नही है। किसी वर्ग मे सदस्य हैं, इसके निषेध मे ही ऐसी प्रतिज्ञप्तियो की सार्थकता है। ऐसी प्रतिज्ञप्ति को अस्तित्व पर क निषेधक (Scistentially negative) कहते है।

अब, हम इन प्रतिज्ञप्तियो पर विचार करे कुछ युवक लडाकू हैं, कुछ बेईमान राजनीतिज्ञ मरणशील नहीं हैं। सामान्यत हम नि सकोच कहेगे कि इन प्रतिज्ञप्तियो की सार्थकता क्रमश उद्देश्य पद पर आनेवाले वर्गो के सदस्यो पर आधारित है। हम 'कुछ' शब्द का ऐसा व्यवहार करते हैं कि यह इन दोनो प्रकार की प्रतिज्ञप्तियो मे से किसी का अभिकथन करता है। इससे ध्वनित होता है कि दिये हुए वर्ग मे सदस्य हैं, जिनके लिए शब्द कुछ परिवाचक के रूप मे आया है। जैसे कुछ हस सफेद हैं से अभिकथित होता है कि हस वर्ग मे सदस्य हैं, अर्थात यह प्रतिज्ञप्ति अस्तित्व पर क विधाय (Scistentially affirmation) है। प्रतिज्ञप्ति कुछ हस खाने मे स्वादिष्ट नही है, इसी प्रकार अस्तित्व पर क विधायक है, चाहे यह सत्य हो या असत्य।

यदि यह सर्वमान्य हो गया कि सर्वव्यापी प्रतिज्ञप्तियो के न्यूनतम अर्थ मे उद्देश्य पद पर आनेवाले वर्ग मे किसी सदस्य के होने की आवश्यकता नही है लेकिन अशव्यापी प्रतिज्ञप्तियो मे है तो हम आ, ए, ई, ओ प्रतिज्ञप्तियो को निम्नलिखित रूप मे सूत्रबद्ध कर सकते हैं

आ कोई स एव न-प दोनो नही है $स \bar{प} = 0$

ए कोई स एव प दोनो नही है $स प = 0$

इ कुछ स एव प दोनो है $स प \neq 0$

ओ कुछ स एव न-प दोनो है $स \bar{प} \neq 0$

दाहिने की सूची प्रतिज्ञप्तियो को इस दृष्टि से प्रतीकात्मक ढग से रखने की सुगम रीति है। स, प स $\overline{\text{प}}$ प्रत्येक उदाहरण मे दो वर्गो के सयोग के लिए आते हैं स प, ग एव प के सयोग से निर्मित वर्ग के लिए आता है, ग $\overline{\text{प}}$, ग एव न-प के सयोग से निर्मित वर्ग के लिए, "= ०" से उपलक्षित होता है कि वर्ग मे कोई सदस्य नही है, अर्थात् वह रिक्त है, "≠ ०" से उपलक्षित होता है कि वर्ग मे सदस्य हैं, अर्थात् यह रिक्त नही है। * ये प्रतीक सुविधाजनक हैं, पर इससे यह नही समझना चाहिए कि ये बाई ओर दी हुई सूचना से कुछ अधिक या कम सूचना देते हैं।

ज्ञातव्य है कि यदि यह सत्य है कि कोई स एव प दोनो नही है, तो यदि स मे सदस्य हैं तो $\overline{\text{प}}$ मे भी सदस्य होगे, अथवा-जैसा दूसरे शब्दो मे कहा जा सकता है—या तो स मे सदस्य नही है या न-प मे सदस्य है। + उदाहरणार्थ, यदि यह सत्य है कि कोई भी मानव एव भ्रमातीत दोनो नहीं है, तो या तो वर्ग मानव मे सदस्य नही है या भ्रमातीत प्राणी है।

उपर्युक्त प्रतिपादन से बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि सर्वव्यापी प्रतिज्ञप्तियाँ अशव्यापी से आकार मे मूलत भिन्न है, पर निषेधक एव विधायक प्रतिज्ञप्तियो मे कोई मूल भेद नही है।

यदि हम मान ले कि उद्देश्य स मे सदस्य है, तो इन प्रतिज्ञप्तियो को निम्न-लिखित रूप मे सूत्रबद्ध किया जा सकता है —

आ स$_{\text{आ}}$ प स ≠ ० एव स $\overline{\text{प}}$ = ०

ए स$_{\text{ए}}$ प स ≠ ० एव स प = ०

ई स$_{\text{ई}}$ प स प ≠ ०

ओ स$_{\text{ओ}}$ प स $\overline{\text{प}}$ ≠ ०

फिर यहाँ भी सर्वव्यापी एव अशव्यापी में आकार-भेद स्पष्ट हो जाता है। इस मान्यता पर कि अशव्यापी प्रतिज्ञप्तियो में उद्देश्य-पद पर आने वाले वर्गों में सदस्यो का होना अनिवार्य नही है, सूत्रीकरण होगा —

---

* इस प्रतीक को ० सख्या से भिन्न समझना चाहिए।

+ इसका सूत्रीकरण इस प्रकार हो सकता है · या तो स = ० या $\overline{\text{प}}$ ≠ ०

ई स $_{ई}$ प या तो स = ० या स प ≠ ०

ओ स $_{ओ}$ प या तो स = ० या स प̄ ≠ ०

§ ६. विषय-क्षेत्र, एवं सर्वव्यापी वर्ग

पूर्व परिच्छेद मे कहा गया है 'हम निर्द्वंद्व रूप मे अभिकथन करते हैं।' किसके लिए शब्द 'हम' आता है ? अवश्य ही उन सभी अर्वाचीन सभ्य मनुष्यो के लिए, जो लिखने-पढने मे समर्थ है। जिस सदर्भ मे यह पुस्तक लिखी गई है और पढी जाती है, उससे 'हम' शब्द का सकेत स्पष्ट हो जाता है। किसी भी अभ्रामक वाद-विवाद मे सदर्भ सभी वक्ता के द्वारा समझा जाता है। यदि मैं कहूँ 'दुष्यत शकु तला को भूल गये, शकु तला दुष्यत को नही भूली' तो लोग समझेंगे कि मै कालिदास के नाटको की दुनिया के बारे मे सकेत कर रहा हूँ। यदि मैं कहूँ, 'स्कॉट जैसा चित्रण करते हैं, क्रामवेल वस्तुत' वैसा नहीं था,' तो लोग समझेंगे कि मैं उडरटाक मे स्कॉट द्वारा क्रामवेल के कल्पित चित्रण का वास्तविक क्रामवेल जो सातवी शताब्दी के मध्य मे इगलैंड का लॉर्ड प्रोटेक्टर था, से भिन्नता प्रदर्शित कर रहा हूँ। हम 'कथा साहित्य के संसार' से 'वास्तविक ससार' को भिन्न मानते हैं। पर, प्राय हम अपने वार्तालाप के सदर्भ को कुछ सीमाबद्ध करना चाहते है, ताकि जो कुछ हम कह रहे हैं, उसका सकेत सभी घटित घटनाओ या हर जगह होने वाली घटनाओ की ओर न समझा जाय। उदाहरण के लिए, 'स्त्रियो को मत देने का अधिकार है' यह बात प्राय' वाद-विवाद के सदर्भ मे आनेवाले देश या वक्ता जहाँ रह रहे हैं, वही तक सीमित समझी जायगी, यह सामान्यत' बहुत ही अर्वाचीन समय तक भी सीमित समझा जायगा। इस प्रकार के सदर्भ को विषय-क्षेत्र (The Universe of Discourse) कहते हैं। *

* इस वाक्याश का प्रथम व्यवहार ए० डीमार्गन (फारमल लॉजिक, पृष्ठ ४१,५५) एव जी० बूली (लॉज ऑफ थॉट, पृष्ठ १६६) ने किया। डीमार्गन ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की यदि हम स्मरण रखे कि बहुत सी प्रतिज्ञप्तियो मे, सभवतः सभी मे, विचार की सीमा जिसे हम सामान्यत सपूर्ण ससार कहते हैं, विस्तार मे बहुत कम होती है, तो हमे अनुभव होने लगता है कि वाद-विवाद के लिए विषय-विमर्श का सपूर्ण विस्तार, जैसा हमने कहा है, एक क्षेत्र है, अर्थात् विचारो का एक विस्तार जिसके अदर व्यक्त या अव्यक्त रूप से वाद-विवाद के सभी विषय आ जाते हैं।

वर्गों का भाषा मे हम कह सकते हैं कि विपय-क्षेत्र ऐसा वर्ग है कि विपय-विमर्श मे आनेवाले सभी वर्ग उसके उपवर्ग हैं। चूँकि उपवर्ग का प्रत्येक सदस्य उसके अतिवर्ग का भी सदस्य होता है, तो इससे निष्कर्ष निकलता है कि किसी वाद-विवाद के सदर्भ के वर्ग का प्रत्येक सदस्य एक सर्वव्यापी वर्ग का सदस्य है। पर, ठीक जिस प्रकार हमारा एक समय का विषय-क्षेत्र (जैसे काल्पनिक तथ्य) दूसरे समय के विपय-क्षेत्र (जैसे वास्तविक ससार) से भिन्न होता है, उसी प्रकार विभिन्न अवसरो पर हमे विभिन्न सर्वव्यापी वर्ग मिल सकते है। पर, वाद-विवाद के सदर्भ को मान लेने पर केवल एक ही सर्वव्यापी वर्ग होता है। किसी दिये गये सर्वव्यापी वर्ग मे हम उपवर्गो का भेद कर सकते हैं, जिनके लिए दूसरे सर्वव्यापी वर्ग मे कोई स्थान नही होता। जैसे ससार के संपूर्ण इतिहास मे मनुष्य के सर्वव्यापी वर्ग मे, स्वतन्त्रता-पूर्वक कार्य करने वाले एव स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य न करने वाले मनुष्यो मे भेद करना अर्थ-सगत है, यद्यपि वाद मे हम यह निर्णय कर सकते हैं कि इनमे से एक वर्ग रिक्त है। भौतिक तत्त्व जैसे एल्नक्ट्रास के सर्वव्यापी वर्ग मे स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करने वाले एव स्वतन्त्रतापूर्वक न कार्य करने वाले का भेद करना कोई अर्थ नही रखता।

यदि हम सर्वव्यापी वर्ग की सीमाओ के प्रति स्पष्ट नहीं हैं (जो हमारे वार्तालाप के सदर्भ के कारण बनता है) तो निरर्थक बकवाद भी कर सकते है और हमे यह ज्ञान भी नही होगा कि हमारी बातो का कोई अर्थ नही है।

§ ७. विरोध एवं अव्यवहित अनुमान के पारंपरिक निरूपण पर पुनर्विचार

जव हमने एक बार स्वीकार कर लिया है कि सर्वव्यापी प्रतिज्ञप्तियाँ $स_{आ}प$, $स_{ए}प$ अस्तित्व की दृष्टि से निषेधक हो सकती है, तो पारपरिक तर्कशास्त्रियो द्वारा मान्य अनुमान की वैधता पर पुनर्विचार आवश्यक हो जाता है, क्योंकि हमने यह भी स्वीकार किया है कि अशव्यापी प्रतिज्ञप्तियाँ अस्तित्व की दृष्टि से विधायक हैं, जैसे कुछ अन्वेषक बुद्धिमान हैं मे निहित है कि अन्वेषक हैं और फलत. बुद्धिमान प्राणी भी हैं।

* ड्रामा 'दो कलाकार' मे कथावस्तु के ससार एव वास्तविक ससार जानबूझ कर नाटकीय प्रभाव के साथ, एक साथ रखे जाते हैं, पर ड्रामे में वास्तविक पात्र एव दो कलाकार (जैसा हम कहते हैं) दोनो काल्पनिक हैं।

पारपरिक विरोध चतुस्र (Opposition of Proposition) तक ही सीमित रहकर हम पाते हैं कि आ एव ओ, ए एव ई, क्रमश व्याघाती हैं, क्योकि स$_{आ}$प ≡ स $\overline{प}$ = ०, तथा स$_{ओ}$प ≡ स $\overline{प}$ ≠ ०। पर स$_{आ}$प से स$_{ई}$प का अनुमान एव स$_{ए}$प से स$_{ओ}$प का अनुमान वैध नही है, क्योकि स$_{आ}$प मे केवल इतना ही निहित है कि कोई स $\overline{प}$ नही है (अर्थात् स $\overline{प}$ = ०), लेकिन स$_{ई}$प मे कुछ स प हैं निहित है और इसका अर्थ हुआ कि वर्ग स रिक्त नही है। फिर स$_{आ}$प एव स$_{ए}$प विपरीत नही हैं, क्योकि कोई स नही है की मान्यता पर, यह अभिकथन असगत नही है कि स $\overline{प}$ = ० एव स प = ० भी। दोनो के अभिकथन पर बल का अर्थ है, स का कोई सदस्य है, को अस्वीकार करना। यह अनर्गल मालूम हो सकता है, पर सार्थक उदाहरण देना कठिन नही है . सभी तटस्थ नेता विश्वसनीय हैं, कोई तटस्थ नेता विश्वसनीय नहीं है, यदि दोनो को सत्य माना जाय, तो उनसे अस्वीकारोक्ति निकलती है कि कोई तटस्थ नेता है। * स$_{आ}$प से स$_{ई}$प का अनुमान एव स$_{ए}$प से स$_{ओ}$प का अनुमान ठीक नही होता, क्योकि अशव्यापी मे निहित है कि वर्ग स रिक्त नही है, लेकिन सर्वव्यापी मे यह निहित नही रहता।

---

* श्रीमती लैड-फ्रैंक्लिन निम्न उद्धरण मे एक उदाहरण देती है 'सभी x y हैं, कोई x y नही है का सम्मिलित अभिकथन हुआ कि x न तो y है और न not—y, अत कोई x नाम की चीज नही है। तर्कशास्त्रियो मे प्रचलित है कि ऐसी दो प्रतिज्ञप्तियां असगत है, पर यह सत्य नही है, वे केवल सम्मिलित रूप से x के अस्तित्व के साथ असगत हैं जब कोई विद्यार्थी यह सिद्ध कर लेता है कि दो सरल रेखाओ का मिलन-विंदु किसी तिर्यक रेखा (Transversal) के दाहिने नही है, और वह उसके बायें नही है, तो हम उससे यह नही कहते कि तुम्हारी प्रतिज्ञप्तियां असंगत है और उनमे से एक अवश्य असत्य होगी, पर हम उसे स्वाभाविक निष्कर्ष निकालने देते हैं कि कोई मिलन-विंदु ही नही है, या रेखाएं समानातर हैं।' (माइन्ड, १८९०, पृष्ठ ७७ नोट) इस उदाहरण मे मान लिया जाता है कि दाहिने होना एव बायें होना व्याघाती पद हैं, इस मान्यता को स्वीकार कर लेने पर दो प्रतिज्ञप्तियां इस रूप की बनती है कोई स प नहीं है, कोई स न–प नही है, (अर्थात्, 'सभी स प हैं)

: हमारी मान्यताओ के अनुसार सामान्य ढग से कोई सर्वव्यापी प्रतिज्ञप्ति दूसरी सर्व-व्यापी प्रतिज्ञप्ति से वैध अनुमित हो सकती है और कोई अशव्यापी दूसरी अशव्यापी से,पर कोई अशव्यापी किसी सर्वव्यापी प्रतिज्ञप्ति से अनुमित नही हो सकती। अत , जब तक 'स रिक्त नही है' यह भी नही जोड दिया जाता, तब तक निम्नलिखित पारपरिक अव्यवहित अनुमान अवैध है

(1) आ का परिवर्तन, (11) ए का प्रतिपरिवर्तन, (111) विपरिवर्तन। वैसे ही दो सर्वव्यापी आधारवाक्य एव अशव्यापी निष्कर्ष वाला न्यायवाक्य अवैध है, क्योकि यहाँ निष्कर्ष मे तो निहित होगा कि वर्ग स रिक्त नही है, लेकिन पक्ष-आधार-वाक्यो से इसका निश्चय नही मिलता। फलत दुर्बलित विन्यास अवैध हैं और उन्ही के साथ डाराप्टी,फेलाप्टोन, ब्रामान्टीप,फेसापो भी,क्योकि इनमे से प्रत्येक मे एक अतिबल आधारवाक्य है। इस प्रकार वैध विन्यास कम होकर पद्रह रह जाते है आकृति I मे चार, आकृति II मे चार, आकृति III मे चार, आकृति IV मे तीन।

ये निष्कर्ष अध्याय II मे वर्णित हमारे इस विचार की पुष्टि करते हैं कि विपरिवर्तन की वैधता, वर्ग स, स̄, प प̄ रिक्त नही हैं, की मान्यता पर आश्रित है, अर्थात् विषय-क्षेत्र मे इनका अस्तित्व है।

यहाँ हम उन दो प्रश्नो पर पुनर्विचार कर सकते है, जो अध्याय २ के परिच्छेद ४ मे उठाये गये थे। स, प, स̄, प̄ इन सबका विषय-क्षेत्र मे अस्तित्व है, यह मान्यता रेखाकृति मे रखी जा सकती है। पर, स्पष्ट कर देना होगा कि प्रत्येक दशा मे वृत्त के बाहर का क्षेत्र उन सभी का द्योतक है, जो न तो स हैं और न प।
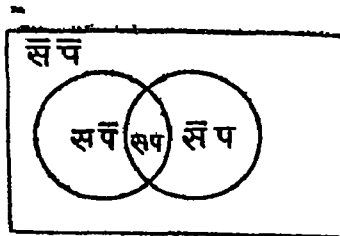
मान लें कि एक आयत विषय-क्षेत्र का द्योतक है, जिसके अदर पृष्ठ २५ पर चिन्ति‍त पाँच रेखाकृतियो मे से कोई खीची जा सकती है। एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा हम रेखाकृति चार को चुनते हैं। चार सभव सयोग कक्ष मे अकित हैं। हम ४ के स्थान पर कोई रेखाकृति ले सकते हैं, अत हर अवस्था मे कुछ न-स न प है। यदि यह ठीक है, तो चार पारपरिक प्रतिज्ञप्तियो मे से प्रत्येक का विपरिवर्ती होगा,

और, सचमुच, वही विपरिवर्ती। यह बेतुका है। तब हमारा निष्कर्ष होगा कि वृत्त के बाहर क्षेत्र सदैव नही रहेगा, बल्कि वह विषय-क्षेत्र मे सम्मिलित होगा। इस प्रकार हमे पांच नही, दस आकृतियो की आवश्यकता है। ये दस आयताकार मे सुविधापूर्वक रखे जा सकते हैं।

इन रेखाकृतियो की * यूलर की रेखाकृतियो से तुलना करनी चाहिए। वर्ग स प मे सदस्य हैं या नही है, इस दृष्टिकोण को ध्यान मे रखकर अब हमने यूलर की प्रत्येक रेखाकृति की दो तरह की व्याख्याओ मे भेद किया है। इस प्रकार रेखाकृति (i) एव (ii) यूलर के न० I से मेल खाती है और आगे अन्य भी।

ऐसी अवस्था मे हमारी समस्या है कि जब कोई पद विषय-क्षेत्र मे तो सार्थक हो पर वास्तविक जगत मे निरर्थक, तो हम उसकी व्याख्या कैसे करेंगे? एक उदाहरण लें—देवता सदैव रस्सी से बाँधे नही जाते। यह एक अशव्यापी निषेधक प्रतिज्ञप्ति है। हम इसे रेखाकृति से प्रदर्शित करेंगे :
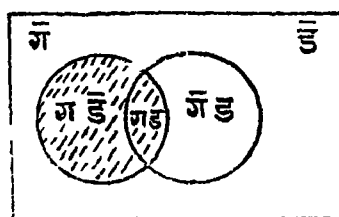
जिस वृत्त मे रेखाएँ खीची गई हैं, उसे मिटाया हुआ मान लिया जा सकता है, यह रिक्त है, अर्थात् वास्तविक जगत मे देवता नही होते, न देवता (ग̄), रस्सी से बँधी वस्तुएँ (ड), रस्सी से न बँधी वस्तुएँ (ड̄) इन सब की वास्तविक जगत एव विषय-क्षेत्र दोनो मे सत्ता है, देवता (ग) की केवल विषय-क्षेत्र मे सत्ता है, वर्ग देवता रिक्त है। पर, दी हुई प्रतिज्ञप्ति मे असत्य रूप मे मान लिया गया है कि यह रिक्त नही है। अत प्रतिज्ञप्ति देवता सदैव रस्सी से बाँधे नहीं जाते असत्य है, इसी प्रकार प्रतिज्ञप्ति देवता कभी-कभी रस्सी से बाँधे जाते हैं (अर्थात् ई प्रतिज्ञप्ति) भी असत्य है।

§ ८. संबंधों के तार्किक गुण-धर्म एवं अनुमानो की वैधता

पारपरिक अव्यवहित अनुमानो के विवेचन मे (अध्याय II) हमे मिला है कि कुछ स्थलो पर अनुमित निष्कर्ष अपने आधारवाक्य के तुल्य थे, पर कुछ स्थलो पर ये आधारवाक्य के उपापादक। अब हम देख सकते हैं कि यह भेद आवेष्टित (Involved)

---

* इस विषय मे जो विद्यार्थी रुचि रखते है, उन्हें पढना चाहिए जे० एन० कीनेज, फारमल लॉजिक, पार्ट II, चैपटर VIII, पार्ट III, चैपटर VIII और स्टैबिग · मॉडर्न इन्ट्रोडक्शन टू लॉजिक, चैपटर VI, §§ ४, ५।

सबधो के तार्किक गुण-धर्म के कारण होता है। आ, ए,ई, ओ प्रतिज्ञप्तियाँ वर्ग-अतर्वेश या वर्ग-बहिष्करण के कथन है। चूँकि अतर्वेश नसममित है इसलिए ब मे अ के अतर्वेश से हम यह नही कह सकते कि अ मे ब अन्तर्विष्ट है या नही। अत, स आ प से (इस अर्थ मे कि सभी स प है अर्थात् वर्ग स वर्ग प मे अतर्विष्ट है) हम केवल प ई स अनुमानित कर सकते है। इस प्रकार आ प्रतिज्ञप्ति का परिवर्तन मूल प्रतिज्ञप्ति के तुल्य नही है। पर, आशिक अतर्वेश एव पूर्ण बहिष्करण दोनो ही सममित हैं, अत स ई प एव स ए प दोनो के सरल परिवर्तन हैं। पारपरिक तर्कशास्त्रियो ने सबधो का अध्ययन नही किया, इसलिए उनके अव्यवहित अनुमानो का विवेचन अव्यवस्थित एव अरूचिकर है। आ, ए, ई, ओ प्रतिज्ञप्तियो का परिवर्तन उद्देश्य एव विधेय के लिए निर्धारित वर्गों के बीच अभिकथित सबध की सममिति या नसममिति पर पूर्णत आश्रित है। निरूपाधिक न्यायवाक्य की वैधता वर्ग-अतर्वेश-सबध की सचारिता पर आधारित है। तीन विभिन्न वर्गो के लिए L B Y निदर्शी प्रतीक मानकर बारबारा न्यायवाक्य इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है यदि L B मे अतर्विष्ट है और B Y मे अतर्विष्ट है, तो L Y मे अतर्विष्ट है। सयुक्त पूर्ववर्त्ती मे अनुवर्त्ती निहित है, यह बात इसलिए स्पष्ट है कि अतर्विष्ट होना सचारी है।

उस न्यायवाक्य मे स्थिति दूसरी है जहाँ एक आधारवाक्य एकव्यापी है, यदि जैसे सभी मार्क्सवादी नियतिवादी हैं और प्रोफेसर घनश्याम मार्क्सवादी हैं, तो प्रोफेसर घनश्याम नियतिवादी हैं। जैसा हमने देखा है, वर्ग सदस्यता असचारी सबध है। इस न्यायवाक्य की वैधता यज्जातिविधेयम् नियम के सशोधित रूप पर आधारित है, जिसे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है किसी दिये हुए वर्ग के सभी सदस्यो के बारे मे जिन चीजो की स्वीकारोक्ति या अस्वीकारोक्ति हो सकती है, उनकी स्वीकारोक्ति या अस्वीकारोक्ति उस वर्ग के विशिष्ट व्यक्ति के बारे मे भी हो सकती है। इस सिद्धात को विनियोग सिद्धात कहा गया है।* इसे प्रतिस्थापन नियम (Principle of substitution) भी कहा जा सकता है।

निम्नलिखित अनुमानो पर विचार करें, जहाँ अ, ब, स तीन व्यक्तियो के लिए अलग-अलग निदर्शी प्रतीक है —

* देखे डब्लू० ई० जॉन्सन, लॉजिक पार्ट II, पृष्ठ १०।

(i) अ = ब और ब = स, ∴ अ = स।

(ii) अ ब से धनी है, ब स से धनी है, ∴ अ स से धनी है।

(iii) अ ब के पहले है, और ब स के पहले है, ∴ अ स के पहले है।

इन अनुमानो की वैधता मे किसी को सदेह नही होगा, पर निम्नलिखित स्पष्टत अवैध है :

(iv) अ ब को प्यार करता है, और ब स को प्यार करता है, ∴ ब स को प्यार करता है।

(v) अ ब को पीटता है, और ब स को पीटता है ∴ अ स को पीटता है।

(vi) अ ब का पिता है, और ब स का पिता है, ∴ अ ब का पिता है।

(i), (ii), (iii) मे से प्रत्येक मे सबध सचारी है, (iv) एव (v) मे सबध नसचारी है, (iv) मे असचारी। (i) मे सबध सममित है, इसलिये यह सबध एव इसका परिवर्त्ती एक से है, (ii) एव (iii) मे सबध असममित है। पर, अनुमान की वैधता सचारी गुण पर आधारित होती है, सममित पर नही। प्रत्येक दृष्टात मे निष्कर्ष तीन पदो मे से प्रथम एव तृतीय के बीच सबध स्थापित करता है, दूसरा पद उनमे से एक पद के साथ दिये हुए सबध मे है तथा दूसरे पद के साथ प्रथम के विलोम सबध मे। चूँकि सबध सचारी है, इसलिए बीच के पद का निरसन (Elimination) हो सकता है।

जब कभी आधारवाक्य सचारी सबधो से जुडे हो, तो निगमन-शृ खला (Chain of deduction) सभव होती है। यदि आधारवाक्य सत्य दिये हुए हैं, तो मध्य के पद का निरसन हो सकता है तथा निष्कर्ष का निश्चयात्मक अभिकथन हो सकता है। जिस सिद्धात से ऐसा निरसन (Elimination) सभव होता है उसे विलियम जेम्स ने 'मध्यस्थ छोड सिद्धात' (The axiom of skipped intermediaries) कहा है। वे कहते हैं, 'प्रतीक रूप मे हम इसे इस प्रकार लिख सकते हैं a L b L c L d ... और कह सकते हैं कि कोई मध्यस्थ अक शेष मे बिना किसी परिवर्तन के हटाया जा सकता है।' * इसी सिद्धात के अनुसार सक्षिप्त प्रगामी तर्कमाला (Sorites) के निगमन प्राप्त होते हैं, और निरूपाधिक न्यायवाक्य मे मध्य-पद का निरसन (Elimination) होता है। द्विपदी सबधो के लिए सचारी गुण की जो परिभाषा हमने दी है, वह वास्तव मे उस परिस्थिति का विशिष्ट रूप है, जिससे सामान्य निरसन सभव होता है। +

---

* प्रिंस्पुल ऑफ साइकोलॉजी, भाग II, पृष्ठ ६४६।

\+ इस विषय मे और आगे अध्ययन के लिए देखे—जी० बूली, लॉज आव थॉट, चैप० VII, और भी, जे० ए० कीनेज, फारमल लॉजिक, पृष्ठ ४८९—९४।

पारपरिक तर्कशास्त्री ऐसे अनुमानो के लिए सचारी गुण की आवश्यकता को ठीक-ठीक न समझने के कारण उपर्युक्त (ii) एव (iii) ऐसी युक्तियो की व्याख्या करने मे बेतुकी कठिनाइयो मे पड गये । इस प्रकार की युक्ति अतितरा युक्ति (a fortiori argument) कही जाती थी । पारपरिक न्यायवाक्य मे इस युक्ति को रखने के अनर्गल प्रयास किये गये, अर्थात् ऐसी प्रतिज्ञप्तियो मे जिनमे कुल तीन ही पद हो और वे पद योजक (Capula) है से जुडे हो । ऐसे प्रयासो को असफल होना ही था । *

---

* इन प्रयासो की व्याख्या के लिए, देखे जे० एन० कीनेज, फारमल लॉजिक, पृष्ठ ३८४-८ ।

—०—

अध्याय ६

वर्गीकरण एवं वर्णन

१ पारिभाषिक संभ्रांतियाँ

इस अध्याय की विषय-वस्तु की व्याख्या विभिन्न दृष्टिकोणो से की जा सकती है। एक प्रकरण का दूसरे प्रकरण से विरोध दर्शाते हुए किसी एक पर बल देना अपने-अपने मान्य दृष्टिकोण के अनुसार भिन्न-भिन्न होता है। विस्तार एव अभिप्राय (Extension and Intension),गुणार्थ एव वस्त्वर्थ (Connotation and Denotation),वर्गीकरण एव विभाजन (Classification & Division), परिभाषा एव वर्णन (Definition and Description)—ये सभी बहुत कुछ अत सबद्ध विषय हैं, इनकी उपादेयता केवल आकारपरक तर्कशास्त्रियो के ही लिए नही है, वल्कि वैज्ञानिक खोजो के लिए भी है। पारपरिक तर्कशास्त्रियो ने इस विषय की व्याख्या तर्कशास्त्र पर अरस्तू की पुस्तको मे पाये जाने वाले एव मध्यकालीन दार्शनिको की उपलब्धियो द्वारा किंचित परिवर्तित, क्लासिकी सिद्धातो के तत्त्वमीमासीय दृष्टिकोण से की। हम इस व्याख्या के अनुसरण का प्रयास नही करेगे, तथा एक अपवाद के अतिरिक्त * हम पारपरिक शब्दावली भी नही रखेंगे। इस अध्याय मे जिन विषयो की व्याख्या करनी है, उनका सबध सभी प्रकार के सुव्यवस्थित चिंतन से है, चिंतन का स्तर चाहे सामान्य हो अथवा वैज्ञानिक।

अत सबद्ध विषयो की व्याख्या बहुधा भ्रामक होती है। जिनमे तथ्य-भेद नहीं है, उनको विचार मे भिन्न समझना कठिन है। प्रारभ मे ही असतोषप्रद शब्दावली

---

* देखिए आगे (५—)। इस अध्याय मे जो विषय रखे गये है, उनकी और विशद् व्याख्या तथा पारपरिक सिद्धातो की ओर और अधिक विस्तार से सकेत स्टैविंग के मॉडर्न इन्ट्रोडक्शन के लॉजिक अध्याय II, § § ३, ४, अध्याय IX, §2; अध्याय XXII मे हुआ है। अरस्तू के दृष्टिकोण की अच्छी व्याख्या के लिए देखिए एच० डब्लू० वी० जोजेफ, इट्रोडक्शन टू लॉजिक, अध्याय IV, V, VI।

का व्यवहार आगे प्रगति मे बाधक होता है। इन कठिनाइयो के उदाहरण विस्तार एव अभिप्राय, गुणार्थ एव वस्त्वर्थ मे मिलते है। ये दो जोडे शब्द कभी-कभी एकार्थक रूप मे व्यवहार हुए है, कभी-कभी भिन्न-भिन्न अर्थो की ओर सकेत करते हुए। हम विस्तार एव वस्त्वर्थ तथा अभिप्राय एव गुणार्थ मे भेद करेगे। आगे हमे यह भी स्पष्ट कर लेना होगा कि वह कौन सी वस्तु है, जिसमे क्रम से विस्तार, वस्त्वर्थ, अभिप्राय, एव गुणार्थ पाये जाते है। इस वर्णन मे प्रतीक एव प्रतीक की वस्तु मे भ्रम करना अत्यत सामान्य है।

पहले के अध्यायो मे हमने बहुधा 'पद' शब्द का व्यवहार किया है। आशा की जाती है कि इसमे कोई अस्पष्टता नही हुई है। फिर भी पद अनेकार्थक है, यद्यपि सदैव असुविधापूर्वक नही, क्योकि सदर्भ से सामान्यत स्पष्ट हो जाता है कि पद से हमारा तात्पर्य किसी शब्द से है अथवा मिश्र परिस्थिति के किसी तत्त्व से, जैसे न्यायवाक्य के या किसी सबध-प्रतिज्ञप्ति के पद * से इस अध्याय मे 'पद' शब्द *या शब्द-समूह के लिए व्यवहार होगा, अर्थात् जो सकेत करता है, जो सकेतित होता है*, उसके लिए नही।

सामान्य बातचीत मे हमारे वर्ग-पदो के व्यवहार से विभिन्न वस्तुओ के बीच की समानताएँ एव उनके आपसी भेद की पहचान होती है। अधिकाश वर्ग-पदो के व्यवहार मे किसी को तनिक भी कठिनाई नही होती, उनके बहुत से दृष्टात इस पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ पर पाये जाते है। वर्ग-पद वर्ग-गुण की ओर सकेत करता है, उदाहरणार्थ शब्द 'पुस्तक' उस मिश्र गुण की ओर सकेत करता है, जिससे पुस्तक कही जाने वाली प्रत्येक वस्तु का वर्ग निर्धारित होता है, 'स्पात' शब्द कुछ सदैव साथ रहने वाले गुणो के सयोग की ओर सकेत करता है।

यदि मैं कहूँ 'वह पुस्तक मुझे दीजिए,' तो 'वह पुस्तक' का एक विशिष्ट वस्तु के लिए प्रयोग इस आशा से किया जाता है कि आप उसे पहचानने मे समर्थ होंगे, क्योकि प्रयुक्त शब्द को आप समझते है। यदि आप 'पुस्तक' नही समझते है, तो सकेत असफल हो जाता है, यदि आप 'पुस्तक' समझते हैं, पर कोई पुस्तक वहाँ

---

* आश्चर्य की बात है कि पारपरिक तर्कशास्त्रियो ने अदूरदर्शितापूर्वक 'पद' की व्याख्या की है, उन्होने इसके उदाहरण मे न्यायवाक्य का एक नियम दिया है कि 'मध्य पद अनेकार्थक नही होना चाहिए।' इस नियम के पालन न करने पर, चतुष्पद-दोष—(quaternio terminorum) कहा जाता है। पर दूसरे नियम (न्यायवाक्य मे केवल तीन पद होने चाहिए) मे यह पहले ही आ जाता है। अनेकार्थकता भाषा का गुण है (अर्थात् प्रतीको का), भाषा जिसकी ओर सकेत करती है, उसका नही (अर्थात् प्रतीक की वस्तु का नही)।

उपस्थित नही है, तो फिर सकेत असफल रहता है। यहाँ 'सकेत' शब्द का व्यवहार हम स्पष्टत दो अर्थ मे करते है। यह दो अर्थ इतने प्रचलित है कि इनको अलग समझने के लिए हमे कुछ प्रयास करना पडता है। एक ओर शब्दो का व्यवहार व्यक्तियो को सकेत करने के लिए होता है, दूसरी ओर उनका व्यवहार सरल या मिश्र गुणो को सकेत करने के लिए होता है, सकेत के ये ढग बहुत ही भिन्न होते है। शब्दो के व्यवहार से हम किसी व्यक्ति की ओर सकेत कर सकते है, क्योकि एव केवल क्योकि, व्यक्ति गुणो के उदाहरण होते है, और उन्ही गुणो के अन्य व्यक्ति भी दृष्टात होते है, अथवा हो सकते है। किसी व्यक्ति तथा उसके गुणो मे भेद बुद्धि मे हो सकता है, पर तथ्य मे नही। शब्दो के इन दोहरे सकेतो को स्पष्टत अलग-अलग रखने के लिए हमे यथासभव सुनिश्चित शब्दावली निर्माण करने की आवश्यकता है, क्योंकि हम ऐसे भेद के बारे मे अध्ययन करने जा रहे है, जो प्रत्येक व्यक्ति सरलतापूर्वक करता है, पर बहुधा उस भेद पर ध्यान नही देता। यहाँ शब्दो को उनके तार्किक कार्यो की दृष्टि से समझने का हमारा लक्ष्य है।

§ २ गुणार्थ, वस्त्वर्थ एवं अभिप्राय

हमने देखा कि किसी वर्ग का निर्धारण सरल अथवा मिश्र गुणो के आधार पर होता है, विलोम रूप मे, कोई गुण किसी वर्ग को निर्धारित करता है। हम सरल अथवा मिश्र गुण का उल्लेख एक शब्द या शब्द-समूह से करते हैं। अब हम 'एक गुण या गुणो के किसी समूह को सकेत करने वाले एक शब्द या शब्द-समूह' के लिए 'पद' का व्यवहार करेंगे। इस प्रकार त्रिपदी सवध सूचित करना मे पद एक तत्त्व है, अत, पद (जैसा हम यहाँ 'पद' शब्द का व्यवहार कर रहे है) एक ऐसा पद है, (दूसरे अर्थ मे) जो दो अन्य पदो के साथ आता है, जिनकी आवश्यकता सूचित करने मे पडती है। वे हैं जो सूचित होता है, एव अर्थ करने वाली। यदि हम पूछें 'इस पद का क्या अर्थ है?' तो यह पूछने के समतुल्य है कि 'पद किसे सूचित करता है?' ये समानार्थक प्रश्नवाची वाक्य है।

हमने देखा (अध्याय V परिच्छेद १ मे) कि 'मनुष्य' के द्वारा सूचित मिश्र गुण के दृष्टात हैं महत्मा गाधी, अरस्तू , अन्य व्यक्तियो के लिए जो बिंदु रखे गये हैं, वे व्यक्त करते हैं कि पद 'मनुष्य' उनमे से प्रत्येक के लिए ठीक-ठीक लागू होता है। ये वस्तुएँ कैसे निर्धारित होतीं है? उत्तर स्पष्ट है क्योकि इनमे से प्रत्येक वस्तु मे सरल या मिश्र गुण पाये जाते है जो 'मनुष्य' को सूचित करते है। 'मनुष्य' जिसका सकेत करता है, उसे पारिभाषिक शब्दावली मे 'मनुष्य' का गुणार्थ कहते है। शब्द या पद मे गुणार्थ होते हैं। किसी पद के गुणार्थ वे गुण या गुण-समूह है, जो

पद से संकेतित उस वस्तु मे अवश्य पाये जाते है। जिन पर पद लागू होता है, वे गुण सरल या मिश्र—किसी सुनिश्चित वर्ग के सदस्य होते है। इसे पद का वस्त्वर्थ कहते हैं। ध्यान देने योग्य हैकि वस्त्वर्थ वर्ग नही हैं, वल्कि वर्ग की सामूहिक सदस्यता है। अत किसी पद का वस्त्वर्थ उस पद द्वारा सूचित गुणो से निर्धारित वर्ग की सामूहिक सदस्यता है।

'मनुष्य' का गुणार्थ सकेत करता है 'विवेकशील प्राणी' को * और इसका वस्त्वर्थ है मनुष्य, अर्थात् विवेकशील प्राणी होने के गुण से निर्धारित वर्ग की सामूहिक सदस्यता। 'त्रिभुज' का गुणार्थ है तीन सीधी रेखाओ से घिरा समतल धरातल और वस्त्वर्थ है 'त्रिभुज' के गुणार्थ से निर्धारित वर्ग की सामूहिक सदस्यता।

कोई पद जो किसी गुण की ओर सकेत करता हो, पर उसके कोई दृष्टात न पाए जाते हो, तो कहा जायगा कि उसमे वस्त्वर्थ नही है, क्योकि उस गुण से निर्धारित वर्ग रिक्त है और 'उसमे सामूहिक सदस्यता नही है', जैसे 'किन्नर' 'सुवर्ण-गृह' 'प्लैस्टिक्स का बना घर'। यदि, भविष्य मे, केवल प्लैस्टिक्स से कोई घर निर्मित हो जाय, तो पद 'प्लैस्टिक्स का बना घर' मे वस्त्वर्थ हो जायगा। जब एक वार हम मान लिए है कि वर्ग रिक्त भी हो सकता है, तो इसमे कोई आश्चर्य नही है।

पाठक सभवत स्वीकार करने के लिए सहमत न हो कि 'मनुष्य' का 'गुणार्थ विवेकशील प्राणी हैं', उनका विरोध इसलिए हो सकता है कि या तो (1) 'मनुष्य कही भी विवेकशील नही है', या (11)' मनुष्य को अन्य प्राणियो से भिन्न करने के लिए विवेकशीलता कोई अच्छा गुण नही चुना गया है।' इन आपत्तियो को स्वीकार करने के लिए हम तैयार हो सकते है, पर सर्वप्रथम हम यह बतला देना चाहेंगे कि जो इन्हे उठाता है, वह स्पष्टत समझ गया है कि 'गुणार्थ' का क्या अर्थ है, और एकमात्र इसी विषय की यहाँ व्याख्या हो रही है। फिर भी इन आपत्तियो के कारण हमारा ध्यान दो महत्त्वपूर्ण बातो की ओर जाता है · (i) किसी पद के गुणार्थ मे वह गुण सम्मिलित नही हो सकता, जो उस पद के वस्त्वर्थ मे आनेवाले किसी सदस्य मे अनुपस्थित हो, (ii) पद जिन गुणो की ओर सकेत करता है (और जो उस पद के वस्त्वर्थ मे आनेवाले किसी भी वस्तु मे अवश्य पाया जायगा) उसका निर्णय सदैव सरलतापूर्वक नही हो पाता। यह मानना निरी भूल है कि अधिकाश

* 'मनुष्य' का गुणार्थ मनुष्य भी कहा जा सकता है, अर्थात् 'मनुष्य' पद द्वारा सूचित गुण या विचार।

शब्दो के अपने सुनिश्चित अर्थ ह इसलिए जो किसी शब्द का सही प्रयोग करता है, वह ठीक-ठीक जानता हे कि किस प्रकार वह इसका प्रयोग कर रहा है । इस विषय पर हमे फिर लौटना पडेगा ।[1] पर, जैसा दूसरी आपत्ति मे बल देकर कहा गया है, हम जिन शब्दो को व्यवहार मे लाते हैं, उनसे एक कार्य की अपेक्षा करते है कि जिनसे इनका सरलतापूर्वक भ्रम हो सकता हे, उनसे इनका मिलना स्पष्ट रहे । वाद-विवाद मे कभी ऐसा क्षण आ सकता हे, जहाँ लाचार होकर हमे पूछना पडता है 'अच्छा, इस शब्द से आपका ठीकी-ठीक क्या तात्पर्य हे ?' इस प्रश्न का एक उत्तर उस शब्द के गुणार्थ का वर्णन होगा ।

इस स्थल पर एक तीसरी आपत्ति उठाई जा सकती है (111) क्या एक ही शब्द का तात्पर्य भिन्न-भिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न नही समझते ? इसका उत्तर है कि वहुधा ऐसा ही होता है, पर कभी-कभी ऐसा नही होता । यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि कोई पद किसी व्यक्ति के लिए कोई वस्तु सूचित करता है, सबध मे यह सूचित करनेवाला तत्त्व हे और इसके लिए व्याख्याता की आवश्यकता पडती है । जब मै शब्दो का व्यवहार करता हूँ 'गाय' 'घर' 'बुद्धिमान' (इन उदाहरणो को जहाँ-तहाँ से चुना गया है), तो इन शब्दो में से 'किसी एक के द्वारा सूचित किसी वस्तु मे जिन गुणो को मैं समझता हूँ, वे दूसरे के सोचने से कुछ अश तक भिन्न हो सकते हैं । जैसे, हम कहते हैं 'आप या मैं 'घर' से जो समझता हूँ वही वह नही समझता' । यहाँ हम व्यक्तिगत दृष्टि से किसी शब्द का अर्थ, उसके 'गुणार्थ' की दृष्टि से 'अर्थ' से भिन्न करना चाहते हैं । अत , किसी पारिभाषिक शब्दावली के प्रयोग मे यही सुविधा होती है । यह शब्द सामान्य भाषा में बहुधा प्रयुक्त नही होता और इसे हमने (तर्कशास्त्री के रूप मे) सुनिश्चित अर्थ प्रदान किया है । किसी शब्द मे जो मैं समझता हूँ, या आप समझते है, वह उसके गुणार्थ से भिन्न है और इसे प्राय व्यक्तिनिष्ठ अभिप्राय कहते है । हम 'व्यक्तिनिष्ठ अभिप्राय' की परिभाषा इस प्रकार कर सकते है 'ये वे गुण, हैं, जिन्हे किसी पद का प्रयोगकर्त्ता उस पद से सकेतित वग के सदस्यो मे सोचता है ।' उद्धरण-चिह्न मे दिया हुआ उपर्युक्त वाक्याश 'व्यक्तिनिष्ठ अभिप्राय' का गुणार्थ व्यक्त करता है ।

'गुणार्थ' एव 'अभिप्राय' एक ही अर्थ में प्रयुक्त हुए है । पर, जैसा ऊपर की आपत्तियो से निर्देशित होता है, ऐसे प्रयोग से कोई लाभ नही । 'किसी पद का अभिप्राय' उन गुणो की ओर सकेत करता है, जो उस पद के वस्त्वर्थ में गुणार्थ

---

[1] देखिए, परिच्छेद ६ आगे ।

पद से सकेतित उस वस्तु मे अवश्य पाये जाते है। जिन पर पद लागू होता है, वे गुण सरल या मिश्र—किसी सुनिश्चित वर्ग के सदस्य होते हैं। इसे पद का वस्त्वर्थ कहते है। ध्यान देने योग्य हैकि वस्त्वर्थ वर्ग नही हैं, वल्कि वर्ग की सामूहिक सदस्यता है। अत, किसी पद का वस्त्वर्थ उस पद द्वारा सूचित गुणो से निर्धारित वर्ग की सामूहिक सदस्यता है।

'मनुष्य' का गुणार्थ सकेत करता है 'विवेकशील प्राणी' को * और इसका वस्त्वर्थ है मनुष्य, अर्थात् विवेकशील प्राणी होने के गुण से निर्धारित वर्ग की सामूहिक सदस्यता। 'त्रिभुज' का गुणार्थ है तीन सीधी रेखाओ से घिरा समतल धरातल और वस्त्वर्थ है 'त्रिभुज' के गुणार्थ से निर्धारित वर्ग की सामूहिक सदस्यता।

कोई पद जो किसी गुण की ओर सकेत करता हो, पर उसके कोई दृष्टात न पए जाते हो, तो कहा जायगा कि उसमे वस्त्वर्थ नही है, क्योकि उस गुण से निर्धारित वर्ग रिक्त है और 'उसमे सामूहिक सदस्यता नही है', जैसे 'किन्नर' 'सुवर्ण-गृह' 'प्लैस्टिक्स का बना घर'। यदि, भविष्य मे, केवल प्लैस्टिक्स से कोई घर निर्मित हो जाय, तो पद 'प्लैस्टिक्स का बना घर' मे वस्त्वर्थ हो जायगा। जब एक बार हम मान लिए हैं कि वर्ग रिक्त भी हो सकता है, तो इसमे कोई आश्चर्य नही है।

पाठक सभवत स्वीकार करने के लिए सहमत न हो कि 'मनुष्य' का 'गुणार्थ विवेकशील प्राणी हैं', उनका विरोध इसलिए हो सकता है कि या तो (i) 'मनुष्य कही भी विवेकशील नही है', या (ii)' मनुष्य को अन्य प्राणियो से भिन्न करने के लिए विवेकशीलता कोई अच्छा गुण नही चुना गया है।' इन आपत्तियो को स्वीकार करने के लिए हम तैयार हो सकते हैं, पर सर्वप्रथम हम यह बतला देना चाहेगे कि जो इन्हे उठाता है, वह स्पष्टत समझ गया है कि 'गुणार्थ' का क्या अर्थ है, और एकमात्र इसी विषय की यहाँ व्याख्या हो रही है। फिर भी इन आपत्तियो के कारण हमारा ध्यान दो महत्त्वपूर्ण बातो की ओर जाता है (i) किसी पद के गुणार्थ मे वह गुण सम्मिलित नही हो सकता, जो उस पद के वस्त्वर्थ मे आनेवाले किसी सदस्य मे अनुपस्थित हो, (ii) पद जिन गुणो की ओर सकेत करता है (और जो उस पद के वस्त्वर्थ मे आनेवाले किसी भी वस्तु मे अवश्य पाया जायगा) उसका निर्णय सदैव सरलतापूर्वक नही हो पाता। यह मानना निरी भूल है कि अधिकाश

---

* 'मनुष्य' का गुणार्थ मनुष्य भी कहा जा सकता है, अर्थात् 'मनुष्य' पद द्वारा सूचित गुण या विचार।

शब्दो के अपने सुनिश्चित अर्थ ह इसलिए जो किसी शब्द का सही प्रयोग करता है, वह ठीक-ठीक जानता हे कि किस प्रकार वह इसका प्रयोग कर रहा है। इस विषय पर हमे फिर लौटना पडेगा।* पर, जैसा दूसरी आपत्ति मे वल देकर कहा गया है, हम जिन शब्दो को व्यवहार मे लाते है, उनसे एक कार्य की अपेक्षा करते है कि जिनसे इनका सरलतापूर्वक भ्रम हो सकता हे, उनसे इनका मिलना स्पष्ट रहे। वाद-विवाद मे कभी ऐसा क्षण आ सकता है, जहाँ लाचार होकर हमे पूछना पडता है . 'अच्छा, इस शब्द से आपका ठीकी-ठीक क्या तात्पर्य हे ?' इस प्रश्न का एक उत्तर उस शब्द के गुणार्थ का वर्णन होगा।

इस स्थल पर एक तीसरी आपत्ति उठाई जा सकती है (111) क्या एक ही शब्द का तात्पर्य भिन्न-भिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न नही समझते ? इसका उत्तर है कि वहुधा ऐसा ही होता है, पर कभी-कभी ऐसा नही होता। यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि कोई पद किसी व्यक्ति के लिए कोई वस्तु सूचित करता है, सवध मे यह सूचित करनेवाला तत्त्व हे और इसके लिए व्याख्याता की आवश्यकता पडती है। जब मै शब्दो का व्यवहार करता हूँ 'गाय' 'घर' 'वुद्धिमान' (इन उदाहरणो को जहाँ-तहाँ से चुना गया है), तो इन शब्दो में से 'किसी एक के द्वारा सूचित किसी वस्तु मे जिन गुणो को मैं समझता हूँ, वे दूसरे के सोचने से कुछ अश तक भिन्न हो सकते है। जैसे, हम कहते है 'आप या मैं 'घर' से जो समझता हूँ वही वह नही समझता'। यहाँ हम व्यक्तिगत दृष्टि से किसी शब्द का अर्थ, उसके 'गुणार्थ' की दृष्टि से 'अर्थ' से भिन्न करना चाहते हैं। अत , किसी पारिभाषिक शब्दावली के प्रयोग मे यही सुविधा होती है। यह शब्द सामान्य भाषा में बहुधा प्रयुक्त नही होता और इसे हमने (तर्कशास्त्री के रूप मे) सुनिश्चित अर्थ प्रदान किया है। किसी शब्द मे जो मैं समझता हूँ, या आप समझते है, वह उसके गुणार्थ से भिन्न है और इसे प्राय व्यक्तिनिष्ठ अभिप्राय कहते है। हम 'व्यक्तिनिष्ठ अभिप्राय' की परिभाषा इस प्रकार कर सकते हैं 'ये वे गुण, हैं, जिन्हे किसी पद का प्रयोगकर्त्ता उस पद से सकेतित वग के सदस्यो मे सोचता है।' उद्धरण-चिह्न मे दिया हुआ उपर्युक्त वाक्याश 'व्यक्तिनिष्ठ अभिप्राय' का गुणार्थ व्यक्त करता है।

'गुणार्थ' एव 'अभिप्राय' एक ही अर्थ मे प्रयुक्त हुए हैं। पर, जैसा ऊपर की आपत्तियो से निर्देशित होता है, ऐसे प्रयोग से कोई लाभ नही। 'किसी पद का अभिप्राय' उन गुणो की ओर सकेत करता है, जो उस पद के वस्त्वर्थ में गुणार्थ

---

* देखिए, परिच्छेद ६ आगे।

के रूप मे पाये जाते हे, पर इन गुणो को तीन भागो मे रखना चाहिए (१) वर्ग के सभी सदस्यों मे पाये जाने वाले सभी गुण जिनकी सामूहिक सदस्यता से उस पद के वस्त्वर्थ का निर्माण होता है, (२) वे गुण जिन्हें कोई व्यक्ति उस पद का व्यवहार करते समय अपने मन मे समझता है, अत वे समय-समय पर तथा व्यक्ति-व्यक्ति मे भिन्न होते हैं, (३) वे गुण जो पद के वस्त्वर्थ मे अवश्य पाये जाएँ। हम सुविधापूर्वक (१) को पद का वस्तुनिष्ठ अभिप्राय या व्यापकार्थ कह सकते हैं; (२) को व्यक्तिनिष्ठ अभिप्राय, (३) को गुणार्थ। अत, (१) मे वे सभी गुण सम्मिलित हैं, जिनका कभी सकेत हो सकता है, (२) मे वे गुण आते हैं, जिन्हें प्रयोग करते समय व्यक्तिविशेष सोचता है। पद के वस्त्वर्थ में वस्तुत पाये जाने वाले गुणो मे से कुछ ही गुण गुणार्थ मे सम्मिलित होते हैं। उन्हे हम कुछ स्थलो पर उपयोगी पाते हैं, जैसे परिभाषा करते समय।

§ ३ विस्तार एवं गुणार्थ

हमने देखा कि पारपरिक तर्कशास्त्री व्यक्ति वर्ग के साथ, जिसका वह सदस्य है, तथा उपवर्ग का वर्ग के साथ जिसमे वह सम्मिलित है, के सबधो मे भेद करने मे असफल रहे। इसलिये उनके अनुसार वर्ग यूरोपियन, वर्ग फ्रेंचमैन को अपने विस्तार मे सम्मिलित करता है या यो कहें कि वर्ग यूरोपियन वर्ग फ्रेंचमैन तक फैला हुआ, है। इसी प्रकार यही भी कि वर्ग फ्रेंचमैन फ्रास मे रहने वाले सभी व्यक्तियो को अपने विस्तार मे सम्मिलित करता है। पर, चूँकि अब हमने देखा हे कि सदस्यता-सबध वर्ग-समावेश-सबध से बिल्कुल भिन्न है, इसलिए हमे यह भी अवश्य समझ लेना चाहिए कि किसी वर्ग का उसके उपवर्गो के साथ सबध सूचित करनेवाला पद उस वर्ग का उसके सदस्यो के साथ सबध सूचित करने वाले पद से भिन्न है। इन दोनो के लिए हम एक ही शब्द का व्यवहार नही कर सकते। अत, हम 'विस्तार' एव 'वस्त्वर्थ' मे अर्थभेद करेंगे। एक दिये हुए वर्ग के किसी वर्ग-गुण को सूचित करने वाले पद का विस्तार उसके अदर आनेवाले सभी उपवर्ग में सम्मिलित रूप हैं। उदाहरणार्थ, 'मनुष्य' किसी विशिष्ट वर्ग को सूचित करनेवाला एक पद है, इसका वस्त्वर्थ (Denotation) प्रत्येक अलग-अलग मनुष्य है, 'मनुष्य' का विस्तार (Extension) बडे वर्ग मनुष्य मे समाविष्ट सभी उपवर्गो की सम्मिलित सदस्यता है, जैसे इसमे आते हैं गोरे मनुष्य, काले मनुष्य, भूरे मनुष्य, पीले मनुष्य, लाल मनुष्य। इसी को दूसरी तरह से कहा जा सकता है वर्ग-गुण-द्योतक किसी पद का विस्तार उसके उपवर्ग-रूप मे आनेवाली सभी विविधताओ का सयोग है। इसलिए विस्तार वर्ग है, व्यक्ति नही। वस्त्वर्थ वर्गो की सदस्यता है, वर्ग नही।

अत जब कोई व्यक्ति मर जाता है, तो 'मनुष्य' के विस्तार पर कोई प्रभाव नही पडता। वर्गों मे सदस्य होना कोई आवश्यक नही है, हाँ के सदस्यो होने की सभावना अवश्य होनी चाहिये। इसी तरह किन्नर रिक्त वर्ग है, पर यह सोचने मे कोई तार्किक असभावना नही है कि किन्नर हो सकते है, चूँकि किन्नर नही हैं, इसलिए 'किन्नर' मे वस्त्वर्थ नही है। पर, इसके विस्तार मे बुद्धिमान किन्नर एव मूर्ख किन्नर आते हैं।

बहुत से तर्कशास्त्रियो का विचार है कि विस्तार एव अभिप्राय मे प्रतिलोम परिवर्तन होता है। यह सिद्धात विचारणीय है, क्योकि विचार-विमर्श द्वारा वस्त्वर्थ एव विस्तार के बीच स्पष्ट भेद * न करने से उत्पन्न भूल पकड मे आ जायगी। जैसे जेवन्स कहते हैं, 'जब हम एक पद से दूसरे पद पर पहले के गुणार्थ मे केवल कुछ गुण या गुणो को जोडते हुए बढते है, तो नये पद का वस्त्वर्थ पहले वाले से कम होता है और जब हम एक पद से दूसरे पद पर पहले के गुणार्थ से केवल कुछ गुण या गुणो को हटाते हुए बढते है, तो नये पद का वस्त्वर्थ पहले वाले पद से अधिक होता है। +

अपने 'प्रिंसपुल्स ऑव सायस' मे वह इस सिद्धात को इस प्रकार कहते हैं '—

'जब किसी पद का अभिप्राय या अर्थ बढा दिया जाता है, तो विस्तार कम हो जाता है, एव उसका विलोम, जब विस्तार मे वृद्धि हो जाती है, तो अभिप्राय कम हो जाता है।§ इसे वे एक 'अति महत्त्वपूर्ण नियम' कहते हैं। इसका वह एक दृष्टात देते हैं ग्रह,बाह्य ग्रह (Planet, seterior planet)। पर, वे सकेत करते हैं कि 'गहन अर्थ मे वास्तविक परिवर्तन अवश्य होना चाहिए, और बहुधा कोई विशेषण किसी नाम मे बिना कोई परिवर्तन लाये हुए जोडा जा सकता है। प्रारभिक धातु (Elementary metal) वही है जो धातु है, मरणशील मनुष्य वही है जो मनुष्य। ×
ये उद्धरण यह व्यक्त करने के लिए पर्याप्त हैं कि इस सिद्धात मे बहुत भ्रम है।

---

* हमने 'वस्त्वर्थ' एव 'विस्तार' की ऐसी परिभाषा की है कि हम उन्हे एकार्थक रूप मे प्रयोग करने का कभी प्रयास नही कर सकते। उनका ऐसा व्यवहार बहुधा हुआ है। किंतु, जिस भेद पर हम बल दे रहे हैं, उसको न देखने के कारण ऐसी बात हुई है।

\+ एलिमेन्ट्री लेसन्स इन लॉजिक, पृष्ठ ४०। जेवन्स यह बतलाने मे सतर्क हैं कि कमी और वृद्धि गणित के ठीक अनुपात मे नही होती।

§ वही पुस्तक, अध्याय XXX, § १३

× वही।

ऐसे तार्किको को पाना आश्चर्यजनक नही है, जिन्होने इसे स्वीकार किया है और फिर इस प्रश्न पर कठिनाई मे पड गये है कि क्या किसी मनुष्य के मरने पर मनुष्य के अभिप्राय मे वृद्धि और किसी बच्चे के पैदा होने पर उसमे घटती कही जायगी ? स्पष्टत नही। प्रश्न इतना बेतुका है कि हम पूरे सिद्धात को ही निरर्थक मान सकते है फिर भी यह पूर्ण तथा निरर्थक है नही, क्योकि यह किसी-न-किसी सत्य की ओर सकेत करता है, किंतु इतनी भ्रामक रीति से कि इससे निरर्थक प्रश्न भी उभर आते है। जब किसी पद के गुणार्थ मे वृद्धि होती है, तो विस्तार मे कमी हो जाती है। तो गुणार्थ (Connotation) एव विस्तार (Extension) मे विलोम परिवर्तन होता है, गुणार्थ एव वस्त्वर्थ (Denotation) मे नही, और न तो अभिप्राय (Intension) एव विस्तार मे। चूँकि 'जहाज' का विस्तार जहाज के सभी उपवर्ग है, तो इससे निष्कर्ष निकलता है कि गुणार्थ की वृद्धि करने से, जैसे भाप जोड देने से और उससे भाप-जहाज प्राप्त करने से, विस्तार मे कमी हो जाती है, क्योकि जहाज के सभी उपवर्ग जो भाप से नही चलते, अब उससे अलग हो जाते हैं। इसके विपरीत, यदि 'नाटक' का गुणार्थ परिवर्तित कर चित्रपटीय नाटक पर लागू कर दे, तो गुणार्थ की कमी के साथ विस्तार मे वृद्धि हो जाती है, क्योकि 'नाटक' पद मे गुणार्थ के कम गुण हो जायँगे। यहाँ नाटक मे स्टेज पर खेले जानेवाले नाटक से आधिक है। *

इन उदाहरणो से सकेत मिलता है कि 'विस्तार एव अभिप्राय' का कथित 'विलोम परिवर्तन' वर्गीकरण की श्रेणी मे रखे गये पदो से सबधित है, अर्थात् इसका सबध विशिष्ट क्रम मे रखे गये वर्गो से है। जिसमे एक उपवर्ग अन्य उपवर्गो के साथ किसी वृहद् वर्ग मे रखा जाता है जो फिर किसी वृहद् वर्ग का उपवर्ग हो जाता है, इत्यादि। वर्गों का यह क्रमिक अनुष्ठान वर्गीकरण कहा जाता है।

§ ४ वर्गीकरण एवं विभाजन

किसी वर्ग के उपवर्गो की विभेदी करण क्रिया तार्किक विभाजन कही जाती है, विलोम रीति वर्गीकरण है। वर्गीकरण-रीति की पूर्व मान्यता है—व्यक्तियो को वर्गो मे इकट्ठा करना। यह वही उपयोगी होती है, जहाँ सुव्यवस्थित किये जानेवाले वर्गो

---

* ज्ञातव्य है कि मैने 'नाटक' एव 'चित्रपटीय नाटक' न लिखकर 'नाटक' एव चित्रपटीय नाटक लिखा है, अर्थात् 'नाटक' पद अपने मे चित्रपटीय नाटक का गुणार्थ सम्मिलित करता हुआ मान लिया जाता है। यदि इस पर ध्यान न दिया गया, तो पाठक समझ सकते है कि मने 'नाटक' के गुणार्थ मे वृद्धि कर दी।

मे महत्त्वपूर्ण गुण होते है। महत्त्वपूर्णता कार्य-सापेक्ष होती हे। सभी मनुष्यो को ऐसी जरूरते होती ह, जो वर्गीकरण करना आवश्यक कर देती हैं, जैसे मनुष्य का शत्रु एव मित्र मे वनस्पति का खाने योग्य एव विषैली—जिससे स्वय खाद्य एव अखाद्य का भेद हो जाता है—वस्तुओ का जलनशील एव न-जलनशील मे, इत्यादि। किसी व्यावहारिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए सबसे प्रारभिक वर्गीकरण किये जाते है। वर्ग-पदो का व्यवहार करते समय शायद ही इस पर ध्यान न जाय कि कभी-कभी कुछ वर्ग कुछ अन्य वर्गों के वहुत निकट होते है। किसी विज्ञान का सबसे प्रारभिक रूप वर्गीकरण का होता है। वनस्पति-विज्ञान को इस अवस्था से ऊपर उठे अधिक दिन नही हुए है तथा समाज विज्ञान अभी तक नही उठ सका है।

इस प्रकार एक ही वर्ग को वर्गीकरण के विभिन्न पद्धतियो मे स्थान मिल सकता है। उदाहरणार्थ, वर्गो एव उपवर्गो मे सवारियो का क्रम यदि परिवहन विभाग की उपयोगिता के लिए किया गया है तो वह अर्थ विभाग की उपयोगिता से रखे गये क्रम से बहुत ही भिन्न होगा।* कोई अवैज्ञानिक मनुष्य सभवत स्पष्ट गुणो को चुन लेता है, जिसके निर्धारण से ही उपवर्ग वर्गीकृत होते हैं। पर, स्पष्ट गुण बहुधा महत्त्वपूर्ण नही हुआ करते, क्योकि वे आपस मे सार्थक ढग से सबधित नही होते। जैसे कोई नौकर किसी विद्यार्थी की पुस्तको को सजाकर रखते समय बहुत सभव है कि वह ऐसे गुणो को दृष्टि मे रखेगा जैसे आकार, रग, जिल्द की विशिष्टता, वह पुस्तको के विषय या लेखक पर दृष्टि नही रखेगा। यदि पुस्तको को विभिन्न ऊँचाई वाले शेल्फो मे ठीक बैठ जाने की वात हो, तो आकार अवश्य ही इस कार्य के लिये महत्त्वपूर्ण गुण है, पर विद्यार्थी के पढने की दृष्टि से यह निरर्थक है।

वायुयानो को इस प्रकार उपवर्गो मे क्रमबद्ध रखना तथा उपवर्गो को फिर उनके उपवर्गो मे रखना या तो वर्गीकरण कहा जा सकता है या विभाजन। प्रथम परिस्थिति मे हम छोटे वर्गो से प्रारभ करते है और उन्हे अधिक विस्तृत वर्गो मे सम्मिलित करते है, दूसरी मे हम सबसे अधिक विस्तृत वर्ग से प्रारभ करते हैं और उसे छोटे वर्गो मे विभाजित करते है। जहाँ तक तार्किक सिद्धातो का सबध है, वर्गीकरण एव विभाजन मूलत एक हैं। ये नियम विभाजन-प्रक्रिया की शब्दावली मे सबसे अधिक सरलतापूर्वक व्यक्त किये जा सकते हैं। एक ही स्तर के उपवर्गो को समवर्ग (Co-ordinate) कहते हैं, एक स्तर ऊँचे को नीचे वाले उपवर्ग की अतिकोटि (Super-ordinate) एक स्तर नीचे को उप-कोटि (Sub-ordinate) कहते हैं।

---

* देखे मॉडर्न इन्ट्रोडक्शन टू लॉजिक, पृष्ठ ४३३-४, जहाँ परिवहन विभाग की दृष्टि से सवारियो का वर्गीकरण किया गया है।

विभाजन के आधार को, अर्थात् वह गुण जिसको दृष्टि मे रखकर सम उपवर्गो को एक दूसरे से भिन्न किया जाता है, लैटिन पदावली मे सामान्यत फन्डामेन्टम डिभिजिनिस (Fundamentum divisionis) विभाजनाधार कहते है। वे सिद्धात जिनके आधार पर योग्य विभाजन होना चाहिए, सक्षेप मे निम्नलिखित नियमो के रूप मे रखे जा सकते है ·

१. प्रत्येक चरण पर केवल एक ही विभाजनाधार होना चाहिये।

२. सम-वर्गों को सम्मिलित रूप मे अपने अति-वर्ग का सर्व समावेशी (Collectively exhaustive) होना चाहिये।

३. विभाजन के आनुक्रमिक चरणो को क्रमश चलना चाहिये।

प्रथम नियम से उपनिगमन निकलता है कि सम-वर्ग अवश्य ही परस्पर व्यावर्त्तक हो। इस नियम के उल्लघन से व्यभिचरित विभाजन-दोष होता है, अर्थात् सकर-वर्ग (Ouslapping classes) बनते हैं। यह उपनिगमन, नियम २ के साथ मिलकर निर्णीत करता है कि वर्गों मे पाये जाने वाले प्रत्येक सदस्य केवल एक ही वर्ग मे सम्मिलित रहते हैं और अति-कोटि का कोई भी सदस्य अगले स्तर से बहिष्कृत नही होता। अत, उपवर्गों का जोड सपूर्ण विभाजित या वर्गीकृत वर्ग के बराबर होता है।

नियम ३ से प्राप्त होता है कि विभाजन का प्रत्येक चरण मूल विभाजनाधार के अनुरूप होना चाहिए। उदाहरणार्थ यदि हम विश्वविद्यालय के विद्यार्थियो का विभाजन सर्वप्रथम कला एव विज्ञान के विद्यार्थियो में करें, फिर विज्ञान के विद्यार्थियो को विनम्र एव उग्र मे विभाजित करें, तथा कला के विद्यार्थियो को काले, गोरे एव सामान्य वर्ग के विद्यार्थियो मे विभाजित करें तो ऐसा विभाजन किसी प्रकार उपयोगी नही हो सकता।

व्यभिचरित विभाजन का तर्क-दोष बहुत ही प्रचलित है। यदि मानव-भाषा का विभाजन हम आर्यन, सेमिटिक, स्लैमोनिक, हैमिटिक एव प्राचीन इजिरिशयन मे करें तो यहाँ यही तर्क-दोष होगा, क्योकि प्राचीन इजिरिशयन हैमिटिक वर्ग मे तथा स्लैमोनिक आर्यन वर्ग मे पडते है। इसके अतिरिक्त यह विभाजन सर्वसमावेशी भी नही है।

एक दिये हुए गुण के आधार पर किसी दिये हुए वर्ग का परस्पर व्यावर्त्तक एव सर्वसमावेशी उपवर्गो मे विभाजन हो सकता है, यह आधार-गुण एक वर्ग के सभी सदस्यो मे पाया जाता है पर दूसरे वर्ग के किसी सदस्य मे नही मिलता। इस प्रकार

हम नागरिको का विभाजन राष्ट्रीय महत्त्व का कार्य करने वाले एव राष्ट्रीय महत्त्व का कार्य न करने वाले, मे कर सकते है । यह सोचना व्याघाती होगा कि एक उपवर्ग का कोई सदस्य दूसरे उपवर्ग का भी सदस्य हो सकता है, हाँ प्रत्येक नागरिक दो उपवर्गो मे से किसी एक मे अवश्य ही होगा—यह मान लिया गया है कि आधार राष्ट्रीय महत्त्व का कार्य पर्याप्त रूप से स्पष्ट हैं। ऐसे विभाजन को द्विभाजन (Division by dicholomy) कहते हैं (अर्थात् दो भाग मे बाँटना), अगले पृष्ठ मे द्विभागी विभाजन का उदाहरण है।

औपचारिक रूप से विभाजन निश्चित कर देता हे कि उपवर्ग परस्पर-व्यावर्त्तक एव सर्वसमावेशी हैं, पर यह औपचारिक सरलता निषेधक गुणवाले वर्गो के बाहुल्य से ही प्राप्त होती है और इससे अपेक्षाकृत सरल सबध अस्पष्ट रहते हैं। जब भावात्मक गुणों के आधार पर वर्ग व्यवस्थित होते है, तभी ये सबध स्पष्ट दिखलाई पडते हैं। प्रकृति-विज्ञान मे द्विभाजक विभाजन की कोई उपादेयता नही है।*

मेरूदडी का उपर्युक्त स्तनपायी एव अस्तनपायी इत्यादि मे उप विभाजन, जिसके फलस्वरूप पक्षी एक स्तर पर और रेगनेवाले दूसरे पर हो जाते हैं, उन सबधो को उलझा देता है जो स्तनपायी पक्षी, रेंगनेवाले, उभयचर एव मछलियो मे मेरूदडी वर्ग मे सर्वसमावेशी के रूप मे पाये जाते हैं।

पारपरिक रीति मे विभाजन को जाति (Genus) का उसके उपजातियो (Species) मे विभाजन माना गया है। जिस जाति से विभाजन प्रारभ होता है, उसे पराजाति (Cummum genus) कहते है, जिन उपजातियों से इसका अत होता है उन्हें **अवम जाति** (Infimal Species) कहते हैं, बीच की उपजातियो की **मध्यवर्त्ती जातियाँ** (Subalter genus) कहते है, मध्य की किसी जाति को उसकी अगभूत उपजातियो को **असन्न जाति** (Proximum genus) कहते है। इन नामो का महत्त्व नही हैं, महत्त्वपूर्ण है यह जान लेना कि जाति एव उपजाति का भेद सापेक्ष है और अपनी सार्थकता के लिए विभाजन की दी हुई तालिका पर आधारित हैं।§

---

* जैविक वर्गीकरण मे जातियो एव उप जातियो का व्यवहार वर्गीकरण के अनुक्रम द्वारा निश्चित अर्थ मे होता है। उपजातियो के उपवर्गो को प्रभेद (Varieties) कहते हैं, जातियो के अतिवर्ग (Super classes) को वश (families) कहते है, तब अनुक्रम (Order) एव वर्ग (Class) आते हैं। ज्ञातव्य है कि पशुओ के द्विभाजी विभाजन मे, जो ऊपर दिया गया है, अभावात्मक वर्ग को प्रत्येक स्तर पर आसन्न जाति के उपवर्ग के ही अर्थ मे समझना चाहिए, इस प्रकार रेंगनेवाले अपक्षी अस्तनपायी और मेरूदण्डी हैं।

§ इस सबध मे एक उदाहरण पृष्ठ १२१ पर देखे।
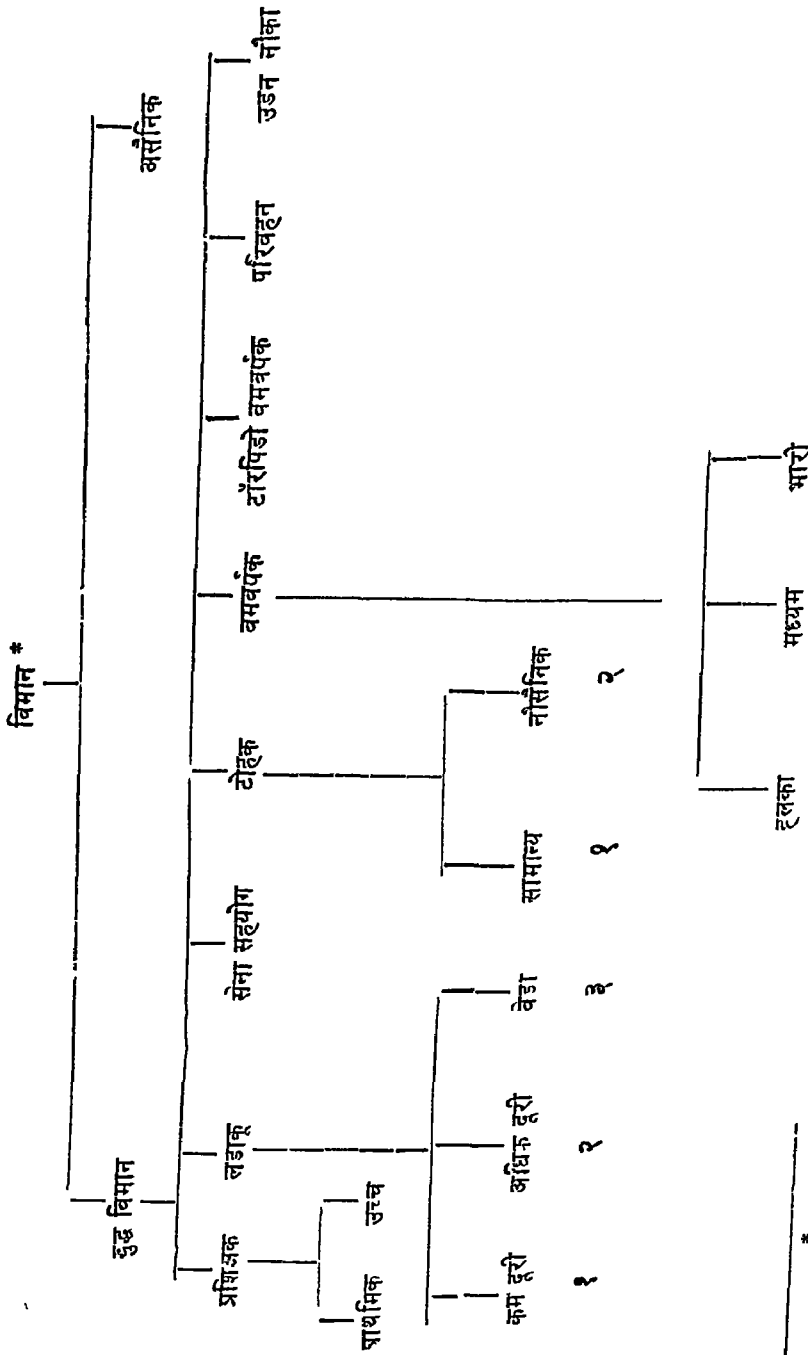
* यह दावा नही किया जाता कि यह वर्गीकरण पूर्ण है। यदि कोई विद्यार्थी इसे सही रूप में परिवर्तित कर सके, तो इससे स्पष्ट होगा कि (i) वायुयान के बारे मे उसे ज्ञान है, (ii) और उसे मालूम है कि कैसे वर्गीकरण किया जाता है।

पशु
मेरूदडी
अमेरूदडी
स्तनपायी
अस्तनपायी
सधिपाद
असधिपाद
पक्षी
अपक्षी
मोलस्क
अमोलस्क
रेंगनेवाले
न रेंगनेवाले
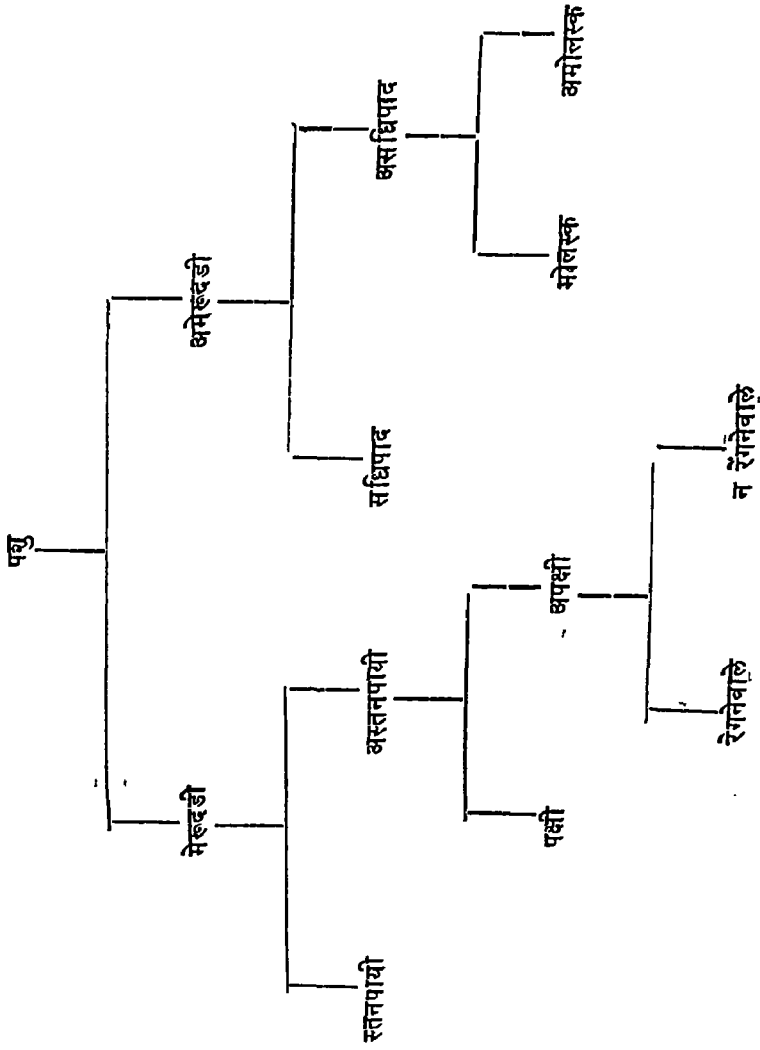
हमने इस पर वल दिया है कि सभी विभाजन या वर्गीकरण लक्ष्य-सापेक्ष होते है। वर्गों का उपविभाजन होता है या वे किसी वडे वर्ग मे साथ-साथ रखे जाते हैं, ताकि वर्गो के वीच लक्ष्य के लिये उपयोगी सवध स्पष्टत व्यक्त हो जायँ। भौतिक विज्ञानो मे वर्गो का चयन प्राकृतिक वर्गो के सुव्यवस्थित क्रम ठीक करने के लिए किया जाता है। प्राकृतिक वर्ग वे हैं, जिनके सदस्य सबध (Connected) गुणो द्वारा पारिभापित होते हैं।

५. विधेय-धर्म

यदि हम जान जाते हैं कि कोई पशु स्तनपायी है, तो हमे उसके वारे मे बहुत कुछ ज्ञान हो जाता है। जैसे—इसे रीढ है, यह उष्ण रक्त वाला है, इसके शरीर पर किसी-न-किसी तरह के वाल हैं और उसके मादा मे दूध पैदा करनेवाली ग्रथि हैं, जिससे वह अपने वच्चो का पालन कर सकती है। कुछ स्तनपायी जैसे मास्युंपिअल, अपने बच्चो को बहुत ही अविकसित अवस्था मे उत्पन्न करते हैं और उन्हे थैलियो मे रखकर ढोते हैं। स्तनपायियो का दूसरा वर्ग अडे देता है, फिर भी अपने बच्चो को दूध पिलाता है। इस उदाहरण से हमे किसी वर्ग के सदस्यो मे पाये जाने वाले गुणो को तीन भाग मे रखने का सकेत मिलता है (१) वे गुण जो प्रत्येक सदस्य मे पाये जाते हैं, तथा उस वर्गविशेष के ही सदस्यो मे मिलते हैं, (२) वे जो प्रत्येक सदस्य मे पाये जाते हैं पर दूसरे वर्गो के सदस्यो मे भी मिलते हैं, (३) वे जो इन सदस्यो मे से कुछ मे ही पाये जाते हैं। हम मनुष्य वर्ग का उदाहरण लें। मनुष्य वर्ग के प्रत्येक सदस्य मे पशुता का गुण है, उसमे स्तनपायी बनने के भी गुण हैं, मनुष्य वर्ग के प्रत्येक सदस्य मे मनुष्य के अपने विशिष्ट गुण भी मिलते हैं, जैसे शरीर की तुलना मे अन्य पशुओ की अपेक्षा वडा मस्तिष्क और उसके साथ विवेकशीलता। पशुता एव स्तनपायी होना मनुष्य के जातिगत सामान्य गुण हैं, विवेकशीलता विशिष्ट या विभेदक गुण है। यहाँ 'सामान्य' (Generic) का जीव-विज्ञान के अर्थ मे नही, बल्कि तार्किक अर्थ मे व्यवहार हुआ है। यदि हम पशु को मनुष्य की जाति (Genus) मान (स्तनपायी जाति की उपेक्षा करते हुए) तो हम कह सकते हैं कि उपजाति (उपजाति के तार्किक अर्थ मे) मनुष्य पशु के अन्य समकक्ष उपजातियो से विवेकशीलता के गुण के कारण भिन्न है। यह अरस्तू के वर्गीकरण के अनुसार है। हम सभी सहमत होगे कि विवेकशील होने के गुण के साथ अन्य गुण भी होते हैं, जो पशु जाति के अदर मनुष्य उपजाति की विशेषता के रूप मे पाये जाते हैं, जैसे मजाक समझने की क्षमता या—अरस्तू के प्रिय उदाहरणो मे से एक लें—व्याकरण सीखने की क्षमता। हम अनुभव करते हैं कि यद्यपि तोता और मैना वोल सकते हैं (अर्थात् वाचिक शब्द उच्चारण कर सकते हैं)

पर मनुष्य ही व्याकरण सीख सकता है। ऐसा गुण जो किसी उपजाति के प्रत्येक सदस्य मे पाया जाता हो (अर्थात् उपजाति किसी जाति का उपवर्ग हो) और उस गुण से सबधित हो जो उपजाति को अन्य समकक्ष उपजातियो से भिन्न करता हो, तो उसे गुणार्थज धर्म (Proprium) कहते है।*

कुछ ऐसे भी गुण-धर्म है, जो मनुष्य के किसी उपवर्ग के प्रत्येक सदस्य मे पाये जाते हैं। पर, वे दूसरे उपवर्ग के सदस्यो मे नही मिलते, उदाहरणार्थ—गोरे, काले, घुँघराले बाल वाले, सीधे बाल वाले, दीर्घशिरस्क, लघुशिरस्क, इत्यादि। ऐसे गुण-धर्मो को आकस्मिक गुण (Accidents) कहते है।

ये नाम-जाति, व्यावर्त्तक गुण या अवच्छेदक, गुणार्थज धर्म तथा आकस्मिक गुण-विधेय धर्म कहे जाते है, क्योकि अरस्तू ने जब इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास किया कि किसी उप-जाति के बारे मे कितनी तरह के विधेय लागू हो सकते हैं, तो उन्होने सर्वप्रथम इनका बिभेद किया। उनका उत्तर था कि उपजाति मनुष्य पर (उदाहरण के लिए) हम विधेय के रूप मे आरोपित कर सकते हैं जाति-पशु, अवच्छेदक-विवेकशील, गुणार्थज धर्म,व्याकरण सीखने की क्षमता, आकस्मिक गुण-गौरवर्ण।§ जाति और अवच्छेदक दोनो मिलकर परिभाषा की रचना करते हैं, जो पर जेनस एटडिफरेन्शियम (Per genuset difirentium) कही जाती है।+

शब्द जाति, उपजाति, अवच्छेदक, आगतुक गुण—ये सभी इस विषय पर अरस्तू के प्रतिपादन से हमे प्राप्त होते हैं। प्रो० आर० एम० ईटन ने कहा है, 'स्पष्ट विश्लेषण के लिए अरस्तू की प्रतिभा का दृष्टात, जिसने उन्हें तर्कशास्त्र को पारिभाषिक शब्दावली एव रूप प्रदान करने मे समर्थ किया और जो दो हजार वर्षो तक कायम रहा, विधेय-धर्म के सिद्धात के विवेचन मे जैसा सुदर मिलता है वैसा अन्यत्र कही

---

* लैटिन शब्द प्रोप्रियम (अरस्तू के शब्द (Idior) का अनुवाद) को बनाये रखा गया है, क्योकि इस सदर्भ मे यह गुण-धर्म (Property) से सकीर्ण अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है, गुण-धर्म बहुधा विशेषता के अर्थ मे व्यवहार मे आता है। प्रोप्रियम का बहुवचन प्रोप्रिया होता है।

§ ध्यान देने योग्य है कि विधेय का उद्देश्य उपजाति (जैसे मनुष्य या त्रिभुज) है, कोई व्यक्ति नही (जैसे सुकरात या यह विषमबाहु त्रिभुज) प्रोफाइरी (Prophyry) ने (२३३-३०४ ई०) अरस्तू के सिद्धात को अत्यत गडबड तरीके से रखा। उन्होने परिभाषा के स्थान पर उपजाति रखा और उद्देश्य के स्थान पर व्यक्ति, जैसे सुकरात। वे और उनके बाद के तर्कशास्त्रियो ने अत्यत नगण्य और निरर्थक विस्तार करने मे अपने समय बर्बाद किये।

+ इसका अर्थ है 'जाति एव व्यावर्त्तक गुण को निश्चित करके'

नही मिलता' § अरस्तू के तर्कशास्त्र-सबधी विचारो के प्रति ऐसी प्रशसा की भावना नवीन युग के तर्कशास्त्रियो मे बहुत कम देखने को मिली है। किंतु, इस लेखक के मतानुसार ऐसी प्रशसा बहुत ही न्यायोचित है। साथ ही साथ हमे इस पर भी ध्यान रखना चाहिए, जैसा प्रो० ईटन भी स्वीकार करते हैं, कि अरस्तू के विधेय-धर्म-सिद्धात का मूल स्रोत उनकी तत्त्व-मीमासा है। उस तत्त्व-मीमासा को हम अस्वीकार करते है। वस्तुत, यह कहा जा सकता है कि अरस्तू के तत्व-मीमासा का उनके तर्कशास्त्र पर प्रभाव बडा ही दुर्भाग्यपूर्ण था और पारपरिक तर्कशास्त्रियो का उसका प्रति ससक्ति तथा अरस्तू द्वारा की गई भूलो को ज्यो का त्यो कायम रखने का उनके प्रयास तर्क सिद्धातो के प्रगति को अवरुद्ध करने मे भयानक हुआ। अब अरस्तू के सिद्धात, तत्त्व-मीमासा का अध्ययन न करने वालो के लिए, मुख्यत ऐतिहासिक महत्त्व के रह गये है। फिर भी कुछ विस्तार से इसका अध्ययन उपयोगी होगा—यदि स्थान की कठिनाई न हो—क्योकि इसमे हम जैसे कथन करते हैं, उनके विश्लेषण का कठोर प्रयास किया गया है तथा मुख्य एव गौण गुणो मे भेद पर गभीर विचार हुआ है।

अरस्तू द्वारा दी गई विधेय-धर्म-तालिका को हम सक्षेप मे द्विभाजी विभाजन के रूप मे रखकर प्रस्तुत कर सकते है। इसका आधार है विधेय का उद्देश्य के साथ परिवर्तनीयता या अपरिवर्तनीयता। यदि विधेय उद्देश्य के लिए सर्वनिष्ठ एव निजी हो, तो विधेय उद्देश्य के साथ परिवर्तनीय होगा। इस कथन का कोई अर्थ नही होगा, यदि हम इस सदर्भ मे याद न रखें कि उद्देश्य को अवश्य ही उपजाति (Species) होना चाहिए। (इसकी रूपरेखा पृष्ठ १२५ पर दी गई है।)

जिन शब्दो के नीचे लकीर खीची गई है, वे विधेय-धर्म हैं। परिभाषा अन्य से भिन्न कोई पाँचवा विधेय-धर्म नही है बल्कि जाति एव अवच्छेदक का सम्मिलित विधेय है। हमने ज्यामिति से एक उदाहरण और दिया है। (देखें, पृष्ठ १२६)

अरस्तू के अनुसार प्रत्येक उपजाति मे निश्चित एव परिमित तत्त्व है। इसका उल्लेख परिभाषा मे होता है। गुणार्थज धर्म, यद्यपि तत्त्व का भाग नही है, फिर भी उपजाति के लिए आवश्यक समझा जाता है। यह तत्त्व पर आधारित है, अर्थात परिभाषा से निकलता है। इस प्रकार परिभाषा एव गुणार्थज धर्म के भेद सुनिश्चित हैं। इस मत को हमे बिल्कुल ही अस्वीकार करना चाहिए। भेद किसी दिये हुए

§ जनरल लॉजिक, पृष्ठ २७३। तर्कशास्त्र के प्रारभिक विद्यार्थी के दृष्टिकोण से, जो और विस्तार से जानना चाहता है कि अरस्तू का सिद्धात वस्तुत क्या था, प्रो० ईटन की पुस्तक बडी उपयोगी है। विधेय-धर्म सिद्धात का यहाँ सबसे सुदर निरूपण मिलता है।

विधेय
उद्देश्य के साथ सपरिवर्तनीय
उद्देश्य के साथ असपरिवर्तनीय
परिभाषा
परिभाषा नही अर्थात्
गुणार्थज-धर्म
परिभाषा मे एक तत्त्व
परिभाषा का कोई तत्त्व
नही अर्थात् आगतुक गुण
जाति
जाति नही अर्थात् अवच्छेदक
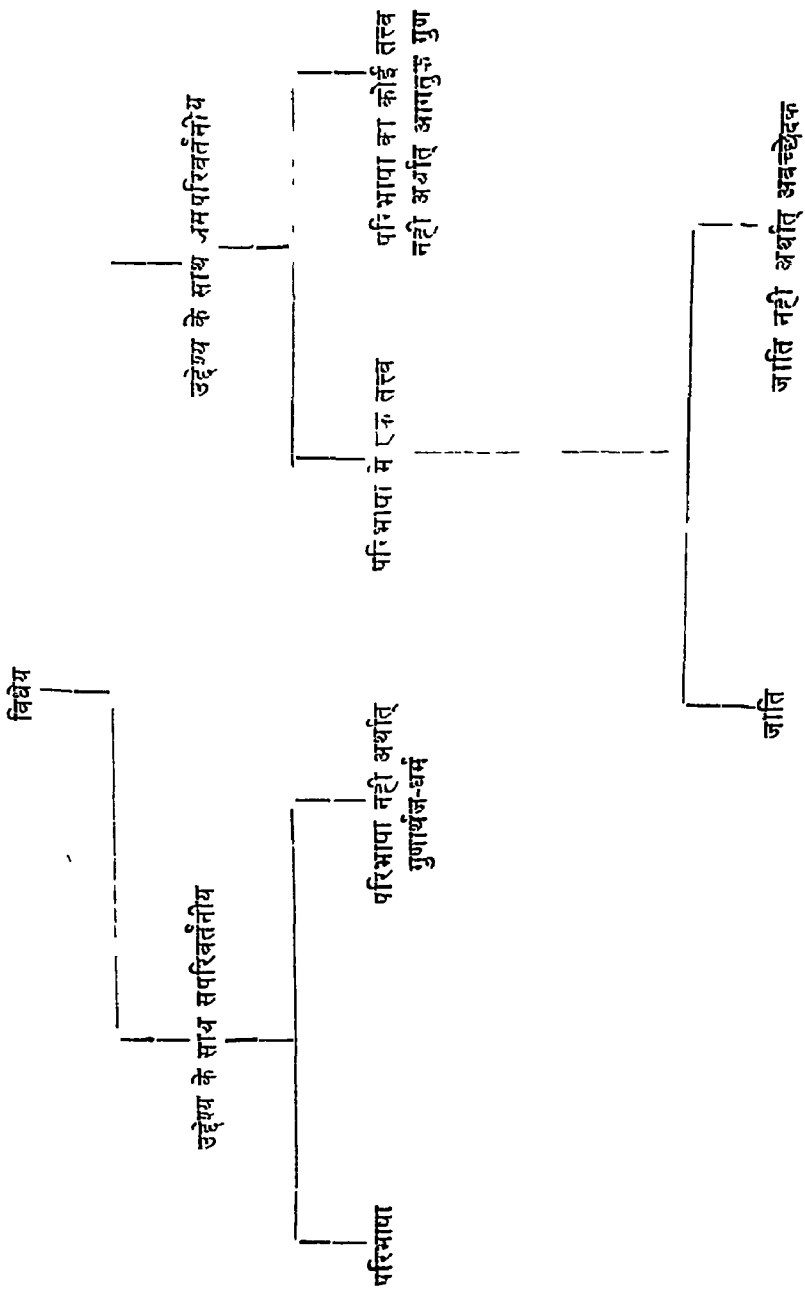
सप्रत्यय पद्धति के सदर्भ मे ही सुनिश्चित होता है। इसे हम सबसे सरलतापूर्वक रेखागणित मे देख सकते है। यूक्लिड मानते थे कि ज्यामिति की आकृतियाँ आकाश मे आकृतियो की रचना करने से अत प्रज्ञा मे प्राप्त होती है। यह मत अब परित्यक्त है। अत', हम नही कह सकते कि 'वृत्त' की एक और केवल एक, परिभाषा है, जो इसका तत्त्व-निरूपण करती है। यदि 'वृत्त' की उपर्युक्त परिभाषा मान्य है, तो किसी दी हुई परिधि से इसका क्षेत्रफल सबसे अधिक होना, इसका गुणार्थज धर्म है। पर, यदि हम वृत्त की परिभाषा दे कि यह एक समतल आकृति है, जिसका क्षेत्रफल किसी दी हुई परिधि से सबसे अधिक है, तो इससे निकलता है कि इसके सभी बिंदु किसी दिये हुए बिंदु से समदूरी पर हैं और इस प्रकार यह गुणार्थज धर्म हो जाता है। परिभाषा के लिए हम किसे चुनें, यह तर्केतर कारणो से निर्धारित होता है। एक बार चुन लेने पर परिभाषा मे जो कुछ निगमन के रूप मे निकलता है, वह गुणार्थज धर्म होता है। यह समझना सरल है कि स्वयसिद्धियो एव परिभाषाओ मे निहित साध्य (Theorems) बहुत से गुणार्थज धर्म है। ये स्पष्टत आवश्यक है, परिभाषाओ को स्वीकार करना और गुणार्थज धर्मों को अस्वीकार करना व्याघाती होगा।
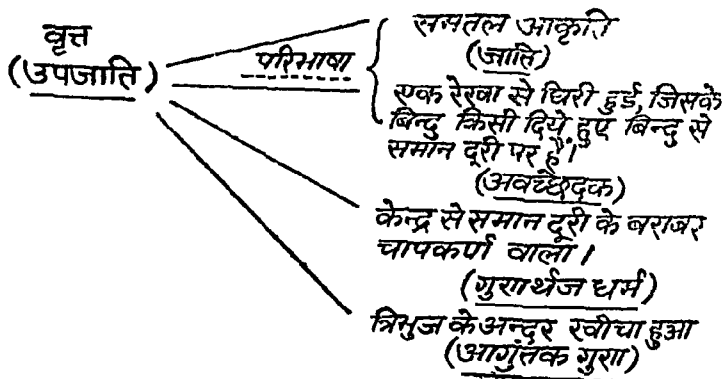
प्राकृतिक उपजातियो जैसे मनुष्य, गाय, सर्प इत्यादि के सदर्भ मे गुणार्थज धर्मों एव परिभाषा, तथा गुणार्थज धर्मो एव आगतुक गुणो के बीच भेद करना बहुत आसान नही है। इतना कहना अवश्य पर्याप्त होगा कि कोई गुण या धर्म तभी आवश्यक है जब इसके अभाव मे कोई वस्तुविशेष किसी उपजाति विशेष से सलग्न नही मानी जाती। आगतुक गुण किसी व्यक्ति पर लागू नही होते, बल्कि किसी उपजाति के सदस्य होने के नाते किसी व्यक्ति पर लागू होते है। प्राकृतिक वर्गो मे किसी उपजाति के सभी सदस्यो मे समान रूप से पाये जानेवाले गुण बहुत अधिक एव

आपस मे सबधित होते है। अत कुछ गुण जो अन्य से अधिक महत्त्वपूर्ण होते है, उन्हे हम ढूँढने का प्रयास करते हैं, और इस प्रकार वे उपयोगी अनुमानो के आधार बन सकते है। इस विषय को और आगे बढाना हमे विधेय-धर्म-सिद्धात की परिधि से बहुत दूर ले जाता है।

§ ६. परिभाषा

हम देख चुके है कि परिभाषा का पारपरिक नियम है जाति एव अवच्छेदक गुण निश्चित करना (Per genus et differentium) यह अत्यधिक सकीर्ण है। हमे पूछना चाहिए कि परिभाषा का अभिप्राय क्या है ? हम परिभाषा कब चाहते है और यदि सफलता मिली, तो परिभाषा से क्या प्राप्त होता है ? उदाहरणार्थ तर्कशास्त्र का अध्ययन प्रारभ करने वाला विद्यार्थी जानना चाहता है कि तर्कशास्त्र क्या है ? क्या यह इच्छा परिभाषा के लिए है ? यदि हाँ, तो इसका समाधान कैसे हो ? इसके बाद वाले प्रश्न का उत्तर प्रश्नकर्त्ता की आवश्यकता पर आश्रित है। क्या वह 'तर्कशास्त्र' शब्द के अर्थ से सर्वथा अनभिज्ञ है, अर्थात् क्या यह शब्द उसके समक्ष पहले-पहल आया है ? अथवा क्या वह जानता है कि तर्कशास्त्र किसी तरह अनुमान से सबद्ध है और वह आगे जानना चाहता है कि तर्कशास्त्र को मनोविज्ञान से कैसे भिन्न किया जायगा ? यदि वह समझता है कि पारिभाषिक वाक्याश मे शब्दो को कैसे व्यवहार किया जाता है तो प्रथम विकल्प मे उत्तर, तर्कशास्त्र अनुमान के सिद्धातो का अध्ययन करता है, उसकी आवश्यकता के लिये पर्याप्त होना चाहिये। यदि दूसरा विकल्प है, तो उत्तर मे उन गुणो को व्यक्त करना होगा, जो अनुमान के तार्किक पक्ष को मनोवैज्ञानिक पक्ष से भिन्न करते है। सभवत सबसे सतोषप्रद उत्तर निदर्शी दृष्टातो के साथ कुछ कथन होगे। सक्षिप्त एव कुचित कथन मे दी गई परिभाषा शायद ही सुस्पष्ट होती है। कभी-कभी ऐसे उत्तर पर्याप्त हो सकते हैं। कल्पना करें अ ब से पूछता है 'आलमारी किसे कहते है ?' ब उत्तर देता है, 'आलमारी फर्नीचर की एक वस्तु है, जिसके खाने खुले एव चौडे होते है और ऐसे बने होते है कि विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ उन पर रखी जा सकें।' इसे अ के प्रश्न का सतोषप्रद उत्तर कहा जा सकता है यदि (i) ब द्वारा प्रयुक्त पारिभाषिक वाक्याशो को अ जानता है, (ii) पारिभाषिक वाक्याश वस्तुत उन गुणो के द्योतक हो जो आलमारी कही जाने वाली वस्तु मे पाये जाते हैं। सभवत (iii) इसे भी जोड देना चाहिए अ 'आलमारी' का वर्णन चाहता है और न कि किसी अन्य दूसरी वस्तु का। केवल सदर्भ ही निश्चित कर सकता है कि जिस प्रकार की वस्तु से अ का तात्पर्य था, वही ब ने भी समझा था। यदि ऐसी बात न हुई, तो सचारण असफल रहा।

बहुधा परिभाषा सबधी हमारी आवश्यकताएँ सरलता से पूरी नही हो पाती। किसी वस्तु के बारे मे अधिक सुस्पष्ट सोचने के माध्यम के रूप मे हम परिभाषा

ढूढते है। हम और अधिक ठीक-ठीक सोचना चाहते है, हम बिल्कुल ठीक जानन चाहते है कि जो कुछ हम कह रहे हैं, वह क्या है। उदाहरण के लिए, 'तुष्टिकरण-नीि क्या है, जिसे नेभिल चेम्बरलेन एव उनके समर्थको ने १६३६ से १६३६ ई० के बीच समझा था ?' स्पष्टत इस प्रश्न के उत्तर के लिए 'तुष्टीकरण' की शब्दकोश मे द गई परिभाषा से कुछ अतिरिक्त की आवश्यकता है। पर, हम अनुभव करते है वि प्रश्न मे प्रयुक्त 'तुष्टिकरण' का शब्दकोश मे दी गई परिभाषा से अवश्य ही कुछ सबध है। या फिर कहें 'क्या तुम साम्यवादी हो ?' तो इसका उत्तर हो सकता है 'यह तुम्हारे साम्यवादी' के अर्थ समझने पर आश्रित है।' विद्यार्थी इस प्रकार की बात-चीत मे सभवत भाग लेते हैं। ऐसे अवसर पर उन्हें अपने से पूछना चाहिए कि किस प्रकार का उत्तर सतोषजनक होगा। शब्दो के व्यवहार कैसे होते है, इसे स्पष्ट करने के लिए केवल एक ही रीति नही होती, कोई उत्तर जो हमे वाछित वस्तु की परिभाषा के लिए शब्द का व्यवहार करने मे समर्थ करता है, वहाँ वही सतोषप्रद परिभाषा है। सामान्यत उत्तर एक वाक्य का रूप ले लेता है, अर्थात् हम एक शब्द की व्याख्या के लिए दूसरे शब्दो का व्यवहार करते है। क्या यह हमे उस दुखद परिस्थिति मे नही ला देता है, जो अपनी ही पूँछ का अतहीन पीछा करता है ?

अभी उपर्युक्त पैराग्राफ मे सकेत की गई कठिनाइयो एव प्रश्नो के उचित उत्तर के लिए पूरी एक पुस्तक की आवश्यकता होगी, न कि किसी अध्याय के एक परिच्छेद की।* यहाँ अधिकाधिक यही किया जा सकता है कि जिन सगत प्रश्नो को हमे पूछना है, उनमे से कुछ की ओर सकेत करें तथा उनमे से कुछ प्रश्नो के उत्तर के लिए मार्ग सूचित करें।

वस्तुओ के बारे मे बातचीत करने के लिए हम शब्दो का व्यवहार करते हैं, परिभाषा पूछने मे हम शब्दो का व्यवहार करते है और परिभाषा देने मे सर्वथा हम शब्दो का व्यवहार करते है। पर जिन शब्दो का व्यवहार होता है, उनका जीवन से सबध अवश्य होना चाहिए अर्थात् ससार की वस्तुओ को सूचित करने वाले हो। बच्चा दूसरे द्वारा बोली हुई भाषा को सुनकर कैसे सीखना प्रारभ करता है, उसके वर्णन का हम यहाँ प्रयास नही कर सकते, इस आश्चर्य को हम मानकर आगे बढते

---

* जो विद्यार्थी इन विषयो मे रुचि रखते है, उनके लिए आई० ए० रिचर्ड्स की 'इटरप्रेटेशन इन टीचिंग' रुचिकर एव ज्ञानवर्द्धक दोनो होगी। तर्कशास्त्री सोच सकते हैं कि प्रो० रिचर्डस विशिष्ट तार्किक समस्याओ के बोध मे बहुत ही सकीर्ण है और सभवत व्यर्थ ही मताग्रही है। पर, इनकी पुस्तक ध्यानपूर्वक पढने योग्य है, इसमें सदेह नहीं।

है। यदि परिभाषा को केवल शब्द-छल-योजना मात्र नही रहना हैं, तो वाचिक अभिव्यजना को, किसी-न-किसी विदु पर शब्देतर वस्तुओ से अवश्य सबद्ध होना चाहिए। ऐसा सबध सकेत से व्यक्त किया जा सकता है अर्थात् जिसे प्रत्यक्ष परिभाषा कहा जाता है। उदाहरण के लिए पलक मारना' क्या है ? इसका सबसे सतोषप्रद उत्तर दिया जाता है 'यह कहना' और वक्ता पलक मारता है। प्रश्नकर्त्ता तव अवश्य जान जायगा कि 'पलक मारना' क्या है। यदि वह किसी को पलक मारते न देख सके वरन् केवल शब्द कोष पर उसे आश्रित होना पडे, तो वह इसका अर्थ कभी नही जान सकता।* फिर कोई पूछता है, कविता का महाकाव्य क्या है ? उत्तर मिलता है—'रामचरितरमानस', 'पद्मावत', 'कामायनी' और इस प्रकार के अन्य कोई।' यहाँ यह जानने की कठिनाई है कि 'किस पक्ष की समानता पर बल है ? क्या हम 'प्रियप्रवास' को इसमे सम्मिलित कर सकते है ? उत्तर हमे बहुत दूर नही ले जाता, सचमुच कठिनाई यहाँ से प्रारभ होती है। बहुत से शब्दो की व्याख्या अत मे निदर्श (Sample) प्रस्तुत करके करनी पडती है, जैसा ऊपर 'कविता का महाकाव्य' मे किया जाना चाहिए। +

अधिकाश तर्कशास्त्रियो द्वारा परिभाषा का वर्णन इस विचार से बहुत दूर रहा है कि हम कैसे शब्दो का व्यवहार करना प्रारभ करते है, समझना कैसे सीखते है। ध्यान इस बात पर केंद्रित किया गया है कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण से महत्त्व की बात क्या है, अर्थात् सतोषप्रद परिभाषा की क्या शर्तें है ? इस प्रश्न का उत्तर देते समय हमे ध्यान रखना चाहिए कि 'महत्त्वपूर्ण' की तरह 'सतोषप्रद' दृष्टिकोण पर

---

* यहाँ पर मैने शार्टर ऑक्सफोर्ड इगलिश डिक्शनरी देखी, जिसमे दिया हुआ है 'एक दृष्टि, या आँख की सार्थक गति (बहुधा सिर हिलाना भी साथ रहता है) आज्ञा, स्वीकृति, निमत्रण इत्यादि व्यक्त करती हुई, ' यह भी लिखा है कि यह (अर्थ) लोकोक्तियो के अतिरिक्त पुराना पड गया है, व्यवहार मे नही है, क्रिया 'पलक मारना' का अर्थ देती है—'अपनी आँख को चचल रीति से क्षण-क्षण बद करना, मुख्यत' किसी आभ्यतर सूचना अथवा अच्छे मजाक की परिस्थिति व्यक्त करने के लिए।'

+ निदर्शी पद्धति अनिवार्य है, पर इसके सहारे सीखना उतना आसान नही है, जितना सुनने मे लगता है। यहाँ हम केवल इतना याद दिला दे सकते हैं कि बिना जाने हुए हम अलग-अलग रख सकते हैं और भेद कर सकते हैं। हमे इसका ज्ञान नही हो सकता है कि हमने कैसे इसे अलग-अलग किया।

ढूढते है। हम और अधिक ठीक-ठीक सोचना चाहते है, हम विल्कुल ठीक जानना चाहते है कि जो कुछ हम कह रहे है, वह क्या है। उदाहरण के लिए, 'तुष्टिकरण-नीति क्या है, जिसे नेभिल चेम्बरलेन एव उनके समर्थको ने १६३६ से १६३६ ई० के बीच समझा था ?' स्पष्टत इस प्रश्न के उत्तर के लिए 'तुष्टीकरण' की शब्दकोश मे दी गई परिभाषा से कुछ अतिरिक्त की आवश्यकता है। पर, हम अनुभव करते है कि प्रश्न मे प्रयुक्त 'तुष्टिकरण' का शब्दकोश मे दी गई परिभाषा से अवश्य ही कुछ सवध है। या फिर कहे 'क्या तुम साम्यवादी हो ?' तो इसका उत्तर हो सकता है 'यह तुम्हारे साम्यवादी' के अर्थ समझने पर आश्रित है।' विद्यार्थी इस प्रकार की बातचीत मे सभवत भाग लेते हैं। ऐसे अवसर पर उन्हें अपने से पूछना चाहिए कि किस प्रकार का उत्तर सतोषजनक होगा। शब्दो के व्यवहार कैसे होते है, इसे स्पष्ट करने के लिए केवल एक ही रीति नही होती, कोई उत्तर जो हमे वाछित वस्तु की परिभाषा के लिए शब्द का व्यवहार करने मे समर्थ करता है, वहाँ वही सतोपप्रद परिभाषा है। सामान्यत उत्तर एक वाक्य का रूप ले लेता है, अर्थात् हम एक शब्द की व्याख्या के लिए दूसरे शब्दो का व्यवहार करते है। क्या यह हमे उस दुखद परिस्थिति मे नही ला देता है, जो अपनी ही पूँछ का अतहीन पीछा करता है ?

अभी उपर्युक्त पैराग्राफ मे सकेत की गई कठिनाइयो एव प्रश्नो के उचित उत्तर के लिए पूरी एक पुस्तक की आवश्यकता होगी, न कि किसी अध्याय के एक परिच्छेद की। * यहाँ अधिकाधिक यही किया जा सकता है कि जिन सगत प्रश्नो को हमे पूछना है, उनमे से कुछ की ओर सकेत करें तथा उनमे से कुछ प्रश्नो के उत्तर के लिए मार्ग सूचित करें।

वस्तुओ के बारे मे बातचीत करने के लिए हम शब्दो का व्यवहार करने हैं, परिभाषा पूछने मे हम शब्दो का व्यवहार करते हैं और परिभाषा देने मे सर्वथा हम शब्दो का व्यवहार करते है। पर जिन शब्दो का व्यवहार होता है, उनका जीवन से सवध अवश्य होना चाहिए अर्थात् ससार की वस्तुओ को सूचित करने वाले हो। बच्चा दूसरे द्वारा बोली हुई भाषा को सुनकर कैसे सीखना प्रारभ करता है, उसके वर्णन का हम यहाँ प्रयास नही कर सकते, इस आश्चर्य को हम मानकर आगे बढते

---

* जो विद्यार्थी इन विषयो मे रूचि रखते है, उनके लिए आई० ए० रिचर्ड्स की 'इटरप्रेटेशन इन टीचिंग' रूचिकर एव ज्ञानवर्द्धक दोनो होगी। तर्कशास्त्री सोच सकते है कि प्रो० रिचर्डस विशिष्ट तार्किक समस्यायो के बोध मे वहुत ही सकीर्ण है और सभवत व्यर्थ ही मलाग्रही है। पर, इनकी पुस्तक ध्यानपूर्वक पढ़ने योग्य है, इसमें सदेह नही।

है। यदि परिभापा को केवल शब्द-छल-योजना मात्र नही रहना है, तो वाचिक अभिव्यजना को, किसी-न-किसी विंदु पर शब्देतर वस्तुओ से अवश्य सवद्ध होना चाहिए। ऐसा सवध सकेत से व्यक्त किया जा सकता है अर्थात् जिसे प्रत्यक्ष परिभाषा कहा जाता है। उदाहरण के लिए पलक मारना' क्या है ? इसका सवसे सतोषप्रद उत्तर दिया जाता है 'यह कहना' और वक्ता पलक मारता है। प्रश्नकर्ता तव अवश्य जान जायगा कि 'पलक मारना' क्या है। यदि वह किसी को पलक मारते न देख सके वरन् केवल शब्द कोप पर उसे आश्रित होना पडे, तो वह इसका अर्थ कभी नही जान सकता।* फिर कोई पूछता है, कविता का महाकाव्य क्या है ? उत्तर मिलता है—'रामचरितरमानस', 'पद्मावत', 'कामायनी' और इस प्रकार के अन्य कोई।' यहाँ यह जानने की कठिनाई है कि 'किस पक्ष की समानता पर वल है ? क्या हम 'प्रियप्रवास' को इसमे सम्मिलित कर सकते है ? उत्तर हमे वहुत दूर नहीं ले जाता, सचमुच कठिनाई यहाँ से प्रारभ होती है। वहुत से शब्दो की व्याख्या अत मे निदर्श (Sample) प्रस्तुत करके करनी पडती है, जैसा ऊपर 'कविता का महाकाव्य' मे किया जाना चाहिए। +

अधिकाश तर्कशास्त्रियो द्वारा परिभाषा का वर्णन इस विचार से वहुत दूर रहा है कि हम कैसे शब्दो का व्यवहार करना प्रारभ करते है, समझना कैसे सीखते हैं। ध्यान इस वात पर केंद्रित किया गया है कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण से महत्त्व की वात क्या है, अर्थात् सतोपप्रद परिभाषा की क्या शर्तें है ? इस प्रश्न का उत्तर देते समय हमे ध्यान रखना चाहिए कि 'महत्त्वपूर्ण' की तरह 'सतोषप्रद' दृप्टिकोण पर

---

* यहाँ पर मैने शार्टर ऑक्सफोर्ड इगलिश डिक्शनरी देखी, जिसमे दिया हुआ है 'एक दृष्टि, या आँख की सार्थक गति (बहुधा सिर हिलाना भी साथ रहता है) आशा, स्वीकृति, निमत्रण इत्यादि व्यक्त करती हुई,' यह भी लिखा है कि यह (अर्थ) लोकोक्तियो के अतिरिक्त पुराना पड गया है, व्यवहार मे नही है, क्रिया 'पलक मारना' का अर्थ देती है—'अपनी आँख को चचल रीति से क्षण-क्षण बद करना, मुख्यत किसी आभ्यतर सूचना अथवा अच्छे मजाक की परिस्थिति व्यक्त करने के लिए।'

+ निदर्शी पद्धति अनिवार्य है, पर इसके सहारे सीखना उतना आसान नही है, जितना सुनने मे लगता है। यहाँ हम केवल इतना याद दिला दे सकते है कि बिना जाने हुए हम अलग-अलग रख सकते हैं और भेद कर सकते है। हमे इसका ज्ञान नही हो सकता है कि हमने कैसे इसे अलग-अलग किया।

आधारित है। पहले हम पारंपरिक नियमो पर विचार करें, जिनकी पूर्वमान्यता है किसी दिये हुए शब्द को किसी शब्द द्वारा कैसे समझा जाय। जिस शब्द की परिभाषा की जाती है, उसे परपरानुसार परिभाष्य पद (Definendum) और पारिभाषिक वाक्याश को (Definiens) पारिभापक पद कहते है।

अ—परिभाषा के स्वरूप से सबधित नियम।

(१) परिभापक को परिभाष्य के समतुल्य होना आवश्यक है। इस नियम से दो उपनियम निकलते हैं (१—१) * परिभापक को परिभाष्य से विस्तृत नही होना चाहिए। (१—२) परिभापक को परिभाष्य से सकीर्ण नही होना चाहिए।

ब—परिभाषा के प्रयोजन से सबधित नियम

(२) परिभापक मे कोई ऐसी अभिव्यजना सम्मिलित नही होनी चाहिए जो, परिभाष्य मे पहले से उपस्थित हो अथवा जिसकी परिभाषा केवल उसी की शब्दावली मे दी जा सके।

(३) परिभापक की अभिव्यक्ति दुर्वोध या आलकारिक भाषा मे नही होनी चाहिए।

(४) जबतक परिभाष्य मूलत. निषेधात्मक अर्थ का न हो, तब तक परिभाषक को निषेधात्मक अभिप्राय का नही होना चाहिए।

स्वीकार है कि परिभाषा देने का प्रयोजन उस सीमा को स्पष्ट करना है, जिसके अदर कोई शब्द या वाक्याश यथार्थत प्रयुक्त हो सकता है, तो ये नियम पर्याप्त स्पष्ट मालूम पडते हैं। इन पर किसी टिप्पणी की आवश्यकता नही है। यहाँ इस बात पर बल देना है कि परिभाषा एव परिभाषक वाक्याश अवश्य ही तुल्य हो। इस तुल्यता से निकलता है कि बिना अर्थ-परिवर्तन लाये, एक शब्द दूसरे के स्थान पर रखा जा सकता है। जाति एव अवच्छेदक से की गई परिभाषा इन नियमो की शर्तों को पूरा करती है, पर व्यावर्त्तक गुणो के लिए प्रयुक्त अभिव्यजना को दुर्वोध नही होना चाहिए। दुर्वोधता प्रश्नकर्त्ता के ज्ञान से सापेक्ष है, परिभाषक मे प्रश्नकर्त्ता के समक्ष परिभाष्य पद से अधिक दुर्वोध शब्दो के व्यवहार की निरर्थकता इतनी स्पष्ट है कि उस पर और आगे टिप्पणी करने की आवश्यकता नहीं है। चक्रक परिभाषा परिभाषा के प्रयोजन को ही समाप्त कर देती है, जैसे 'भौतिक शक्ति' का अर्थ है 'वह बल, जो गति पैदा करती है' चक्रक परिभाषा कही जायगी यदि

---

* उपनियम का नियम के साथ सबध प्रदर्शित करने के लिए इस प्रकार अक लिखे गये हैं, दोनो उपनियमो मे भेद करने के लिए डैश दिया गया है।

'शक्ति' एव 'वल' एकार्थक रूप मे लिये गये है और यदि प्रार्थना 'शक्ति' की परिभाषा के लिए की गई है, भौतिक शक्ति के लिए नही। 'न्याय सभी मनुष्य को उसका उचित देना है' चक्रक है यदि 'मनुष्य का जो उचित है' की परिभापा की जाय कि 'जिसको प्राप्त करना उसके लिए न्यायसगत है।'

'अनाथ' की परिभाषा कि 'वह व्यक्ति जिसके माँ-वाप न हो' इसलिये दोषयुक्त नही है कि निषेधात्मक है, पर यह अस्पष्ट—है। 'माँ-वाप से वचित व्यक्ति' कथन मे भावात्मक है और अर्थ मे निषेधात्मक, यह अनाथ के प्रत्यय मे ठीक वैठता है। विद्यार्थी वडी सरलतापूर्वक ऐसे शब्द सोच सकते है, जिसका मूल अर्थ किसी गुण का निषेध करना है। जैसे 'विदेशी', 'कुँवारा'।

एक वहुत वाद-विवाद वाला प्रश्न हमारे समक्ष उठता है कि परिभाषा शब्दो की होती है या वस्तुओ की ? यह प्रश्न वहुत अनुपयुक्त ढग से रखा जाता है, शब्दो का व्यवहार किसी वस्तु की ओर सकेत करने के लिए किया जाता है। हम शब्द की परिभाषा करते है, पर ऐसा भी शब्द है, जो केवल परिभाषा के लिए है, क्योकि हम बात करना चाहते हैं कि शब्द किसके लिए प्रयुक्त होता है, हम शब्दो से किसी वस्तु के बारे मे बात करते है।

वास्तविक एव शाब्दिक परिभाषा मे भेद किया गया है। शाब्दिक परिभाषा परिभाषक मे ऐसे शब्द या शब्द-समूह प्रस्तुत करती है, जिनसे ठीक वही प्रतीक बन सकता है, जो परिभाष्य से वनता है। वास्तविक परिभाषा मे परिभाषक परिभाष्य पद की व्याख्या प्रस्तुत करता है। परिभाषा सदैव ही समीकरण के रूप मे होती है एक शब्द या कुछ शब्दो का एक समूह तुल्य होता है—दूसरे शब्द या शब्द-समूह के। परिभापक विश्लेषणात्मक हो सकता है अर्थात् परिभाष्य का यह विश्लेषण व्यक्त कर सकता है। यहाँ विश्लेषण को भौतिक विश्लेषण से भिन्न समझना चाहिए। उदाहरणार्थ, रासायनिक विश्लेषण मे दोनो होते है अविश्लेषित साकल्य (जैसे—जल) एव घटक जिनमे उसका विश्लेषण हुआ है। तार्किक विश्लेषण मे पहले एक वस्तु तब दूसरी वस्तु नही होती, वल्कि दो अभिव्यजनाएँ होती हैं, जिनके अर्थ एक ही होते है। जैसे—परिभाषा ले 'खतरा' का अर्थ है 'क्षति से अरक्षितता'। यहाँ कोई ऐसा मिश्र गुण नही है, जिसका प्रतीक 'खतरा' है और कोई दूसरा गुण-समूह जिसका प्रतीक 'क्षति स अरक्षितता' है। इसके विपरीत यहाँ एक ही गुण-समूह है, जिसके दोनो ही प्रतोक हैं 'खतरा' एव 'क्षति से अरक्षितता'।

§ ७. वर्णन

तर्कशास्त्रियो ने वहुधा परिभापा की परिभापा दी है कि यह 'किसी शब्द के गुणार्थ का स्पष्ट कथन है'। इस परिभापा से ध्वनित होता है कि किसी शब्द का गुणार्थ

निश्चित होता है। हमे जो कुछ करना है, वह उसका स्पष्ट कथन मात्र है, यह बात आपत्तिपूर्ण है। अमूर्त के संदर्भ मे यह सभव है, जैसे ज्यामिति मे प्रयुक्त पद के अवश्य ही निश्चित अर्थ होते है। हर स्थल पर 'सहस्रकोणी' का अर्थ 'एक हजार भुजा वाला सम बहुभुज' होगा। जिन शब्दो मे हमे सबसे अधिक कठिनाई होती है, वे हैं, जिनके अर्थ भिन्न-भिन्न संदर्भ मे भिन्न-भिन्न होते है। ऐसे शब्दो की परिभाषा किसी दिये हुए प्रयोग एव किसी वाक्य मे उनके व्याख्यात्मक उदाहरण को दृष्टि मे रखते हुए सापेक्ष रूप मे दी जा सकती है।

स्वभावत हमे पूछने की इच्छा होती है कि *क्या प्रत्येक शब्द की परिभाषा की जा सकती है?* यदि 'परिभाषा करने' का अर्थ है 'व्याख्या करना कि शब्द का क्या प्रयोग है, तो उत्तर होगा कि प्रत्येक शब्द की परिभाषा हो सकती है, पर शायद ही किसी की परिभाषा बहुत थोडे मे हो सके। यदि 'परिभाषा करने' का अर्थ है '*गुणार्थ को स्पष्ट व्यक्त करना*,' तो उत्तर होगा कि कुछ शब्दो की परिभाषा नही हो सकती। कारण, या तो उनका कोई गुणार्थ नही है या दूसरे शब्दो की सहायता से ही उनके गुणार्थ स्पष्ट नही किये जा सकते (यदि कोई उन्हें पहले से नही जानता)। दूसरी स्थिति पर हम पहले विचार करे। 'लाल' लालपन गुण की ओर सकेत करता है, पर 'लालपन' तभी समझा जा सकता है, जब हम जानें कि लालपन उन वस्तुओ, का गुण है जिन पर 'लाल' लागू होता है, और यह लाल वस्तुओ को देखने से ही मालूम हो सकता है। इसलिए आजन्म अधा 'लाल' का क्या अर्थ है, कभी नही जान सकता।

दूसरी अवस्था उन शब्दो की है, जिनके गुणार्थ नही होते। कोई न-वस्तुगुणार्थक शब्द होता है कि नही, तर्कशास्त्रियो मे विवाद का विषय है। जे० एस० मिल के अनुसार व्यक्तिवाचक नामो मे गुणार्थ नही होता। हम बहुत सक्षेप मे विचार करें कि किसी व्यक्तिवाचक नाम का कैसे व्यवहार किया जाता है। उदाहरण के लिए 'जवाहर' ले और इसके समकक्ष एक वाक्याश रखें—'*चद्रमा मे मनुष्य*' या '*मनुष्य जिससे तुमने अभी बाते की*।'

सन् १९५० ई० मे 'जवाहर' नाम सुननेवालो मे अधिकाश भारत के तत्कालीन प्रधान मत्री के बारे मे सोचेगें या भारत मे सुप्रसिद्ध बेशकीमती पत्थर 'जवाहर' के बारे मे, कुछ दूसरे अपने व्यक्तिगत परिचित लोगो के बारे मे सोचेंगे। जवाहर नाम इस नाम वाली वस्तुओ के बारे मे कोई सूचना नही देता, चार वस्तुओ (मान लें कि वे सभी 'जवाहर' से सबोधित होती हैं) मे कोई चीज समान रूप से पायी जाती है, ऐसा सोचने का कोई कारण नहीं है, सिवा इसके कि (i) वे सभी इस नाम से पुकारी जाती है, (ii) कुछ लोगो को उनमे ऐसे रुचिकर गुण दिखलाई पडते है कि वे उनको इस नाम से सबोधित करते है। किंतु, दूसरा तो 'देवदत्त', 'मीना', 'हरिबोल' मे

भी मिलता है। इसलिए 'जवाहर' को औरो से भिन्न करने के लिए यह पर्याप्त नही है। इस प्रकार 'जवाहर' मे गुणार्थ का अभाव हे, क्योकि यह नाम किसी ऐसे गुण की ओर सकेत नही करता, जो इससे पुकारे जाने वाले व्यक्तियो मे समान रूप से पाया जाता हो और वह उनकी विशेषता हो। 'जवाहर' किसी कुत्ते या मोटरकार का भी नाम हो सकता है। यदि व्यक्तिवाचक नामो को न-वस्तु गुणार्थक कहने का मिल का बस यही तात्पर्य था, तो वह अवश्य ठीक है। सभवत उनके कहने का बस इतना ही अर्थ था। पर, वे एसी भी बातें कहते हैं जिनसे लगता है कि उन्होने व्यक्तिवाचक नाम मे सभी प्रकार के अर्थ को अस्वीकार किया हे।*

व्यक्तिवाचक नाम मे अर्थ होता है, क्योकि उसी से वह अन्य व्यक्तियो (या वस्तुओ) से भिन्न किया जाता है। पर, इसका महत्त्व केवल उन्ही के लिए है, जो व्यक्तिगत रूप से उस व्यक्ति को जानते हैं और जो जानते हैं कि ऐसी प्रतिज्ञप्तियो का क्या अर्थ है जैसे 'जवाहर' भारत के प्रधान मत्री का नाम है, 'मीरा' उस लडकी का नाम है, जो वहाँ पर लाल पोशाक मे है,—यहाँ मान लिया जाता है कि 'वहाँ लाल पोशाक मे लडकी' किसी निश्चित व्यक्ति की ओर सकेत करता है। व्यवहार मे हम उन्ही व्यक्तियो का नामकरण करते है, जिनसे हमारा कोई मुख्य प्रयोजन होता है, जिसके कारण हम बार-बार उसकी ओर सकेत करते हैं। हम 'अपने गरम पानी का बर्तन' माँगते हैं, उसके लिए 'शैलेन्द्र' नही कहते, यह तभी कह सकते' हैं, जब हम सबको सूचित कर दें कि हमारे गरम पानी के बर्तन का यह नाम है।

'चद्रलोक का मनुष्य', 'भारत के वर्त्तमान राष्ट्रपति' 'रामचरितमानस का लेखक', 'रघुवश का लेखक' इन व्यक्तिवाचक नामो मे एक पक्ष मे समानता है, वह है कि प्रत्येक से केवल एक व्यक्ति का सकेत होता है। इन्हे निश्चित वर्णन कहा जाता है, क्योकि व्यक्तिवाचक नामो से भिन्न, ये वाक्याश वर्णनात्मक हैं और इस भाषा को जानने वाले सभी इसे समझते है। कुछ तार्किको के अनुसार निश्चित वर्णन नाम तो है, पर बडे उलझे हुए नाम। यह मत अवश्य ही भ्रातिपूर्ण है। यदि रामचरितमानस का लेखक (तुलसीदास) नाम से पुकारे जाने वाले व्यक्ति का केवल दूसरा नाम होता है, तो हम उसके बारे मे जैसे 'तुलसीदास नाम से पुकारे जाने वाला व्यक्ति' कह सकते हैं, वैसे ही 'रामचरितमानस के लेखक' के नाम से पुकारा जानेवाला व्यक्ति कहते। ज्ञातव्य है कि रामबोला को 'तुलसीदास' कहते थे, और चूँकि उनका यह नाम पड गया था, इसलिए 'तुलसीदास' कहकर पुकारे जाने के लिए यह पर्याप्त नाम है। पर, जितना भी उसने अपने को या दूसरो ने उसे 'रामचरितमानस का लेखक' कहा हो, पर यदि उन्होने यथार्थ मे रामचरितमानस न

---

* देखिए जे० एस० मिल, ए सिस्टम ऑव लौजिक, बुक I चैप्टर II

लिखा होता, तो वस्तुत वह उसके लेखक न कहे जाते। और जब हम कहते है, 'रामचरितमानस का लेखक' तो हमारा अभिप्राय रहता है कि उन्होने इसे अवश्य लिखा है। वैसे ही भारत के राष्ट्रपति केवल कहने मात्र से राष्ट्रपति नही बनते, बल्कि वस्तुत' उस पद पर रहने के कारण बनते है।

'निश्चित वर्णन नाम हैं' इस मत के प्रतिकूल 'चद्रलोक का मनुष्य' दूसरी कठिनाई प्रस्तुत करता है, क्योकि चद्रमा पर कोई मनुष्य नही है। यह कहना निरर्थक लगता है कि अस्तित्ववान व्यक्ति का कोई नाम है। अत , यदि हम वर्णन को प्रयोग मे लाते हैं जैसे 'लका के वर्त्तमान राजा' 'अथवा' 'पाकिस्तान मे सोने का पहाड' जबकि इस प्रकार का न कोई लका का राजा है और न कोई सोने का पहाड है, तो हम सार्थक वाक्याशो का व्यवहार करते हैं। किंतु, यहाँ प्रत्येक अवस्था मे वर्णन के अनुकूल कोई वस्तु नही है। दार्शनिको के समक्ष यह व्याख्या बहुत कठिन समस्या के रूप मे है कि जो वर्णन किसी वस्तु का वर्णन नही करते, उसका व्यवहार कैसे किया जाय यदि ये वर्णन नाम है, तो समस्या वस्तुत असाध्य है।

ऐसे वर्णनो का प्रयोग कैसे हो सकता है, इसकी एक व्याख्या के लिए हम लोग बर्ट्रेण्ड रसेल के आभारी हैं। इस व्याख्या से हमारा मार्ग-प्रदर्शन होता है कि हम सार्थक ढग से ऐसे वर्णनो का व्यवहार ठीक-ठीक कैसे कर सकते हैं। यह व्याख्या वर्ग-सिद्धात की शब्दावली मे दी गई है। निश्चित वर्णन का वर्ग के अभिज्ञान मे विश्लेषण हो सकता है और उसके साथ-साथ यह भी निहितार्थ रहता है कि सदर्भ मे आये हुए वर्ग मे केवल एक ही सदस्य है। जैसे 'रामचरितमानस का लेखक' उस वर्ग की ओर सकेत करता है, जो 'रामचरितमानस' को लिखने के गुण से सुनिश्चित है और साथ-साथ इसमे यह भी निहित है कि उस वर्ग मे केवल एक ही सदस्य है। रामचरितमानस एक लेखक के द्वारा लिखी गई है, इस अभिकथन के लिए कारण हैं, इसलिए यह वर्णन उसका (या यहाँ उस लेखक का) वर्णन करता है। यदि हम विश्वास व्यक्त करें कि 'कुमारसभव' दो लेखको द्वारा लिखी गई है, तो यह वर्णन किसी का वर्णन नही करता। 'चद्रलोक का मनुष्य' एव 'लका का वर्त्तमान राजा' भी ऐसे वर्णन हैं, जो किसी चीज का वर्णन नही करते। इन दोनो में से प्रत्येक अवस्था में वर्ग-सुनिश्चित गुण के दृष्टात से इन वर्णनो की सार्थकता सर्वथा स्वतत्र है, इसलिए इनकी सार्थकता वर्ग के रिक्त होने की खोज से अप्रभावित है। इस नियम से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि कैसे दो या अधिक भिन्न प्रकार के वर्णन, किसी के वर्णन न होते हुए भी, आपस में भिन्न हो सकते है, अथवा इसी को दूसरे शब्दो मे कहा जा सकता है कि यद्यपि वर्णन के अनुकूल होते हुए भी वर्गो मे कोई सदस्य नही है, फिर भी ये भिन्न-भिन्न वर्ग हैं। अत , वस्त्वर्थ पर ही उनकी सार्थकता आश्रित नही होती।

इस सिद्धात को दृष्टि मे रखते हुए हम विश्लेषण कर सकते है कि प्रतिज्ञप्ति जैसे 'रामचरितमानस' का लेखक तुलसीदास हैं, से ठीक-ठीक क्या अभिकथन होता है, यह तीन प्रतिज्ञप्तियो के सयुक्त अभिकथन के तुल्य है।

(1) कम-से-कम एक व्यक्ति ने रामचरितमानस लिखा।

(11) अधिक-से-अधिक एक व्यक्ति ने रामचरितमानस लिखा।

(111) कोई ऐसा व्यक्ति नही है कि उसने रामचरितमानस लिखा है और तुलसीदास नही है।

यदि इन तीन अगभूत प्रतिज्ञप्तियो मे कोई भी असत्य है, तो मूल प्रतिज्ञप्ति असत्य है। इसी प्रकार 'कामायनी के लेखक की सत्ता है' प्रतिज्ञप्ति का निम्न सयुक्त अभिकथनो मे विश्लेषण हो सकता है —

१ कम-से-कम एक व्यक्ति ने 'कामायनी' लिखा।

२ अधिक-से-अधिक एक व्यक्ति ने कामायनी लिखा। यदि इन दो अगभूत प्रतिज्ञप्तियो मे कोई एक असत्य है, तो मूल प्रतिज्ञप्ति असत्य है। अत, यदि एक से अधिक व्यक्तियो ने मिलकर 'कामायनी' लिखा, या ऐसी कोई पुस्तक कभी लिखी ही नही गई, तो 'कामायनी के लेखक की सत्ता' असत्य है। चूँकि (१) एव (२) उपर्युक्त (1) एव (11) के समान आकार की हैं इसलिए स्पष्ट है कि 'रामचरितमानस का लेखक तुलसीदास हैं' से रामचरितमानस के लेखक के सत्तावान् होने का अभिकथन होता है। अत, जबतक ऐसे व्यक्ति की वास्तविक सत्ता नही है, तबतक 'रामचरितमानस का लेखक' पर किसी गुण का आरोप करनेवाला कथन असत्य है।

ल का का वर्त्तमान राजा गजा है का विश्लेषण निम्न बातो का सयुक्त अभिकथन करता है —

(1) कम-से-कम एक व्यक्ति अभी लका पर शासन करता है।

(11) अधिक-से-अधिक एक व्यक्ति अभी लका पर शासन करता है।

(111) कोई ऐसा व्यक्ति नही है जो दोनो हो, अभी लका पर शासन करता हो और गजा नही हो।

चूँकि इन अगभूत प्रतिज्ञप्तियो मे प्रतिज्ञप्ति (1) असत्य है, इसलिए इससे निकलता है कि मूल-प्रतिज्ञप्ति असत्य है।

जिस प्रकार के निश्चित वर्णन पर हमने अभी तक विचार किया है, वे एक-व्यापी वर्णन हैं, इनकी अभिव्यक्ति बहुधा इस रूप मे होती है 'अमुक'। फिर भी हमे ऐसी भावना से सतर्क रहना चाहिए कि व्याकरणिक समानता तार्किक आकार की समानता के लिए विश्वस्त निर्देशक है। 'शेर मासाहारी है' एक-व्यापी प्रतिज्ञप्ति की

अभिव्यक्ति नही करता, यह ऐसी प्रतिज्ञप्ति की अभिव्यक्ति करता है, जो सभी शेर मासाहारी हैं, के समतुल्य है। यह बाद वाली 'प्रतिज्ञप्ति शेर मासाहारी है' को अपने मे निहित करता है तथा अपने भी उसमे निहित रहता है। इसलिए यह प्रतिज्ञप्ति सर्वव्यापी विधायक प्रतिज्ञप्ति है।

निश्चित बहुवचन वर्णन का व्यवहार ऐसी प्रतिज्ञप्तियो को व्यक्त करने के लिए होता है जैसे लोक सभा के सदस्य निर्वाचित होते हैं, समिति के सदस्यो की शिकायत की सूचना दे दी गई है। ऐसी प्रतिज्ञप्तियो मे वर्णन द्वारा सुनिश्चित किसी वर्ग के प्रत्येक सदस्य के बारे मे कोई कथन किया जाता है।

अनिश्चित वर्णनो का व्यवहार ऐसी प्रतिज्ञप्तियो के कथन मे होता है जैसे राजा के परिवार का कोई सदस्य मारा गया था। यह इसके तुल्य है: 'राजा के परिवार मे कम-से-कम एक सदस्य है और वह मारा गया था'। ऐसी प्रतिज्ञप्तियाँ बहुधा इस प्रकार के वाचिक रूपो द्वारा व्यक्त की जाती है 'कोई अमुक व्यक्ति ऐसा ऐसा है'। पर, फिर हमे यहाँ ध्यान देना चाहिए कि एक ही तरह के वाचिक रूप भिन्न प्रकार की प्रतिज्ञप्तियो को व्यक्त करने मे प्रयुक्त हो सकते है, जैसे 'एक कुत्ता हड्डी पसद करता है' का अर्थ है कि 'प्रत्येक कुत्ता हड्डी पसद करता है।'

—:o:—

अध्याय ७

चर, प्रतिज्ञप्ति आकार एवं वस्तुगत आपादन

§ १. परिवर्त्ती प्रतीक

पूर्ववर्त्ती अध्यायो मे हमने बहुधा निदर्शी प्रतीको का * व्यवहार किया है। ऐसे प्रतीको की तार्किक आवश्यकता नही है, पर इनका प्रयोग सुविधाजनक है और सभवत, मनोविज्ञान की दृष्टि से, प्रतिज्ञप्तियो के आकार पर ध्यान केंद्रित करने के लिए, अनिवार्य है। निदर्शी प्रतीक तर्कशास्त्र एव गणित तक ही सीमित नही हैं। इनका प्रयोग सर्वनाम के रूप मे हमारे सामान्य बोलचाल मे होता रहता है। उदाहरणार्थ, मान लें कि आप वायरलेस पर समाचार सुन रहे हैं और बहुत से मनुष्यो के साथ किसी कमरे मे हैं। उनमे से कुछ व्यक्ति जो कहा जा रहा है, उसे सुनने के लिए उत्सुक नही है। वहाँ धीरे धीरे वातचीत करने की गुनगुनाहट हो रही है। आप कहते है 'मैं सुन नही सकता, कोई कुछ कह रहा है, यह आवश्यक हो सकता है पर क्या समाचार के समाप्त होने तक प्रतीक्षा नही की जा सकती ?' यहाँ 'मैं' वक्ता के लिए आया है और निश्चित ही उस व्यक्ति की ओर सकेत करता है, जो जानता है कि मैं बोल रहा हूँ, 'कोई कुछ कह रहा है' निश्चित नही करता कि कौन क्या कह रहा है, ये सर्वनाम निदर्शी प्रतीक है, जो कमरे मे उपस्थित मनुष्यो के वर्ग मे से किसी एक व्यक्ति के लिए आते हैं, पर वह व्यक्ति अनिश्चित है। कल्पना करें कि अब आप कहते हैं, 'मोहन, तुम्ही बात कर रहे हो,' तो 'मोहन' एक व्यक्ति का नामकरण करता है, अर्थात् निदर्शी प्रतीक 'कोई' के स्थान पर एक निश्चित व्यक्ति का नाम 'मोहन' आ गया। अनिश्चित सर्वनाम 'कोई' के प्रतिकूल अब हम अचर 'मोहन' कह कर पुकारने लगे, क्योकि जब कभी इसका प्रयोग होता है, यह उसी व्यक्ति की ओर सकेत करता है (हाँ, यहाँ मान लेना पडेगा कि उस समूह मे केवल एक ही 'मोहन' नाम वाला व्यक्ति है)। पुरुषवाची सर्वनाम का भी अनिश्चित प्रयोग हो सकता है, यदि सकेत

---

* विद्यार्थियो को चाहिए कि अध्याय(२), (४-५) को अपनी सुविधा के लिए पढ लें।

किया जाने वाला व्यक्ति निश्चित नही है। इस पुस्तक मे 'मैं' एव 'तुम' का ऐसा ही प्रयोग हुआ है, 'मैं' किसी एक व्यक्ति के लिए (वक्ता, प्रश्नकर्त्ता इत्यादि) तथा 'तुम' किसी दूसरे व्यक्ति के लिए (श्रोता, उत्तर देनेवाला इत्यादि)। * 'वह' का बहुधा ऐसा प्रयोग होता है कि वह किसी अनिश्चित हत्यारे का द्योतक होता है (कम-से-कम जासूसी उपन्यास मे), कानून की पुस्तको मे और विभिन्न प्रकार के वर्णनो मे तथा इस पुस्तक मे कुछ स्थानो पर जहाँ 'वह' सदर्भानुसार किसी स्त्री के लिए होता है, पुरुष-वाची 'वह' का अनिश्चित प्रयोग हुआ है। इस परपरा के हमलोग ऐसे अभ्यस्त हो गये हैं कि इनके सकेत समझने मे कठिनाई नही होती। (अभी पूर्व वाक्य मे 'हम' का प्रयोग निदर्शी रीति मे हुआ है, यहाँ यद्यपि 'हम' से एक व्यक्ति की ओर सकेत है और वह है लेखक।) सर्वनामो के प्रयोगो के समान चर प्रतीको को भी समझने मे कठिनाई नही होती। यदि सदर्भ से सर्वनामो का प्रयोग सुनिश्चित न हो जाय, तो ऐसे कथन जिनमे सर्वनामो का व्यवहार हुआ है, भ्रातिपूर्ण होगे, सामान्यत ऐसा ही होता है। पर, कभी-कभी विनिर्देशन (Specification) के अभाव मे कठिनाइयाँ उपस्थित हो जाती हैं।

निम्न कथन पर विचार करें :

(१) 'कोई कुछ कह रहा है।'

(२) 'वह कुछ कह रहा है।'

(३) 'मोहन कुछ कह रहा है।'

(४) 'मोहन कह रहा है कि वह उसकी बातें नही सुनना चाहता।'

(५) 'मोहन कह रहा है कि वह देवदत्त की बातें नही सुनना चाहता।'

हम ज्यो-ज्यो (१) से (५) तक आते हैं, विनिर्देशन अधिकाधिक पूर्ण होता जाता है, अर्थात् प्रत्येक कदम पर पूर्व बिना विनिर्देशन के सकेतित तत्त्व अब सुनिश्चित कर दिया जाता है। हिंदी भाषा के सामान्य परपरानुसार (५) को पूर्णत सुनिश्चित कहा जा सकता है, क्योकि 'वह' बिना किसी भ्रम के 'मोहन' के लिए आया है। यह तो प्रतिपादन का प्रश्न है कि (१) को हम प्रतिज्ञप्ति मानेंगे अथवा नही, यदि इसे सत्य या असत्य माना जाय, तो यह प्रतिज्ञप्ति है। कुछ तर्कशास्त्री (१) को प्रतिज्ञप्ति का आकार मान सकते हैं और कहेंगे कि इसे प्रतिज्ञप्ति मे परिणत करने के लिए अनिश्चित 'कोई', 'कुछ' के स्थान पर सुनिश्चित तत्त्व अवश्य होना चाहिए।

* अध्याय II § २ देखिए जहाँ सूचना दी गई थी कि इस रीति का अनुसार किया जाएगा।

इस मत से (२) एव (३) को प्रतिज्ञप्ति-आकार मानना पडेगा, तब सभवत (३) एव (४) के बीच रेखा खीचना कठिन है, क्योकि 'उसको' (उसकी बातें) सुनिश्चित नही है तथा 'वह' केवल परपरा के अनुसार मोहन को सकेत करता है कि जिसने (४) कथन किया है, उसी मे 'वह' के लिए व्यक्तिवाचक नाम का व्यवहार किया होगा, पर यहाँ यह भी समझे जाने का डर है कि मोहन किसी अन्य व्यक्ति राम के बारे मे कह रहा है कि वह सुनना नही चाहता। तब विचार करने पर (५) के बारे मे भी हमे शका होने लगती है। लेकिन, मैं (इस पुस्तक के लेखक होने के कारण) इस परिच्छेद के प्रारभ मे दिये गये दृष्टात के सदर्भ मे (५) को सर्वथा सुनिश्चित मानता हूँ। सदर्भ है कि कमरे मे कुछ मनुष्य बैठे हैं। उनमे से कुछ वायरलेस सुन रहे है। इस प्रकार, दिये हुए सदर्भ मे, (१) से (५) तक सभी को प्रतिज्ञप्ति मानने के लिए पर्याप्त कारण हैं, क्योकि (यह मान लिया गया है) इनमे से प्रत्येक कथन किसी निश्चित व्यक्ति द्वारा किसी निश्चित परिस्थिति मे कहा गया है और या तो सत्य होगा या असत्य, इसलिए यह प्रतिज्ञप्ति है। (१) से (४) तक मे से कोई या सभी प्रतिज्ञप्तियाँ हैं अथवा (यो कहे) प्रतिज्ञप्तियो की केवल समाकृति मात्र हैं—यह हिचकिचाहट हमे प्रतिज्ञप्ति एव प्रतिज्ञप्तीय आकार (या प्रतिज्ञप्ति के लिए समाकृति) के बीच भेद को स्पष्ट समझने मे हमारी सहायता करेगी।

निम्नलिखित अभिव्यजनाओ पर विचार करें

(१) राम श्याम को प्यार करता है। (६) कोई गोविंद से घृणा करता है।
(२) राम मोहन को प्यार करता है। (७) कोई किसी से घृणा करता है।
(३) गोपाल मोहन को प्यार करता है। (८) क किसी से घृणा करता है।
(४) गोपाल मोहन से घृणा करता है। (९) क ख से घृणा करता है।
(५) गोपाल गोविंद से घृणा करता है। (१०) x y से घृणा करता है।

स्पष्टत (१) से (५) तक प्रतिज्ञप्तियो के उदाहरण हैं, (६) अभिव्यक्ति का एक प्रारूप है, जो अवश्य ही किसी व्यक्ति द्वारा प्रतिज्ञप्ति के रूप मे रखा जा सकता है, वह व्यक्ति गोविंद के प्रति होने वाली दुखद घटनाओ का कारण देने का प्रयास कर रहा है। (७) ऐसी अभिव्यक्ति है, जिसका उपर्युक्त सदर्भ ऐसे स्थलो के अतिरिक्त सभवत अन्य कही व्यवहार नही हो सकता। (८) एव (९) प्रतिज्ञप्तियाँ नही हैं, क्योकि यह कथन कोई अर्थ नही रखता कि वर्णमाला का कोई अक्षर घृणा करता है, हमने कोई परपरा नही अपनायी है कि क काम के लिए आशुप्रतीक है या ख खूरो के लिए, अथवा किसी अन्य व्यक्तिवाचक नाम के लिए (१०) प्रतिज्ञप्तीय

आकार है, यदि x के स्थान पर कोई अचर और y के स्थान पर दूसरा अचर रख दिया जाय, तो यह एक प्रतिज्ञप्ति बन जाएगी—प्रतिज्ञप्ति मे कही जाने वाली बात के अनुसार यह सत्य या असत्य होगी। (१०) मे हमे रिक्त प्रतिज्ञप्ति-आकार प्राप्त होता है, जहाँ दो चर x, y के साथ एक अचर घृणा करता है, दिया गया है।

चर (Variable) अथवा अधिक सुस्पष्ट-चर प्रतीक (Variable symbol)—वह प्रतीक है जिसके स्थान पर विभिन्न अचरो मे से कोई एक को रखा जा सकता है, अचर प्रतीको मे से प्रत्येक विभिन्न व्यक्तियो के लिए आता है। अत, यदि मानें कि हम उन्ही पाँचो व्यक्तियो तक सीमित हैं, जिनका नाम (१) (५) तक की प्रतिज्ञप्तियो मे आया है, और यह भी मानें कि ये प्रतिज्ञप्तियाँ उनके आपसी सबधो का सत्य कथन करती हैं, तब, यदि (१०) मे x के स्थान पर इन नामो मे से किसी एक को और y के स्थान पर किसी दूसरे को रख दें, जबतक सभी सभावनायें समाप्त न हो जायें, तो फल होगा कुछ उदाहरणो मे सत्य और कुछ उदाहरणो मे असत्य प्रतिज्ञप्ति प्राप्त होगी। इस प्रकार चर के स्थान पर आने वाले अचर को चर के मूल्य (Values of the variables) कहे जाते हैं।

जैसा (१०) मे कहा गया है, हम उससे एक कदम आगे बढ सकते है, 'घृणा करता है' इसे भी परिवर्तनशील माना जा सकता है, तब यह लिखा जाएगा 'xRy' यह शुद्ध प्रतिज्ञप्ति-आकार है, निश्चित व्यक्ति, भावना इत्यादि से इसे बिलकुल पृथक् कर लिया गया है; कोई चीज सुनिश्चित नही है, बल्कि किसी वस्तु का प्रतिनिधित्व हो रहा है, जैसे दो पदो में सबध व्यक्त करनेवाली प्रतिज्ञप्तियो मे समान रूप से पाया जाने वाला आकार। xRy द्विपदी प्रतिज्ञप्ति आकार है। गोपाल मोहन से लबा है, पृथ्वीराज का जीवनकाल अकबर के पहले है, राजेंद्र ने ईश्वर की पूजा की, ये आकार xRy के उदाहरण हैं, और प्रतीक xRy इस प्रकार की सभी प्रतिज्ञप्तियो का प्रतीक माना जा सकता है।

प्रतिज्ञप्ति-आकार एक समाकृति है, प्रतीको का प्रयोग व्यक्त करता है कि मानो रिक्त स्थान भरे जाने के लिए प्रतीक्षा कर रहे हैं, जब सभी स्थान भर दिये जाते हैं, तो निष्कर्ष होता है, एक प्रतिज्ञप्ति। यदि प्रतीक अपेक्षित कार्य करें, तो उनके प्रयोग मे तार्किक दृष्टि से कोई बधन नही है। पर, ऐसे प्रतीको का प्रयोग करना सुविधाजनक है, जो अधिकाधिक सरलतापूर्वक समझ मे आये और याद रहे। इसीलिए तर्कशास्त्री अ, ब, स (और यदि तीन से अधिक की आवश्यकता है, तो वर्णमाला के और अक्षर) का व्यवहार चर-मूल्य-निरूपित रिक्त स्थानो को व्यक्त करने के लिए करते हैं। अनिश्चित सबध के लिए बहुधा R का प्रयोग होता है।

कभी-कभी ϕ, या ग्रीक वर्णमाला के अन्य बडे अक्षरो का व्यवहार होता है, और सबधीय आकार अपेक्षित चरो की सख्यानुसार अर्थात् सबध के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए जितने पदो की आवश्यकता होती है, लिखे जाते है ϕ (x,y), ϕ (xyz) । ϕ को हम निदर्शी प्रतीक कह सकते है ।*

§ २ प्रतिज्ञप्ति-फलन एवं सामान्य प्रतिज्ञप्तियाँ

बर्ट्रैन्ड रसेल प्रतिज्ञप्ति आकार को प्रतिज्ञप्ति-फलन (Propositional functions) कहते है, क्योकि ये कुछ अश तक गणित-फलन की तरह है । हम फलन कहे या 'आकार', यह महत्त्वपूर्ण नही है । प्रतिज्ञप्ति आकार का एक लाभ है कि इससे वर्ग के सपूर्ण व्यक्ति या कुछ व्यक्ति की दृष्टि से प्रतिज्ञप्तियो का विश्लेषण करने मे हम समर्थ होते है । इस सदर्भ मे आकार' की अपेक्षा फलन कहना अधिक सुविधाजनक है, किंतु इस पर अवश्य बल देना चाहिए कि प्रतिज्ञप्ति-फलन प्रतिज्ञप्ति-आकार है—एक समाकृति जिसे प्रतिज्ञप्ति प्राप्त करने के लिए सुनिश्चित करने की आवश्यकता है ।

प्रतिज्ञप्तियाँ, कामू उदास है, ख्रूरो उदास है, गोपाल प्रसन्न है, एक आकार वाली कही जायेंगी—इन सबमे एक गुण एक व्यक्ति पर आरोपित हुआ है, दूसरे उदाहरण है, यह लाल है, ** वह चर्ग है । यदि इन प्रतिज्ञप्तियो मे से किसी मे उद्देश्य-पद हटा कर उस स्थान पर रख दे तो हमे प्रतिज्ञप्ति-आकार मिल जाता है, जैसे 'x उदास है', इसमे एक चर है । x के लिए आने वाले मूल्य को दिये हुए प्रतिज्ञप्ति-फलन का कोणाक (Arguments) या आर्गुमेन्ट कहते हैं । + कोणाक निश्चित पदार्थ हैं, जिस

** स्वय ϕ को भी चर माना जा सकता है, जैसे किसी क्रमिक सबध के लिए ϕ का प्रयोग हो सकता है, ऐसी अवस्था मे दो चरो की आवश्यकता होगी, तब हम इसे लिखेंगे ϕ (x, y) ।

* यह महस करना सभव है कि उपर्युक्त पाँच प्रतिज्ञप्तियाँ उद्देश्य-विधेय प्रतिज्ञप्तियाँ नही हैं, और, उदाहरण के लिए, यह लाल है सबधी प्रतिज्ञप्ति है, क्योकि (यह कहा जा सकता है), लाल किसी अपरिवर्तनीय बहुपदी सबध । (An irreducible polyadic relation) मे एक पद है । मैं स्वय लाल के प्रति यही मत रखता हूँ, किंतु ऐसे मत की पूर्व मान्यता है, और हम समझते है कि लाल को असबधीय गुण, तथा यह लाल है, सरल उद्देश्य-विधेय प्रतिज्ञप्ति कहने का क्या अर्थ है । हम यहाँ इसे इसी रूप मे लेंगे ।

+ यह 'आर्गुमेन्ट' शब्द का प्राविधिक (Technical) प्रयोग है, यह उस 'आर्गुमेन्ट से कोई सबध नही रखता, जिसका अर्थ होता है श्रृंखलाबद्ध अनुमान ।

संदर्भ मे हम विचार करेंगे, उसमे ये व्यक्ति होगे। इन व्यक्तियो के नामाकरण के लिए जिन प्रतीको का प्रयोग होता है, उन्हे अचर (Constants) कहते है। कभी-कभी हम a,b,c या वर्णमाला के अन्य अक्षरो का व्यवहार सुनिश्चित व्यक्तियो के लिए निदर्शी प्रतीको के रूप मे करते है, पर वस्तुत वे व्यक्ति निश्चित नही होते।* अत $\phi a, \phi(a+b)$ मे से प्रत्येक अपने-अपने प्रकार्यो के अनिश्चित, किंतु अचर मूल्य का प्रतिनिधित्व करते हैं।

सकेत-चिह्नो के वारे मे एक और वात है, जिसके वारे मे, परिशुद्धता के लिये हमे स्पष्ट हो जाना चाहिए। कभी-कभी हम किसी दिये हुए प्रकार्य के लिए आवश्यक चरो की सख्या निर्दिष्ट करना चाहते है। जैसे हम ϕx को $\phi(\hat{x},\hat{y})$ से भिन्न करते है,+ क्योकि पहले मे एक और दूसरे मे दो चरो की आवश्यकता है।

यदि हम ϕx लिखें, तो हमे $\phi\hat{x}$ का चर मूल्य भी वतलाना चाहिए, अर्थात् ϕ से सकेतित प्रकार्य (Function) हमे इस पुस्तक मे ϕx के प्रयोग की आवश्यकता नही होगी, पर हमे इसका भेद समझ लेना चाहिए। हम कह सकते है कि $\phi\hat{x}$ उस वस्तु का सकेत करता है, जिसमे ϕ गुण है, पर $\phi\hat{x}$ उस गुण को सकेत करता है, जो किसी वस्तु मे पाया जाता है। ϕa किसी अचर को सूचित करता है, पर $\phi\hat{x}$ प्रकार्य के अनिश्चित मूल्य को। हम ϕa' का वैसा ही प्रयोग करते है जैसे कामू उदास है का प्रयोग हमने केवल निदर्शन के लिए, पूर्ववर्त्ती पैराग्राफ मे किया है। हम किसी वास्तविक व्यक्ति कामू के उदास होने के वारे मे कथन नही कर रहे थे, हमने 'कामू' का दृष्टात के लिए व्यवहार किया है। इस प्रकार 'ϕa मे ϕ किसी निश्चित परतु अविनिर्देशित गुणधर्म के लिए आता है, 'a' किसी निश्चित परतु अविनिर्देशित व्यक्ति के लिए, जिसमे वह गुण होता है।

---

*a,b,c जैसे प्रतीक जिनका इस प्रकार का प्रयोग होता है, गणित मे प्राचल के समान हैं। उदाहरण के लिए, $ax+by-c=0$ मे जो किसी रैखिक सह-सबद्धता (Linear-correlation) का प्रतीक होता है। a, b, c चर के रूप मे x,y की तरह प्रयुक्त होते है। ये किसी सख्या के द्योतक होते है, पर ये x y से भिन्न हैं, क्योकि x,y के साथ एक तरह के कार्य मे हर स्थान पर ये अपना मूल्य एक ही तरह का अपरिवर्तनशील रखते हैं पर चूँकि a,b,c को सुनिश्चित मूल्य नही प्रदान किया गया है, इसलिए निष्कर्ष किसी सख्या पर लागू हो सकता है, अत a,b,c वास्तव मे चर हैं (इस सदर्भ मे देखिए, ए० एन० ह्वाइटहेड, इट्रोडक्शन टू मैथेमेटिक्स, पृष्ठ ६८-९, ११६-१७)।

+'$\phi\hat{x}$' को 'ϕx-टोप' पढना चाहिए (ϕ Cap)

किसी दी हुई प्रतिज्ञप्ति-फलन के सभी सभव कोणाक का सम्मिलित रूप उस प्रतिज्ञप्ति फलन का प्रात (Domain) कहा जाता है। सभव कोणाक वह है, जिसके प्रयोग से प्रतिज्ञप्ति-आकार पूर्ण होता है और प्रतिज्ञप्ति अर्थयुक्त होती है। उदाहरणार्थ '$\hat{x}$ भारती है' पर विचार करे और $\hat{x}$ के निर्धारण के लिए कुछ सभव मूल्य ले जैसे महात्मा गाधी, अयूब खाँ, सुभाषचन्द्र बोस, राजेंद्र प्रसाद, भडारनायक। इन पाँचो नामो मे किसी एक को x के स्थान पर रखने से सार्थक प्रतिज्ञप्ति प्राप्त होगी। किंतु तर्केतर ज्ञान के आधार पर हम कह सकते है कि केवल प्रथम, तृतीय एव चतुर्थ ही से सत्य प्रतिज्ञप्ति मिलेगी। जिन कोणाको से सत्य प्रतिज्ञप्ति बनती है, उन्हे फलन को **पूर्ण करनेवाला** कहा जाता है—गणित की शब्दावली से लिया गया यह एक सुविधाजनक शब्द है, दूसरे, फलन को पूर्ण नही करते बल्कि वे सार्थक बनाते हैं और इसलिए प्रात मे अवश्य सम्मिलित किये जाने चाहिए। यदि '$\hat{x}$ भारती है' मे x के स्थान पर हम 'प्रत्युत्पन्नमति' शब्द रखे, तो इससे निरर्थक शब्दो का एक सकलन प्राप्त होगा। चर-मूल्यो के रखने से जो सार्थक प्रतिज्ञप्तियाँ बन सकती हैं, उन्हे प्रतिज्ञप्ति-फलन का सार्थकता-परास (Range of Significance) कहते है।

कल्पना करें कि विश्वविद्यालय के विद्यार्थियो मे से किसी एक वर्ष तर्कशास्त्र की कक्षा मे बारह विद्यार्थी है जिन्हे क ख ग ढ अक्षरो से क्रमश सबोधित करने है। जाँच करने पर ज्ञात हुआ (हम ऐसी कल्पना करें) कि क शतरज का खिलाडी है, ख शतरज का खिलाडी है, और इसी प्रकार ढ तक सभी शतरज के खिलाडी है। यह सूचना बारह अगभूत प्रतिज्ञप्तियो के सयोग से दी जा सकती है। **क शतरज का खिलाडी है, और ख शतरज का खिलाडी है, और ढ शतरज का खिलाडी है।** यदि इन बारहो अगभूत घटको का अलग-अलग उल्लेख किया जाय, तो इन्हे लिखने या कहने मे अधिक समय लगेगा। यही सूचना सक्षेप मे यह कह कर दी जा सकती है कि **ये सभी तर्कशास्त्र के विद्यार्थी शतरज के खिलाडी हैं।** यह प्रतिज्ञप्ति बारह घटको वाली सयुक्त प्रतिज्ञप्ति के तुल्य है, क्योकि 'ये सभी' इतना ही नही व्यक्त करता कि इन विद्यार्थियो मे से प्रत्येक शतरज का खिलाडी है, बल्कि यह भी व्यक्त करता है कि हमने किसी को छोडा नही है। ऐसी प्रतिज्ञप्ति गणनात्मक होती है, क्योकि जिनके बारे मे कथन होता है, उन सभी व्यक्तियो पर अलग-अलग विचार कर लिया जाता है। स्पष्टत यह सीमित वर्ग मे ही सभव हो सकता है, जहाँ हम सभी सदस्यो से परिचित हो। जहाँ किसी वर्ग में सदस्यो की सख्या अनत हो, वहाँ इस प्रकार की गणना सिद्धांत भी नही हो सकती और यदि किसी वर्ग मे सदस्यो की सख्या अनिश्चित रूप से बडी हो, तो वस्तुत उनकी गणना नही हो सकती। यहाँ हम इन कठिनाइयो पर बिना ध्यान दिये अपने सीमित प्रात (Limited domain) पर ही विचार करेंगे।

हमे ध्यान देना चाहिए कि ऐसी अभिव्यजना जैसे 'ये सभी तर्कशास्त्र के विद्यार्थी शतरज के खिलाडी हैं' से किसी वास्तविक सर्वव्यापी प्रतिज्ञप्ति का अभिकथन नही होता, क्योकि 'ये' बारहो विद्यार्थियो के नाम के लिए मात्र आशुलिपि के अतिरिक्त कुछ नही है। हम कहें 'x के सभी मूल्यो के लिए, 'यदि x तर्कशास्त्र का विद्यार्थी है तो x शतरज का खिलाडी है।' यह अभिव्यक्ति बिना किसी बधन के व्यापक है, पर हम इस प्रकार की, प्रतिज्ञप्ति के अभिकथन का दावा इसीलिए करते है कि हमे मालूम है कि क, ख, ' ढ प्रत्येक युक्ति प्रतिज्ञप्ति फलन '$\hat{x}$' तर्कशास्त्र का विद्यार्थी है' एव '$\hat{x}$' शतरज का खिलाडी है' को पूरा करने वाली है और हम मान लेते हैं कि हमने किसी को छोडा नही है।

अब हम और आगे जानने की कल्पना करें कि इन विद्यार्थियो मे कुछ गायक है। इस बात को हम इस रूप मे कह सकते है, 'या तो क शतरज का खिलाडी है और गायक भी है या ब' ' ,' बिंदुओ से व्यक्त होता है कि हमे शेष दस विकल्प लिखना है। हम इसे ऐसे लिख सकते हैं, 'x के कुछ मूल्यो मे, x शतरज का खिलाडी और गायक है।' यह कुछ शतरज के खिलाडी गायक हैं के तुल्य है। यहाँ 'कुछ' का अपना सामान्य अर्थ है 'कम-से-कम एक।'

यह सरलता से देखा जा सकता है कि हम जिन अभिव्यजनाओ का प्रयोग करते आ रहे है वे पारपरिक सर्वव्यापी एव अशव्यापी प्रतिज्ञप्तो के व्यक्त करने के योग्य है। पहले तो विचित्र लगेगा कि किसी वर्ग के कुछ सदस्यो के बारे मे कहा गया कथन सामान्य प्रतिज्ञप्ति (General Proposition) है, पर जब तर्कशास्त्र के विद्यार्थी वाले उदाहरण को ध्यान से देखेगे, तो यह विचित्र नही लगेगा। यह कथन प्रात (Domain) के कुछ सदस्यो को ही सकेत करता है, पर यह सकेत बडे ही सामान्य ढग का है, अर्थात् किसी सदस्यविशेष को निश्चित करने की आवश्यकता नही है। अभिकथन है कि प्रात के कुछ व्यक्ति शतरज के खिलाडी एव गायक दोनो है। यह सामान्य कथन है।

अभी तक हम प्रतिज्ञप्ति-फलन के लिए ऐसे प्रात पर विचार कर रहे है, जो बारह सभव युक्तियो तक सीमित है, '$\hat{x}$ शतरज का खिलाडी है,' इत्यादि। अब हम इस सीमा को भूल जायँ और किन्ही दो गुणो पर विचार करे, हम इनके लिए क्रमश 'ϕ' एव 'ψ' प्रतीक रखेगे। इससे हमें दो प्रतिज्ञप्ति फलन $\phi \hat{x}$, $\psi \hat{x}$ प्राप्त होता है। मान लें कि $\phi \hat{x}$ एव $\psi \hat{x}$ के लिए, a कोई अचर मूल्य है। हम अभिकथन कर सकते हैं, यदि ϕa, तो ψa। यदि a या b रखने से कोई अतर नही पडता, बल्कि प्रात मे कोई युक्ति दोनो फलन को पूरा करती है, तो हम लिख सकते हैं सभी x के लिए, यदि ϕ x, तो ψ x। इनका सक्षेप रूप प्रचलित प्रणाली मे है (x). ϕx मे ψ x

निहित है। इस आकार को व्यक्त करने वाला उदाहरण होगा, यदि कोई पशु जुगाली करने वाला है, तो उसे सीग होगा, अर्थात् (x)। 'x जुगाली करने वाला पशु है' मे निहित है 'x सीग वाला पशु है।' यह एक प्रतिज्ञप्ति है और इस प्रकार या तो सत्य है या असत्य।

हमने देखा है कि x चर प्रतीक के रूप मे प्रयुक्त होता है। पर x के दो प्रयोग प्रणाली, (x) ϕx मे निहित है ψ x तथा ϕx̂ मे महत्त्वपूर्ण भेद है। हमने देखा कि ϕ x̂ किसी वस्तु मे पाये जानेवाले गुण का प्रतिनिधित्व करता है, यह पारपरिक अमूर्त्त पद के सदृश हे जैसे'x̂ लाल है' सरसरी तौर पर लालिमा के तुल्य है, एक गुण जो किसी वस्तु मे पाया जाता है। आकार 'x̂ लाल है' प्रतिज्ञप्ति नही है, जब तक 'x̂ लाल है' मे x के स्थान पर कोई मूल्य न रखा जाय, तब तक यह किसी चीज का अभिकथन नही करता। x के स्थान पर मूल्य रखने से बनी हुई प्रतिज्ञप्ति की सत्यता या असत्यता प्रतिस्थापित मूल्य पर आश्रित है। यदि पृष्ठ जिस पर यह छपा है 'x̂ लाल है' मे x के स्थान पर रखा जाय, तो उससे बनी हुई प्रतिज्ञप्ति असत्य होगी, यदि रक्त का रग प्रतिस्थापित किया जाय, तो उससे प्राप्त प्रतिज्ञप्ति सत्य होगी। अत, इस प्रकार प्राप्त प्रतिज्ञप्ति की सत्यता या असत्यता के निर्धारण के लिए प्रतिस्थापित पद का स्वरूप ही सब कुछ है। परतु, (x) 'x विद्युत्-चमक है' मे निहित है 'x के बाद गर्जन होगा,इससे प्राप्त प्रतिज्ञप्ति अवश्य सत्य होगी चाहे x के लिए कोई भी मूल्य रखा जाय। अत, दूसरी अभिव्यजना मे x को आभासी चर (Apparent variable) कहा जाता है * क्योकि प्राप्त प्रतिज्ञप्ति की सत्यता के लिये x को विशिष्ट मूल्य देने की आवश्यकता नही है, 'x̂ लाल है' मे हमे विशिष्ट मूल्य देना ही पडेगा, यहाँ x को वास्तविक चर कहते है।

इस पर ध्यान देना ,महत्त्वपूर्ण है कि (x)- 'x विद्युत्-चमक है' मे निहित है 'x के बाद गर्जन होगा' केवल उन्ही पदो पर नही लागू होता, जो विद्युत् की चमक हैं, यहाँ पर अभिकथन हो रहा है कि यदि x विद्युत्-चमक है, तो x के बाद गर्जन होगा। पारपरिक प्रतीको से भी हम इसकी अभिव्यजना कर सकते हैं: सभी स, प है। यह सभी न-स तथा स के बारे मे अभिकथन करता है। यदि ऐसा नही होता, तो हम प्रसगपत्ति-प्रणाली (reductio ad absurdam) का प्रयोग नही कर सकते, जिसके अनुसार निहितार्थ का प्रयोग होता है और उसके स्पष्टीकरण पर पूर्ववर्त्ती असत्य सिद्ध हो जाता है। यहाँ केवल इतना ही आवश्यक है कि (x)—'x स है' मे निहित है 'x प है', मे हमे जानना चाहिए कि सार्थक ढग से प्रतिज्ञप्ति-आकार मे x के

* 'आभासी चर' (Apparent variablo) पद का प्रयोग पियानो (Peano) ने किया है।

लिए क्या प्रतिस्थाप्ति हो सकता है। सार्थक प्रतिस्थापना के लिए क्या रखा जाय, यह 'स' एव 'प' के अर्थ पर निर्भर करता है, या, यदि हम ϕ, ψ प्रतीको का व्यवहार करे, तो 'ϕ' एव 'ψ' के अर्थ पर निर्भर करता है।

यहाँ एक बात पर ध्यान देना आवश्यक है, क्योंकि इसके बारे मे भ्रमित होना आसान है। प्रतिज्ञप्ति-आकार, या प्रतिज्ञप्ति-फलन प्रतिज्ञप्ति नहीं है, बल्कि जैसा हमने देखा है, यह एक रिक्त समाकृति है, जो किसी बात का अभिकथन नही करती। पर, यदि हम कह सकें कि प्रतिज्ञप्ति-फलन की सभव युक्तियाँ किन्ही पर लागू होती है, तब यह प्रतिज्ञप्ति हो जाती है। अत', वास्तविक एव आभासी चर के बीच का भेद बहुत ही महत्त्वपूर्ण है, पहले से हम किसी का अभिकथन नही करते, दूसरे से किसी सत्य या असत्य प्रतिज्ञप्ति का अभिकथन करते हैं।

हम चार पारपरिक प्रतिज्ञप्तियो को प्रतिज्ञप्ति-फलन के इस सिद्धात से सबद्ध प्रतीको मे लिखकर इस परिच्छेद का अत करेंगे। मान ले कि $\phi\,\hat{x}$ को पूरा करने वाले पदो के लिये स आता है, और $\psi\,\hat{x}$ को पूर्ण करने वाले पदो के लिए प। इससे हमे प्राप्त होता है—

'स$_{अ}$ प' का अर्थ है (x). $\phi\,x$ आपादन करता है $\psi\,x$

'स$_{ए}$ प' का अर्थ है (x) $\phi\,x$ आपादन करता है न-$\psi\,x$

'स$_{ई}$ प' का अर्थ है $(\exists x)$. $\phi\,x$ एव $\psi\,x$

'स$_{ओ}$ प' का अर्थ है $(\exists x)$. $\phi\,x$ एव न-$\psi\,x$

यहाँ नया प्रतीक '$\exists$' का प्रयोग सरलतापूर्वक पढा जा सकता है, क्योंकि हम दोनो से पूर्व परिचित हैं पारपरिक प्रतीक से (बाईं ओर लिखा हुआ) एव अशव्यापी प्रतिज्ञप्तियो के विश्लेषण से जो अभिकथन करती है 'x' के कम-से-कम एक मूल्य के लिए, $\phi\,x$ एव $\psi\,x$'। इसलिये '$\exists x$' पढा जा सकता है, कोई x ऐसा है कि ' या 'x के कुछ मूल्य के लिए '।

ये विभिन्न प्रतीक केवल साकेतिक रूप मे एक दूसरे से भिन्न हैं। पर, जो कोई गायन-सबधी सकेतन अथवा गणित के सकेतन के इतिहास से परिचित है, वह जानता है कि अच्छा सकेत मुख्य बातो को इस प्रकार स्पष्ट कर देता है कि वे अपेक्षाकृत अधिक आसानी से समझ मे आ जाती हैं। x के सकेतन की अच्छाई है कि यह स्पष्ट प्रदर्शित कर देता है कि इन सामान्य प्रतिज्ञप्तियो के अभिकथन मे गुणो का सबध व्यक्त किया जाता हैं तथा इन गुणो से युक्त व्यक्तियो को न जानने पर भी अभिकथन

सार्थक होता है। अध्याय V मे प्रयुक्त सकेतन (स प = ०, इत्यादि) की तरह यह सकेतन इस बात पर फिर बल देता है कि विधायक एव निषेधक प्रतिज्ञप्तियो मे भेद महत्त्वपूर्ण नही है, पर सर्वव्यापी और अशव्यापी का भेद मूल भेद है। अत मे यह हमे सचेत करता है कि आ, ए, ई, ओ प्रतिज्ञप्तियाँ किसी भी तरह सरल (Simple) प्रतिज्ञप्तियाँ नही हैं।

§ ३. वस्तुगत आपादन एवं अनुलग्नता

तर्कशास्त्र के विद्यार्थी वाले दृष्टात मे हमने विश्वास के साथ अभिकथन किया कि (x) 'x तर्कशास्त्र का विद्यार्थी है' आपादन करता है 'x शतरज का खिलाडी है', क्योकि हम बहुत ही सीमित प्रात का विवेचन कर रहे थे। वे सभी विद्यार्थी, जिन्होने तर्कशास्त्र पढा, वे शतरज के खिलाडी थे, इसे 'कोरी आकस्मिकता' जानकर (तर्कशास्त्र पढना प्रारभ करने के बहुत पूर्व से ही यह हो सकता है) हम यह अभिकथन नही करना चाहेगे कि यह इस बात से निकलता है कि यदि कोई तर्कशास्त्र पढता है, तो वह शतरज का खिलाडी भी होता है। पर, अपने प्रात के भीतर हम अभिकथन कर सकते थे कि यदि x तर्कशास्त्र का विद्यार्थी है, तो x शतरज का खिलाडी है, यह तुल्य है या तो x तर्कशास्त्र का विद्यार्थी नही है या x शतरज का खिलाडी है। ऊपर आ एव ए आकार लिखने मे हम 'आपादन करता है' का प्रयोग किया है। हमने देखा है (अध्याय II मे) कि यदि प तो क आकार की प्रतिज्ञप्ति का अर्थ हो सकता है प आपादन करता है क अर्थात् प सत्य नही हो सकता एव क असत्य। तर्कशास्त्र के विद्यार्थियो के प्रति किये गये हमारे अभिकथन के साथ यह मेल खाता है।

परतु, 'नही हो सकता' का अर्थ 'नही हो सकता था' भी हो सकता है, अथवा इसकी व्याख्या इस प्रकार भी हो सकती है, 'जैसी परिस्थिति है, उस दृष्टिकोण से नही हो सकता।' 'प सत्य नही हो सकता एव क असत्य' को दूसरा बहुत निर्बल अर्थ प्रदान करता है। यदि प, तो क इस व्याख्या को बर्ट्रेन्ड रसेल ने वस्तुगत आपादन (Material Implication) का नाम दिया है। इसकी परिभाषा निम्नलिखित ढग से की जा सकती है 'प वस्तुगत रूप से क का आपादन करता है' का अर्थ है 'या तो प असत्य है या क सत्य।'

आगे दिये हुए उदाहरणो मे निर्दशित अपेक्षाकृत अधिक सुनिश्चित संबध से हम वस्तुगत आपादन की तुलना कर उसकी भिन्नता स्पष्ट करेंगे (१) यदि कोई त्रिभुज समद्विबाहु है, तो इसके आधार के कोण बराबर है, (२) यदि यह लान

है तो यह रगीन है; (३) यदि अ, ब का पिता है, तो ब अ की सतान है, (४) यदि ब और म के माँ-बाप एक ही हैं तथा म पुरूप है, तो स ब का भाई है, (५) यदि सभी जासूस प्रत्युत्पन्नमति वाले है और कोई प्रत्युत्पन्नमति वाला मनुष्य सरलता से ठगा नहीं जा सकता है, तो कोई जासूस सरलता से ठगा नहीं जा सकता। उपर्युक्त प्रत्येक उदाहरण मे पूर्ववर्त्ती (अर्थात् आपादन करने वाली प्रतिज्ञप्ति) तथा अनुवर्त्ती (अर्थात् आपादित प्रतिज्ञप्ति) के बीच पाये जाने वाला सबध आवश्यक आपादन सबध है। द्रष्टव्य है कि यह वही सबध है, जो वैध अनुमान मे आधारवाक्य (सरल या मिश्र) एव निष्कर्ष के बीच पाया जाता है। पहले को छोड उपर्युक्त सभी उदाहरणो मे अकेले पूर्ववर्त्ती अनुवर्त्ती के आने को आवश्यक बनाने के लिये पर्याप्त है, दूसरा अकेले पूर्ववर्त्ती से तार्किक आवश्यकता के रूप मे निकलता है। (१) मे यूक्लिड की ज्यामिति को स्वयसिद्धियो की पूर्व मान्यता है, यह समझ लेने के बाद, हम (१) के लिये भी वही कह सकते हैं जो अन्य चारो उदाहरणो के लिये, कि पूर्ववर्त्ती सत्य नही हो सकता एव अनुवर्त्ती असत्य। इस सबध के लिये प्रो० जी० ई० मूर ने अनुलग्नता (Entailing) शब्द का प्रयोग किया है। अब बहुत से तर्कशास्त्रियो द्वारा उस सबध के सकेत मे यह शब्द प्रयुक्त होता है, जो प एव क मे तब पाया जाता है, जब प सत्य नहीं हो सकता एव क असत्य (P could not be true and Q be false)। किंतु, जब हम कहते हैं 'प आपादन करता है क' तब जिस सबध से बहुधा हमारा अभिप्राय होता है वही सबध यह है, अध्याय (१) मे 'आपादन करता हैं' को इसी अर्थ मे हमने प्रयोग किया है। अत, अनुलग्नता (Entailing) को अपेक्षाकृत निर्बल सबध से भिन्न करने के लिये हम बर्ट्रेंड रसेल का अनुसरण करेंगे, और तथ्यात्मक सबध को हम वस्तुगत आपादन (Material Implication) कहेंगे। ध्यान देना चाहिये कि यदि' तो भ्रातिपूर्ण है, क्योकि इसका प्रयोग वस्तुगत आपादन का द्योतक हो सकता है या अनुलग्नता का। इस प्रकार का वाक्य जैसे 'यदि कल ठडक रही, तो मैं घर मे ही रहूँगा', बहुत स्वाभाविक ढग से व्यक्त करता है कि यदि ठडक रही तो व्यावहारिकतानुसार मै बाहर नही जाऊँगा, इस वाक्य से साधारणत. यह नही समझा जायेगा कि कल ठडक का होना मेरे घर मे रहने को अनिवार्य बना देगा, इसके लिये हमारा विचार चाहे कितना भी दृढ क्यो न हो। पर, यह कहना अस्वाभाविक नही है कि 'यदि राम और श्याम खास चचेरे भाई हैं, तो उनके पिता सगे भाई हैं', यहाँ पूर्ववर्त्ती अनुवर्त्ती को अनिवार्य कर देता है, क्योकि पहली बात सत्य नही हो सकती एव दूसरी असत्य, अर्थात् पूर्ववर्त्ती अनुवर्त्ती को अनुलग्न करता है। इसलिये आश्चर्य नही होना चाहिये कि यदि" तो" की व्याख्या को लेकर काफी भ्राति है। अनुलग्नता तथा वस्तुगत आपादन दो भिन्न सबध है, इसे भी स्पष्ट न देखना भ्राति का कारण बनता है। एक प्रतिज्ञप्ति दूसरी प्रतिज्ञप्ति को किसी भी तरह आपा-

दन करती हो, किंतु वस्तुगत आपादन सभी सवधो मे सवसे निर्वल है। हाँ, इससे हर अवस्था मे आपादन की एक अनिवार्य परिस्थिति निर्धारित हो जाती है, जिसमे हम कह सकते हैं कि यदि प सत्य एव क असत्य है, तो प कभी भी क का आपादन नही कर सकता।

यहाँ सकेतन की दृष्टि से कुछ निदर्शी प्रतीको का ज्ञान कराना सुविधाजनक होगा। 'प वस्तुगत आपादन करता है क' इसकी परिभाषा मे हमने तार्किक सकेतन या तो या, एव किसी दी हुई प्रतिज्ञप्ति के निषेध का प्रयोग किया। 'प असत्य है' कहना प को अस्वीकार करता है या प का निषेध। अत, हम प के व्याघात को न-प लिख सकते हैं। अभी तक हमने रेखा-प्रतीक का प्रयोग किया है और 'प असत्य है' के लिये 'प̄' लिखा है। अव हम वर्ट्रेंड रसेल द्वारा **प्रिंसिपिया मैथमेटिका** मे दिये गये प्रतीको का व्यवहार करेगे, p के निषेध 'not-p' को इसमे '$\sim$ p' लिखा जाता है। यह केवल सकेतन मे '$\bar{p}$' से भिन्न है, जैसे 'IV' सकेतन मे '4' से भिन्न है। या तो या ,' द्वारा अभिव्यजित विचार 'v' द्वारा व्यक्त किया जायगा। इस प्रकार 'या तो p या q' को 'pvq' लिखा जायगा। * अब हम वस्तुगत आपादन की परिभाषा को भाषा-आकार मे पुन लिखेंगे।

$$p \supset q. = \sim pvq \; df$$

प्रतीक $\supset$ 'वस्तुगत आपादान करता है' के लिये आशुलिपि है, ' = df' 'का पारिभाषित तुल्य है' के लिये आशुलिपि है। विद्यार्थियो को इस अभिव्यजना के पढने मे कठिनाई नही होनी चाहिये। उन्हे यह अवश्य याद रखना चाहिये कि दाई ओर की अभिव्यजना-परिभाषक, बाई ओर की अभिव्यजना का अर्थ परिभाषा के रूप मे व्यक्त करती है। जव कभी हम किसी अभिव्यजना की परिभाषा दें, तो अपने शब्द-प्रयोगो मे सगत के लिये हमे अवश्य ही उस परिभाषा के अनुकूल रहना चाहिये, अत जव हम कहते हैं 'p वस्तुगत आपादन करता है, 'q' या 'p$\supset$q' लिखते है, तो हमारा अभिप्राय ठीक वही होता है, जो '$\sim$ p v q' से अभिव्यक्त होता है, अर्थात् 'या तो p असत्य है या q सत्य,' या तो या अव्यावर्त्तक (Non exclusive) है।

इस परिभाषा को ध्यान मे रखते हुये हम देखेंगे कि वस्तुगत आपादन उन प्रतिज्ञप्तियो मे पाया जाता है, जिनमे से कोई भी प्रतिज्ञप्ति सामान्यतया दूसरे को

---

*प्रतीक 'v' अक्षर v से लिया गया है, जो vel का प्रथम अक्षर है। यह लैटिन का 'or' है। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि रसेल तथा प्रतीकात्मक तर्कशास्त्री सामान्यतया इस सवध को वियोजन (Disjunction) कहते है।

आपादित करनेवाली नही कही जा सकती, सामान्यतया 'आपादित करता है' से हमे उस सबध का बोध होता है, जो प्रासगिक रूप से शृखलाबद्ध प्रतिज्ञप्तियो मे पाया जाता है, प्रासगिक सबद्धता से सभवत हमारा तात्पर्य है प्रतिज्ञप्तियो के अर्थ मे सबद्धता, वस्तुगत आपादान के कुछ उदाहरणो की समीक्षा करने के पश्चात् हम इस पर फिर विचार करेंगे। इन उदाहरणो को कहते समय हम मान लेते हैं कि हम जानते है कि कौन प्रतिज्ञप्ति सत्य है और कौन असत्य (तर्कशास्त्र से प्राप्त ज्ञान से स्वतत्र), हम यह भी जानते हैं कि प्रत्येक प्रतिज्ञप्ति या तो सत्य होती है या असत्य।

(अ) २+२=४　　(क) त्रिभुज मे तीन भुजाएँ होती है

(ब) बर्मा एक द्वीप है।　　(ख) रोम इगलैड मे है।

(स) बिल्ली के दस पैर होते है।　　(ग) ६+४१=४७

(द) मगध विश्वविद्यालय बोधगया मे है।　　(घ) पुरी के शकराचार्य स्त्री है।

उदाहरण-वाक्यो मे वर्णमाला के अक्षरो से निर्देशित किये गये हैं, ताकि इन्हे कम स्थान मे सक्षिप्त रूप से लिखा जा सके, अत (अ) इत्यादि इन प्रतिज्ञप्तियो के नाम के लिये प्रयुक्त होगा।*

यहाँ हम देख सकते हैं·

(अ) ⊃ (क), (ब) ⊃ (ख), (स) ⊃ (ग),

(द) वस्तुगत आपादन (घ) का नही करता, क्योकि (द) सत्य है और (घ) असत्य। पर, अन्य तीन उदाहरणो में या तो पहला कथन असत्य है या द्वितीय सत्य, और चूँकि या तो ' या व्यावर्त्तक (Exclusive) नही है इसलिये हम ऐसी परिस्थिति स्वीकार कर सकते हैं, जब दोनो प्रथम असत्य हो एव द्वितीय सत्य। व्यावर्त्तित परिस्थिति है जब प्रथम सत्य हो और द्वितीय असत्य, क्योकि जो कुछ किसी सत्य प्रतिज्ञप्ति से आपादित होता है, वह सत्य होता है· हम देख चुके हैं कि 'आपादन करता है' शब्द से सबद्ध सभी सभव अर्थ के लिये यह शर्त अनिवार्य है।

यह देखना सरल है कि दी हुई आठ प्रतिज्ञप्तियाँ अन्य दृष्टात देने मे समर्थ हैं जैसे (अ) ⊃ (द), (ब) ⊃ अन्य प्रतिज्ञप्तियो मे से प्रत्येक को, इत्यादि।

---

*आगे आने वाले कथनो को पढने समय विद्यार्थियो को चाहिये कि वे अपने मन मे (अ। के स्थान पर २+२=४ प्रतिज्ञप्ति रख दें और इसी प्रकार सूची के अन्य अक्षरो के लिये भी याद कर लें।

इन परिस्थितियो को हम दूसरी तरह से भी व्यक्त कर सकते हैं। प्रत्येक प्रतिज्ञप्ति मे सत्य असत्य की दृष्टि से दो सभावनाएँ होती है, वे हैं सत्य, असत्य। इन्हें सत्यता-मूल्य (Truth-values) कहते है। दो प्रतिज्ञप्तियो से चार सयोग होते (१) दोनो सत्य, (२) दोनो असत्य, (३) एव (४) एक सत्य, दूसरा असत्य। सत्य के लिये T, असत्य के लिये F का प्रयोग कर हम इन्हें निम्न रीति से लिखेंगे

p	q
T	T
T	F
F	T
F	F

इस सकेतन का प्रयोग कर हम मिश्र प्रतिज्ञप्तियाँ लिखेंगे, p को q के साथ सयुक्त करने से तीन तरह की प्रतिज्ञप्तियाँ प्राप्त होती हैं (i) ⊃ से, (ii) v से (iii) उस सयोजक से जिसका प्रतीक हम ( ) रखेंगे, जैसे 'p q' अर्थात् 'p एव q'

p	q	p ⊃ q	p v q	p q
T	T	T	T	T
T	F	F	T	F
F	T	T	T	F
F	F	T	F	F

इस तालिका पर दृष्टि डालते ही हम देख सकते हैं कि p का q के साथ सयोग (अर्थात् p . q) तीन सभावनाओ को अपवर्जित करती हैं (Excludes), पर

$p \supset q$ केवल एक को अपवर्जित करती है, वह है p सत्य और q असत्य, $p \vee q$ भी केवल एक सभावना अपवर्जित करती है। वह है दोनो p एव q असत्य/सत्य या असत्य की दृष्टि से $p \supset q$ की व्याख्या पर हमारा ध्यान है, हम पाते हैं कि सत्य या असत्य कोई प्रतिज्ञप्ति किसी दूसरी असत्य प्रतिज्ञप्ति द्वारा वस्तुगत रूप से आपादित होती है और कोई सत्य प्रतिज्ञप्ति किसी अन्य प्रतिज्ञप्ति सत्य या असत्य से वस्तुगत रूप से आपादित होती है। उपर्युक्त तालिका मे दी हुई आठ सार्थक प्रतिज्ञप्तियो पर विचार-विमर्श द्वारा जिस निष्कर्ष पर हम पहुँचे है, उसी के अनुकूल यह निष्कर्ष है।

यह निष्कर्ष विरोधाभासी कहा गया है। सचमुच जिन निष्कर्षो का हमने अभी सक्षेप मे उल्लेख किया है, उन्हे 'आपादन का विरोधाभास' (The Poradose of Implication) कहा गया है पर, यहाँ कोई विरोधाभास नही है, क्योकि विरोधाभास ऐसे कथन को कहते हैं, जो देखने मे असगत या आत्मविरोधी हो, पर सभवत' सुनिश्चित आधार पर आधारित हो। यदि हम 'वस्तुगत आपादन' की परिभाषा को ध्यान मे रखें, तो ये निष्कर्ष असगत दिखलाई भी नही पडे गे। यह कहने मे क्या विरोधाभास है कि यदि कोई मिश्र प्रतिज्ञप्ति या तो p असत्य है या q सत्य दी हुई है, तो पूरी मिश्र प्रतिज्ञप्ति सत्य होगी यदि (i) p असत्य एव q सत्य है, (ii) p सत्य एव q सत्य है, (iii) p असत्य एव q असत्य है? स्पष्टत यह रचमात्र असगत नही है। असगतता' इस बात मे है कि वस्तुगत आपादन की जो परिभाषा हमने दी है उसे आगे जाकर फिर भूल जायँ। 'वस्तुगत' क्रिया-विशेषण से जो सकेत मिलता है, उसे हटा दे और आपादन करता हैं को अनुलग्न करता है के तुल्य समझ लें। प्रोफेसर जी. ई. मूर ने बतलाया है कि ये तथाकथित 'विरोधाभासी' निष्कर्ष 'केवल इसलिये विरोधाभासी लगते हैं कि हम 'आपादन करता है' का सामान्य अर्थ मे प्रयोग करते हैं। ऐसी परिस्थिति मे अवश्य ही ये निष्कर्ष असत्य हैं।' * किसी बहुत सुपरिचित शब्द को सर्वथा अपरिचित एव पारिभाषिक अर्थ मे प्रयोग करना तथा परिभाषा द्वारा वर्जित उस सुपरिचित अर्थ पर अनायास कभी न आ जाना, बहुत कठिन है। 'वस्तुगत आपादन' की परिभाषा के परिणामस्वरूप तथाकथित विरोधाभास से भ्रमित हो जाने वाले व्यक्तियो की यह साधारण भूल है।

तर्क गणित मे कुछ विशिष्ट प्राविधिक क्रियाविधि के लिये 'आपादन' की निषेध एव या तो 'या की शब्दावली मे परिभाषा देना सुविधाजनक होता है। अत, इन कार्यों के लिये, 'आपादन' का अर्थ 'वस्तुगत आपादन' होता है। ज्ञातव्य है कि जब कभी प्रतिज्ञप्ति p अनुलग्न करता है q को सत्य है, तो यह भी

* फिलसाफिकल स्टडीज, पृष्ठ २९५।

सत्य है कि $p \supset q$' क्योकि $\supset$ अनुलग्नता की अपेक्षाकृत निर्बल सबध है। जहा कही अनुलग्नता का सबध होता है, वहाँ $\supset$ भी होता है, पर इसका विलोम सत्य नही है।

$\supset$ की परिभाषा या तो या की शब्दावली मे देना आवश्यक नही है, उतनी ही अच्छाई के साथ इसकी परिभाषा निषेध एव सयोजन की शब्दावली मे दी जा सकती है, जैसे

$$p \supset q = \sim p\,(p. \sim q)\ df$$

इसे पढना चाहिये 'p वस्तुगत रूप से आपादन करता है q को' 'यह' यह असत्य है कि p सत्य है एव q असत्य' का परिभाषित तुल्य है। *

निम्नलिखित तुल्यताएँ विचारणीय हैं :

$$p \supset q \equiv . \sim p \vee q \equiv \sim (p. \sim q)$$

ध्यान देने योग्य है कि ये तीनो तुल्यताएँ अध्याय III q मे सम्मिश्र (Compoiste) प्रतिज्ञप्तियो के सहज तुल्यो के रूप मे पहले ही कही गई हैं। $\supset$ की हमारी परिभाषा से ये तुल्यताएँ किसी प्रकार प्रभावित नही होती, क्योकि वस्तुगत आपादन का सबध हमारे पूर्व सुपरिचित तुल्य वैकल्पिक एव वियोजक प्रतिज्ञप्तियो को देने मे पर्याप्त है। कुछ विशिष्ट कार्यों के लिये उपर्युक्त आशुलिपि प्रतीक का प्रयोग सुविधाजनक होता है, पर यह अनिवार्य नही है।

§ ४. तार्किक संबंधों की विस्तार एवं अभिप्राय-संबंधी व्याख्या

वस्तुगत आपादन के हमारे विवेचन से स्पष्ट से जाना चाहिये कि p, q की सत्यता या असत्यता का ज्ञान ही एक मात्र $p \supset q$ का निरूपण करने के योग्य है यदि p असत्य है तो q कोई भी प्रतिज्ञप्ति हो सकती है, यदि q सत्य है, तो p कोई भी प्रतिज्ञप्ति हो सकती है। अत , p एव q किसके सबध मे है, इससे हम सर्वथा उदासीन रहते हैं, जिससे सामान्यतता प्रतिज्ञप्ति का अर्थ कहा जाता है, उस पर हम ध्यान नही देते। इसलिये हमने देखा कि वर्मा एक द्वीप है $\supset$ (पुरी के शकराचार्य

---

*हम $p \supset q$ की वैकल्पिक परिभाषा दे सकते हैं। यही बात निर्दशित करती है कि इन परिभाषाओ मे कोई एक मूल नही है। या तो या अथवा दोनो एव मे से किसी को मूल मानने के लिये हम अपनी रूचि से काम ले सकते हैं, तब निषेध के साथ मिलाकर हम उपर्युक्त परिभाषा पाते हैं।

(एक स्त्री हैं, क्योकि दोनो प्रतिज्ञप्तिया असत्य हैं । पुरी के शकराचार्य एक पुरुष हैं ⊃ वर्मा एक द्वीप) * एक असत्य कथन है, प्रथम प्रतिज्ञप्ति सत्य है दूसरी असत्य, अतः पहली दूसरी से ⊃ से सबधित नहीं हो सकती । तथ्य जैसा है, उसके अनुसार हम पाते है कि पुरी के शकराचार्य एक पुरुष है, वर्मा एक द्वीप है का वस्तुगत आपादन नही करता । यदि कोई भूविप्लव वर्मा को एशिया से काटकर अलग कर दे, तो इनमे से कोई प्रतिज्ञप्ति दूसरी का आपादन करेगी । इस प्रकार वस्तुगत आपादन होगा कि नही इसका निर्णय वास्तविक तथ्य ही करता है । इसी को कहने की दूसरी रीति है कोई प्रतिज्ञप्ति सत्य है या असत्य, वास्तविक तथ्य पर आधारित है । यह तथ्य है कि वर्मा प्रायद्वीप है; अत वर्मा एक द्वीप है तथ्य से असगत है, बर्मा एक प्रायद्वीप है,सगत है । किसी प्रतिज्ञप्ति को केवल इस दृष्टि से देखना कि वह सत्य है अथवा असत्य, उसे विस्तार मे समझना कहा जाता है । किसी दी हुई प्रतिज्ञप्ति का सत्यता-मूल्य सत्य है या असत्य, इसका ज्ञान हमे है, यह मान लिया जाता है । (कैसे है, इसका प्रयोजन नही) । बस इतना ही जानने की आवश्यकता है ।

कल्पना करें कि मनुष्य-स्वभाव की कमजोरी पर ध्यान देते हुए हम कहे 'भूल करना मनुष्य-स्वभाव है' । अब हम कुछ अविवेकी मान्यता मानकर कहे कि यह 'सभी मनुष्य भूल करते है' के समतुल्य है । यह प्रतिज्ञप्ति क्या अभिकथन करती है ?

(१) इसका विश्लेषण हम इस प्रकार करने का प्रयास करते है । या तो क मनुष्य नहीं है या क भूल करता है, और या तो ख मनुष्य नहीं है या ख भूल करता है, और या तो अ मनुष्य नहीं है या अ भूल करता है । शून्य व्यक्त करते हैं कि हमने बहुत से दृष्टात छोड दिये है । अब,या तो क मनुष्य नहीं है या क भल करता है, तुल्य है (परिभाषा से) क मनुष्य है ⊃ क भूल करता है के, और इसी प्रकार दिये हुए प्रत्येक उदाहरण मे । अब क ख' ' अ मनुष्य जाति के वर्ग मे आते हैं, अत हम क ख इत्यादि व्यक्तियो का सकेत हटा सकते है और कह सकते हैं अ मनुष्य है ⊃ अ भूल करता है, अ कोई भी हो सकता है । यह सामान्यीकृत वस्तुगत आपादन का उदाहरण है,-अर्थात् वस्तुगत आपादन को व्यक्त करने वाले व्यक्तिवाचक कथनो का सयुक्त रूप । वस्तुगत आपादन की शर्तो को पूरा करने वाली, सत्य या असत्य एकव्यापी प्रतिज्ञप्तियो के सयुक्त रूप से भिन्न करने के लिये रसेल इसे 'आकारिक आपादन' कहते है । वस्तुगत आपादन से आकारिक आपादन पर आने मे आपादन का कोई नया सप्रत्यय नही होता (इस प्रकार जैसा समझा जा चुका है), आकारिक आपादन

---

* यहाँ कोष्ठ का प्रयोग यह दिखलाने के लिये हुआ है कि दो प्रतिज्ञप्तियाँ एक मे सयुक्त करके एक प्रतिज्ञप्ति बना दी गई हैं और पूर्ण का अभिकथन असत्य है ।

वस्तुगत आपादन का मात्र एक समूह है, जिसमे परिणामी कथन की सत्यता या असत्यता मिश्र प्रतिज्ञप्ति के अगभूत एकव्यापी कथनो की सत्यता-मूल्यो पर सर्वथा आधारित होती है।

यहाँ हमे बाध्य होकर मन मे पूछना पडता है' क्या हमारा यह कहना न्यायसगत है कि चूँकि क, ख अ मनुष्य जाति के वर्ग मे पाये जाते है, इसलिये उनके बारे मे आगे सभी उल्लेख हम छोड सकते हैं और अभिकथन कर सकते है कि जो कोई अ है x मनुष्य हैं ⊃ x भूल करता है ? क्योकि यह नियम इस मान्यता पर आधारित है कि किसी दिये हुये वर्ग के सदस्य के रूप मे जो कुछ किसी व्यक्ति-समूह के लिये सत्य है, वह उस वर्ग के सभी सदस्यो के लिये सत्य है। ये सदस्य पहले वाले समूह मे नही भी हो सकते है। स्पष्टत ऐसी बात नही है। उदाहरण के लिये यदि कहा जाय 'मनुष्य जाति के किसी उपवर्ग के लिये जो कुछ सत्य है, वह सभी मनुष्यो के लिये सत्य है, तो यह स्पष्टत असत्य है। मनुष्य जाति का एक उपवर्ग रूसियो का है, दूसरा उपवर्ग फ्रासीसियो का है, रूसियो के बारे मे बहुत सी बातें सत्य हैं, जो फ्रासीसियो के सदर्भ मे असत्य है, और इसका विलोम। इस प्रकार के बहुत से उदाहरण देना आवश्यक नही है।

(२) इस प्रकार हम दूसरे विश्लेषण का प्रयास करते है। हम कह सकते हैं, 'यद्यपि यह सत्य नही है कि सभी मनुष्यो मे रूसियो वाले गुण पाये जाते हैं, पर यह अप्रासगिक है, क्योकि जिस गुण से यहाँ हमारा सबध है, वह है भूल करने की सभावना, मनुष्य-स्वभाव एव भूल करने की सभावना मे अनिवार्य सबध है, मनुष्य-स्वभाव जैसा है उसी मे भूल करना निहित है, इसी तथ्य से यह बात निकलती है।

जब हम यह कहते हैं, तो अभिप्राय-सबधी दृष्टिकोण (Intensional view) अपनाते हैं, हमारा अभिकथन है कि मनुष्य होने एव भूल करने मे अनिवार्य सबध है, मनुष्यों की बहुत बडी सख्या का निरीक्षण किये बिना ही इसे हम देख सकते हैं। हमे प्रत्येक दृष्टात मे प्राप्त होगा कि यह, वह तथा कोई अन्य मनुष्य भूल करता है। हम स्वीकार कर सकते है कि जब तक हमे किसी वास्तविक घटना से भेंट न हुई होती, तब तक हमे इस सबध का बोध न हुआ होता। पर, हम कहे कि यह अर्द्धवृत्त मे कोण होने तथा समकोण होने के बीच सबध के लिये भी सत्य है। पर, एक बार जब हमने इसे समझ लिया है, तो इसका अभिकथन करते रहते है, यह सत्य व्यक्तिवाची कथनो के लिये अकस्मात् कथन नही है।

इस दूसरे उत्तर से सकेत मिलता है कि हम अपनी मूल प्रतिज्ञप्ति को फिर से सूत्रबद्ध कर सकते हैं। 'मनुष्य होना' आपादन करता है 'भूल करना'। इस पुन. सूत्रीकरण मे यह व्यक्त करने का गुण है कि निदर्शी दृष्टातो से अलग कर मनुष्य होना, भूल करना गुणो को रखा जा सकता है। इस प्रकार हम चिंतनशील रीति से

इन गुणों पर विचार कर रहे है, यथार्थ तथ्यो मे उनके निदर्शन पर ध्यान नही दे रहे है। या, जैसा हमने अभी-अभी कहा, प्रतिज्ञप्ति पर अभिप्राय की दृष्टि से विचार कर रहे है, जिसमे अर्थ के सबध का अभिकथन होता है। स्पष्टत यहाँ 'आपादन करता है' 'वस्तुगत आपादन करता है' के अर्थ मे नही लिया जायगा। तो क्या 'मनुष्य होना' आपादन करता है 'भूल करना' मे 'आपादन करता है' का अर्थ अनुलग्न करता है या समझा जाय ?

यह प्रश्न एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण समस्या उपस्थित करता है, जिसका कोई अतिम उत्तर नही दिया जा सकता, और जिसका इस पुस्तक की सीमा के अतर्गत पूर्ण विवेचन सभव नही है। फिर भी यह समस्या जैसे प्रश्नो को खडा करती है। उनके बारे मे पर्याप्त रूप मे कहा जा सकता है।

परिच्छेद-३ के प्रारभ में दिये गये अनुलग्नता के उदाहरणो पर फिर से विचार करें। पाँचो उदाहरणो में से प्रत्येक के सदर्भ में हमने पाया कि पूर्ववर्त्ती सत्य नही हो सकता था एव अनुवर्त्ती असत्य, और केवल पूर्ववर्त्ती विना किसी अन्य की सहायता के अनुवर्त्ती को अनिवार्यरूपेण लाने मे पर्याप्त था। अतिम वाक्य मे 'पाया' शब्द का प्रयोग समीचीन है। वहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत करने के अतिरिक्त हम अधिक का दावा नही कर सकते थे। पर, हमारे पाठक स्वीकार करेंगे कि ये उदाहरण वस्तुगत आपादन से सर्वथा भिन्न सबध के उदाहरण हैं। अब हम उसमे जोड सकते हैं कि दृष्टात रूप मे प्रस्तुत मिश्र प्रतिज्ञप्तियो की सत्यता वास्तविक ससार की बनावट से बिलकुल स्वतत्र है। बिना जाने कि मिश्र प्रतिज्ञप्तियाँ सत्य हैं या असत्य, कहा जा सकता है कि प्रत्येक उदाहरण मे, अनुवर्त्ती पूर्ववर्त्ती से निकलता है। जैसे उदाहरण (५) पर विचार करें मिश्र पूर्ववर्त्ती एव अनुवर्त्ती के बीच अनुलग्नता सबध हैं, पूरी प्रतिज्ञप्ति न्यायवाक्य फेलारेन्ट (Celarent) का उदाहरण है। इस प्रकार अनुलग्नता का एक उदाहरण वैध न्यायवाक्य मे आधार-वाक्यो का निगमन से है। उदाहरण (२) यदि यह लाल है, तो यह रगीन है—विलकुल भिन्न है। यह शृ खलाबद्ध अर्थो का उदाहरण है, हम 'लाल' का ऐसा प्रयोग करते हैं कि 'यह लाल है' कहना और 'यह रगीन हैं' को अस्वीकार करना स्वतोव्याघाती कहा जायगा।

पर, यह नही कहा जा सकता कि मनुष्य होने एव भूल करने मे भी वही सबध है। हम निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हम इसे नही मान सकते कि 'मनुष्य होना' अनुलग्न करता है 'भूल करना'। फिर भी हमे इस बात से सतोष नही कर लेना चाहिये कि सभी मनुष्य भूल करते हैं का यथेष्ठ विश्लेषण या तो यह असत्य है कि क मनुष्य है या यह सत्य है कि क भूल करता है के वस्तुगत आपादन मे हो सकता है, और इसी प्रकार ख '''अ 'सभी शेष व्यक्तियो के बारे मे भी कहा जा सकता हैं। एक

दूसरा विकल्प छूटा हुआ है। हम दृढतापूर्वक मानेगे कि मनुष्य होने का गुण भूल करने के गुण से सगत है, किंतु पुरी के शकराचार्य पुरुष है को २+२=४ के साथ इस प्रकार की सगति प्राप्त नही है, यद्यपि—चूँकि ये दोनो सत्य है—ये दोनो प्रतिज्ञप्तियाँ एक दूसरे को वस्तुगत रूप से आपादन करती है और इस प्रकार वस्तुगत रूप से तुल्य हैं।

वस्तुगत आपादन के सवध की आवश्यकता एक मात्र सत्यता-मूल्य है, (Truth-Value) अनुलग्नता-सवध की आवश्यकता अनुलग्न करने वाले एव अनुलग्न होने वाले के वीच अनिवार्य सवध है। अव हम इस पर वल दे रहे हैं कि अभिप्राय की दृष्टि से प्रतिज्ञप्तियो के वीच दूसरी तरह का स वध होता है, जिसे सवद्धता सवध (Connections of relevance) कहते हैं, आधारवाक्य का अर्थ निगमन के अर्थ मे प्रासगिक रूप मे सवद्ध हो।

यहाँ यह पूछा जा सकता है कि प्रासगिक रूप से सवद्ध होने का क्या तात्पर्य है? अध्याय VIII मे इस प्रश्न के उत्तर का कुछ प्रयास किया जायगा। हम यह दावा नही कर सकते कि समस्या खडी करने के अतिरिक्त भी हमने कुछ किया है, हम इसका कोई हल प्रस्तुत नही करेंगे। पर, समाधान करने के लिये समस्या को ठीक देख लेना ही उसे हल करने के मार्ग मे प्रथम अनिवार्य कदम उठाना है। जहाँ तक इस पुस्तक के लेखक का सवध है, इस प्रथम कदम को अतिम भी होने की सभावना है।

—o—

अध्याय ८

तार्किक सिद्धांत एवं प्रतिज्ञप्तियों का प्रमाण

§ १. पारंपरिक विचार-नियम

इस पुस्तक के प्रत्येक अध्याय मे हम तर्क करने मे लगे हुए थे, हमने प्रचलित वाक्याश मे—'दो एव दो को साथ रखा और चार प्राप्त किया।' हमने निर्णय निकाला है कि यदि कुछ विशिष्ट प्रतिज्ञप्तियाँ सत्य है, तो दूसरी भी सत्य है। यदि कुछ विशिष्ट प्रनिज्ञप्तियाँ असत्य है, तो दूसरी भी असत्य है। फिर, यदि कुछ विशिष्ट प्रतिज्ञप्तियाँ असत्य हैं, तो दूसरी सत्य है। हमने केवल इतना ही नही देखा है कि ये निष्कर्ष ऐसे हैं, बल्कि ये अवश्य ऐसे होगे। अध्याय १ मे हमने बताया कि इस प्रकार निर्णय निकालना विवेकशील प्राणी का गुण है, इस प्रकार की चिंतन-प्रक्रिया को तर्क करना कहते हैं। जब हम शुद्ध तर्क करते हैं, तो हमारा तर्क तार्किक सिद्धातो के अनुरूप होता है।

इन सिद्धातो मे से तीन अरस्तू द्वारा स्पष्ट रूप से सूत्रबद्ध किये गये थे। * परपरानुसार ये 'तीन विचार-नियम' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन्हे निम्न रीति से कहा जा सकता है—

१ तादात्म्य-नियम (The law of Identity) प्रत्येक वस्तु वही है, जो वह है।

---

* देखिये अनलिटिका प्रायोरा, 47a, g, मेटाफिजिका, 1006 a, 7 डी इटरप्रिटेशनी, 18b, /-5. और देखिये ए माडर्न इ ट्रोडक्शन टू लॉजिक- (स्टेबिंग), Ch. XXIV § 2 पारपरिक नियमो की विशद् व्याख्या के लिये देखिये जे० एन० कीनेज, फारमल लॉजिक, अपेंडिक्स B, पृष्ठ ४५०–६७।

२ व्याघात-नियम (The law of Contradiction) कोई वस्तु कुछ हो और नही भी हो, यह दोनो नही हो सकता।

३ मध्याभाव-नियम (The law of Excluded Middle) कोई वस्तु कुछ है या नही है।

नियमो का यह अभिकथन एकव्यापी प्रतिज्ञप्ति यह अ, ब है के सदर्भ मे उपयुक्त है। अरस्तू का ध्यान विधेयपन के सबसे प्रारभिक एव मूल गुण-धर्मो पर था, उसके शुद्ध आकस्मिक पहलू पर। आपादन, सत्यता एव असत्यता तथा प्रतिज्ञप्तियो के सदर्भ मे इन नियमो को पुन सूत्रवद्ध किया जा सकता है—

(१) प्रत्येक प्रतिज्ञप्ति स्वतुल्य है (अर्थात् प्रत्येक प्रतिज्ञप्ति अपने को आपादन करती है तथा अपने से आपादित होती है)—तादात्म्य सिद्धात। *

(२) कोई प्रतिज्ञप्ति सत्य एव असत्य दोनो नही है।

(३) प्रत्येक प्रतिज्ञप्ति या तो सत्य है या असत्य।

यह सूत्रीकरण तीनो नियमो के मौलिक सबध को व्यक्त करता है, फिर भी, यदि इन्हें काट-छाँट कर एक सिद्धात के रूप मे नही रखा जा सकता। उदाहरण के लिए, (१) से या (२) से (३) को निगमन के रूप मे प्राप्त करने के लिये असत्यता अथवा निषेध की स्वतत्र धारण की आवश्यकता है, जिनकी परिभाषा स्वय सिद्धातो की सहायता के बिना नही की जा सकती। प्रतिज्ञप्तियो के बीच व्याघात सबध की परिभाषा के लिये (२) एव (३), दोनो की आवश्यकता होती है, क्योकि व्याघाती प्रतिज्ञप्तियो की परिभाषा करते हुये कहा जाता है कि ये ऐसी प्रतिज्ञप्तियाँ हैं, जो दोनो सत्य नही हो सकती, पर एक अवश्य सत्य होगी।

आधुनिक तर्कशास्त्रियो द्वारा इन तीन 'विचार-नियमो' की बडी आलोचना हुई है। इन आलोचनाओ को सक्षेप मे इस प्रकार रखा जा सकता है 'वे नियम नही हैं, वे विचार-नियम नही हैं, और केवल वे ही विचार-नियम नही हैं, क्योकि उनसे कम आवश्यक दूसरे नही है।' इन आलोचनाओ पर हम सक्षेप मे विचार करेगे। प्रथम दो को साथ-साथ लिया जा सकता है। अवश्य ही 'विचार-नियम' मनोवैज्ञानिक नियम नही है, अर्थात् इनमे इसका विवेचन नही होता कि हम कैसे चितन करते है। दुर्भाग्यवश हम बहुधा अपना ही खडन करते हैं। हम प्राय सोचते हैं (या व्यवहार मे ऐसा करते हैं, मानो हमे विश्वास हो) कि सत्य एव असत्य के बीच

* इस अध्याय मे बाद मे दिये गये कारण के अनुसार इन्हें 'नियम' की अपेक्षा 'सिद्धात' कहना अधिक समीचीन है।

के बीच कोई मध्यस्थल है। मनुष्यो की चिंतन-प्रणाली से उन 'नियमो' की सत्यता स्थापित नही होती; वे कथन है कि मनुष्य यदि, और जबतक, तर्कशील चिंतन कर रहा है, तो उसे कैसे चितन करना चाहिये, या वह कैसे चिंतन करेगा। इसलिये 'विचार-नियम' के रूप मे उनका वर्णन नही करना अधिक अच्छा है, उन्हें 'तार्किक सिद्धात' कहना अपेक्षाकृत समीचीन है। 'नियम' अधिक-से-अधिक मन एव प्रकृति मे समरूपताओ की ओर सकेत करता है, कम-से-कम आदेश की ओर। दुर्भाग्यवश, किसी मे ऐसी शक्ति नही है, जो हमे तार्किक ढग से चिंतन करने के लिये आदेश दे सके। यदि ऐसी बात होती भी, तो हमारे पास ऐसे आदेश को सदैव मानने के लिये शक्ति नही हे। हमारा चिंतन आशिक रूप से हमारी सवेगात्मक अभिवृत्तियो एव दुर्निवार्य पूर्वाग्रहो से निर्धारित होता है।

अवश्य ही 'ये तीनो नियम' हमारे चिंतन को व्यवस्थित करने के लिये पर्याप्त नही है, यह निर्विवाद सत्य है कि इन नियमो से अलग होकर 'श्रृखलाबद्ध चिंतन एव सगत तर्क असभव है,' पर पारपरिक तर्कशास्त्रियो ने इन्हें अन्य तार्किक सिद्धातो की अपेक्षा अधिक मूलभूत मानकर इनको पृथक् करने की भूल की है। हम यहाँ इन सभी अन्य सिद्धातो को कहने का प्रयास नही करेंगे, जो सामान्य चिंतन मे स्पष्टत प्रतिपादित होते रहते हैं। यहाँ केवल तीन का उल्लेख पर्याप्त होगा

(४) न्यायवाक्य का सिद्धात (Principle of Syllogism) यदि <u>पु</u>, <u>कु</u> का आपादन करता है, और <u>कु</u>, <u>रु</u> का आपादन करता है, तो <u>पु</u>, <u>रु</u> का आपादन करता है। यही सिद्धात पारपरिक न्यायवाक्य की अभ्युक्तियो के मूल मे है, पर यह और विस्तृत क्षेत्र मे लागू होता है।

(५) निगमन का सिद्धात. Principle of Deduction (Or Principle of Inference) (यह कभी-कभी अनुमान का सिद्धात भी कहा जाता है) यदि <u>पु</u>, <u>कु</u> का आपादन करता है और <u>पु</u> सत्य है, तो <u>कु</u> सत्य है। यदि आपादन करनेवाली प्रतिज्ञप्ति सत्य है, तो इस सिद्धात से आपादन करनेवाली उस प्रतिज्ञप्ति (पूर्ववर्त्ती) को छोडना सभव है। इसी सिद्धात के अनुसार वैध युक्तियो मे सत्य आधारवाक्यो से निष्कर्ष निकाले जाते हैं।

(६) विनियोग का सिद्धात The Applicative Principle (or Principle of Substitution) (प्रतिस्थापन सिद्धात) जहाँ-तहाँ से लिये गये किसी दृष्टात पर यदि कुछ अभिकथन लागू हो सकता है, तो वह अभिकथन किसी दिये हुये दृष्टात पर भी लागू होगा। इस सिद्धात के बारे मे डब्लू ई जान्सन ने कहा है कि 'इसे 'प्रत्येक' के प्रज्ञात्मक प्रयोग मे आनेवाले सिद्धात को सूत्रबद्ध करने वाला कहा जा सकता है।'

अतिम तीन सिद्धातो का सभी शृखलाबद्ध तर्क मे समर्थन होता है तथा प्रथम तीन का भी समर्थन सभी सगत तर्क मे होता हे। ये सिद्धात पर्याप्त नही हैं, पर सभी वैध तर्क के लिये आवश्यक हैं।

'पारपरिक विचार-नियम' के नाम से प्रसिद्ध तीनो सिद्धातो की कुछ विशिष्ट आलोचनाएँ हुई है, उनमे से अधिकाश असाधारण गडबडी पर आधारित हैं। जैसे यह युक्ति दी गई है कि 'अ अवश्यमेव अ नही रहता, क्योकि अ मे हर क्षण परिवर्तन हो रहे हैं, तथा किसी तरह, सभी जानते हैं कि अ सदैव व है।' इस टिप्पणी मे जिस बात पर बल दिया गया हे, वह हे कि वस्तुओ मे परिवर्तन होता रहता है और प्रत्येक वस्तु मे भिन्न-भिन्न प्रकार के गुण होते है। पर, यह सिद्धात इन विचारो के विरोध मे तनिक भी नही आता। यदि अ का तादात्म्य अ के रूप मे न हो, तो यह कहना ही निरर्थक होगा कि अ व है। जिस रूप मे यह सिद्धात प्रतिज्ञप्तियो पर लागू होता हे, उस रूप मे यह अवश्य सत्य है, क्योकि यदि प, प का आपादन न करे तो प सत्य एव असत्य दोनो हो सकता है। यह हमे व्याघात-नियम पर ले आ देता है, यहाँ तक कि तादात्म्य का सिद्धात उसके साथ ही उठता है या गिरता है।

मध्याभाव-नियम की अधिक गभीर आलोचना की गई है। सर्वप्रथम हम ऐसी आपत्ति पर विचार करेंगे, जिसका सरलतापूर्वक खडन किया जा सकता है, यहाँ तक कि इसे योग्य तर्कशास्त्रियो द्वारा नही उठाया जाना चाहिये था। (1) यह युक्ति दी जाती हे कि 'वस्तुएँ अदृश रूप मे परिवर्तित होती हैं।' इसलिये कभी-कभी यह कहना सभव नही होता कि किसी वस्तु मे कोई विशेष गुण है अथवा नही, जैसे यह टमाटर पका हे। यह टमाटर पका नहीं हे, मे कोई सत्य नही हो सकता, पर फिर भी ये प्रतिज्ञप्तियाँ आकारिक रूप मे व्याघाती हैं। अतिम कथन पर विशेष महत्त्व है। क्या प्रतिज्ञप्तियाँ व्याघाती हैं या केवल ऊपर से देखने मे व्याघाती हैं? 'पकने' से हमारा क्या तात्पर्य है, इसी पर यह सर्वथा निर्भर होगा। क्या पके होने की कोई कसौटी है? यदि हाँ, तो प्रतिज्ञप्तियाँ व्याघाती है और दोनो सत्य नही हो सकती, इसे अस्वीकार करने के लिये कोई कारण मालूम नही पडता। यदि पके होने की कोई कसौटी नही है, तो 'पका' 'गजा' की तरह है, अर्थात् एक शब्द है, जो मात्रा की परास मे जहाँ कहीं वह गुण पाया जाता है, वैसे किसी स्थल को व्यक्त करने के लिये प्रयुक्त होता है। कुछ शब्द वस्तुत अस्पष्ट होते हैं, अर्थात् मध्यम मात्रा की अनवरत् श्रेणी मे आने योग्य किसी गुण को व्यक्त करने के लिये प्रयुक्त होते हैं। ऐसे गुण जिनमे पाये जाते हैं और जिनमे नही पाये जाते, उनके बीच स्पष्ट विभेदक-रेखा खीचने की अपेक्षा करना अतार्किक हे। हम नही जान सकते कि 'वह रेखा कहाँ

खीची जाय,' और कुछ स्थलो पर तो कोई भी रेखा नही खीची जा सकती। पर, यदि यह मान लिया जाय कि 'गजा' वालो की सख्या की शब्दावली मे निश्चितरूपेण पारिभाषित हो सकता है, तो गजा एव अगजा वस्तुत व्याघाती है, पर यदि यह इस प्रकार की निश्चित परिभाषा मे नही रखा जा सकता, तो वास्तविक व्याघाती नहीं है।

(11) इस सिद्धात के विरोध मे सबसे गभीर आपत्ति प्रतिज्ञप्तियो के सदर्भ मे इसके प्रयोग को लेकर है। युक्ति दी जाती है कि सत्य एव असत्य के अतिरिक्त सदेहपूर्ण (या अनिश्चित) अवस्था भी होती है।

ध्यान देने योग्य है कि यह व्यभिचरित विभाजन की तरह लगता है। प्रतिज्ञप्तियो का सत्य, असत्य मे विभाजन द्विपदीय है, अर्थात् सत्य, असत्य परस्पर व्यावर्तक एव सर्वसमावेशी है। यह सोचना सभव है कि अभी भी 'सत्य एव 'असत्य' के ठीक अर्थ को लेकर बडी परिचर्या होती है। यह है भी, पर इतना तो स्पष्ट है कि सभी सामान्य प्रयोग मे विभाजन द्विपदीय है। हम सरलतापूर्वक प्रतिज्ञप्तियो का चतुष्पदी विभाजन प्राप्त कर सकते हैं (१) सत्य एव ज्ञात सत्य, (२) असत्य एव ज्ञात असत्य, (३) सत्य किंतु न ज्ञात सत्य या न ज्ञात असत्य, (४) असत्य किंतु न ज्ञात असत्य या न ज्ञात सत्य। अब हम निश्चित रूप से कह सकते है कि (३) एव (४) से सदेहपूर्ण परिस्थिति प्राप्त होती है (या अस्पष्टता इस रूप मे है कि प्रतिज्ञप्ति सत्य है या असत्य, हम यह निर्णय करने मे असमर्थ रहते है)। परतु, इतना स्पष्ट है कि (३) एव (४) दोनो हमारे मूल द्विभाजन के अदर आते है। प्रतिज्ञप्ति यदि तथ्य के अनुसार है तो वह सत्य है, यदि तथ्य के अनुसार नही है, तो वह असत्य है। हो सकता है कि हम अभी न जानते हो, या कभी न जान सकें कि यहाँ कौन सी सभावना है, परतु तथ्य के प्रति हमारी इस अनभिज्ञता से बिलकुल सकेत नही मिलता कि कोई प्रतिज्ञप्ति न तथ्य के अनुसार हो सकती है (अर्थात् सत्य) और न तथ्य के अनुसार नही हो सकती (अर्थात् असत्य)। ऐसा नही समझना चाहिए कि उपर्युक्त कथन मध्याभाव-सिद्धात को प्रमाणित करने का कोई प्रयास है, जो कुछ कहा गया है, उसे प्रमाण मान लिया जाय, तो वह अवश्य ही चक्रक होगा। यहाँ जो कुछ प्रयास हुआ है, उसका ध्येय मात्र इतना ही व्यक्त करना है कि आपत्ति मे कुछ बल नही है और यह वस्तुत व्यभिचरित विभाजन के दोष से दूषित है।

और आगे युक्ति दी जा सकती है कि यदि कोई प्रतिज्ञप्ति तथ्यानुरूप है, तो सत्य, और नही तो असत्य, इस अभिकथन को स्वीकार भी कर लिया जाय, फिर भी मध्याभाव का सिद्धात असफल रहता है, क्योकि तथ्य अनिर्णीत रह सकते है। यह विचार मात्र भूल पर आधारित है। भविष्य मे आनेवाले तथ्यो के सदर्भ मे इस युक्ति पर सबसे अधिक बल दिया गया है। हम इस प्रतिज्ञप्ति पर विचार करे, चाउ-एन-

लाइ मार्च १०, १६७२ को दिल्ली मे वदी होग । इस प्रतिज्ञप्ति का अभिकथन आज अक्टूबर १०, १६७१ (जिसके सत्य होने की सभावना नही है, यद्यपि इच्छा हो सकती है, हो रहा है । लघुकोष्ठ मे कही गई वात ऐसी है, जिसे हम सभी समय-समय पर मनुष्य से सबधित प्रतिज्ञप्तियो के बारे मे कहते है । जिस मत पर हम अभी विचार कर रहे है, वह है कि चाऊ-एन-लाइ के बारे मे कही गई प्रतिज्ञप्ति (अब आगे इसका सकेतन प से होगा) न तो सत्य है न असत्य । इस मत के पक्ष मे दो भिन्न कारण कहे जा सकते हैं । (१) प का सत्य होना ज्ञात नहीं है तथा इसका असत्य होना भी ज्ञात नही है। यह अवश्य स्वीकार होगा, परतु जैसा हमने अभी देखा है, इसमे निहित नही है कि यह दोनो मे एक भी नही है (२) यदि हम अनुमान करे कि प या तो सत्य या असत्य है, तो हमारा अभिकथन हो रहा है कि या तो चाउ-एन-लाइ आगामी वर्ष के १० मार्च को दिल्ली मे बदी होगे या यह बात नही होगी, इसकी पूर्वमान्यता है कि यदि प सत्य है तो भूत तथा भविष्य मे होने वाले तथ्य उनका (चाउ) अगले मार्च दिल्ली मे वदी हो जाना आवश्यक बना देते है, या इसकी पूर्वमान्यता है कि यदि प असत्य है तो भूत एव भविष्य मे होने वाले कुछ कार्य उनका अगले मार्च दिल्ली मे बदी नहीं होना आवश्यक बना देता है । पर, युक्ति दी जाती है कि यह नियतत्त्ववाद' (Determinism) का रूप धारण कर लेता है, अर्थात् जो कोई घटना होती, है वह पिछली घटनाओ से अवश्य ही निर्धारित रहती है । नियतत्त्ववाद के खिलाफ तर्क दिया जाता है कि यह विवादास्पद है ।

ऐच्छिक निष्कर्ष को निर्धारित करने मे यह युक्ति सर्वथा असफल रहती है । भूत एव वर्त्तमान तथ्यो द्वारा चाउ-एन-लाइ के अगले कार्य निर्धारित हो अथवा नही, पर कथन की किसी निश्चित तिथि को वह दिल्ली मे रहेगे, ताथ्यिक (Factual) कथन है । यदि नियतत्त्ववाद सत्य है तो यह ताथ्यिक रूप से (या कारणवश) आवश्यक है कि दी हुई तिथि को वह दिल्ली मे होगे अथवा ताथ्यिक रूप से (या कारणवश) असभव है कि वह दी हुई तिथि को दिल्ली मे होगे । अब इनमे से जो भी बात पायी जाय, या तो तथ्य अवश्य निर्धारित करते है कि प सत्य है अथवा तथ्य अवश्य निर्धारित करते है कि प असत्य है । पर यदि नियतत्त्ववाद असत्य है, तो भूत एव वर्त्तमान तथ्य किसी भी अर्थ मे चाउ-एन-लाइ के भविष्य के कार्यो को निर्धारित नही करते, इसलिये वह निश्चित तिथि को दिल्ली में हो सकते है या नही भी हो सकते हैं । पर प सत्य है अथवा असत्य उस प्रश्न के उत्तर से किसी भी प्रकार प्रभावित नही होता कि 'क्या अभी कुछ तथ्य है जो भविष्य के तथ्यो को निर्धारित करते हैं ?' इसके प्रतिकूल सोचना (i) कारणात्मक अनिवार्यता को तार्किक अनिवार्यता से, (ii) सत्य को हमारे सत्य-ज्ञान से, उलझा देना है ।

कुछ तर्कशास्त्रियों ने युक्ति दी है कि यदि किसी प्रतिज्ञप्ति की सत्यता या असत्यता निर्धारित करने के लिये कोई उपलब्ध मार्ग न हो, तो वह दो में से कोई नहीं है। ऐसी अनिर्णीत प्रतिज्ञप्तियों के उदाहरण हैं लालबहादुर शास्त्री ने जब अंतिम बार लोक सभा में पदार्पण किया, तो उन्हें छींक आई। $2^{n^2+9}+1$ आकार के सभी बृहद् गुणनखंड के योग्य हैं। फिर इस प्रकार का विचार सत्य को सत्य के ज्ञान से भ्रमित कर देता है। अनिर्णीत प्रतिज्ञप्तियों के संबंध में जिन लोगों ने ऐसी धारणा बनाई है, वे संभवत, यह भी कहना चाहें कि यदि किसी प्रतिज्ञप्ति की सत्यता या असत्यता प्रमाणित नहीं होती, तो वह न सत्य है और न असत्य। ऐसे मत का केवल इतना ही अर्थ है कि सत्य-धारणा के स्थान पर सत्यापनीयता (Verifiability) की धारणा रख दी जाय। यहाँ इतना कहना पर्याप्त होगा कि यह पारिभाषिक शब्दावली का प्रश्न है। इन तार्किकों के विचार में कोई ऐसी बात यह संकेत देने वाली नहीं है कि इन शब्दों के अर्थ में इस परिवर्तन से कोई लाभ हो सकता है।*

§ २. अनिवार्य एवं तथ्यिक प्रतिज्ञप्तियाँ

हमने अंतिम अध्याय (१) में देखा कि हम प्रतिज्ञप्तियों पर विस्तारपरक या आभिप्रायिक दृष्टिकोण से विचार कर सकते हैं। जब हम दूसरे दृष्टिकोण (अर्थात् अभिप्राय दृष्टि) का अनुसरण करते हैं तो हम प्रतिज्ञप्ति के अर्थ पर ध्यान देते हैं, अर्थात्, प्रतिज्ञप्ति में क्या कहा जाता है, पहले दृष्टिकोण (विस्तारपरक दृष्टि) में हम उसकी सत्यता या असत्यता पर विचार करते हैं। मात्र इतना तथ्य कि दो प्रतिज्ञप्तियों में दोनों सत्य (या दोनों असत्य) है, जिससे अभिकथन का अधिकार मिल जाता है कि दोनों एक दूसरे का वस्तुगत आपादन करती हैं, इस प्रकार के संयोग को अर्थ की कोई संबद्धता नहीं प्रदान करता। इसीलिये यह जानकर आश्चर्य होता है कि बर्मा एक द्वीप है ⊃ पुरी के शंकराचार्य स्त्री हैं, या २ + २ = ४ ⊃ त्रिभुज में तीन भुजाएँ होती हैं। इन दो अंगभूत प्रतिज्ञप्तियों को हम सरलतापूर्वक विचार में साथ नहीं रख सकते, आपादन करने वाली प्रतिज्ञप्ति की सत्यता आपादित प्रतिज्ञप्ति की

---

* अधिकांश तर्कीय प्रत्ययवादियों (Logical Positivists) का यही मत है। इन प्रश्नों को तार्किक होने की जगह दार्शनिक समझना अधिक समीचीन है, इसलिये इन पर यहाँ विचार नहीं हो सकता। मध्याभाव-सिद्धांत के खिलाफ उठाई गई उपर्युक्त आपत्तियों पर प्रोफेसर सी० ए० बेलिस द्वारा एक लेख में बड़ी योग्यता से विचार-विमर्श हुआ है, उस लेख का शीर्षक है 'क्या कुछ प्रतिज्ञप्तियाँ न सत्य हैं और न असत्य ?' (देखे—फिलॉसफी आव सायंस, भाग ३, न० २, अप्रैल, १९३६)

सत्यता या असत्यता को किसी प्रकार भी सीमित नही करती । केवल, इतना ही उल्ले-खनीय है कि यदि आपादित प्रतिज्ञप्ति असत्य एव आपादन करने वाली प्रतिज्ञप्ति सत्य हो, तो प्रथम प्रतिज्ञप्ति दूसरी का वस्तुगत आपादन नही करेगी । ⊃ लागू होता है या नही, इसका ज्ञान हमे अगभूत प्रतिज्ञप्तियो के सत्यता-मूल्यो का ज्ञान हो जाने पर ही होता है । जैसा हमने अतिम अध्याय मे देखा, यदि एशिया की वनावट मे कोई भूपरिवर्तन बर्मा एक द्वीप है को सत्य वना दे, तो यह प्रतिज्ञप्ति पुरी के शकराचार्य स्त्री हैं का अव वस्तुगत आपादन नहीं करेगी, क्योंकि दूसरी प्रतिज्ञप्ति असत्य है। इसलिये हम कहेगे कि वस्तुगत आपादन, ताथ्यिक सबध है, यह लागू होता है कि नही ससार की वास्तविक वनावट पर आश्रित है। इसके विपरीत अनुलग्नता अनिवार्य सबध है ।

निम्नलिखित प्रतिज्ञप्तियो पर विचार करें

(१) जब तक वाह्य शक्तियो का प्रभाव नही पडता, तव तक प्रत्येक वस्तु विश्राति अवस्था मे पडी रहती है, या समान गति से सीधी रेखा मे चलती रहती है।

(२) सभी ग्रह अडाकार कक्ष मे घूमते है ।

(३) मनुष्यो की मृत्यु अवश्य होगी ।

(४) गायें जुगाली करनेवाली है।

(५) यह लाल गुलाव लाल नही है ।

(६) जल ० सेंटीग्रेड पर जम जाता है ।

(७) अर्द्ध वृत्त मे प्रत्येक कोण समकोण होता है ।

(८) आपूर्ति एव मांग के नियम से मूल्य नियत्रित होते है ।

(९) लालबहादुर शास्त्री की मृत्यु ११ जनवरी, १९६६ को ताशकद मे हुई ।

(१०) वाराणसी मे अक्टूबर १२, १९७० को वर्षा हुई ।

(११) इग्लू एस्कीमो की गुबदनुमा झोपडी है ।

यह देखना सरल है कि ये प्रतिज्ञप्तियाँ बहुत भिन्न प्रकार की हैं । यदि किसी पर विवाद उठ खडा हो जाय, तो उसके अभिकथन को सिद्ध करने का प्रमाण कुछ दूसरी प्रतिज्ञप्तियो के प्रमाण से सर्वथा भिन्न होगा । इस दृष्टि से इन पर विचार करे । हमारा प्रथम कार्य होना चाहिये कि हम उन्हे अलग-अलग कर दें, ताकि जिनके सिद्ध करने के लिये एक तरह के प्रमाण अवश्य हो, उन्हे एक साथ रख सके । इसके लिये हमे विभाजन के किसी सिद्धात की आवश्यकता होती है ।

क्या प्रत्येक प्रतिज्ञप्ति के सबध मे सर्वप्रथम हमे यह समीक्षा नही करनी चाहिये कि यह सत्य है या असत्य ? यह आवश्यक नही है। उदाहरणार्थ (१०) पर विचार करें इसकी सत्यता (यदि यह सत्य है) को सिद्ध करने के लिये जैसे प्रमाण की आवश्यकता है, उसी प्रकार के प्रमाण की आवश्यकता उसकी असत्यता (यदि यह असत्य है) को सिद्ध करने के लिये है। मैं, लेखक, जो इस समय यह वाक्य लिख रहा हूँ, अभिकथन करता हू कि प्रतिज्ञप्ति (१०) सत्य है। जो मैं प्रमाण देता हूँ वह है (i) आज अक्टूबर १२, १६७१ है, (ii) जब मैं अपनी मेज से ऊपर देखता हूँ, (iii) आज प्रात होती हुई वर्षा को देखकर मुझे याद आता है। अब (i) एव (ii) दोनो पर आपत्ति उठायी जा सकती है, अर्थात् इन अभिकथनो के पक्ष मे भी प्रमाण माँगे जा सकते है। इस दृष्टात का विस्तार से विवेचन करने के लिये यहाँ स्थान नही है। इतना कहना अवश्य पर्याप्त होना चाहिये कि (i) के लिये प्रमाण मेरे कैलेण्डर पर लगे हुए चिह्न की सत्यता को स्वीकार करने पर आधारित है, (ii) के लिये मेरा प्रमाण प्रत्यक्ष अनुभव है। मैं वास्तव में वर्षा होते हुए देखता हूँ। यह अस्वीकार नही किया जा सकता कि मनुष्य कभी-कभी वर्षा के अभाव मे भी सोचते है कि वर्षा हो रही है, पर इसके लिये अतिम एव एक मात्र प्रमाण होती हुई वर्षा को देखना तथा अनुभव करना है। (iii) देखने मे अपेक्षाकृत अधिक सदिग्ध लग सकता है, पर वास्तव मे ऐसी बात नही है। इतनी नूतन स्मृति पर मेरा भरोसा कम महत्त्व का नही है तथा मेरे प्रत्यक्ष अनुभव के साक्षात् प्रमाण पर आधारित भरोसे से यह अनुभव भिन्न प्रकार का नही है (जैसा कि मैं अपने मन मे निष्कर्ष निकाल सकता हूँ)। (ii) एव (iii) दोनो द्वारा प्रस्तुत प्रमाण का गुण है कि यह मुझे ही प्राप्त है। (यहाँ 'मैं' सुविधानुसार किसी अन्य व्यक्ति के लिये आ सकता है, जिसे इस प्रकार के अनुभव हो रहे हो)। यदि इसे मान लिया जाय, तो प्रतिज्ञप्ति (१०) की सत्यता किसी बाद की तारीख के लिये, ठीक इसी प्रकार के प्रमाण द्वारा सिद्ध नही की जा सकती, अपितु इसके अतिरिक्त एक भिन्न प्रकार के प्रमाण की आवश्यकता होगी, जैसे किसी की डायरी मे उल्लेख हो, मौसम विज्ञान-सबधी दफ्तर मे रिपोर्ट हो, इत्यादि। यदि किसी लेखक का साक्ष्य मान्य सिद्ध हो चुका है, तभी उसकी डायरी की प्रविष्टि विश्वसनीय प्रमाण के रूप मे स्वीकार हो सकती है। और उसका कथन (यदि सत्य है) ऐसे प्रमाण पर आधारित है जैसा (ii) एव (iii) के सदर्भ मे दिया गया है। ऐसा होना असभव नही है कि इस पुस्तक के प्रकाशित होने तक किसी की डायरी मे कोई उल्लेख नही हो, मौसम विज्ञान-सबधी दफ्तर मे कोई विस्तृत रिपोर्ट न हो, जो प्रतिज्ञप्ति (१०) के प्रमाण मे दी जा सके। यदि यह घटना किसी छोटे से गाँव मे हुई हो, तो उसके सबध मे ऋतु-सबधी विस्तृत दैनिक रिपोर्ट की अपेक्षा नही की जाती। ऐसा हो अथवा न हो परतु प्रतिज्ञप्ति (१०) की सत्यता को भविष्य मे किसी तारीख को प्रमाणित करने के लिये इसी प्रकार के प्रमाण की आवश्यकता होगी।

यह एकव्यापी तात्त्विक प्रतिज्ञप्ति का एक दृष्टात है, प्रतिज्ञप्ति (६) भी ऐसी ही है। (६) मे कथित घटना भारत के इतिहास मे बडी ही महत्त्वपूर्ण घटना है और फलत आज विश्व मे महत्त्वपूर्ण हो गई है। यह सोचना तर्कसगत है कि इसके प्रमाण मे बहुत से साक्ष्य मिल जायेगे। यदि तिथि मे मुझसे (लेखक *) कोई भूल हो गई है, तो ठीक इसी प्रकार का प्रमाण इसे असत्य सिद्ध कर देगा। (६) एव (१०) दोनो के सदर्भ मे जिस प्रकार के प्रमाण की आवश्यकता होती है, उसे सक्षेप मे दो शीर्ष मे रखा जा सकता है (अ) साक्षात् अनुभव, (ब) किसी साक्ष्य पर भरोसा। जिसमे सम्मिलित है (क) किसी अन्य का साक्षात् अनुभव, (ख) ऐसे साक्ष्य की प्रामाणिकता को सिद्ध करने वाली कोई विधि, (ग) अनुमान के सामान्य नियम। प्रतिज्ञप्तियो (६) एव (१०) यद्यपि भिन्न है, पर उनमे आपस मे एक स्थल पर महत्त्वपूर्ण साम्य है, वह है, प्रत्येक के सदर्भ मे उनकी सत्यता के प्रमाण मे किसी निश्चित तारीख पर किसी के साक्षात् अनुभव का होना। सभव है कि (६) को सिद्ध करने के लिये वर्षो तक साक्ष्य का अप्रत्यक्ष प्रमाण प्राप्त होता रहेगा, पर (१०) को सिद्ध करने के लिये नही। इस भेद का इन प्रतिज्ञप्तियो के तार्किक स्वरूप से कोई सपर्क नही है, दोनो एकव्यापी तात्त्विक प्रतिज्ञप्तियाँ है, उनका भेद मनुष्यो के कार्यों के लिये उनकी सत्यता के सापेक्ष महत्त्व मे सबधित है। तर्कशास्त्री का ऐसे भेद से कोई सबध नही रहता।

(२), (३), (४), (६) भी तात्त्विक प्रतिज्ञप्तियाँ है, पर वे एकव्यापी प्रतिज्ञप्तियाँ नही है, इनमे से प्रत्येक सामान्यीकरण से सबधित है। सामान्यीकरण के बिना कोई विज्ञान सभव नही है। सामान्यीकरण मे क्या सम्मिलित है, इसकी व्याख्या हम आगे करेंगे। यहाँ इतना सकेत पर्याप्त होगा कि सामान्यीकरण मे आनुमानिक छलाँग सम्मिलित है। साक्षात् निरीक्षण से निष्कर्ष निकालने का मार्ग मिलता है कि वर्ग स के कुछ निरीक्षित उदाहरणो मे फ गुण पाया जाता है, तो स के सभी सदस्यो में फ है। जिन चार प्रतिज्ञप्तियो पर अभी विचार हो रहा है वे सभी इसी प्रकार के अनुमानिक विधि के फलस्वरूप है। परतु, सभी एक स्तर पर नही हैं। गायें जुगाली करनेवाली है को विचार-विमर्श के सभी सदर्भ से अलग करके देखने पर ऐसा मालूम हो सकता

* इस स्थल पर मेरा अभिप्राय है कि पाठक का ध्यान कथन को प्रमाणित करने की आवश्यकता की ओर आकृष्ट किया जाय (जब वैसा स्थल आये) और उसे बताया जाय कि कुछ प्रतिज्ञप्तियो का दूसरो की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म परीक्षण करने की आवश्यकता है।

हैं कि जैविक वर्गीकरण मे गायें किसी विशिष्ट अतिवर्ग (Superclass) के अदर आती है · या यह विभिन्न गायों के निरीक्षण के आधार पर सामान्यीकरण माना जा सकता है। दूसरी व्याख्या पहली की अपेक्षा प्रतिज्ञप्ति अधिक आदिम स्तर पर ले जाती है, किसी वर्गीकरण मे इसे जैविक वर्ग का स्थान प्रदान करने मे समर्थ होने के समय तक हमे कुछ क्रमवद्धता प्राप्त हो चुकी थी। वर्त्तमान तात्पर्य के लिये (२), (३) एव (६) को एक साथ रख सकते हैं। इनमे मे प्रत्येक के लिये सत्य है कि (i) इसमे विशिष्ट उदाहरणो के साक्षात् निरीक्षण से सामान्यीकरण सम्मिलित है, (ii) इसकी सत्यता का प्रमाण वहुत अश तक समाविष्ट करने वाले विशेप विज्ञान की व्यवस्था मे इसके स्थान से प्राप्त होता है। (८) भी ताथ्यिक सामान्यीकरण है, पर जैसा तर्कशास्त्र का प्रत्येक विद्यार्थी सहज ही स्वीकार करेगा, विना पर्याप्त प्रतिवध के इसका सचमुच अभिकथन नही हो सकता। उदाहरणार्थ, आजकल भारत मे वहुत सी वस्तुओ का मूल्य सरकारी आदेश से निर्धारित होता है। एक बार यदि हम गभीरतापूर्वक समीक्षा करना प्रारभ कर देते है कि अभिकथन, आपूर्ति एव मांग के नियम से सत्य नियत्रित होते हैं, किस साक्ष्य पर आधारित है तो उपर्युक्त समस्या के अतिरिक्त भी तथाकथित 'सामाजिक विज्ञानो' से सवधित विशिष्ट प्रश्न हमारे ध्यान में वरबस आ जायेंगे। *

प्रतिज्ञप्ति (१) को एक समय माना जाता था कि यह पिंडो के निरीक्षत व्यवहार पर आधारित सामान्यीकरण है जिन पिंडो की ऐसी काल्पनिक परिस्थितियो मे उपर्युक्त होने के लिये बहिर्वेशन कर दिया गया है, उसमे कोई वास्तविक पिंड कभी नही पाया जा सकता। जिस रीति से इस कथन को सूत्रवद्ध किया गया है, उससे सकेत मिलता है कि प्रतिज्ञप्ति (१) अनुभवसिद्ध सामान्यीकरण नही है, अर्थात् इसमे व्यावहारिक वास्तविकता नही है, यह परपरा एव निरीक्षण के रेकर्ड का मिश्रण है। यह प्रतिज्ञप्ति न्यूटन का प्रथम गति-नियम है, न्यूटन के सपूर्ण विज्ञान मे इसके लिये प्रमाण मिलता है। एक बार इसे स्वीकार कर लिया जाय, तो प्रतिज्ञप्ति (२) निगमन के रूप मे इससे निकाली जा सकती है और साथ-साथ ग्रहो के वारे मे कुछ आधारवाक्य मिल सकते हैं, जो विशिष्ट दृष्टातो पर आधारित सामान्यीकरण से प्राप्त हुए थे। इस पर अवश्य बल देना चाहिये कि न्यूटन के नियम के लिये जिस 'प्रमाण' की आवश्यकता है, उसकी, किसी प्राकृतिक नियम (जैसे जल ०° सेन्टीग्रेड पर जम-कर वर्फ हो जाता है) के लिये प्रमाण से प्रकार मे इतनी मूलभूत भिन्नता है कि हमे

* मुझे दु ख है कि स्थान का अभाव मुझे इन प्रश्नो को उठाने और उनके उत्तर देने से रोक रहा है। विद्यार्थी को स्वय पूछना चाहिये, 'नियम' के किस अर्थ मे आपूर्ति एव माग का नियम है ?

लाचार होकर 'प्रमाण' को उलटे कॉमा मे रखना पडता है—यह प्रतीकात्मक रीति है, जो प्राय यह व्यक्त करने के लिये प्रयुक्त होती है कि हम शब्द को असामान्य रूप मे व्यवहार कर रहे हैं।

प्रतिज्ञप्ति (७) विचाराधीन अन्य प्रतिज्ञप्तियो से सर्वथा भिन्न है, ससार मे होनेवाली कोई घटना इसकी सत्यता या असत्यता से सबद्ध नही है। अर्द्धवृत्त मे प्रत्येक कोण समकोण होता है, यूक्लीडियन ज्यामिति की स्वयमिद्धियो एव परिभाषाओ से निकलता है, यह इनका अनिवार्य परिणाम है।

प्रतिज्ञप्ति (११) पारिभाषिक कथन के रूप मे माना जा सकता है। हम कहते हैं कि 'माना जा सकता है', क्योंकि यह अभिकथन के सदर्भ पर आश्रित है कि इसकी अभिव्यक्ति के लिये प्रयुक्त शब्दो से ठीक-ठीक क्या कहने का अभिप्राय है। यहाँ यह सदर्भ से मुक्त करके दिया गया है, यह वास्तव मे जनसाधारण के कोष से यदृच्छया लिया गया है। 'इगलू' का अर्थ है 'स्कीमो की गु बदनुमा झोपडी'। यह 'इगलू' की एक परिभाषा का रूप है। फिर भी इसमे ताथ्यिक तत्त्व है, क्योकि यह एक ऐसा अभिकथन है जिसमे सम्मिलित है, कि 'इगलू' एस्कीमो द्वारा प्रयुक्त शब्द है, जो हिंदी भाषा मे वर्णित 'गु बदनुमा झोपडी' की ओर सकेत करता है' इस प्रतिज्ञप्ति की सत्यता का प्रमाण ताथ्यिक है।

प्रतिज्ञप्ति (५) एक स्वव्याघाती प्रतिज्ञप्ति है, या जैसा कभी-कभी कहा जाता है, 'एक असगति'। यह अनिवार्यत असत्य है और इसका व्याघाती, लाल गुलाब लाल है, अनिवार्यत सत्य है। यह प्रतिज्ञप्ति सत्य है, यह जानने के लिये इसकी अभिव्यक्ति करनेवाले प्रयुक्त शब्दो का अर्थ जानना अनिवार्य एव पर्याप्त है। ऐसी प्रतिज्ञप्तियो को प्राय पुनरुक्तियाँ कहते हैं।

इस परिच्छेद के प्रारभ मे दी गई ग्यारह प्रतिज्ञप्तियो के हमारे लबे विचार-विमर्श का यदि सर्वेक्षण किया जाय, तो हम पायेंगे कि हम इन्हे दो परस्पर-व्यावर्त्तक एव सर्वसमावेशी वर्गो मे विभाजित कर सकते हैं, विभाजन-सिद्धात उनकी सत्यता या असत्यता सिद्ध करने के लिये अपेक्षित प्रमाण का स्वरूप है, दोनो वर्गो का नाम रख सकते हैं ताथ्यिक प्रतिज्ञप्तियाँ, अताथ्यिक प्रतिज्ञप्तियाँ। दूसरी का फिर इस प्रकार विभाजन हो सकता है अनिवार्यत सत्य प्रतिज्ञप्तियाँ, अनिवार्यत असत्य प्रतिज्ञप्तियाँ, या स्वतोव्याघाती प्रतिज्ञप्तियाँ।

ताथ्यिक प्रतिज्ञप्तियो को कभी-कभी **आपातिक प्रतिज्ञप्तियाँ** की सज्ञा दी जाती है, क्योकि उनके सत्य (या असत्य) होने का ज्ञान ससार मे होनेवाली वास्तविक घटना के केवल विवेचन से हो सकता है, अर्थात् उनकी सत्यता (या असत्यता) ससार

हैं कि जैविक वर्गीकरण मे गायें किसी विशिष्ट अतिवर्ग (Superclass) के अदर आती हैं या यह विभिन्न गायो के निरीक्षण के आधार पर सामान्यीकरण माना जा सकता है। दूसरी व्याख्या पहली की अपेक्षा प्रतिज्ञप्ति अधिक आदिम स्तर पर ले जाती है, किसी वर्गीकरण मे इसे जैविक वर्ग का स्थान प्रदान करने मे समर्थ होने के समय तक हमे कुछ क्रमवद्धता प्राप्त हो चुकी थी। वर्त्तमान तात्पर्य के लिये (२), (३) एव (६) को एक साथ रख सकते हैं। इनमे से प्रत्येक के लिये सत्य है कि (i) इसमे विशिष्ट उदाहरणो के साक्षात् निरीक्षण से सामान्यीकरण सम्मिलित है, (ii) इसकी सत्यता का प्रमाण वहुत अश तक समाविष्ट करने वाले विशेष विज्ञान की व्यवस्था मे इसके स्थान से प्राप्त होता है। (८) भी ताथ्यिक सामान्यीकरण है, पर जैसा तर्कशास्त्र का प्रत्येक विद्यार्थी सहज ही स्वीकार करेगा, विना पर्याप्त प्रतिवध के इसका सचमुच अभिकथन नही हो सकता। उदाहरणार्थ, आजकल भारत मे वहुत सी वस्तुओ का मूल्य सरकारी आदेश से निर्धारित होता है। एक बार यदि हम गभीरतापूर्वक समीक्षा करना प्रारभ कर देते है कि अभिकथन, आपूर्ति एव माँग के नियम से सत्य नियन्त्रित होते हैं, किस साक्ष्य पर आधारित है तो उपर्युक्त समस्या के अतिरिक्त भी तथाकथित 'सामाजिक विज्ञानो' से सवधित विशिष्ट प्रश्न हमारे ध्यान मे वरवस आ जायेंगे।*

प्रतिज्ञप्ति (१) को एक समय माना जाता था कि यह पिंडो के निरीक्षत व्यवहार पर आधारित सामान्यीकरण है जिन पिंडो की ऐसी काल्पनिक परिस्थितियो मे उपर्युक्त होने के लिये वहिर्वेशन कर दिया गया है, उसमे कोई वास्तविक पिंड कभी नही पाया जा सकता। जिस रीति से इस कथन को सूत्रवद्ध किया गया है, उससे सकेत मिलता है कि प्रतिज्ञप्ति (१) अनुभवसिद्ध सामान्यीकरण नही है, अर्थात् इसमे व्यावहारिक वास्तविकता नही है, यह परपरा एव निरीक्षण के रेकर्ड का मिश्रण है। यह प्रतिज्ञप्ति न्यूटन का प्रथम गति-नियम है, न्यूटन के सपूर्ण विज्ञान मे इसके लिये प्रमाण मिलता है। एक बार इसे स्वीकार कर लिया जाय, तो प्रतिज्ञप्ति (२) निगमन के रूप मे इससे निकाली जा सकती है और साथ-साथ ग्रहो के बारे मे कुछ आधारवाक्य मिल सकते हैं, जो विशिष्ट दृष्टातो पर आधारित सामान्यीकरण से प्राप्त हुए थे। इस पर अवश्य बल देना चाहिये कि न्यूटन के नियम के लिये जिस 'पमाण' की आवश्यकता है, उसकी, किसी प्राकृतिक नियम (जैसे जल ०° सेन्टीग्रेड पर जम-कर वर्फ हो जाता है) के लिये प्रमाण से प्रकार मे इतनी मूलभूत भिन्नता है कि हमे

---

* मुझे दु ख है कि स्थान का अभाव मुझे इन प्रश्नो को उठाने और उनके उत्तर देने से रोक रहा है। विद्यार्थी को स्वय पूछना चाहिये, 'नियम' के किस अर्थ मे आपूर्ति एव माग का नियम है?

लाचार होकर 'प्रमाण' को उलटे कॉमा मे रखना पडता है—यह प्रतीकात्मक रीति है, जो प्राय यह व्यक्त करने के लिये प्रयुक्त होती है कि हम शब्द को असामान्य रूप मे व्यवहार कर रहे है।

प्रतिज्ञप्ति (७) विचाराधीन अन्य प्रतिज्ञप्तियो से सर्वथा भिन्न है, ससार मे होनेवाली कोई घटना इसकी सत्यता या असत्यता से सबद्ध नही है। अर्द्धवृत्त मे प्रत्येक कोण समकोण होता है, यूक्लीडियन ज्यामिति की स्वयसिद्धियो एव परिभाषाओ से निकलता है, यह इनका अनिवार्य परिणाम है।

प्रतिज्ञप्ति (११) पारिभाषिक कथन के रूप मे माना जा सकता है। हम कहते हैं कि 'माना जा सकता है', क्योंकि यह अभिकथन के सदर्भ पर आश्रित है कि इसकी अभिव्यक्ति के लिये प्रयुक्त शब्दो से ठीक-ठीक क्या कहने का अभिप्राय है। यहाँ यह सदर्भ से मुक्त करके दिया गया है, यह वास्तव मे जनसाधारण के कोष से यदृच्छया लिया गया है। 'इग्लू' का अर्थ है 'स्कीमो की गु बदनुमा झोपडी'। यह 'इग्लू' की एक परिभाषा का रूप है। फिर भी इसमे ताथ्यिक तत्त्व है, क्योकि यह एक ऐसा अभिकथन है जिसमे सम्मिलित हे, कि 'इगलू' एस्कीमो द्वारा प्रयुक्त शब्द है, जो हिंदी भाषा मे वर्णित 'गु बदनुमा झोपडी' की ओर सकेत करता है। इस प्रतिज्ञप्ति की सत्यता का प्रमाण ताथ्यिक है।

प्रतिज्ञप्ति (५) एक स्वव्याघाती प्रतिज्ञप्ति है, या जैसा कभी-कभी कहा जाता है, 'एक असगति'। यह अनिवार्यत असत्य है और इसका व्याघाती, लाल गुलाब लाल है, अनिवार्यत सत्य है। यह प्रतिज्ञप्ति सत्य है, यह जानने के लिये इसकी अभिव्यक्ति करनेवाले प्रयुक्त शब्दो का अर्थ जानना अनिवार्य एव पर्याप्त है। ऐसी प्रतिज्ञप्तियो को प्राय पुनरुक्तियाँ कहते हैं।

इस परिच्छेद के प्रारभ मे दी गई ग्यारह प्रतिज्ञप्तियो के हमारे लबे विचार-विमर्श का यदि सर्वेक्षण किया जाय, तो हम पायेंगे कि हम इन्हे दो परस्पर-व्यावर्त्तक एव सर्वसमावेशी वर्गो मे विभाजित कर सकते हैं, विभाजन-सिद्धात उनकी सत्यता या असत्यता सिद्ध करने के लिये अपेक्षित प्रमाण का स्वरूप है, दोनो वर्गो का नाम रख सकते हैं ताथ्यिक प्रतिज्ञप्तियाँ, अताथ्यिक प्रतिज्ञप्तियाँ। दूसरी का फिर इस प्रकार विभाजन हो सकता है अनिवार्यत सत्य प्रतिज्ञप्तियाँ, अनिवार्यत असत्य प्रतिज्ञप्तियाँ, या स्वतोव्याघाती प्रतिज्ञप्तियाँ।

ताथ्यिक प्रतिज्ञप्तियो को कभी-कभी आपातिक प्रतिज्ञप्तियाँ की सज्ञा दी जाती है, क्योकि उनके सत्य (या असत्य) होने का ज्ञान ससार मे होनेवाली वास्तविक घटना के केवल विवेचन से हो सकता है, अर्थात् उनकी सत्यता (या असत्यता) ससार

किस प्रकार का है इस पर आश्रित है, अत प्रतिज्ञप्तियो की बनावट की सावधानी-पूर्वक की गई किसी परीक्षा से इसकी खोज नही हो सकती। आपातिक प्रतिज्ञप्ति का व्याघाती भी आपातिक होता है। हम देख चुके है कि सत्यता या असत्यता को प्रमाणित करने की विधि की दृष्टि से आपातिक (या ताथ्यिक) प्रतिज्ञप्तियो मे आपस मे भिन्नता होती है। फिर भी सभी समान रूप से अततोगत्वा विशिष्ट दृष्टातो के हमारे साक्षात् निरीक्षण पर आधारित है। कहने का तात्पर्य है कि इनको प्रमाणित करने के लिये इद्रिय-अनुभव पर आग्रह अनिवार्य है। जो तथ्य केवल अनुभवगम्य निरीक्षण से जाने जा सकते हैं, उन्हे 'इद्रियानुभवाश्रित तथ्य' कहते है। ऐसे तथ्य प्राकृतिक विज्ञानो के मूल दत्त (Original data) होते हैं। इन्ही पर अततोगत्वा भौतिक विज्ञानो का भव्य महल खडा किया गया है।

सत्य प्रतिज्ञप्तियाँ प्राय 'अनिवार्य प्रतिज्ञाप्तियाँ' कही जाती हैं, क्योकि असत्य प्रतिज्ञप्तियाँ अवश्य ही स्वतोव्याघाती होती हैं और इसलिये असभव है। बहुत से आधुनिक तर्कशास्त्रियो का विचार है कि सभी अनिवार्य प्रतिज्ञप्तियाँ पुनरुक्तियाँ है (अर्थात् यह लाल गुलाब लाल है के समरूप है)। २ + २ = ४ इस आधार पर पुनरुक्ति मानी जाती है कि प्रतिज्ञप्ति की सत्यता इसमे सम्मिलित पदो की परिभाषा से निकलती है। इसी कारण ऐसी प्रतिज्ञप्तियो जैसे किसी अर्द्धवृत्त मे का प्रत्येक कोण समकोण होता है, पुनरुक्तियाँ मानी जाती हैं। ये तार्किक, पुनरुक्तियो के भीतर प्राय भेद करते हैं। उदाहरणार्थ सपत्ति धन-दौलत है, शौर्य वीरता है, पर्याय-प्रतिज्ञप्तियाँ कही जाती हैं। इन विचारो की समीक्षा करना हमारे लिये यहाँ सभव नही है। इतना सकेत कर देना अवश्य पर्याप्त होगा कि यदि दिया हुआ है कि कोई प्रतिज्ञप्ति ऐसी है कि उसकी सत्यता उसमे सम्मिलित पदो के स्वभाव से अनुमित है, तो वह प्रतिज्ञप्ति अनिवार्य है और उसका व्याघाती स्वतोव्याघाती है। अनिवार्य प्रतिज्ञप्तियो का असत्य होना असभव है। यह कथन स्वत पुनरुक्ति है।

§ ३. तार्किक सिद्धांतों की अनिवार्यता

कुछ तत्कालीन तर्कशास्त्रियो (जिनमे तर्कीय प्रत्यक्षवादी भी सम्मिलित हैं) का मत है कि सभी अनिवार्य प्रतिज्ञप्तियाँ, परपराएँ हैं, वे तार्किक सिद्धातो को भी परपराएँ मानते है। कुछ इससे भी आगे जाते है और कहते हैं कि ऐसे प्रकृति-नियम जैसे गुरूत्वाकर्षण सिद्धात भी परपराएँ है।* इस मत के उचित विवेचन के लिये 'परपरा'

---

* यह मत मुख्यत प्रोफेसर ए एस एडिंगटन के विज्ञान-दर्शन पर लिखित उनके लेखो के साथ सबद्ध है।

शब्द के विभिन्न अर्थों की समीक्षा करनी होगी तथा दिखलाना होगा, कि हम कैसे शनै-शनै सामाजिक आदान-प्रदान मे प्रयुक्त 'परपरा' के अर्थ से आगे बढकर वैज्ञानिक नियमो के सबध मे इसके प्रयोग तक पहुँचते है। इस प्रयास के लिये यहाँ स्थान तो नही ही है, पर इतना स्वीकार करना पडेगा कि सप्रत्यय परपरा का परिशुद्ध विश्लेषण अभी तक विस्तारपूर्वक नही हुआ है। हम इसका उल्लेख केवल यह दिखलाने के लिये कर रहे हैं कि यदि आगे अध्ययन करना चाहे, तो विद्यार्थियो की खोज के लिये यहाँ कुछ सामग्री है। इस पुस्तक मे हम तार्किक सिद्धातो के पारपरिक दृष्टि का अनुसरण नही करेंगे।'

यह स्पष्ट करना सरल नही है कि 'अनिवार्यता' के ठीक-ठीक किस अर्थ मे, तार्किक सिद्धात अनिवार्य हैं। अभिकथन करना कि उनकी सत्यता स्वत प्रमाणित है तथा स्वत प्रमाणित सत्य अनिवार्यत सत्य होते है, बहुत आसान है। पर, स्वत' प्रामान्य खतरनाक प्रत्यय है। इससे सुस्पष्टता एव तार्किक प्राथमिकता दोनों सम्मिलित मालूम पडती है। जो एक व्यक्ति के लिये सुस्पष्ट है, वह दूसरे के लिये नहीं है, यह अशत बुद्धि की प्रखरता एव अशत सुविज्ञता पर आधारित होता है। दुर्भाग्यवश हमे ज्ञात हुआ है कि प्रतिज्ञप्ति जो बहुत दिनो से योग्य विचारको द्वारा स्वत प्रमाणित मानी जा रही थी, वह अब असत्य सिद्ध हो गई है। जो असदिग्ध है वह अनिवार्यत सत्य नही है, शका करने की हमारी क्षमता हमारे पूर्व ज्ञान तथा बौद्धिक दक्षता पर आश्रित होती है।

आधुनिक तर्कशास्त्रियो ने नैगमनिक-पद्धति की व्याख्या मे पर्याप्त कौशल एव शक्ति लगाई है। इसका प्रारूप, उदाहरणार्थ, वही रहा है, जो यूक्लिड की ज्यामिति मे निगमनात्मक प्रणाली का। सावधानीपूर्वक कथित परिभाषाओ एव स्वयसिद्धियो से प्रारभ करके पग-पग पर कठोर निगमन द्वारा साध्य अनुमित हैं। इनमे से कुछ पद्धतियाँ, विशेष रूप मे तर्क-सिद्धातो के प्रमाण के लिये, बहुत सोचकर निकाली गई हैं। इस प्रकार की सबसे सुपरिष्कृत रचना ह्वाइट हेड एव रसेल की प्रिंसिपिया मैथेमेटिका है। * इस तत्र (System) मे, उदाहरण के लिये, व्याघात-सिद्धात अभ्युपगमो (Postulates) मे सम्मिलित नही किया जाता। यह अपेक्षाकृत बाद मे इस तत्र मे निगमित होता है। पर, किसी प्रकार इससे यह नही प्रकट होता कि यह सिद्धात कही भी निदर्शन मे वस्तुत प्रयुक्त नही हुआ है। इस प्रकार के तत्र से व्यक्त होता है कि तार्किक सिद्धात आपस मे ऐसे निकट से जुडे हुए है कि कोई एक सिद्धात

---

* प्रिंसिपिया मैथेमेटिका के अध्ययन के लिये आर० एम० ईटन द्वारा लिखित जनरल लॉजिक भाग III बहुत ही सारगर्भित भूमिका प्रदान करती है।

कुछ अन्य सीमित सिद्धातो के समूह से नैगमनिक प्रणाली द्वारा प्राप्त किया जा सकता है और दिखलाया जा सकता है कि वह अपने को आपादन करता है। यह रीति हमारे विश्वास मे बल दे सकती है कि तार्किक सिद्धात सभी प्रकार के तर्कशील चिंतन के लिये अनिवार्य है, परतु इसे स्वय सिद्धातों का स्वतत्र प्रमाण नही माना जा सकता। यहाँ इस अभिकथन से हमे सतोष कर लेना चाहिये कि तार्किक सिद्धात हमारे चिंतन के लिये इतना मूलभूत है कि बिना इन्हे पूर्वमान्यता के रूप मे माने हम चिंतन कर ही नही सकते। इनके बिना तत्रो की रचना भी नही हो सकती थी।

§ ४ अनुनय एवं प्रमाण

किसी प्रतिज्ञप्ति में विश्वास करना तथा उसके सत्य होने मे विश्वास करना एक ही बात है। किंतु, हम बहुधा ऐसी प्रतिज्ञप्तियो मे भी विश्वास करते हैं, जो असत्य हैं। हम चाहते हैं कि हमारे विश्वास ज्ञान का रूप ले लें, कभी-कभी जानते हुए कि यह विश्वास है, ज्ञान नही है, हम उस विश्वास को धारण किये रहते है। हम अपने निष्कर्ष को तभी सत्य जान सकते है, जब हमे मालूम हो जाय कि आधार-वाक्य सत्य है और वे निष्कर्ष का आपादन करते हैं। इसके लिये हम अनुमान करते हैं। दुर्भाग्यवश, अपने सशयो को दूर करने की जल्दी मे तर्केतर पद्धतियो द्वारा विश्वास करने के लिये हम अपने को तैयार कर सकते हैं,इसे अनुनय (Persuasion) कहते हैं। अनुनय एव दृढ विश्वास (Conviction) मे भेद करने वाली स्पष्ट रेखा यहाँ खीचनी है। सशय दूर करने वाली पद्धति के स्वरूप को स्पष्ट कर इनमे विभेद करना है। वक्ता बहुधा अनुनय-रीति का व्यवहार करता है, उसका लक्ष्य किसी भी कीमत पर विश्वास प्रेरित करने का होता है, न कि अपने दावे को प्रमाणित करने का। उसकी कला इसी में है कि वह अपने पाठको (या श्रोताओ) को कोई निष्कर्ष स्वीकार करने के लिये बहका ले, जिसके लिये उसने कोई प्रमाण नही दिया है और जो असत्य भी हो सकता है। वक्ता का आग्रह तर्क पर नही, बल्कि अनियत्रित सवेग पर, तर्कानुसार सगत विचारो पर नही, बल्कि पूर्वाग्रह पर होता है। हम अपने लिये भी कम स्थलों पर स्वय वक्ता नही बनते।

विवेकशील दृढ विश्वास की पद्धति तर्कसगत प्रमाण मे पाई जाती है। बुद्धि को स्वीकार कराने के उद्देश्य से सुनिर्मित युक्ति मे ऐसे गुण प्रदर्शित होते है, जैसे सुस्पष्टता, शृ खलाबद्धता या प्रासगिकता, व्याघात-मुक्तता या सगति, निदर्शनात्मकता या अकाट्यता। इस प्रकार यदि तर्कबुद्धि से मैं अपने को या दूसरों को स्वीकार कराना चाहता हूँ कि कोई विशिष्ट प्रतिज्ञप्ति सत्य है, तो मुझे सावधानीपूर्वक निश्चय कर लेना चाहिये कि आधारवाक्य सत्य हैं या नही और मुझे परिशुद्ध वैध युक्ति बनाने का

लक्ष्य रखना चाहिये। वह युक्ति वैध कही जाती है, जिसमे निष्कर्ष तार्किक नियमो के अनुसार निकाला जाता है। जैसे—न्यायवाक्य या मिश्र युक्तियाँ। हम मानने मे ईमानदारी मे भूल कर सकते है कि हमारी युक्ति वैध है। हमारी भाषा मे असदिग्ध अनेकार्थताएँ हो सकती है, किसी प्रतिज्ञप्ति के बारे मे भूलवश विश्वास करके कि वह सिद्ध हो चुकी है हम उसे आधारवाक्य के रूप मे प्रयुक्त कर सकते है। भूल करने के बहुत से मार्ग है। राजनीति, कला, शिक्षा और धर्म-सबधी हमारे व्यावहारिक जीवन के सामान्य वार्तालापों मे अपनी युक्तियो के आकार पर सावधानीपूर्वक ध्यान देना यह निश्चित करने के लिये पर्याप्त नही है कि हमारे निष्कर्ष सत्य है। हम अतर्हित पूर्वधारणा बना लेते है जो सदैव सत्य नही होती, हमे बहुधा दुर्बल सभावनाओ पर आश्रित होना पडता है। आकारपरक तार्किक नियम हमे कोई ऐसी गारटी नही दे सकते कि हमारी युक्तियाँ निर्णायक है, परतु उनके बारे मे सुबोधता एव ठीक-ठीक अनुमान करने की इच्छा, तर्क-दोषो को पहचानने मे तथा सीखे हुए नियमो को व्यवहार मे लाने मे हमारी अवश्य सहायता करते है।

तर्कशास्त्र की प्रारभिक पाठ्य-पुस्तक मे तर्क-दोषो पर एक अध्याय (कभी-कभी एक से अधिक) सम्मिलित करना प्रथागत है। तर्क-दोष के सर्वमान्य प्रकारो के सक्षेप निरूपण से हम सतोष कर लेगे और उनके वर्गीकरण का प्रयास नही करेगे। *

तर्क-दोष मे पडने का अर्थ है, सही अनुमान के नियामक तर्क-नियमो मे से किसी एक का उल्लघन करना। यदि किसी उक्ति मे इन नियमो मे से एक (या अधिक) का उल्लघन होता है, तो उसे सदोष कहते हैं। नियम पर विचार करते समय उनके उल्लघन से उत्पन्न दोष को भी हमे समझ लेना चाहिये। अव्यवहित अनुमान एव न्यायवाक्य के नियमो के उल्लघन से उत्पन्न आकारिक दोषो को यहाँ याद दिलाना पर्याप्त होगा। सक्षेप मे इनकी तालिका इस प्रकार बन सकती है

(१) अनुचित व्याप्ति का दोष, जैसे किसी आ प्रतिज्ञप्ति के सरल परिवर्तन से, अव्याप्त-साध्य या अव्याप्त-पक्ष से, तथा अव्याप्त-मध्यम से दोष,

(२) फलवाक्य—विधान-दोष एव हेतु-वाक्य-निषेध-दोष,

---

* यह बहुत बडी भूल होगी यदि विद्यार्थी समझ लेंगे कि यहाँ दिया गया तर्कदोष-निरूपण पर्याप्त है। मेरी समझ से तर्क-दोष का निरूपण सुविधापूर्वक सक्षेप मे नहीं हो सकता, उनका सविस्तर निदर्शन करना आवश्यक है। स्थान इसकी अनुमति नही देता, और न यह आवश्यक है। पहले के अध्यायो का अध्ययन करने के बाद विद्यार्थियो को चाहिये कि वे अपनी तालिका स्वय बनाने मे योग्य हो जायँ।

(३) तथाकथित 'चतुष्पद-दोष' जो अनेकार्थक भाषा के प्रयोग से उत्पन्न होता है, अर्थात् आधारवाक्य मे प्रयुक्त शब्दो से निर्दशित पद वही नही होता, जो निगमन मे प्रयुक्त शब्दो से निर्दिष्ट पद है या भाषा-सवधी ऐसी ही भूल मध्यमपद के सबध मे भी होती है।

(३) का (१) एव (२) से महत्त्वपूर्ण भेद है, यह दोष युक्ति मे आनेवाली प्रतिज्ञप्तियो के कथन मे प्रयुक्त भाषा के कारण होता है, इसलिये (१) एव (२) से इसकी परिस्थिति भिन्न है, इस दोष से बचने के लिये केवल आकारिक नियमो पर ध्यान देना पर्याप्त नही है। स्वरू-वैशिष्ट के कारण इस दोष का सक्षिप्त निरूपण नही हो सकता। *

अर्थातर-सिद्धि-दोष (Irrelevant conclusion) अत्यत सामान्य हैं। निष्कर्ष जिसे सिद्ध करने की प्रतिज्ञा नही हुई है और जो आधारवाक्य मे निहित नही होता, अप्रासागिक है। तर्कशास्त्रियो ने ऐसे दोष को प्रतिज्ञातर-सिद्धि-दोष (Ignoratio elenchi) कहा है (अर्थात् प्रतिपक्षी के तर्क-विषय की उपेक्षा करने की भूल)। इसका एक दृष्टात इस धारणा मे पाया जाता है कि प्रारभिक शिक्षा के बाद वाली शिक्षा व्यर्थ है, क्योकि कुछ उच्च शिक्षा प्राप्त मनुष्य अच्छे नागरिक नही हैं। 'आप्त-वचन की सहायता लेना' जिसे श्रद्धामूलक युक्ति (Argumentum adverecundiam) कहते है कभी-कभी सदोष होता है, जैसे हम किसी विवादग्रस्त विषय को यह प्रदर्शित कर सिद्ध मान ले कि अमुक सम्मानित व्यक्ति का इस पर ऐसा मत है। पर यदि वह अधिकारी विषय का विशेषज्ञ है तथा प्रतिद्वद्वी अनभिज्ञ है, तो आप्त-सहारा उचित है। ध्यान देने की बात है कि तार्किक सिद्धात की प्रगति सदियो तक अवरूद्ध रही, क्योकि तार्किक बिना पूर्ण समीक्षात्मक बुद्धि लगाये मान लिये थे कि जो कुछ अरस्तू ने कहा था, वह सत्य तथा साथ-ही-साथ उस विषय का सपूर्ण सत्य था। इस दोष का दूसरा रूप वहाँ व्यक्त होता है, जब हम युक्ति देते हैं कि अमुक व्यक्ति का तर्क अवश्य ही असत्य होगा, क्योकि वह बदनाम व्यक्ति है। इसकी सपरिवर्तित भूल है कि किसी के मत को धर्म या शिक्षा जैसे विषय पर मान्यता देना, क्योकि वह मनुष्य समाज की दृष्टि मे किसी स्तर पर उस विषय से सर्वथा तटस्थ है, जैसे वह कोई प्रसिद्ध उपन्यासकार या सिनेमा-नायक है। इस दोष के मूल मे धारणा है कि एक स्तर की सामाजिक प्रतिष्ठा और दूसरे स्तर के विशेषज्ञ होने मे सगत सबध है। हाँ, इससे यह नहीं निकलता कि उपन्यासकार या सिनेमा-नायक अन्य विषयो के सदर्भ मे अयोग्य है, पर इसे सिद्ध नही मान लेना चाहिये।

---

* इसके सविस्तर विवेचन के लिये देखिये स्टेबिंग माडर्न इन्ट्रोडक्शन टू लॉजिक, चैप० II, §§ २-४

संहति एवं विभाजन (Composition and Division) के दोष एक दूसरे के समपरिवर्ती हैं दोनों ही किसी पद के समष्टिसूचक एवं व्याप्तिसूचक प्रयोग की भ्रान्ति पर अथवा किसी वैकल्पिक प्रतिज्ञप्ति को संयोजक प्रतिज्ञप्ति समझ लेने पर आधारित हैं। जैसे अपव्ययी मनुष्य युक्ति देता है कि चूँकि मैं अ या ब या स को खरीदने की क्षमता रखता हूँ, इसलिये मैं अ एवं ब एवं स को खरीदने की क्षमता रखता हूँ, कंजूस व्यक्ति तर्क देता है कि चूँकि मैं अ एवं ब एवं स को खरीदने की क्षमता नहीं रखता, इसलिये मैं अ या ब या स को नहीं खरीद सकता।

चक्रक युक्ति के दोष या तो विवाद-विषय को स्पष्टतः मान लेने में होते हैं या किसी प्रतिज्ञप्ति को आधारवाक्य मानने में होते हैं, जो स्वयं उसी निष्कर्ष से सिद्ध होती है, जिसके लिये वह आधारवाक्य बन चुकी है। तर्क-कर्त्ता चक्र में घुमता है। उदाहरणार्थ, युक्ति दी जाती है कि उच्च शिक्षा व्यर्थ है, क्योंकि एक बार स्कूल छोड़ देने के बाद यह अध्ययन किसी को कोई लाभ नहीं पहुँचाता। आधारवाक्य निष्कर्ष की केवल पुनरावृत्ति करता है, पर प्रायः बहुत ही सूक्ष्म और प्रच्छन्न रूप में। यदि 'चक्र का व्यास' बहुत बड़ा हो, तो दोष को समझना बहुत कठिन होगा। डेकार्ट इस दोष में आ गये (छोटे चक्र में) जब उन्होंने युक्ति दी, 'कहीं रिक्त स्थान नहीं हो सकता, क्योंकि यदि दो पिंडों के बीच कुछ नहीं है तो वे अवश्य स्पर्श करेंगे।' इस प्रकार के तर्क-दोष को आत्माश्रय-दोष (Petitio principii) कहा जाता है। इसका एक रूप है प्रमापेक्ष शब्दों का व्यवहार (Question-begging), बहुधा अप्रिय विशेषण के रूप में। ए० पी० हरबर्ट कहते हैं,'अपने राजनीतिक प्रतिद्वंद्वी को बदनाम कर दो, और यह बहुत सी योग्य युक्तियों की अपेक्षा उसकी अधिक क्षति करेगा।' *

---

* ह्वाट ए वर्ड, पृष्ठ २२९। श्री हरबर्ट की पुस्तक चैप० VIII में इस दोष के बहुत रोचक एवं शिक्षाप्रद दृष्टांत हैं।

—०—

अध्याय ९

न्यायवाक्य की वैधता

§ १ न्यायवाक्य एवं विचार-नियम

न्यायवाक्य की व्याख्या करते समय हमने देखा कि इस प्रकार के अनुमान अभ्युक्ति (Dictum) से निकलते है तथा अभ्युक्ति विचार-नियम की अव्यवहित अभिव्यक्ति है। विचार-नियम, यद्यपि किसी साक्षात् प्रमाण से सिद्ध होने लायक नही है, क्योकि इनसे अधिक निश्चित कोई दूसरा नियम नही है, जिससे ये निष्कर्ष के रूप मे निकाले जा सके, फिर भी ये किसी से कम निश्चित नही है। ये सभी प्रकार के चिंतन एव क्रिया सिद्धात एव व्यवहार की पूर्वमान्यता हैं, यदि ये सत्य नही हैं, तो न कोई सत्य है और न कोई निश्चयात्मकता। सभी प्रकार के ज्ञान की सभावना तथा सभी प्रकार के अनुमान की वैधता को विना अस्वीकार किये हम इनका निषेध नही कर सकते। यदि विचार-नियम अभ्युक्ति की सत्यता की गारटी करते हैं तथा अभ्युक्ति न्यायवाक्य के नियमो की वैधता की गारटी करती है, तो इससे स्पष्ट है कि न्यायवाक्य की वैधता पर, ज्ञान की पूरी नीव को बिना हिलाये, प्रश्न-चिह्न नही लगाया जा सकता। पर यदि ऐसी बात है, तो क्या अभ्युक्ति के माध्यम से विचार-नियम से न्यायवाक्य को सबद्ध कर इसे बिलकुल खोखला नही बना दिया गया है? क्या इसमे निरर्थक पुनरुक्ति नही है, जिससे ज्ञान की आवश्यकता की पूर्ति नही होती? क्या ऐसा न्यायवाक्य मात्र शब्द-जाल नही है, जिसमे निष्कर्ष आधारवाक्यो की बात को केवल दुहराता है? यदि ऐसी बात है, क्या अनुमानाभास से ही हम भ्रमित नही हो रहे हैं और सोच रहे है कि निष्कर्ष सिद्ध हो रहा है, जब कि वह केवल अभिगृहीत है? तब पूछा जाता है, कि क्या हमारे वास्तविक ज्ञान मे न्यायवाक्य कुछ भी वृद्धि करता है, क्या इससे हमे कोई नई सूचना प्राप्त होती है? यदि नही, तो क्या हम इसे अनुमान कह सकते है?

इन प्रश्नो से दो बाते स्पष्ट निकलती है, उन पर हम अलग-अलग विचार करेगे। प्रथम धारणा है कि वैध न्यायवाक्य मे कोई ऐसी नई सूचना नही मिलती, जो पहले से

ही आधारवाक्यो मे उपस्थित न हो या जिमे पहले ही मान न लिया गया हो । अत, इससे वास्तविक अनुमान की आवश्यकता की पूर्ति नही होती । वास्तविक अनुमान तो वह है जिसमे निष्कर्ष नया ज्ञान प्रदान करे, नये तथ्य का उद्‌बोधन हो, कुछ ऐसी बाते मिलें, जिन्हें हम पहले से नही जानते । अपेक्षा रहती है कि पहले से उपस्थित ज्ञान के आधार पर हम कुछ नई बात निकाल सके, भविष्य के बारे मे कुछ कह सकें । यदि अनुमान हमारे पूर्व-ज्ञान की पुनरुक्ति मात्र है, तो उससे क्या लाभ है ? और न्यायवाक्य इस पुनरुक्ति के अतिरिक्त कुछ नही करता । अत, हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यदि न्यायवाक्य वैध है, तो वह मात्र कोरी पुनरुक्ति है, और यदि यह नया ज्ञान देता है, तो अवैध है, क्योकि निष्कर्ष आधारवाक्यो के बाहर से प्राप्त होता है ।

न्यायवाक्य की दूसरी आलोचना है कि प्रथम आकृति के आकारिक वैध न्यायवाक्य मे—प्रथम आकृति जो सबमें पूर्ण कही जाती है और दूसरो का जिसमे आवृत्यतरण हो सकता है—साध्य-आधारवाक्य की सत्यता को सिद्ध करने के लिये निष्कर्ष की आवश्यकता पडती है और तब यदि साध्य-आधारवाक्य निष्कर्ष को प्रमाणित करने के लिये प्रयुक्त होता है, तो आत्माश्रय-दोष हो जाता है और अनुमान अवैध हो जाता है । न्यायवाक्य की ये दोनो आलोचानाएँ मिल द्वारा प्रस्तुत की गई हैं । इन पर विचार-विमर्श करने से स्पष्ट हो जायगा कि वस्तुत अनुमान की क्या आवश्यकताएँ हैं और न्यायवाक्य तथा उसके सिद्धातरूप अभ्युक्ति को किस रूप मे समझना चाहिये । मिल के प्रति भी न्याय करते हुए कहा जा सकता है कि कुछ मध्यकालीन तथा कुछ आधुनिक आकारिक तर्कशास्त्रियो ने न्यायवाक्य का ऐसा ही रूप प्रस्तुत किया है । पर, ऐसा करना उचित नही है । अरस्तू ने भी न्यायवाक्य को इस रूप मे नही समझा है । हम इन दोनो आलोचनाओ पर अलग-अलग विचार करेंगे । सर्वप्रथम दूसरी आलोचना को लेते है ।

§ २. क्या न्यायवाक्य चक्रक है ?

कुछ तर्कशास्त्रियो का मत है कि सभी निगमनात्मक युक्तियो मे आत्माश्रय-दोष पाया जाता है । इस दोष का वर्णन हम मिल के शब्दो मे करेंगे * 'यह अवश्य मान लेना चाहिये कि निष्कर्ष को प्रमाणित करने वाली युक्ति के रूप मे प्रत्येक न्यायवाक्य मे आत्माश्रय-दोष पाया जाता है । जब हम कहते हैं—

सभी मनुष्य मरणशील हैं,
सुकरात एक मनुष्य हैं,
इसलिए सुकरात मरणशील हैं,

---

* सिस्टम ऑव् लॉजिक, बुक 11. चैपटर 111, सेक० २ ।

तो न्यायवाक्य के विरोधियो द्वारा अकाट्य रूप से तर्क किया जाता है कि प्रतिज्ञप्ति, सुकरात मरणशील है, अधिक व्यापक अभिग्रह, सभी मनुष्य मरणशील है, मे पूर्वमान्यता के रूप मे पडी हुई है हम सभी मनुष्यो की मरणशीलता के प्रति आश्वस्त नही हो सकते, यदि हम पहले ही से प्रत्येक व्यक्तिगत मनुष्य की मरणशीलता के प्रति सुनिश्चित नही है यदि यह अभी सदेहपूर्ण है कि सुकरात या अपनी इच्छानुसार किसी अन्य व्यक्ति का नाम ले, मरणशील हैं, या नही, तो यह सदेहात्मकता अभिकथन, सभी मनुष्य मरणशील हैं, पर भी अवश्य लागू हो जायगी सामान्य सिद्धात, विशिष्ट उदाहरण के प्रमाण मे रखे जाने की जगह, तब तक अपवादरहित सत्य नही माना जा सकता, जब तक इसके अदर आनेवाले दृष्टांतो के प्रति सदेह की अतिम रेखा भी साक्ष्य द्वारा मूलत दूर नही कर दी जाती और तब न्यायवाक्य को सिद्ध करने के लिए क्या बच जाता है ? सक्षेप मे, सामान्य से विशिष्ट की ओर आने वाला कोई तर्क वस्तुत कुछ नही सिद्ध कर सकता, क्योंकि किसी सामान्य सिद्धात से, उसके अभिगृहीत विशिष्ट उदाहरणो के अतिरिक्त, अन्य की अनुमिति नही हो सकती ।'

मिल की यहाँ युक्ति है कि आकारपरक तर्कशास्त्र के पारपरिक सिद्धात के अनुसार प्रत्येक न्यायवाक्य का आकृति I मे आकृत्यतरण हो सकता है। इस आकृति मे साध्य-आधारवाक्य सर्वव्यापी और पक्ष आधारवाक्य विधायक होते हैं, एक या अधिक दृष्टात किसी नियम या सामान्य के अदर ले आया जाता है। ऐसी युक्तियो मे साध्य-आधारवाक्य सर्वव्यापी रूप से, जो व्यक्तिगत उदाहरण मे सिद्ध करने के लिये रहता है, उसी को निष्कर्ष मे कहता है। अत , साध्य-आधारवाक्य मे निष्कर्ष का अभिग्रह हो जाता है और निष्कर्ष ही साध्य को सिद्ध करने के लिये अपेक्षित हो जाता है। इसलिये हमारे सिद्ध करने के पूर्व यदि निष्कर्ष सदेहात्मक है, तो साध्य-आधारवाक्य भी, जिसके द्वारा निष्कर्ष को सिद्ध किया जाता है, उसी मात्रा मे सदेहात्मक है और इसलिये न्यायवाक्य द्वारा सिद्ध हो जाने के बाद भी निष्कर्ष पूर्ववत् सदेहात्मक बना रहता है।

यह दावा साध्य-आधारवाक्य तथा अभ्युक्ति के एक विशेष व्याख्या पर आधारित है। वस्तुत इसके मूल मे सामान्य के स्वरूप के प्रति एक विपेष विचार-धारा काम करती है। इसमे माना जाता है कि सामान्य, और इसलिये प्रथम आकृति के न्यायवाक्यो के साध्य-आधारवाक्य, विशेषो के सघात है, और सर्वव्यापी कथन को प्रमाणित करने की एक मात्र रीति है कि उसके अदर आने वाले विशिष्ट उदाहरणो को अलग-अलग प्रमाणित कर लिया जाय। सामान्यो की, विशेषकर साध्य-आधार-वाक्य एव अभ्युक्ति की, इस व्याख्या के लिये आकारपरक तर्कशास्त्रियो की पुस्तको मे पर्याप्त आधार हे। प्रतिज्ञप्ति-आशय के वर्ग-सिद्धात, पद-व्याप्ति के पारपरिक

नियम, अम्युक्ति का स्वय नाम ही-यज्जातिविधणम् तद् यक्तिविधयम् (Dictum be omni et nullo), और साध्य-आधारवाक्य का सामान्य रूप सभी मनुष्य मरणशील है, इन सबसे गणनात्मक दृष्टिकोण का सकेत मिलता है। और मिल स्वय अपनी मूल दाशनिक विचारधारा के कारण इसे अपनाने के लिये बाध्य थे। उनके अनुसार सभी प्रकार के ज्ञान का प्रारभ विंदु विशिष्ट तथ्य या, व्यक्तिगत दृष्टातो का प्रेक्षण है, सामान्य कथन बहुत से विशिष्ट प्रेक्षणो के फल को सक्षेप मे रखने की केवल एक रीति है। विशिष्ट प्रेक्षण ही हमे सर्वव्यापी कथन करने का अधिकार देते है और जब तक उन विशिष्ट उदाहरणो मे एक भी अप्रेक्षित रह जाता है, तब तक वह कथन सर्वथा सत्य नही कहा जा सकता। इस मत के अनुसार सामान्य का एकमात्र सभव प्रकार गणनात्मक रूप है, अर्थात् उसके अदर आनेवाले प्रत्येक उदाहरण को अलग-अलग प्रमाणित करने के बाद वह कथन किया जाय जैसे, 'इस आलमारी की सभी पुस्तकें इतिहास की है, या इस कमरे की सभी कुर्सियाँ सागवान की हैं।'

अब यदि प्रत्येक न्यायवाक्य का साध्य-आधारवाक्य गणनात्मक कथन है, विशिष्ट कथनो का एक सघात, तो मिल का दावा कि प्रत्येक न्यायवाक्य मे आत्माश्रय-दोष होता है, सर्वथा सत्य है। तब न्यायवाक्य का रूप इस प्रकार का होगा।

सभी म (अर्थात् क, ख, ग,·· स, ट, अ, ब, स) प हैं

स, म है,

∴ स, प है।

अर्थात्, कमरे की सभी कुर्सियाँ सागवान की बनी है।
कुर्सी जिस पर आप बैठे हैं, इस कमरे की कुर्सी है।
कुर्सी जिस पर आप बैठे हैं, सागवान की बनी हैं।

इस न्यायवाक्य मे स्पष्टत आत्माश्रय-दोष है, क्योकि जिस पर आप बैठे है, उस कुर्सी का यदि प्रक्षण नही हुआ है, तो हमे यह कहने का न्यायोचित अधिकार नही है कि सभी कुर्सियाँ सागवान की बनी हैं। इस कमरे की कुर्सी होना तथा सागवान की बनी होना मे कोई अनिवार्य सबध नही है। इसलिये उपर्युक्त न्यायवाक्य के साध्य-आधारवाक्य के कथन के पूर्व, हमे प्रत्येक कुर्सी को अलग-अलग अवश्य देख लेना पडेगा। तभी निष्कर्ष की सत्यता की गारटी हो सकती है।

मिल की धारणा को सत्य मानने पर उसके निष्कर्ष पर अवश्य आना पडेगा। यदि सभी सामान्य गणनात्मक हैं, तो अभ्युक्ति एव प्रथम आकृति का प्रत्येक आधार-वाक्य गणनात्मक प्रतिज्ञप्ति है। और, यदि ऐसी बात है, तो प्रत्येक न्यायवाक्य मे आत्माश्रय-दोष है। किंतु, इस सिद्धात के अनुसार, हमे बहुत ही कम सामान्य

प्रतिज्ञप्तियाँ मिल सकती है वही पर यह सभव है जहाँ सदर्भ वस्तुओ की सख्या निश्चित है और उनका अलग-अलग प्रेक्षण हो सकता है। और इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है कि प्राप्त सामान्य अपने घटक विशेषो की ही तरह है, वे वस्तुत सामान्य नही हैं। ये विशेषो के समूह मात्र हैं। विशेषो का समूह एक विशेष होता हे, सामान्य नही। लेकिन, इस मत के अनुसार हमे ऐसा सामान्य नही मिल सकता कि 'सभी मनुष्य मरणशील हैं'। मिल ऐसी परिस्थिति को स्वीकार करते है और मानते हैं कि इस प्रकार के सामान्य की रचना बहुत से प्रेक्षित तथा बहुत अनप्रेक्षित लेकिन अनुमित दृष्टात के मेल से होती है।* प्रेक्षित व्यक्तियो के आधार पर हम अनुमान करते हे कि जो उनके लिये सत्य है, वह उस प्रकार के अन्य व्यक्तियो के लिये भी सत्य होगा जिनका प्रेक्षण नही हुआ है, परतु अनप्रेक्षित व्यक्तियो मे उस गुण का आरोप करने का अधिकार हमे केवल उस सामान्य के कारण प्राप्त होता है, जिमे हमने प्रेक्षित उदाहरणो मे पाया है और जिसे हम अपने न्यायवाक्य के साध्य-आधार-वाक्य मे कहते हैं। चूँकि अनप्रेक्षित व्यक्ति प्रेक्षित के ही प्रकार के हैं, एक ही सामान्य के दृष्टात हैं, इसलिये हम उनमे उन गुणो का आरोप कर सकते हैं जो पहले मे मिले है। ऐसा सामान्य, विशेषो का सघात नही हो सकता, अपितु यह किसी तत्र के विभिन्न अवयवो के बीच अतर्सबध होगा। यदि चिंतन तथा अनुमान को सभव होना है, तो सामान्यो को विशेषो के सघात से भिन्न होना ही पडेगा, इन सामान्यो मे उद्देश्य एव विधेय के बीच अनिवार्य सबध होगा, यह सबध अतर्विष्ट अवयवो मे एक-सा होगा।

ज्ञातव्य है कि न्यायवाक्य मे भी अनुमान तत्र (System) के आधार पर चलता है, यद्यपि यह तत्र भिन्न प्रकार का होता है। इसमे एक ही उद्देश्य के विभिन्न विधियो मे नियमित सबध होता है। ये सभी विधेय मिलकर उस उद्देश्य को एक विशिष्ट प्रकार देते हैं। इसमे सदेह नही कि न्यायवाक्य तत्र, व्यवस्था, या अतर्विष्ट अवयवो के बीच विशिष्ट सबध की पुनरुक्ति करता है, किंतु जब तक तत्र की पुनरुक्ति न होगी और वह अपने सभी उदाहरणो मे उपस्थित नही होगा, तब तक वे उदाहरण एक वर्ग के नही होगे और हम एक से दूसरे की अनुमिति नही कर सकेंगे। अत, न्यायवाक्य मे गुणो या तत्त्वो के बीच सबध का बोध, न कि व्यक्तियो की गणना, हमारे अनुमान की सुरक्षा करती है।

तब यदि ऐसे सामान्य हैं, जिनके तत्त्वो के बीच अनिवार्य सबध होता है, तो सर्वव्यापी कथन के लिये उनके उदाहरणो की अलग-अलग समीक्षा हो, इसकी आवश्यकता नही—अधिकाश जगह तो चाह कर भी नही कर सकते, और यदि ऐसे

* वही पुस्तक, सेक० ३

सामान्यो की सत्ता नही है, तो सभी ज्ञान और सभी अनुभाव असभव हैं। ऐसे वास्तविक सामान्यो की अभिव्यक्ति हेत्वाश्रित रूपो मे अधिक स्पष्ट ढग से होती है, जैसे 'यदि स, तो प,' 'स का स्वभाव ही है प होना,' 'स वस्तुत प है। निरुपाधिक रूप 'सभी स, प है,' या 'स वर्ग के सभी सदस्य, प वर्ग के सदस्य हैं', मिल की आलोचना को बहुत बल देते हैं। इस आकार से गणनात्मकता की ओर सकेत होता है और तत्र या अनिवार्य सबध का आधार गौण पड जाता है। यही मिल की भी भूल है।

यदि सामान्य के लिये गणनात्मक दृष्टि अपनाई जाय, तो सर्वव्यापी कथन जैसे 'सभी मनुष्य मरणशील हैं' के हम तब तक अधिकारी नही हो सकते, जबतक सभी मनुष्य मर न जायँ, वैसे ही 'सभी भौतिक वस्तुओ का पृथ्वी की ओर आकर्षण होता है, का कथन हम तब तक नही कर सकते जब तक प्रत्येक भौतिक वस्तु की समीक्षा न हो जाय। यदि यथार्थ सामान्य के ये कथन हैं तो इनका अर्थ हुआ कि मनुष्य की बनावट मे ही कुछ ऐसी चीज है, जो उसे मरणशील बना देती है। भौतिक वस्तुओ के स्वरूप मे कुछ ऐसी बात है, जिससे वह पृथ्वी की ओर आकर्शित होती है। यथार्थ सामान्य व्यक्तियो की किसी निश्चित सख्या की ओर सकेत न कर उनके एक विशिष्ट प्रकार की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं और व्यक्त करते हैं कि ये कुछ व्यक्ति किसी विशिष्ट व्यवस्था मे गठित हैं। मात्र गणना से हमे ऐसा सामान्य नही प्राप्त हो सकता। विज्ञान का कोई भी सर्वव्यापी कथन इस रीति से नही मिलता। ऐसे सामान्य तक हम कैसे पहुँचते हैं, इसका विचार आगमन के प्रकरण मे होगा, पर इतना स्पष्ट है कि जब तक इनकी सत्ता को हम स्वीकार न कर लें, तब तक अनुमान हो ही नही सकता। जहाँ कही न्यायवाक्य का साध्य-आधारवाक्य यथार्थ या जातीय सामान्य है, वहाँ साध्य-आधारवाक्य को प्रमाणित करने के लिये निष्कर्ष की आवश्यकता नही पडती, अत आत्माश्रय-दोष का आरोप निर्मूल है।

इसके अतिरिक्त बहुत सी साधारण परिस्थितियाँ हैं, जिनकी अभिव्यक्ति न्यायवाक्य मे हो सकती है, पर वहाँ भी स्पष्टत साध्य-आधारवाक्य को सिद्ध करने के लिये निष्कर्ष की आवश्यकता नही पडती निष्कर्ष दोनो के सयोग से निकलता है। जहाँ दोनो आधारवाक्य एकव्यापी प्रतिज्ञप्तियाँ हैं, जैसे, 'इस लेख का लेखक तर्कशास्त्र के बारे मे अधिक नही जानता, श्री क इस लेख के लेखक हैं, इसलिये श्री क तर्कशास्त्र के बारे मे अधिक नही जानते।' हम पहला कथन दूसरे की सत्यता के बारे मे बिना कुछ जाने कर सकते हैं, पर दूसरा कथन ज्योही होता है, निष्कर्ष निकल पडता है जो दोनो से बिलकुल भिन्न है और दो मे से किसी को सिद्ध करने के लिये इसकी आवश्यकता नही पडती। यही बात वहाँ भी सत्य है, जहाँ साध्य-

प्रतिज्ञप्तियाँ मिल सकती है वही पर यह सभव है जहाँ सदर्भ वस्तुओ की सख्या निश्चित है और उनका अलग-अलग प्रेक्षण हो सकता है। और इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है कि प्राप्त सामान्य अपने घटक विशेषो की ही तरह हैं, वे वस्तुत. सामान्य नही हैं। ये विशेषो के समूह मात्र हैं। विशेषो का समूह एक विशेष होता हे, सामान्य नही। लेकिन, इस मत के अनुसार हमे ऐसा सामान्य नही मिल सकता कि 'सभी मनुष्य मरणशील हैं'। मिल ऐसी परिस्थिति को स्वीकार करते हैं और मानते है कि इस प्रकार के सामान्य की रचना बहुत से प्रेक्षित तथा बहुत अनप्रेक्षित लेकिन अनुमित दृष्टात के मेल से होती है।* प्रेक्षित व्यक्तियो के आधार पर हम अनुमान करते हे कि जो उनके लिये सत्य है, वह उस प्रकार के अन्य व्यक्तियो के लिये भी सत्य होगा जिनका प्रेक्षण नही हुआ है, परतु अनप्रेक्षित व्यक्तियो मे उस गुण का आरोप करने का अधिकार हमे केवल उस सामान्य के कारण प्राप्त होता है, जिसे हमने प्रेक्षित उदाहरणो मे पाया है और जिसे हम अपने न्यायवाक्य के साध्य-आधार-वाक्य मे कहते हैं। चूँकि अनप्रेक्षित व्यक्ति प्रेक्षित के ही प्रकार के है, एक ही सामान्य के दृष्टात हैं, इसलिये हम उनमे उन गुणो का आरोप कर सकते है जो पहले मे मिले है। ऐसा सामान्य, विशेषो का सघात नही हो सकता, अपितु यह किसी तत्र के विभिन्न अवयवो के बीच अतर्सबध होगा। यदि चिंतन तथा अनुमान को सभव होना है, तो सामान्यो की विशेषो के सघात से भिन्न होना ही पडेगा, इन सामान्यो मे उद्देश्य एव विधेय के बीच अनिवार्य सबध होगा, यह सबध अर्तविष्ट अवयवो मे एक-सा होगा।

ज्ञातव्य है कि न्यायवाक्य मे भी अनुमान तत्र (System) के आधार पर चलता है, यद्यपि यह तत्र भिन्न प्रकार का होता है। इसमे एक ही उद्देश्य के विभिन्न विधियो मे नियमित सबध होता है। ये सभी विधेय मिलकर उस उद्देश्य को एक विशिष्ट प्रकार देते हैं। इसमे सदेह नही कि न्यायवाक्य तत्र, व्यवस्था, या अर्तविष्ट अवयवो के बीच विशिष्ट सबध की पुनरुक्ति करता है, किंतु जब तक तत्र की पुनरुक्ति न होगी और वह अपने सभी उदाहरणो मे उपस्थित नही होगा, तब तक वे उदाहरण एक वर्ग के नही होगे और हम एक से दूसरे की अनुमिति नही कर सकेगे। अत, न्यायवाक्य मे गुणो या तत्त्वो के बीच सबध का वोध, न कि व्यक्तियो की गणना, हमारे अनुमान की सुरक्षा करती है।

तब यदि ऐसे सामान्य हैं, जिनके तत्त्वो के बीच अनिवार्य सबध होता है, तो सर्वव्यापी कथन के लिये उनके उदाहरणो की अलग-अलग समीक्षा हो, इसकी आवश्यकता नही—अधिकाश जगह तो चाह कर भी नही कर सकते, और यदि ऐसे

---

* वही पुस्तक, सेक० ३

सामान्यो की सत्ता नही है, तो सभी ज्ञान और सभी अनुभाव असभव है। ऐसे वास्तविक सामान्यो की अभिव्यक्ति हेत्वाश्रित रूपो मे अधिक स्पष्ट ढग से होती है, जैसे 'यदि स, तो प,' 'स का स्वभाव ही है प होना,' 'स वस्तुत प है। निरुपाधिक रूप 'सभी स, प हैं,' या 'स वर्ग के सभी सदस्य, प वर्ग के सदस्य हैं', मिल की आलोचना को बहुत बल देते हैं। इस आकार से गणनात्मकता की ओर सकेत होता है और तन्त्र या अनिवार्य सबध का आधार गौण पड जाता है। यही मिल की भी भूल है।

यदि सामान्य के लिये गणनात्मक दृष्टि अपनाई जाय, तो सर्वव्यापी कथन जैसे 'सभी मनुष्य मरणशील हैं' के हम तब तक अधिकारी नही हो सकते, जबतक सभी मनुष्य मर न जायँ, वैसे ही 'सभी भौतिक वस्तुओ का पृथ्वी की ओर आकर्षण होता है, का कथन हम तब तक नही कर सकते जब तक प्रत्येक भौतिक वस्तु की समीक्षा न हो जाय। यदि यथार्थ सामान्य के ये कथन है तो इनका अर्थ हुआ कि मनुष्य की बनावट मे ही कुछ ऐसी चीज है, जो उसे मरणशील बना देती है। भौतिक वस्तुओ के स्वरूप मे कुछ ऐसी बात है, जिससे वह पृथ्वी की ओर आकर्शित होती है। यथार्थ सामान्य व्यक्तियो की किसी निश्चित सख्या की ओर सकेत न कर उनके एक विशिष्ट प्रकार की ओर हमारा ध्यान आकर्पित करते हैं और व्यक्त करते हैं कि ये कुछ व्यक्ति किसी विशिष्ट व्यवस्था मे गठित हैं। मात्र गणना से हमे ऐसा सामान्य नही प्राप्त हो सकता। विज्ञान का कोई भी सर्वव्यापी कथन इस रीति से नही मिलता। ऐसे सामान्य तक हम कैसे पहुँचते हैं, इसका विचार आगमन के प्रकरण मे होगा, पर इतना स्पष्ट है कि जब तक इनकी सत्ता को हम स्वीकार न कर लें, तब तक अनुमान हो ही नही सकता। जहाँ कही न्यायवाक्य का साध्य-आधारवाक्य यथार्थ या जातीय सामान्य है, वहाँ साध्य-आधारवाक्य को प्रमाणित करने के लिये निष्कर्ष की आवश्यकता नही पडती, अत आत्माश्रय-दोष का आरोप निर्मूल है।

इसके अतिरिक्त बहुत सी साधारण परिस्थितियाँ है, जिनकी अभिव्यक्ति न्यायवाक्य मे हो सकती है, पर वहाँ भी स्पष्टत साध्य-आधारवाक्य को सिद्ध करने के लिये निष्कर्ष की आवश्यकता नही पडती निष्कर्ष दोनो के सयोग से निकलता है। जहाँ दोनो आधारवाक्य एकव्यापी प्रतिज्ञप्तियाँ हैं, जैसे, 'इस लेख का लेखक तर्कशास्त्र के बारे मे अधिक नही जानता, श्री क इस लेख के लेखक हैं, इसलिये श्री क तर्कशास्त्र के बारे मे अधिक नही जानते।' हम पहला कथन दूसरे की सत्यता के बारे मे बिना कुछ जाने कर सकते हैं, पर दूसरा कथन ज्योही होता है, निष्कर्ष निकल पडता है जो दोनो से बिलकुल भिन्न है और दो मे से किसी को सिद्ध करने के लिये इसकी आवश्यकता नही पडती। यही बात वहाँ भी सत्य है, जहाँ साध्य-

आधारवाक्य किसी प्राधिकार (Authority) पर स्वीकार किया जाता है, जैसे अधिकाश नैतिक एव सामाजिक नियम और धार्मिक विश्वास या कृत्रिम विधिपरक अधिनियम। उदाहरणार्थ, न्यायाधीश को कानून के व्यवहार का अधिकार है, जिसे उसने बनाया नही है और जिसे वह बदलने का साहस नही कर सकता। कानून निर्धारित करता है कि एक विशिष्ट प्रकार के अपराध के लिये एक विशिष्ट प्रकार की सजा देनी है। न्यायाधीश के समक्ष कोई व्यक्ति लाया जाता है, और यह सिद्ध हो जाता है कि उसने अमुक प्रकार का अपराध किया है, इससे निष्कर्ष निकलता है कि उसे अमुक प्रकार का दड मिलना चाहिये। ऐसे स्थान पर साध्य-आधारवाक्य मे निष्कर्ष सम्मिलित नही है और न साध्य-आधारवाक्य को सिद्ध करने के लिये निष्कर्ष की आवश्यकता पडती है। यहाँ एक दृष्टि से निष्कर्ष साध्य-आधारवाक्य मे समाविष्ट कहा जा सकता है, किंतु निष्कर्ष को सुस्पष्ट करने के लिए पक्ष-आधारवाक्य की उपस्थिति आवश्यक हो जाती है। इसकी साध्य मे वैसी ही प्रच्छन्न उपस्थिति है जैसे कोयले के टुकडे मे अग्नि की। किंतु, इसे प्रदर्शित करने के लिये सलाई की काँटी की आवश्यकता पड़ती है।

हम बहुधा ऐसे सर्वव्यापी कथन का प्रयोग करते हैं, जिसे दूसरो से सुनकर स्वीकार कर लिया है और स्वय उसकी सर्वव्यापकता की अनिवार्यता न देखा है और न उसे सिद्ध करने की मुझमे क्षमता है (जैसे रसायनशास्त्री के कहने पर मान लेते हैं कि जल मे ऑक्सीजन एव हाइड्रोजन एक निश्चित मात्रा मे पाये जाते हैं), या हमने जिसे पहले कभी सिद्ध किया था, पर अब प्रमाण भूल गया है (जैसे पहले हमने सावित किया था कि अर्धवृत्त का कोण समकोण होता है)। ऐसे कथन को हम साध्य-आधारवाक्य मान लेते है और विशिष्ट उदाहरणो को उसके अदर ले आते हैं और उससे निष्कर्ष निकल जाता है। ऐसे स्थानो पर निष्कर्ष वाले कथन को हम वस्तुत सिद्ध नही करते। हमे इस समय सबध दिखलाई नही पड़ता और यहाँ तक मिल का कथन सत्य है कि साध्य-आधारवाक्य के रूप मे सर्वव्यापी कथन हो जाने पर,प्रमाण के अर्थ मे अनुमान समाप्त हो जाता है। फिर भी यहाँ अनुमान के लिये पर्याप्त स्थान रहता है। हम अपने पूर्व ज्ञान के आधार पर निष्कर्ष का अनुमान करते हैं, यद्यपि हमे अपने ही कथन की पूर्ण सार्थकता हमारी समझ मे नही आ सकती।

और जहाँ साध्य-आधारवाक्य गणनात्मक हो, वहाँ भी सार्थक अनुमान हो सकता है, * जैसे किसी आलमारी की सपूर्ण पुस्तको की परीक्षा कर लेने पर पाया

---

* देखें, जोजेफ लॉजिक, पृष्ठ ३१०।

गया हो कि वे सभी पुस्तके गणित की है। यदि इनमे से कोई पुस्तक अन्य स्थान पर मिले तो विना फिर देखे हम नही कह सकते कि यह गणित की है, पर यदि कोई व्यक्ति इतिहास की पुस्तक ढूँढते हुए उस कमरे मे आये और उस आलमारी से एक पुस्तक निकालना चाहे तो मै कहूँगा कि 'वह पुस्तक गणित की है।' यदि वह मुझसे पूछता है कि क्यो ? तो मैं कहता हूँ, 'क्योकि उस आलमारी की सभी पुस्तके गणित की है।' ऐसी स्थिति मे मैं निष्कर्ष को सिद्ध नही कर रहा हूँ और न कारण दे रहा हूँ कि ऐसा क्यो है, परतु अपने पूर्व ज्ञान या स्मृति के आधार पर अनुमान कर रहा हूँ कि ऐसा है। यहाँ साध्य-आधारवाक्य मिल के कथन की पुष्टि करता है कि सर्व-व्यापी कथन 'हमारे पूर्व-प्रेक्षण का रेकार्ड' है। लेकिन रेकार्ड नही, वल्कि रेकार्ड मे आये हुये तथ्य निष्कर्ष को सिद्ध करते हैं। जातीय सामान्य के वारे मे भेद नही है कि ऐसा तथ्य क्यो है और हमे इसके वारे मे ऐसा विश्वास क्यो है जाति का स्वभाव तथा तथ्य कि वह उस जाति का है किसी गुण के आरोप का कारण होता है और इसी कारण हम विश्वास भी करते हैं कि उसमे वह गुण होगा। साधारण अनुमान की अधिकाश नही तो वहुत सी परिस्थितियो मे साध्य बिना किसी प्रमाण के स्वीकार हो जाता है और निष्कर्ष सही अर्थ मे सिद्ध नही कहा जा सकता। फिर भी अनुमान होता है और साध्य आधारवाक्य को प्रमाणित करने के लिये निष्कर्ष की आवश्यकता नही पडती।

§ ३. न्यायवाक्य की दूसरी आलोचना, अनुमान का विरोधाभास

अब हम न्यायवाक्य के प्रति मिल द्वारा उठाई गई दूसरी आपत्ति पर विचार करे। उनके अनुसार न्यायवाक्य अनुमान ही नही है, क्योकि निष्कर्ष आधारवाक्यो मे पहले से अतर्विष्ट रहता है। इस आलोचना का उत्तर बहुत कुछ पुव-प्रकरण मे मिल जाता है, किंतु इस पर और आगे विचार-विमर्श करने पर अनुमान का एक महत्त्वपूर्ण पहलू प्रकाश मे आ जायगा। क्योकि मिल जो आपत्ति न्यायवाक्य के विरूद्ध लगाते हैं, वह आपत्ति उसी रूप मे सभी प्रकार के वैध अनुमान के खिलाफ लगाई जा सकती है। सभी प्रकार के वैध अनुमान मे निष्कर्ष एक दृष्टि से आधारवाक्यो मे अवश्य अतर्विष्ट रहेगा नही तो आधारवाक्यो से इसे निकालने का हमे आधार नही प्राप्त होगा। फिर भी, जव तक निष्कर्ष आधारवाक्यो से आगे नही वढता, कुछ नई वात अतर्विष्ट नही करता, कुछ ऐसी वात नही कहता जो उसी अर्थ मे आधारवाक्यो मे उपस्थित न हो, तो वह अनुमान नही होगा, वह होगा अपने पूर्व-ज्ञान का पुन अभि-कथन। ये दो शर्ते तथा कथित 'अनुमान के विरोधाभास' की रचना करती हैं।*

---

* वोसान्के एशेन्शल्स ऑव् लॉजिक, पृष्ठ १५७

विरोधाभास है कि अनुमान को चाहिये कि देखने मे दो परस्परविरोधी परिस्थितियो को सतुष्ट करे : (i) निष्कर्ष मे अवश्य कुछ नई बात रहे, कुछ वास्तविक प्रगति हो, नही तो अनुमान नही होगा, तथा (ii) निष्कर्ष मे कोई नई बात नही होनी चाहिये, कोई ऐसी चीज नही जो आधारवाक्यो में पहले से अतर्विष्ट न हो, नही तो युक्ति अवैध हो जायगी। इसी विरोधाभास को उभयत पाश के रूप मे रखा जा सकता है ·

यदि किसी अनुमान के निष्कर्ष मे कोई नयी चीज नही पाई जाती, जो आधारवाक्यो मे न हो, तो अनुमान व्यर्थ है, और यदि निष्कर्ष मे कुछ ऐसी बात है, जो आधारवाक्यो मे पाई जाती, तो अनुभव अवैध है।

या तो निष्कर्ष मे कुछ ऐसी बात पाई जाती है, जो आधारवाक्यो मे न हो, या नही पाई जाती—

इसलिये अनुमान या तो व्यर्थ है या अवैध।

जैसा उभयत'पाशो मे अधिकाश हुआ करता है, इसमे भी पक्ष-आधारवाक्य के विकल्प सभी सभावनाओ को समाप्त नही करते, और न तो, यदि ठीक से समझा जाय, एक दूसरे के व्यावर्त्तक हैं, क्योकि आधारवाक्यो को अलग-अलग देखने पर निष्कर्ष अतर्विष्ट न मिले, लेकिन जब आधारवाक्यो को एक साथ मिलाकर देखा जाय, तो निष्कर्ष अवश्य अतर्विष्ट रहे। इस प्रकार यदि पक्ष की व्याख्या साध्य की दृष्टि से हो और उसे ठीक ढग से कहा जाय तो वह इस प्रकार होगा, 'या तो निष्कर्ष मे ऐसी बात हो जो किसी एक आधारवाक्य मे न पाई जाती हो, या इसमे कोई ऐसी बात न हो, जो दोनो आधारवाक्यो के समिल्लित रूप मे न हो।' इस प्रकार के कथन से स्पष्ट हो जाता है कि दूसरा विकल्प भी है—निष्कर्ष कुछ ऐसी बात सुस्पष्ट करता है जो दोनो आधारवाक्यो के सम्मिलित रूप मे अतर्विष्ट रहता है किंतु किसी एक मे अकेले नही। इससे विरोधाभाष का हल मिल जाता है। किसी भी वैध अनुमान मे निष्कर्ष आधारवाक्यो का वास्तविक सयोग है और इस रूप मे कुछ नवीन वस्तु देता है, जैसे रासायनिक मिश्रण (उदाहरण के लिये, आक्सीजन एव हाइड्रोजन जल का निर्माण करता है), किंतु दोनो आधारवाक्यो के सम्मिलित रूप के अतिरिक्त कोई नवीन चीज नही होनी चाहिये। अत , दोनो आधारवाक्यो को एक साथ रखना, उन्हे सयुक्त करना या दोनो का सबध देखना आनुमानिक क्रिया का रहस्य है, यह क्रिया वस्तुत कुछ नवीनता प्रदान करती है।

प्रतिज्ञप्तियो के आशय-सबधी विचारो पर ध्यान देने से दो परस्परविरोधी तथा एकागी मत मिलते हैं। इनमे से प्रत्येक किसी एक ही पक्ष पर बल देता है और दूसरे की उपेक्षा करता है। वर्ग-दृष्टि मे उद्देश्य एव विधेय के तादात्म्य पर इतना बल दिया जाता है कि प्रतिज्ञप्ति वस्तुत पुनरुक्ति हो जाती है, वैसे ही गुणात्मक-दृष्टि

मे इन दोनो के भेद पर इतना बल दिया जाता है कि उद्देश्य एव विधेय के बीच सबध ही विलीन हो जाता है। इन्ही दोनो तत्त्व पर, इसी प्रकार अधिक बल देवे के कारण अनुमान के दो एकागी मत उठ खडे हुए हैं। एक मे न्यायवाक्य का साध्य-पद विस्तार-दृष्टि से देखा जाता है और साध्य आधारवाक्य को गणनात्मक कथन माना जाता है, जिसके फलस्वरूप न्यायवाक्य कोरी व्याख्या रह जाता है। निष्कर्ष एव आधारवाक्यों के तादात्म्य पर इतना बल दिया जाता है कि हमे मात्र पुनरूक्ति मिलती है, अनुमान नही। इसके प्रतिकूल मिल, निष्कर्ष एव आधारवाक्यो के वीच भेद, तथा निष्कर्ष मे नवीनता पर इतना वल देते हैं कि निष्कर्ष एव आधारवाक्यो बीच सभी सबध लुप्त हो जाते हैं। उनके अनुसार अनुमान का मूल रूप है—विशिष्ट से विशिष्ट की ओर, एक विशिष्ट तथ्य से दूसरे विशिष्ट तथ्य की ओर और उनके बहुत से कथनो से ऐसा लगता है कि इन विशिष्ट तथ्यो मे कोई सर्वव्यापी तत्त्व नही हैं। किंतु, जैसा अभी हमनें देखा है, प्रत्येक वैध अनुमान को दो शर्तें पूरी करनी पडती है (i) निष्कर्ष एव आधारवाक्यों में अनिवार्य सबध हो, तथा (ii) निष्कर्ष मे कुछ ऐसा तत्त्व अवश्य हो, जो आधारवाक्यो में उसी रूप मे न पाया जाता हो। मिल दूसरी शर्त पर इतना बल देते हैं और इस रूप मे इसकी अभिव्यजना करते हैं कि पहली के लिये, जो दूसरी से अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण है, कोई स्थान ही नही रह जाता। हमें सर्वथा वैध एव सार्थक अनुमान मिल सकता है, जिसके निष्कर्ष मे, प्रचलित अर्थ मे, कोई नवीनता न हो। निष्कर्ष एक ऐसा तथ्य हो सकता है जिससे हम पूर्णरूपेण परिचित हैं हम कारण जानना चाहते हैं कि यह परिचित तथ्य ऐसा क्यों है (जैसे एक प्रकार की मिट्टी दूसरी से अधिक उपजाऊ होती है, पूर्णिमा के दिन ज्वार अधिक तेज होता है), और जब हमे कारण मालूम हो जाते हैं तो वे आधारवाक्य बन जाते हैं, जिनसे निष्कर्ष तथ्य के रूप मे निकलता है। चिंतन की यह सामान्य पद्धति है हमें निष्कर्ष पहले प्राप्त होता है और तब हम आधार-वाक्यों को ढूँढ़ने लगते हैं। यह प्रदर्शित करता है कि अनिवार्यता का 'तत्त्व नवीनता से अधिक महत्त्वपूर्ण है। फिर भी इसके साथ-साथ निष्कर्ष को इस रूप में अवश्य नवीन होना चाहिए कि वह दो आधारवाक्यों में से किसी एक मे अतर्विष्ट न हो। हमे उसका वस्तुत ज्ञान हो, या न हो उससे आधारवाक्यो के साथ इसके सबध पर कोई प्रभाव नही पड़ता। मिल द्वारा प्रतिपादित वास्तविक अनुमान की शर्त को निष्कर्ष मे नवीनता की ऐसी अपेक्षा रहती है कि निष्कर्ष आधारवाक्यो से निकल नही सकता, ऐसी शर्त सभी अनुमान को असभव बना देती है। यदि मिल का आलोच्य मत अनुमान को मात्र विश्लेषण एव कोरी पुनरुक्ति बना देता है, तो उनका अपना मत उसको बिना किसी सबध-तत्त्व के, शुद्ध सश्लेषण पर ले आ देता है। अनुमान की व्याख्या न शुद्ध विश्लेषण से हो सकती है और न शुद्ध सश्लेषण से, अनुमान मे दोनो

को आवश्यकता है विश्लेषण एव सश्लेषण, अनिवार्यता एव नवीनता, तादात्म्य एव भिन्नता। इन सबका समुचित समन्वय ही वास्तविक अनुमान की सृष्टि करता है।

§ ४. अनुमान के स्वरूप पर एक दृष्टि

अनुमान की आवश्यकताओ को और अधिक सुस्पष्ट करने के लिये हम उस प्रकार के अनुमान पर विचार करेंगे, जिसे मिल मूलभूत मानते है और सोचते है कि जो बिना अवैध हुए नवीनता की अपेक्षा की पूर्ति करता है, अर्थात् युक्ति जो विशिष्ट से विशिष्ट की ओर अग्रसर होती है (The argument from particular to particular)। मिल के अनुसार अनुमान का मूल रूप है एक विशिष्ट तथ्य से (या बहुत से विशिष्ट तथ्यो से) दूसरे विशिष्ट तथ्य (या तथ्यो) की ओर जाना। हम विशिष्ट तथ्यो के प्रेक्षण से प्रारभ करते हैं। इनके आधार पर हम अन्य अप्रेक्षित तथ्यो का अनुमान करते हैं, और तब प्रेक्षित एव अप्रेक्षित तथ्यो को सम्मिलित करने वाला एक सामान्य कथन करते हैं। किंतु, सामान्य कथन करने के पूर्व ही अनुमान की क्रिया समाप्त हो जाती है और वह कथन किसी विशिष्ट तथ्य के लिये आधार बनने मे कोई सहायता नही करता। चूँकि न्यायवाक्य का साध्य-आधारवाक्य इसी प्रकार का सामान्य कथन होता है, इसलिये निष्कर्ष को सिद्ध करने के प्रयास मे न्यायवाक्य अवैध है, इसमे सदेह नही। मिल कहते हैं कि एक विशिष्ट से दूसरे विशिष्ट की ओर अग्रसर होने मे सामान्य प्रतिज्ञप्ति के माध्यम से बढना अधिक सुविधाजनक है, क्योकि यह हमे याद दिलाता है कि किसी नवीन तथ्य पर पहुँचने के अधिकारी होने के पूर्व हमे क्या सिद्ध मान लेना है। इस प्रकार सामान्य प्रतिज्ञप्ति अविचारित अनुमान को रोकने का कार्य करती है।

फिर भी ऐसी सामान्य प्रतिज्ञप्ति के माध्यम से होकर चलना आवश्यक नही' 'सामान्य के माध्यम को बिना अपनाये हम विशिष्ट से विशिष्ट की ओर अनुमान, केवल कर ही नही सकते बल्कि हम प्राय ऐसा करते हैं। हमारे सभी प्रारभिक अनुमान इसी प्रकार के हैं। बुद्धि की प्रथम किरण प्राप्त होते ही हम अनुमान करना प्रारभ कर देते हैं, किंतु सामान्य भाषा का प्रयोग वर्षो बीत जाने के बाद सीख पाते हैं। जिस बच्चे की उँगली जल गई है, वह फिर उसे आग मे नही देना चाहता, क्योकि वह अनुमान कर लेता है कि फिर वह जल जायगी, यद्यपि उसकी समझ मे इस सामान्य तथ्य का कभी बोध नही आता कि अग्नि जलाती है। स्मृति से वह जानता है कि उसकी उँगली जल गई है और इस साक्ष्य के आधार पर वह जलती हुई मोमबत्ती को देखकर विश्वास करता है कि यदि वह अपनी उँगली लौ मे देगा, तो

फिर जल जायगी। वह इस प्रकार का विश्वास प्रत्येक घटना के सदर्भ मे करता है, परतु किसी अवस्था मे वह वर्त्तमान के परे नही देखता। वह सामान्यीकरण नही कर रहा है, अपितु वह विशिष्टो से विशिष्ट का अनुमान कर रहा है।'* इसी प्रकार कहा जाता है कि पशु भी, जिनमे सामान्यीकरण करने की शक्ति नही है, अनुभव के आधार पर अपनी क्रियाओ मे परिवर्तन लाते हैं। विशिष्ट तथ्यो के हमारे ज्ञान या अनुभव के आधार पर इस प्रकार की क्रियाओ एव अनुमानो को मिल विशिष्ट से विशिष्ट का अनुमान कहते हैं एक या कुछ विशिष्ट तथ्य किसी 'समान' या 'समानातर' तथ्य के बारे मे निष्कर्ष तक पहुँचाने में पर्याप्त हो सकते है।

यह सत्य है कि हम कभी-कभी अथवा प्राय, बिना सामान्य प्रतिज्ञप्ति की रचना किये अनुमान करते हैं और बहुधा हमारे कार्य एव तर्क सर्वव्यापी सिद्धात को बिना चेतना मे लाये होते रहते हैं। किंतु, इसका यह अर्थ नहीं हो सकता कि इसमे कोई सामान्य सत्य अतर्विष्ट नही है और विशिष्टो मे कोई अनिवार्य सबध नही है या हमारे अनुमान की गति शुद्ध विशिष्ट से विशिष्ट की ओर होती है। वस्तुत हम कैसे अनुमान करते हैं और क्या हम बिना किसी सामान्य प्रतिज्ञप्ति या सर्वव्यापी सिद्धात को सूत्रबद्ध किये एक विशिष्ट से दूसरे विशिष्ट की ओर अग्रसर होते है, मनोवैज्ञानिक प्रश्न हैं। तार्किक महत्त्व के प्रश्न हैं हमारा अनुमान किस पर आधारित है? उसे वैध बनाने के लिये क्या आवश्यक है? उसे तर्कसगत सिद्ध करने के लिये किन आधारवाक्यो को अवश्य सत्य होना चाहिये? तर्क-दृष्टि से हमे यह नही पूछना है कि क्या सामान्य को बिना सूत्रबद्ध किये हम विशिष्ट से विशिष्ट की ओर जा सकते है। बल्कि हमे पूछना है कि क्या सामान्य के आधार के अतिरिक्त हम एक विशिष्ट से दूसरे विशिष्ट का वैध अनुमान कर सकते हैं? क्या हम ऐसा वैध अनुमान प्राप्त कर सकते हैं, जिसमे किसी सामान्य की उपस्थिति सम्मिलित नही है, उस सामान्य को सर्वव्यापी प्रतिज्ञप्ति के रूप में सूत्रबद्ध किया जाय अथवा नही?

नि सदेह, युक्ति एव क्रिया दोनो मे, हम सिद्धात के आधार पर अग्रसर होते हैं, जिस सिद्धात की हमारे मन में सचेत उपस्थिति नही है और हम उन आधारवाक्यो के बल पर युक्ति करते हैं, जिनका हमने सुस्पष्ट सूत्रीकरण नही किया है। जैसे हमारा भोजन पचता है या हम साँस लेते हैं, परतु इन क्रियाओ के पीछे कौन सिद्धात काम कर रहे हैं, इसका हमे ज्ञान नही रहता। बहुत बाद में हम इन्हे जानने मे समर्थ होते हैं, ठीक उसी प्रकार हमारी बौद्धिक क्रियाएँ नियमानुकूल चलती रहती हैं, केवल बाद का विश्लेषण उन्हे सुस्पष्ट करता है। जो सिद्धात हमारे व्यवहार एव अनुभव

---

* मिल सिस्टम ऑव् लॉजिक, बुक II, चैपटर iii, सेक्शन ३

मे कार्य करते हैं, वे हमे सर्वथा बोधगम्य नही होते। पर, इसका यह अर्थ नही कि वे क्रियाशील नही है। मिल के कहने का केवल इतना ही तात्पर्य है कि सर्वव्यापी सिद्धात की मन मे चेतना या सामान्य प्रतिज्ञप्ति का स्पष्ट सूत्रीकरण अनिवार्य नही है। उन्होने नही दिखलाया है और न दिखलाने का प्रयास किया है कि इसकी उपस्थिति नही है और वह क्रियाशील नही रहता। हमारे जीवन मे किसी भी समय यहाँ तक कि जब हम सबसे अधिक चिंतनशील रहते है, हमारे चेतन मे जितनी बातें रहती हैं, उनसे अधिक मन मे उपस्थित रहती हैं, और बालक या प्रौढ भी जिसे जलने का अनुभव हो गया है और इसलिये अग्नि में हाथ नही देना चाहता, प्राय' प्रतिज्ञप्ति को सूत्रबद्ध नही करता कि 'अग्नि जलाती है', किंतु सामान्य या तथ्यो के बीच सबध, जिससे क्रिया में अतर्विष्ट अनुमान का औचित्य निर्धारित होता है, जब स्पष्ट सूत्रबद्ध होगा तो उसका रूप होगा, 'अग्नि जलाती है'। बच्चा तो जिस अगीठी से जल गया है, आग के न रहने पर भी उसमे हाथ नहीं देना चाहता, किंतु ऐसी स्थिति मे उसका अनुमान ठीक नहीं है और उसका आधारवाक्य असत्य है।

तर्कशास्त्र का कार्य है, निर्दोष अनुमान मे कार्य करनेवाले सिद्धातो को ढूँढना और उन आधारवाक्यो को पाना जिनका किसी विशिष्ट तर्क में आपादन होता है, किंतु इससे यह नही निकलता और न निकलना आवश्यक है कि जो सही अनुमान करते हैं, उनकी चेतना मे ये सिद्धात स्पष्ट उपस्थित रहते हैं और वे इन आधारवाक्यो का सुस्पष्ट सूत्रीकरण करते हैं। फिर भी यह सर्वथा सत्य है कि यदि सामान्य उपस्थित नही है, यदि आपादित आधारवाक्य सत्य नहीं हैं, तो तर्क युक्तियुक्त नही है। मिल स्वय कहते हैं कि हम 'समानातर' या 'समान' तथ्यो के आधार पर अनुमान करते हैं, क्योकि यह बिलकुल स्पष्ट है कि हम किसी तथ्य से किसी तथ्य को वैध निष्कर्ष के रूप मे नही पा सकते। यह भी ध्यान मे रहना चाहिए कि हम एक विशिष्ट से दूसरे समान या समानातर विशिष्ट का सदैव वैध तर्क नही कर सकते। बहुधा हम ऊपरी समानता के आधार पर तर्क करते हैं, जैसे आग के न रहने पर भी बच्चा उस अगीठी को नही छूना चाहता, जिससे वह जल गया है। किंतु, हमारा अनुमान तभी वैध होता है, जब हम किसी सामान्य के आधार पर तर्क करते हैं—सामान्य जिसके ये विभिन्न तथ्य दृष्टात हैं। अत, निर्दोष तर्क मे जिन विशेषो के आधार पर हम अनुमान करते हैं, वे मात्र विशेष नही होते, बल्कि वे एक विशिष्ट जाति के व्यक्ति होते हैं, किसी सामान्य के दृष्टात और इस जाति-तादात्म्य के आधार पर ही युक्ति चलती है। यह आवश्यक नही कि सामान्य या जाति किसी सर्वव्यापी प्रतिज्ञप्ति मे अभिव्यक्त हो, किंतु यदि इसकी वहाँ उपस्थिति न हो तो हमारे अनुमान के लिये कोई औचित्य नही है। हम ऐसा तर्क क्यो कर सकते है कि यदि आग का

एक टुकडा जलाता है, तो दूसरा भी जलायेगा और यह नही कि आग का एक टुकडा खुली अगीठी मे है, तो दूसरा भी खुली अगीठी मे होगा। पहली अवस्था मे हम जाति-स्वभाव के आधार पर तर्क करते है, दूसरे मे ऐसा कोई आधार नही है।

तब हमारे वैध अनुमान कभी भी कोरे विशिष्ट से विशिष्ट की ओर नही चलते और न वे एक तथ्य से दूसरे तक मात्र ऊपरी साम्य के आधार पर वढते है, वे एक ही सामान्य या जाति के विभिन्न दृष्टातो मे एक से दूसरे की ओर अग्रसर होते हैं। कुछ सामान्य जाति नही, वल्कि किसी तत्र मे तथ्यो को सवधित करने वाले सिद्धात होते है। हम यहां ऐसे सामान्यो के वारे मे चर्चा नही कर रहे है, क्योकि इनके क्षेत्र मे तो नियम या तत्र को जान लेने पर भी हम एक विशिष्ट तथ्य से दूसरे के लिये तर्क नही दे सकते। आधारवाक्यो के रूप मे हमे कम-से-कम दो तथ्यो की आवश्यकता होती है, जैसे, 'अ, व से उत्तर है,' और 'व, स से उत्तर हैं' तत्र के आधार पर भी हम केवल एक तथ्य से कोई निष्कर्ष नही निकाल सकते। पर, जिन युक्तियो की चर्चा मिल करते हैं, वे सभी जाति-सामान्य से सवधित है। इनके सदर्भ मे भी, वैध अनुमान पाने के लिये, हमे दो आधारवाक्यो की आवश्यकता पडती है, एक पक्ष-आधारवाक्य, जिसमे कथन होता है विशेष किसी खास जाति का है, दूसरा— साध्य-आधारवाक्य जो उस जाति के किसी गुण का अभिकथन करता है। किसी जाति के उदाहरणो की मात्र सख्या के वल पर हम यह नही कह सकते कि जो गुण इन उदाहरणो मे मिलता है वह किसी नये मे भी मिलेगा, यह तभी सभव होगा जव वह गुण जाति,गुण हो। मिल के सदर्भ मे जो विचार-विमर्श हो रहा है, उसमे न्याय-वाक्यो का साध्य-आधारवाक्य, किसी जातिगत या समान्यगत गुण का अभिकथन करता है। तर्कशास्त्र का कार्य है, उसे सुस्पष्ट करना।

विशिष्ट से विशिष्ट के प्रति अनुमान करने वाली युक्तियो मे बहुत प्रकार के तर्क सम्मिलित हैं और वे भी बहुत भिन्न कोटि के नैश्चित्य वाले। उनका क्रम सक्षेप मे हम इस प्रकार दिखला सकते हैं। कुछ ऐसे न्यायवाक्य होते है जहां साध्य-आधारवाक्य अनभिव्यक्त रहता है, क्योकि कि अतिपरिचित या अति स्पष्ट होने के कारण उनकी अभिव्यक्ति आवश्यक नही समझी जाती, कही पर आपादित साध्य-आधारवाक्य सदेहपूर्ण होता है, यदि उसकी सुस्पष्ट अभिव्यक्ति हो जाय, तो युक्ति की सदेहात्मकता या असत्यता प्रकट हो जाती है, ऐसे भी स्थल हैं, जहां युक्ति दो वस्तुओ बीच कुछ साम्य पर आधारित रहती है। हम यहां साध्य-आधारवाक्य या तथ्यो के बीच सबध को सूत्रबद्ध भी करने मे समर्थ नही होते। अतिम प्रकार की युक्ति सादृनयानुमान कही जाती है। ऐसी युक्तियां विभिन्न प्रायिकता-मात्र (Degree of probability) की होती हैं परतु, किसी

से पूर्ण निश्चयात्मकता नही मिलती। कुछ दृष्टातो मे हम प्राय निश्चित होते है कि साम्य जातिगत तादात्म्य प्रदर्शित करता है। अन्य कुछ ऐसे होते हैं, जिनके साम्य को हम *आभासी समझते है। सादृश्यानुमान की मुख्य उपयोगिता है कि वह तत्त्वो के* बीच किसी वास्तविक सबध की ओर सकेत करे, यह स्वय सबधो को सिद्ध नही कर सकता। सबध बहुधा अन्य प्रमाणो से सिद्ध होता है, और कभी-कभी नही भी हो सकता और हमे केवल सभावना से सतोष कर लेना पड़ता है।

अत', हमारा निर्णय है कि विशिष्ट से विशिष्ट की युक्ति तभी वैध होगी, जब वे विशिष्ट किसी सामान्य के दृष्टात हैं। कोरे असबद्ध विशिष्टो एव किसी सामान्य के विभिन्न दृष्टात के रूप मे आने वाले विशिष्टो मे स्पष्ट अतर है। इन्हें एक मे मिला देने के कारण न्यायवाक्यो को समझने मे कठिनाई उत्पन्न होती है। यही मिल की भूल है। यदि सामान्य एक जाति है, विशेषो का सघात मात्र नही, तो बिना सभी दृष्टातो की समीक्षा किए हमे जाति का स्वरूप समझ मे आ जा सकता है और उसके आधार पर नये दृष्टातो के गुण-धर्म की अनुमिति हो सकती हैं। इसलिये जिस न्याय-वाक्य मे किसी विशेष का विधेय जातिगत गुण है, वहाँ *साध्य-आधारवाक्य* को सिद्ध करने के लिये निष्कर्ष का होना आवश्यक नही है और चक्रक दोष लागू नही होता। न्यायवाक्य अनुमान का एक सीमित रूप है, किंतु उस सीमा मे वह नितात वैध है। हमारी भ्राति का कारण शब्दो की अस्पष्टता और उनका भूलपूर्ण प्रयोग भी है। न्यायवाक्यो के सदर्भ मे 'अतर्विष्ट' शब्द का प्रयोग कठिनाई उपस्थित कर सकता है, यहाँ हमारा तात्पर्य होना चाहिये कि आधारवाक्य निष्कर्ष का आपादन करते है। निश्चित ही यह सभी वैध निगमनात्मक युक्ति की परिस्थिति है, पर इसमे अनिवार्यत चक्र नही है। यह सत्य है कि यदि प क का आपादन करता है, तो जब तक क भी सत्य न हो, तब तक प सत्य नही हो सकता। किंतु, चक्र युक्ति तभी होगी, जब क का सत्यता प को सिद्ध करने के लिये आधारवाक्य के रूप मे प्रयुक्त होगी। लेकिन, यह अनिवार्य परिस्थिति नही है। यदि न्यूटन के भौतिक नियम सत्य है तो, उदाहरणार्थ, यह निकलता है कि दो ग्रहो का युग्म अपने उभयनिष्ट गुरुत्वाकर्षण-बिंदु के चारो ओर अण्डाकार मार्ग मे घूमेगा। यहाँ दो ग्रहो के बारे मे कहा गया कथन उस प्रमाण का अग नही है, जिस पर न्यूटन की भौतिकी आधारित है। किंतु, न्यूटन के भौतिकशास्त्र द्वारा प्रस्तुत आधारवाक्यो से यह वैध निष्कर्ष अवश्य निकाला जा सकता है। वैसे ही हमे ज्ञात है कि चक्र पाने वाला हर व्यक्ति कोई उत्कृष्ट पराक्रम का कार्य किए हुये है और बाद मे हमे ज्ञात होता है कि उसने, जिसे हम कोई विशेष साहसी नही समझते थे, वीरचक्र प्राप्त किया है, और तब हम निष्कर्ष निकालते हैं कि उसने कोई उत्कृष्ट पराक्रम का कार्य किया है। इस उदाहरण के खिलाफ आपत्ति

उठाई जा सकती है कि वीरचक्र सदैव योग्य व्यक्ति को ही दिया जाता हे, इसके प्रति हम निश्चित नही रह सकते। यदि यह ठीक भी है, तो आपत्ति अप्रासगिक होगी। आधारवाक्य की असत्यता किसी भी प्रकार यह सकेत नही देती कि तर्क अवैध है, इसके कारण इसमे चक्रक-युक्ति-दोष पाया जाता है इसकी सभावना तो और भी कम है। यह समझ लेना महत्त्वपूर्ण है कि ऐसे प्रमाणो के आधार पर, जो निर्णायक नही हैं, परतु पर्याप्त बल देनेवाले हैं, सर्वव्यापी आधारवाक्य स्वीकृत हो सकता है, इसके अदर नये दृष्टांत लाये जा सकते हैं और निष्कर्ष निकाला जा सकता है जो अनिवार्यत मूल प्रमाण का अग नही है। हमारे सफल अनुमान किसी-न-किसी सदर्भ मे होते है। किसी प्रतिज्ञप्ति को सिद्ध करने का अर्थ है, उसे आपादन करने वाले सत्य आधारवाक्यो को ढूँढ निकालना। यदि हमारे आधारवाक्य ताथ्यिक प्रतिज्ञप्तियाँ हैं, तो उनकी सत्यता के प्रमाण कभी निर्णायक नही होगे। पर, इसका यह अर्थ नही कि सभी तार्किक सामान्यकीरण एक मूल्य के हैं। ज्ञान के विभिन्न मार्ग है, और अनिर्दशित निष्कर्ष पर बैधतापूर्वक कितना महत्त्व दिया जा सकता है, इसको निर्धारित करने के लिये विभिन्न कसौटियाँ हैं। अ धारवाक्यो के रूप मे मिल केवल उन्ही प्रतिज्ञप्तियो को प्रयोग मे लाना चाहते थे, जिनके अनिवार्यत सत्य होने का हमे ज्ञान है। यदि हमारे आधार-वाक्य वास्तविक तथ्यो के सबध मे हैं, हम इन्हे कभी भी दृढतापूर्वक नही जान सकते। फिर भी यह सोचना भूल है कि किसी प्रतिज्ञप्ति के अभिकथन के पूर्व हमे तब तक प्रतीक्षा करनी चाहिये, जब तक प्रमाण 'अपनी सपूर्णता' मे हमे नही प्राप्त हो जाता। नैगमनिक अनुमान द्वारा हम ताथ्यिक प्रतिज्ञप्तियो की वास्तविक सत्यता का विश्वास नही दिला सकते किंतु हम दिखला सकते हैं कि निष्कर्ष इन-इन आधार-वाक्यों से निकलते है तथा इनमे वह प्रमाणक बल है, जो स्वय आधारवाक्यो मे है।

—o—

अध्याय १०

विज्ञान की प्रणाली

§ १. आगमनात्मक तर्क

यदि हम निगमनात्मक तर्क तक ही ससार मे सीमित रहते, तो भारी असुविधा मे पडते। यह भी वहुधा स्निग्धता से वोलता है। वस्तुत 'वर्त्तमान इद्रिय-साक्ष्य एव स्मृति-अभिलेख के परे' वाली तथ्य-वस्तुओं के बारे मे हम किसी निष्कर्ष पर पहुँचने मे समर्थ न होते। सामान्यीकरण, अर्थात् साक्ष्य के परे जाना, नित्य-प्रति के कार्यों के लिये आवश्यक है, यह इद्रियानुभवाश्रित विज्ञानो के मूल मे है। तर्कशास्त्र तथा गणित के अतिरिक्त सभी विज्ञान इद्रियानुभवाश्रित है, वे प्रेक्षण, प्रयोग एव अनुभवाश्रित सामान्यीकरण पर आधारित हैं। किसी वर्ग के कुछ निरीक्षित दृष्टातो के वल पर, जो उस वर्ग के सपूर्ण उदाहरण नही माने जा सकते, किये गये सामान्यीकरण को 'केवल गणनाश्रित आगमन' (Induction by simple enumeration) कहते हैं। इसका तार्किक रूप है

सभी प्रेक्षित स प हैं

.. सभी स प है।

स्पष्टत यह तर्क वैध नही है, क्योकि, कुछ स के बारे मे कथन वाले आधारवाक्य से सभी स के बारे मे कथन वाला अनुमान निकालने मे स की अवैध व्याप्ति होती है। फलत आधारवाक्य के सत्य होने पर भी निष्कर्ष असत्य हो सकता है। आगमनिक तर्क का यही मूलभूत रूप है। वैध तर्क सभी निगमनिक होते हैं, किंतु इससे यह नही समझना चाहिये कि आगमनिक तर्क असगत एव स्पष्ट चितन के लिये अयोग्य है। वस्तुत निगमनात्मक तर्क-नियमो द्वारा प्रस्तुत निष्कर्षो के अतिरिक्त भी निष्कर्ष होते

हैं। इनकी विना समाविष्ट किये हमारे तर्क सर्वा ग नियत्रित एव परिशुद्ध नही हो सकते। इन निष्कर्षो को ढूँढना, उन्हे सुस्पष्ट करना एव नियमवद्ध करना आगमन के कार्य है। ये कार्य निगमन के क्षेत्र मे किये गये प्रयासो की अपेक्षा वहुत कठिन है। आगमन की इस प्रक्रिया को 'विज्ञान का प्रणाली विज्ञान' कहते है। यह इद्रियानुभवाश्रित विज्ञानो मे प्रयुक्त प्रणालियो के तार्किक गुणो का सुव्यवस्थित अनुसधान है। हमे अवश्य स्वीकार करना होगा कि यह अन्वेषण अभी भी उस अवस्था मे है, जिसे प्रारभिक कहा जा सकता है।

सभी मनुष्य सरल परिगणना से अनुमान करते रहते है। सरल परिगणना के लिये आवश्यक है कि परस्पर-विरोध दृष्टात न हो, अर्थात् विवादग्रस्त वर्ग मे कोई ऐसे उदाहरण न मिले, जिनमे प्रेक्षित सभी उदाहरणो मे मिलने वाला गुण न पाया जाता हो। एक भी व्याघाती दृष्टात निष्कर्ष को तुरत असिद्ध कर देता है। बहुत से यूरोपियन जिन्होने वर्ग जापानी के कुछ उदाहरणो का प्रेक्षण किया है और सभी को काली आँख वाला पाकर निष्कर्ष निकाला कि सभी जापान-निवासी काली आख वाले है। यहाँ नीली या भूरी आँख वाले जापानी का एक ही उदाहरण निष्कर्ष को असिद्ध प्रमाणित कर देगा। फिर भी यह धारणा बनाना तर्कसगत होगा कि जापानियो मे काली आँख वाले मनुष्यो की प्रतिशतता बहुत ऊँची है। यह पाना कोई वहुत बडे आश्चर्य की बात नही होगी कि जिस जाति ने शताब्दियो तक दूसरी जाति वालो से वैवाहिक सवध नही रखा, उसमे आँखो के एक रग की ओर प्रवृत्ति हो जाय।

आगमन द्वारा व्यापक नियमो की स्थापना होती है। न्यायवाक्य मे आधारवाक्य दिये रहते हैं। निष्कर्ष निकालते समय हमारा लक्ष्य उसकी वैधता को देखना रहता है। जब तक हम किसी व्यापक नियम को सत्य मानने के लिये तैयार हैं, तब तक सरलता से तर्क हो सकता है, किंतु ज्योही हम साध्य-आधारवाक्य की सचाई को किसी की देन न मानकर उसके मूल मे जाने का प्रयास करते हैं, त्यो ही हम निगमन के क्षेत्र से दूर हट जाते हैं, दूसरे शब्दो मे हम आगमन की ओर मुड जाते है। निगमन व्यापक नियम के आधार पर अग्रसर होता है और उस नियम की परिधि मे आनेवाली वस्तुओ पर उसका आरोप करता है। हम कहते है 'सभी मनुष्य मरणशील हैं, सुकरात मनुष्य है, अत वह भी मरणशील है।' किंतु, ऐसे तर्क उस पूर्वपद्धति की कल्पना करते हैं, जिससे साध्य-आधारवाक्य की स्थापना हुई है। 'सभी मनुष्य मरणशील है,' यह कहाँ से ज्ञात हुआ ? जिस पद्धति से ऐसे सत्य की खोज होती है, उसे आगमन कहते हैं।

आगमन के वैज्ञानिक रूप मे वास्तविक व्यापकता की स्थापना होती है। वास्तविक व्यापकता कोई जातिगत या प्राकृतिक गुण है, जोउस जाति के सभी

व्यक्तियो या वस्तुओ मे समान रूप से सदा एव सर्वत्र पाया जाता है। यदि किसी कक्षा के प्रत्येक विद्यार्थी की जाँच कर कहे कि 'इस कक्षा के सभी विद्यार्थी अध्ययनशील है,' तो यह किसी व्यापकता की खोज नही कही जा सकती और न यह वाक्य सचमुच सर्वव्यापी वाक्य कहा जा सकता है। 'इस कक्षा के सभी विद्यार्थी अध्ययनशील हैं,' कथन प्रेक्षण का साराश मात्र है और स्पष्टत नित्य नही हे। जब प्रेक्षित विद्यार्थी कक्षा से चले जायँगे और नये विद्यार्थी फिर उस कक्षा मे आ जायँगे, तो पहले की कही बात सदेहात्मक हो जायेगी। वास्तविक व्यापकता मे सदेह के लिये स्थान नही है। 'मनुष्य मरणशील है' यह नित्य सत्य है। नये-नये मनुष्य आते रहेगे, पर नियम मे कोई परिवर्तन नही होगा। ऐसी ही व्यापकता को ढूँढना आगमन का लक्ष्य है।

> एक मनोवैज्ञानिक ने अपने कुछ दिनो की खोजो के आधार पर कुछ तथ्य प्रदर्शित करने का प्रयास किया हे, उस पर विचार करें
>
> काले बाल एव नीली आँख वाले कलाकार सदैव भू-दृश्य का चित्रण करते हैं, और काले बाल एव काली आँख वाले छोटे कलाकार आकृति-चित्र बनाते हे।
>
> नीली आँख वाले चित्रकारो की, जिनके सर अपेक्षाकृत चौडे होते है, आकृति-चित्रण की ओर प्रवृत्ति होती है और जिनके सर लबे होते हैं, उनकी प्रवृत्ति भू-दृश्य-चित्रण की ओर होती है।
>
> असाधारण छोटे सर का अर्थ है कलात्मक बहुविज्ञता तथा भू-दृश्य एव आकृति दोनो के चित्रण की शक्ति।
>
> स्त्रियो की आकृति-चित्रण की प्रवृत्ति मनुष्यो की अपेक्षा अधिक होती है।

ये कथन हमे आश्चर्यजनक लगते हैं। पर, प्रश्न उठता है कि क्यो? बाल, आँखो के रग, ऊँचाई, एव सर की चौडाई मे भिन्नताएँ हमारा ध्यान इस रूप मे आकृष्ट नही करती कि उनकी कलात्मक क्षमता या चित्रण-रुचि के साथ सबध होने की सभावना है। यदि हम पूछे कि ऐसा क्यो है, तो इसके उत्तर के लिये बहुत दूर नही जाना होगा। हम विभिन्न रग की गायें, फूल, और मछलियाँ देखते है। रग-वैशिष्ट्य को आगतुक गुण माना जाता है। चित्रकार के विभिन्न अगो के रग कैसे है तथा उसके कैसे चित्र बनाने की सभावना है, इन दोनो के बीच किसी सबध पर विश्वास जमना कठिन है। इसके विपरीत हमे यह जानकर आश्चर्य नही होता कि कोई विशिष्ट ग्रथि-न्यूनता किसी विशिष्ट मानसिक दोष से सबधित हे अथवा विटामिन के किसी तत्त्व की कमी किसी खास बीमारी का कारण है। हमने अपने अनुभव मे पाया है कि गुण बहुधा समूह मे मिलते हैं, इसलिये वर्ग-नाम जैसे कलाकार, गायें, राजनत इत्यादि अनिवार्य है। इस प्रकार के वर्ग अपनी इच्छा से बनाये गये कृत्रिम वर्गो जैसे

वर्गाकार लाल वस्तुए, कतार मे खडे सिपाही, भिन्न है। सामान्य रूप से कुछ ऐसे गुण पाये जाते है जो उन्हे अन्य वर्गों जैसे घोडा, हाथी इत्यादि से भिन्न करते हैं। ऐसे वर्गो को, मिल के शब्दो मे, 'प्राकृतिक जातिया' कहते है।

ससार मे हमारे अनुभव का सामान्य रूप सरल गणनात्मक होता है। इसके स्वरूप को हम निम्न रीति से व्यक्त कर सकते है

प के इन-इन दृष्टातो मे ग गुण मिलता है,

प का कोई दृष्टात ग रहित प्रेक्षित नही हुआ है,

इसलिये सभी प मे ग है।

यहाँ प के दृष्टात ऐसे वर्ग की रचना करते है, जिसमे प से सकीर्तित गुण पाये जाते है। मनुष्य के प्रारभिक चितन का यही रूप होता है। ऐसे अनुमानो के पर्याप्त सचयन के अभाव मे विज्ञान का होना असभव था। वर्ग-नामो के सहारे हम सबध मे रखने एव सबद्ध करने मे समर्थ होते है, गुणो को सबद्ध करना केवल वैज्ञानिक चितन के ही लिये आवश्यक नही है, वरन् हमारे नित्यप्रति के व्यावहारिक जीवन को सुव्यवस्थित करने के लिये भी आवश्यक है। यद्यपि कुछ घटनाएँ यो ही घटित हो जाती हैं, फिर भी हम सभी को विश्वास है कि ससार मे विश्वसनीय नियमिताएँ हैं। प्रत्येक व्यक्ति विश्वास करता है कि यदि वह भूखा है और भोजन करता है, तो उसकी भूख शात हो जायगी, पानी उसकी प्यास बुझायेगा, अग्नि से उसे गरमी प्राप्त होगी, उष्णता वर्फ को पिघला देगी, रात के बाद दिन अवश्य होगा। इस प्रकार के विश्वास विभिन्न मात्राओ मे सभी मे पाये जाते हैं। यह अवश्य है कि ज्वर की प्यास पानी से से नही मिटती, मृत्यु-शय्या पर पडा मनुष्य अग्नि से गर्मी प्राप्त नही कर सकता। फिर भी कुछ विश्वसनीय नियमितताओ मे बिना विश्वास किये हम अपने नित्य के कार्य कर नही सकते। हमारी प्रत्याशाएँ कभी-कभी पूरी हो जाती है, यह व्यक्त करता है कि प्राकृतिक घटनाओ मे कुछ सुव्यवस्था अवश्य हो सकती है, कभी-कभी वे पूरी नही होती, यह हमारे आशिक अज्ञान को व्यक्त करता है।

इस प्रकार हम नियमित रूप से सबद्ध मानी जाने वाली सह-घटनाओ एव केवल आकस्मिक या अनियत रूप से सयुक्त सह-घटनाओ के बीच भेद करने के अभ्यस्त हो गये हैं। सरल गणना हमें छोटी-छोटी एकरूपताओ का बोध कराती है जैसे अग्नि एव उष्णता मे, पानी पीने एव प्यास बुझाने मे, नेपाली बौने और चिपटी नाक वाला होने मे। अतिम उदाहरण प्रथम दो से भिन्न है, इसमे गुणो के सह-अस्तित्व की एकरूपता है किंतु प्रथम दो आनुक्रमिक सह-घटनाओ की एकरूपताएँ है, जिन्हे हम कार्य-कारण-सबध भी कह सकते है। कारण-सबध की व्याख्या के लिये सरल गणना पर्याप्त नही होती। इस पर हम आगे विचार करेंगे।

हमने देखा कि आगमन निगमन की तरह किसी मान्य सत्य को लेकर आगे नही बढता। विशेषो का प्रेक्षण इसकी मूलभूत विशेषता है। इसमे वास्तविक तथ्यो की जाँच होती हे और व्यापक नियम सिद्ध किये जाते है। व्याप्ति कोई ऐसी चीज नही है, जो स्वय कही अकेले पडी हो। यह तो वस्तुओ मे उनके शाश्वत गुण के रूप मे निहित रहती है। अत, विशिष्ट वस्तुओ का प्रेक्षण आगमन का पहला कदम है। इसका विश्वास है कि आँख वद कर वैठे रहने से प्रकृति के नियम समझ मे नही आ सकते। इसके लिये हमे सचेष्ट होकर प्रकृति के प्रागण मे होने वाली घटनाओ का ध्यानपूर्वक निरीक्षण करना होगा।

यद्यपि प्रेक्षण आगमन का सबसे महत्त्वपूर्ण कदम है, किंतु इससे यह नही समझना चाहिये कि इस विधि मे एक कोटि की प्रत्येक वस्तु के प्रेक्षण पर वल दिया जाता है। प्राकृतिक जातियो के सवध मे यह सभव ही नही है। इसका सरल एव प्रारभिक रूप है किसी जाति के कुछ उदाहरणो का ध्यानपूर्वक प्रेक्षण करना और फिर उसके आधार पर आगमन प्लुप्ति लगाना। यह प्लुप्ति अन्वेपणकर्ता को सर्वव्यापी नियम पर पहुँचा देती है। मिल ने इसे 'ज्ञात से अज्ञात की ओर जाने की प्रणाली' कहा है। जहाँ यह प्लुप्ति नही है, वहाँ वस्तुत आगमन नही है। 'मनुष्य मरणशील है' का सत्य 'सभी मनुष्यो' के प्रेक्षण पर आधारित नही है, वल्कि कुछ मनुष्यो को मरते देखकर सबके लिये वात कह दी गई है। हाँ, इस प्लुप्ति मे खतरा भी है। किंतु इसके विना आगमन सही अर्थ मे आगमन नही रह जायगा। इसकी यही विशेपता इसे पूर्ण आगमन (Perfect induction) से भिन्न करती है।

आगम-प्लुप्ति निराधार नही होती। इसका बल है कार्य-कारण-सिद्धात एव प्रकृति-समरूपता। विज्ञान का विश्वास है कि ससार मे जो भी घटनाएँ होती हैं, उनका कुछ कारण अवश्य होता है और उन्ही परिस्थितियो मे वह कारण सदैव वही कार्य करता है, जिन परिस्थितियों मे आज किसी कारण से कोई कार्य हुआ है वह कार्य उन्ही परिस्थितियो मे भविष्य मे भी होगा। ये दोनो सिद्धात आगमन के आधार हैं। ज्ञात से अज्ञात की ओर जाने की प्रक्रिया इन्ही के सहारे हो सकती है। अत, आगमन के वैज्ञानिक रूप को हम इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं आगमन उस प्रणाली से सवद्ध है, जिसमे विशिष्ट तथ्यो के प्रेक्षण से प्रारभ कर, सामान्यो, कारण-सवधो एव प्राकृतिक नियमो का प्रथम सकेत मिलता है और तदुपरात उनकी परीक्षा एव प्रमाणीकरण होता है। इस प्रकार इसमे मान कर बढा जाता है कि प्रकृति मे सामान्य सिद्धात है तथा घटनाओ मे परस्पर कारण-सवध है।

§ २ आगमन एवं निगमन-तुलनात्मक दृष्टिकोण

आगमन के स्वरूप को और भी स्पष्ट करने के लिये हम आगमन एव निगमन का तुलनात्मक विवेचन करेंगे। सर्वप्रथम उनके परस्पर भेद पर दृष्टि डालें।

आगमन मे विशेष के प्रेक्षण से प्रारभ करते है और उसी मे प्राप्त सकेत के आधार पर किसी व्यापक नियम की स्थापना होती है। इसके विपरीत निगमन मे हम किसी सर्वव्यापी नियम से प्रारभ कर उसके क्षेत्र मे आने वाली व्यष्टिगत वस्तुओ पर पहुँचते हैं। दूसरे शब्दो मे, हम अवयव से पूर्ण की ओर जाते है और निगमन मे पूर्ण से अवयव की ओर, अत निगमन मे निष्कर्ष आधारवाक्यो से कम व्यापक है। निगमन के आधारवाक्यो की सत्यता मान ली जाती है। पर, आगमन मे आधारवाक्य प्रेक्षण से प्राप्त किये जाते है। निगमन मे 'सभी मनुष्य मरणशील हैं' मान लिया जाता है और फिर निष्कर्ष निकाला जाता है कि सुकरात भी मरणशील है, क्योकि वह मनुष्य है। आगमन मे सुकरात, मुहम्मद, गाँधी, चर्चिल, रूजवेल्ट इत्यादि मनुष्यो का मरना देखकर निष्कर्ष निकाला जाता है कि 'सभी मनुष्य मरणशील है।' निगमन मे केवल आकारिक सत्यता पर ध्यान दिया जाता है, आगमन मे आकारिक एव तात्विक दोनो पर, उसमें भी तात्विक सत्य पर अधिक। निगमन मे तो इतना ही देखा जाता है कि तार्किक आवश्यकता के रूप मे निष्कर्ष आधारवाक्यो से निकलता है, अर्थात् निष्कर्ष आधारवाक्यो मे आपादित होता है। किंतु, आगमन मे यह भी प्रश्न उठता है कि निष्कर्ष वस्तुत सत्य है अथवा नही। इसके लिये इसे प्रेक्षण एव प्रयोग का सहारा लेना पडता है। अत, आगमन को विज्ञान का तर्क और निगमन को आकारपरक तर्क कह सकते हैं। इसीलिए जेवस कहते हैं कि यदि निगमन मे आधारवाक्य सत्य हो और तर्क की प्रणाली ठीक हो, तो निष्कर्ष की सचाई की गारटी की जा सकती है। किंतु, इस प्रकार की गारटी आगमन में सभव नही। मिल के अनुसार आगमन वह प्रणाली है, जिससे नये सत्य की खोज होती है। निर्णय की नवीनता ही इसका प्राण है। किंतु निगमन मे किसी नये सत्य की खोज का प्रश्न ही नही उठता, अपितु इसमे किसी व्यापक सत्य को उसके विभिन्न पहलुओ पर लागू किया जाता है। वेकन निगमन को अवतरण-विधि और आगमन को आरोहण-विधि कहते हैं। उनके कहने का साराश है कि निगमन मे अधिक व्यापक से कम व्यापक की ओर आया जाता है। इसे नीचे उतरना (अवतरण) कह सकते हैं। और, आगमन मे कम व्यापक से चलकर अधिक व्यापक पर पहुँचा जाता है। इसे ऊपर चढना या 'आरोहण' कह सकते हैं।

किंतु, निगमन-आगमन की ये भिन्नताएँ स्थूल दृष्टिकोण की हैं। जीवन मे ये दोनो साथ-साथ रहते हैं और एक दूसरे के पूरक के रूप मे कार्य करते हैं। तर्क का

काम है किसी घटना को स्पष्ट करना। इसके लिए इसे वस्तुविशेषों में संबंध देखना पड़ता है। उसका काम तभी पूरा समझा जाता है, जब यह बतलाने में समर्थ होता है कि अमुक घटना अमुक नियम के अनुसार हुई है। इस काम में इसे निगमन और आगमन दोनों से काम लेना पड़ता है। वस्तुत इन दोनों के बिना किसी वस्तु का पूर्ण ज्ञान नहीं हो सकता। जबतक एक का कार्य समाप्त नहीं हुआ रहता, तबतक दूसरा आ जाता है और दोनों मिलकर किसी स्पष्ट निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। कभी भी ऐसा नहीं होता कि आगमन पहले कार्य प्रारंभ कर सर्वव्यापी सिद्धांत बना दे और तब निगमन उस नियम की सहायता से किसी विशेष घटना को स्पष्ट करे। आगमन की आवश्यकता किसी नियम के ढूँढने और उनके स्वरूप को स्पष्ट करने में पड़ती है और वैसे ही निगमन की आवश्यकता यह दिखलाने में कि कोई घटना-विशेष किसी विशिष्ट नियम का उदाहरण है। किंतु ये एक दूसरे से ऐसे मिले रहते है कि किसी एक को अच्छी तरह समझ लेने का अर्थ है कि दूसरे को भी समझ लेना। आगमन और निगमन आपस मे संबंधित ही नहीं, वरन एक ही मूल सिद्धांत पर आधारित भी है। उनके प्रारंभ बिंदु मे अंतर हो सकता है, परंतु सिद्धांत मे नहीं। बहुत से स्थल तो ऐसे मिलते हैं, जहाँ बिना किसी अंतर के इन दोनों मे से किसी एक का प्रयोग किया जा सकता है। हम किसे चुनेंगे, यह आधारित है हमारे तुरंत के स्वार्थ पर। किंतु, अंत मे इन दोनों को साथ लेना अनिवार्य हो जाता है।

आगमन और निगमन के पारस्परिक संबंध और महत्ता को लेकर विद्वानों मे काफी मतभेद है। कोई एक को अधिक महत्त्वपूर्ण बतलाता है, तो कोई दूसरे को। है मिल्टॅन, मैंन्सेल, ह्वीवेल इत्यादि तार्किक जिनका निगमन की ओर अधिक झुकाव है, कहते हैं कि निगमन ही मूल पद्धति है, यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो आगमन के मूल मे निगमन है और पूरा आगमन न्यायवाक्य के आकार मे रखा जा सकता है, जैसे अरस्तू ने रखा है —

> मनुष्य, घोडे, खच्चर इत्यादि अधिक दिन तक जीवित रहते हैं।
>
> मनुष्य, घोडे, खच्चर इत्यादि पित्तरहित जानवर हैं।
>
> अत, सभी पित्तरहित जानवर अधिक दिन तक जीवित रहते हैं।

इसके विपरीत मिल, बेन, प्रभृति विद्वानों का कहना है कि सभी तर्क मूलत आगमनिक है। निगमन अधूरी पद्धति है। इससे आगमन के द्वारा स्थापित सत्य का केवल स्पष्टीकरण होता है। मतभेद का दूसरा विषय है—आगमन और निगमन मे कौन पहले आता है? मिल का कहना है कि आगमन पूर्ववर्त्ती है। सर्वप्रथम आगमन किसी सर्वव्यापी सत्य को ढूँढ लेता है, तब निगमन उसे नये-नये उदाहरणों पर लागू

करता है। न्यायवाक्य बिना सर्वव्यापी सत्य के प्रारंभ नही हो सकता और यह सर्वव्यापी सत्य आगमन से ही प्राप्त होता है। इसके विरुद्ध जेवस का मत है कि निगमन ही आगमन के पहले आता है। बुद्धि की उडान द्वारा प्राक्कल्पना के रूप मे हमे व्यापक सत्य मिलते है। आगमन तभी पूरा होता है, जब ये प्राक्कल्पना सिद्ध हो जाती है। और प्राक्कल्पना की यह सिद्धि तभी सभव है, जब हम उससे निगमन के ढग से निष्कर्ष निकाले और देखे कि वस्तुत परिणाम उस प्राक्कल्पना से मेल खाते है। अत, प्रमाणीकरण निगमन बिना नही हो सकता। केवल घटनाविशेषो के आधार पर निर्णय निकालना सभव नही। किसी व्यापक सत्य को लेकर तो चलना ही पडेगा। यदि पहले से यह सत्य नही प्राप्त है, तो हम उसकी प्राक्कल्पना कैसे कर लेंगे? इस प्रकार आगमन निगमन का उलटा स्वरूप है। हमलोग कुछ वस्तुओ को देखकर कोई प्राक्कल्पना करते है और फिर उस प्राक्कल्पना के आधार पर निष्कर्ष निकालकर देखते हैं कि वह प्राक्कल्पना से मेल खाता है या नही। यदि मेल खाता है तो हम अपनी प्राक्कल्पना को प्रामाणिक कहते है, अन्यथा नही। बोसाकेट भी जेवस के इस मत से सहमत है।

किंतु हम जैसा ऊपर देख चुके हैं, इन तमाम मतभेदो के लिए सचमुच कोई स्थान नही। आगमन और निगमन एक दूसरे से भिन्न पद्धति नही है। इनको एक ही वस्तु के दो पहलू या एक ही गाडी के दो पहिये कह सकते है। वास्तविक विचारधारा मे ये दोनो साथ रहते है और एक दूसरे के पूरक का कार्य करते है। तर्क मे जैसे आधारवाक्य और निष्कर्ष एक दूसरे पर आधारित होते हैं, वैसी ही परिस्थिति निगमन और आगमन भी पायी जाती है। आगमन से जो सिद्धात निकाले जाते हैं, वे निगमन द्वारा प्रमाणित होते है। किंतु, निगमन भी सर्वव्यापी वाक्य के बिना आरभ नही हो सकता और इसकी खोज आगमन से होती है। ये आपस मे इस प्रकार मिले हैं कि एक को दूसरे से अलग करना सभव नही। वे साथ-साथ चलते है और सत्य की खोज मिल कर करते है।

§ ३ आगमन की समस्या

विज्ञान मे दो तरह की व्याप्तियो की खोज होती है, (१) दो विशिष्ट तथ्यो के बीच कार्य-कारण का सबध, तथा (२) अधिक व्यापक सिद्धात अथवा व्याप्ति-सबध जिससे किसी तत्र मे असख्य तथ्य जुटे रहते हैं, जैसे गुरुत्वाकर्षण का नियम या विकासवाद का सिद्धात। ये दोनो प्रकार की व्याप्तियाँ सर्वव्यापी एव प्राकृतिक नियमो के रूप मे होती हैं, फिर भी इन दोनो मे कुछ अतर होता है जिनसे इनमे भेद करना अपेक्षित हो जाता है। हमे कारण का सबध अथवा किसी प्रकार का सबध दिखलाई नही पडता। हम केवल सयोग या तारतम्य देखते हैं, दो वस्तुएँ साथ-साथ अथवा

एक के बाद एक आती हुई। किंतु, हम केवल इतना ही नही कहते कि दो वस्तुएँ साथ-साथ उपस्थित हैं या क्रम से एक के बाद दूसरी आ रही हैं, बल्कि हम यह भी कहते हैं कि एक दूसरे का कारण है, और फिर भी इतना ही नही मानते कि दो वस्तुओ मे कारण-सबध है, बल्कि हम यह भी कहते हैं कि इस प्रकार की सभी वस्तुओ मे ऐसा कारण-सबध सर्वदा मिलता है, जैसे हम कहते है कि आर्सेनिक से मृत्यु होती है। अग्नि से गर्मी मिलती है, यहाँ हमारा तात्पर्य आर्सेनिक या अग्नि के किसी एक टुकडे से नही रहता। उसी तरह का कारण-सबध बार-बार हमे दिखलाई पडता है। हर दृष्टात मे जहाँ हमे एक तथ्य (कारण) प्राप्त होता है, तो दूसरा तथ्य (कार्य) अवश्य आ जाता है। ठीक जिस प्रकार असख्य उदाहरणो मे हम किसी जाति को पाते हैं और देखते हैं कि एक ही तरह के गुण-धर्म बार-बार दिखलाई पडते हैं, जैसे मनुष्य-मरणशील, उसी प्रकार कारण-सबध भी विभिन्न उदाहरणो में ठीक उसी रूप मे दिखलाई पडता है, जैसे आर्सेनिक—से मृत्यु होती है। इन दोनो प्रकार के सबधो के बहुत से उदाहरण मिलते हैं।

यद्यपि उद्देश्य एव विधेय का सबध कार्य-कारण-सबध के समान नही है फिर भी इन दोनो की अभिव्यक्ति सामान्य प्रतिज्ञप्तियो के रूप मे हो सकती है जैसे 'सभी अग्नि जलाती है', किंतु पारपरिक न्यायवाक्यीय तर्कशास्त्र विधेय-सबधो पर अधिक बल देता है और विज्ञान कारण-सबधो पर। पहले मे दृष्टातो पर अधिक बल रहता है, दूसरे मे सबध की अनिवार्यता पर। अरस्तू ने दोनो मे स्पष्ट भेद नही किया, किंतु उनका सूत्रीकरण, सभी स प है, दोनो के लिए आता है, फिर भी विधेय सबधो मे उनकी विशेष रुचि रही। इन्ही सबधो मे मध्यकालीन विद्वानो ने भी अपनी रुचि दिखलाई। दूसरी ओर भौतिक विज्ञान ऐसे सबधो पर ध्यान कम देता है, बल्कि उसकी रुचि विशेष रूप मे अनिवार्य सबधो पर रहती है जिनकी अभिव्यक्ति भी उद्देश्य-विधेय-आकार मे हो सकती है। दूसरे शब्दो मे सर्वव्यापी कथनो के मूल मे पडे हुए कारण-सबधो को ढूँढने का प्रयास विज्ञान करता है। उदाहरणार्थ, यह मनुष्य मे मरणशीलता का कारण खोजने का प्रयास करता है। फलत आधुनिक विज्ञान की प्रगति के साथ-साथ आगमन की समस्या इस प्रकार का रूप ले लेती है 'कारण-सबधो का प्रमाणीकरण कैसे हो सकता है?' अब बल इस पर नही रहा कि 'न्याय-वाक्यो के आधारवाक्य कैसे प्राप्त किये जा सकते हैं?'

'कारण' पद का प्रयोग भिन्न-भिन्न अर्थो मे हुआ है, किंतु यदि हम इसका अर्थ अतिविस्तृत रूप मे भी लें, तब भी हम देखेंगे कि विज्ञान ऐसे नियमो को भी सिद्ध करने मे लगा हुआ है, जो कारणेत्तर सबधो की अभिव्यक्ति करता है। यह तथ्यो और विशेष कारण-सबधो को सुव्यवस्थित करने का प्रयास करता है, जिससे स्पष्ट हो जाय कि ये सभी किसी व्यापक तन्त्र के तत्त्व हैं अथवा किसी व्यापक सिद्धात के दृष्टात हैं।

'प्रकृति का नियम' पद सामान्यत इन नियमो मे से सबसे सरल और सबसे व्यापक नियम के लिए प्रयुक्त होता है। ऐसे नियम उन रीतियो की अभिव्यक्ति हैं, जिनमे तथ्यो के प्रत्येक विस्तृत तत्रो के अगभूत तत्त्व आपस मे सबधित रहते हैं। नियम या सिद्धात विभिन्न तथ्यो को समन्वित करता है, और इस प्रकार उन्हे स्पष्ट करता है। जिस क्षेत्र को लेकर यह चलता है, उसमे क्रमबद्धता या तत्र व्यक्त करता है। कम व्यापक नियम सीमित क्षेत्र मे वही काम करते हैं। कोई जासूस देखने मे असबद्ध तथ्यो को इकट्ठा करता है, किंतु इन्ही मे से उसे एकाएक प्रकाश झलकता है और उसकी प्राक्कल्पना बन जाती है कि अमुक व्यक्ति ने अपराध किया है। उसी के साथ सब तथ्यो को वह सबद्ध करता है, तब वे सभी समझ मे आने लगते हैं और सबकी व्याख्या हो जाती है। कोई खगोलज्ञ किसी नक्षत्रविशेष को किसी स्थानविशेष मे किसी निश्चित समय पर प्रेक्षण करता है और तब अनुभव करता है कि ये तथा इनसे सबद्ध अन्य तथ्यो की व्याख्या इस प्राक्कल्पना पर हो सकती है कि वह नक्षत्र किसी विशेष नियम से चलता है। कोई लडका बहुत सी टूटी हुई वस्तुओ को सजाते-सजाते देखता है, तो उनसे कोई आकृति बन जाती है। यही बात वृहद् रूप मे सर्वव्यापी गुरुत्वाकर्षण या विकास के सिद्धात पर भी लागू होती है, जिस प्रकार कोई नियम तथ्यो की व्याख्या करता है वैसे ही अधिक व्यापक सिद्धात छोटे-छोटे सिद्धातो की व्याख्या करते हैं। छोटे सिद्धातो की सबसे सुदर कसौटी यही है कि वे किसी बडे सिद्धात के दृष्टात हो। इन नियमो को ढूँढना, तथ्यो के बीच कारण-सबध पाना आगमन का कार्य है। हम विशिष्ट घटनाओ को देखते हैं, व्यष्टि और विभिन्न वस्तुओ को किसी विशिष्ट प्रणाली मे सबद्ध होते हुए पाते हैं। हमे वे नियम दिखलाई नही पड सकते, जिनसे व्यक्तिगत वस्तुएँ सबद्ध होती हैं या उनके अपने व्यवहार होते हैं। इन नियमो का हमे अनुमान करना होगा। आगमन तर्कशास्त्र उन प्रणालियो की खोज करता है, जिनसे ये नियम सिद्ध हो सकें।

तब तीन तरीके हुए जिनमे आगमन की समस्या रखी जा सकती है, या यह कहना अधिक समीचीन होगा कि इस समस्या के तीन पहलू हैं। जिनका हम अलग-अलग भेद कर सकते हैं। (१) हम सर्वव्यापी प्रतिज्ञप्तियो को कैसे सिद्ध करते हैं जो सामान्य न्यायवाक्यो, जैसे 'सभी मनुष्य मरणशील हैं' के आधारवाक्यो को देते हैं? (२) विशिष्ट घटनाओ के बीच, जैसे 'आर्सनिक से मृत्यु होती है' हम कैसे कार्य कारण-सबध, आवश्यक लगाव प्रमाणित करते हैं? (३) हम किस प्रकार वैज्ञानिक प्राक्कल्पनाएँ अथवा प्राकृतिक नियम सिद्ध करते हैं, नियम जो असख्य तथ्यो के बीच व्यवस्था एव सबद्धता तथा तत्र प्रदर्शित करते हैं, जैसे गुरुत्वाकर्षण या विकास के सिद्धात?

सर्वव्यापी प्रतिज्ञप्ति, कार्य-कारण-सबध एव प्राकृतिक नियम, ये सभी सर्वव्यापी हैं और आवश्यक सबध व्यक्त करने का दावा करते हैं। किंतु, उनमे महत्त्वपूर्ण भी हैं,

जिनमे वे आपस मे अलग-अलग किये जा सकते है। आधुनिक आगमन तर्कशास्त्र के लिए कार्य-कारण-सबध एव प्राकृतिक नियम विशेष रुचि के विषय हैं, क्योकि यद्यपि यह सभी प्रकार के विज्ञानो की प्रणालियो से इसका लगाव है, फिर भी इसका झुकाव उन भौतिक विज्ञानो की ओर विशेष है, जो गणनात्मक होने की ओर अधिक महत्त्व रखते है। किंतु, कम-विकसित विज्ञान भी जैसे जीव-विज्ञान या समाज-विज्ञान भी इससे पर्याप्त सहायता लेते है या यो कहा जाय कि उनका भी यही मार्ग-प्रदर्शन करता है।

विज्ञान यह दिखलाने का प्रयास करता है कि कोई विशिष्ट कार्य-कारण-सबध स्वय किसी अधिक व्यापक प्राकृतिक नियम का दृष्टात है। अत , जब हम जातियो के बारे मे अपने कथन से बढकर कारण-सबधो से होते हुए, प्राकृतिक नियमो तक पहुँचते है, तो हमारे वैज्ञानिक ज्ञान के आदर्श की क्रमिक उपलब्धि होती है। किसी तथ्य की व्याख्या भी इन्ही स्तरो से गुजर सकती है। सर्वप्रथम इसे हम किसी जाति के गुणो का एक दृष्टात मान सकते है, सरल गणना या सादृश्यानुमान के द्वारा कोई सामान्यीकरण हो सकता है, जिससे किसी सबध के कुछ सकेत मिल सकते है, फिर भी इसे प्रमाणित नही कहा जा सकता।

आगे की खोज से कुछ कारण-सबध प्रकाश मे आ सकते हैं, जिनसे हमारे कथन की सार्वभौमिकता को बल मिल सकता है। फिर भी यह अपेक्षाकृत अकेला ज्ञान हो सकता है, इसकी और व्याख्या के लिए आवश्यकता बनी रहती है। यदि यह दिखलाया जा सके कि यह भी किसी व्यापक नियम का दृष्टात है अथवा किसी व्यापक तत्र मे एक तत्त्व है, तो व्याख्या पूरी हो जाती है। यहाँ हर स्तर पर हमारी व्याख्या क्रमश अधिक अच्छी होती जा रही है और तथ्य अधिक सुनिश्चित। पहली अवस्था को हम अतरिम सामान्यीकरण कर सकते है। इसमे सबध की ओर एक सकेत-सा होता है। दूसरी मे हमारे व्याख्या-सबध के तत्त्व को प्रदर्शित करती हैं। इसमे केवल सकेत नही रहता, बल्कि व्यष्टिगत वस्तुओ के बीच सबध की कुछ सुदृढता दिखलाई पडती है। इसमे अपने मत की पुष्टि के लिए बहुत से दृष्टात भी मिल सकते है, पर इसे नितात सत्य तब तक नही माना जा सकता, जब तक अन्य तथ्यो के साथ यह मेल न खा जाय। ऐसा हो जाने पर अतरिम सकेत प्रामाणित तथ्य बन जाता है। आगमनिक तर्कशास्त्र का कार्य है कि इस पद्धति को प्रथम सकेत से लेकर अतिक सिद्धि तक पहुँचाए।

कारणेतर नियमो की सिद्धि मे भी हमे इसी प्रणाली का अनुसरण करना पडता है। काफी दिनो की अपनी खोज के फलस्वरूप केपलर ने यह निष्कर्ष निकाला कि मगल के बारे मे सभी प्रेक्षित तथ्यो की व्याख्या इस प्राक्कल्पना पर हो सकती है कि उसका कक्ष अडाकार है। सादृश्यानुमान के सहारे उसने इस प्राक्कल्पना को

अन्य ग्राहो पर भी लागू किया और पाया कि उनकी गति के आधार पर ये बात ठीक लगती है। मगल के प्रति प्राप्त तथ्य सभी पर लाग होता है, यह एक बहुत बडी अभिपुष्टि थी। बाद मे जब न्यूटन ने सवव्यापी गुरुत्वाकर्षण का सिद्धात रखा, तो उन्होने गणना की कि यदि सूर्य का आकर्षण उससे और ग्रह के बीच की दूरी के वर्ग के अनुसार परिवर्तित होना है तो किस प्रकार का रास्ता कोई ग्रह ले सकता है और उन्हें ज्ञात हुआ कि वह रास्ता अवश्य ही अडाकार होगा। अब यह देखा गया कि मगल का मार्ग कोई अलग घटना नही है, बल्कि यह भी एक सार्वभौम नियम का एक अग है, जो नियम पूरे भौतिक विश्व मे व्याप्त है।

आगमन तर्कशास्त्र की समस्या सामान्यतया अधिक सुनिश्चित विज्ञानो की प्रणालियो के साथ-साथ व्यक्त होती है। इन विज्ञानो मे आगमन तर्कशास्त्र द्वारा अन्वेपित सिद्धातो का सबमे सुदर दृष्टात पाते हैं। पर, यह भूल होगी यदि हम आगमन को इन्ही विज्ञानो तक सीमित समझे, क्योकि विज्ञान मे उन्ही कार्यों को अधिक सतर्कतापूर्वक करते है, जिन्हे सामान्य मनुष्य अपने नित्य के जीवन मे करता रहता है। विज्ञान कोई नया सिद्धात लागू नही करता और न उसके सोचने की नई प्रणाली होती है। वैज्ञानिक भी सामान्य मनुष्यो की सामान्य चितन-प्रणाली का ही अनुसरण करता है और वह भी अपना खोज-कार्य सामान्य प्रेक्षण विश्लेषण से प्रारभ करता है। पर, वह अपनी चितन-प्रणाली और विशेष रूप मे अपने प्रेक्षण और विश्लेषण मे वह अधिक सुनिश्चित और ठीक रहता है फिर भी जो सिद्धात सामान्य मनुष्य के चितन को वैध बनाता हैं वही वैज्ञानिक के चितन पर भी लागू होता है। अत, हमे स्मरण रखना चाहिए कि आगमन के सुनिश्चित दृष्टातो के लिए हम विज्ञान का सहारा तो लेते हैं, पर वही सिद्धात सामान्य चितन मे भी काम करता रहता है, और यदि हम इस पर ध्यान केंद्रित करे तो उससे भी हमे वही फलप्राप्ति होगी, हाँ, काफी सतर्क रहना पडेगा। इसमे सदेह नही कि जो सामान्यीकरण बिना अपवाद के सत्य नही है, अधिकाशत सामान्य मनुष्य के पथ प्रदर्शक होते हैं, पर उनके निष्कर्ष मे साधारणतया सदिग्धता के तत्त्व गलत आधारवाक्यो के कारण अधिक होते है अपेक्षाकृत अवैध तर्क के।

विज्ञानो मे भी प्राप्त निश्चयात्मकता की मात्रा में बहुत अतर होता है। कामचलाऊ सामान्यीकरण से प्रारभ करके सभव सकेतो से होकर सभावना की सभी मात्राओ से चलते हुए सुनिश्चित आगमनिक प्रमाण पर पहुँचते हैं। सामान्य आगमन तथा वैज्ञानिक आगमन मे, अधिक या कम सुनिश्चित विज्ञानो की तरह, केवल मात्रा-भेद है, प्रकार-भेद नही। सभी अवस्थाओ मे निश्चयात्मकता की मात्रा वैध आगमन की आवश्यकताओ की पूर्ति से ही सुनिश्चित होती है। शायद ही कोई विज्ञान ऐसा है, जो सुनिश्चित सामान्यीकरण करने के मार्ग मे आनेवाली सभी कठिनाइयो को पार

कर बहुत आगे निकल गया है। विज्ञान मे सुनिश्चित सामान्यीकरण करने की सभावना की मात्रा उसके विषय-वस्तु के अनुसार परिवर्तित होती रहती है, इसलिए हमे यह नही समझ लेना चाहिए कि जिन विज्ञानो मे नाप-तौल ठीक-ठीक होती है, वे ही यथार्थत विज्ञान है और वही से हमे आगमन के दृष्टात प्राप्त हो सकते हैं। विज्ञान का कार्य नियमो को अधिकाधिक सुनिश्चित करना है, पर यह तो आदर्श है, इसका प्रारभ विंदु तथा आगे की प्रगति है, जिसे हमे ध्यान से ओझल नही करना चाहिए। उस आदर्श की प्राप्ति के लिए हमे अपने चिंतन एव अनुमान को सबसे अधिक सुनिश्चित ढग से लगाना चाहिए। पर, हमारे जो भी निष्कर्ष निकलते हैं, आदर्श से दूर होते हुए भी हमारी सहायता करते हैं। सामान्य चिंतन मे ऐसा ही कार्य होता है।

ज्ञातव्य है कि आगमन कई अर्थों मे प्रयुक्त होता है पूर्ण गणनात्मक अथवा पूर्ण आगमन, अपूर्णगणनात्मक या अपूर्ण आगमन, सादृश्यानुमान तथा प्राकृतिक नियमो तथा कारण-सब धो को प्रमाणित करने की प्रणालियाँ। इन सबमे भिन्न-भिन्न मात्राओ की निश्चयात्मकता मिलती है। आगमन तर्कशास्त्र को इन सबमे आनेवाली तर्क-प्रणालियो का अध्ययन करना पडता है और सबके निश्चयात्मकता को आँकना पडता है। पर, इस पर अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि बिना किसी सर्वव्यापकता या तत्र के अनुमान सभव नही हो सकता। यहाँ यह पूछा जा सकता है कि तब हम *व्यष्टि से समष्टि की ओर या तत्त्व से तत्र की ओर कैसे अनुमान कर सकते हैं?* सही उत्तर होगा कि हमलोग नही कर सकते। सभी प्रकार के तर्क मे हमे कम-से-कम कोई अभिगृहीत सर्वव्यापकता अथवा कोई प्राक्काल्पनिक तत्र का होना आवश्यक है। अत, सभी अनुमान मूलत नैगमनिक होता है। तथ्यो का प्रेक्षण किसी सर्वव्यापकता या नियम या तत्र की ओर सकेत करता है। तब हमलोग निष्कर्ष निकालते हैं और कहते हैं कि यदि हमारा सकेत ठीक है, तो अमुक कार्य होना चाहिए और देखते हैं कि यह होता है कि नही। यदि हमारा अनुमित कार्य नही होता, तो हम उस सकेत या प्राक्कल्पना को त्याग देते हैं। और यदि उसके अनुसार कार्य होते हैं, तो उसे हम अधिक सभव मान लेते हैं, फिर भी प्रमाणित नही। इसे पूर्णतया सिद्ध करने के लिए हमे यह दिखलाना पडता है कि क्षेत्र मे यही एकमात्र एक कल्पना है, जिससे सब प्रकार की घटनाओ की व्याख्या हो सकती है। जबतक यह नही होता, तबतक वह प्राक्कल्पना सभावना की ही किसी कोटि मे रहेगी।

अत', सामान्य या नियम जो आगमनिक प्रणाली से सिद्ध होते हैं, सर्वप्रथम ये प्रारभ मे अदाजो सकेतो अथवा प्राक्कल्पनाओ के रूप मे शुरू होते हैं। जैसा अरस्तू ने समझा था, इनका प्रथम प्रकाश हमे प्रज्ञा मे मिलता है, अनुमान द्वारा नही।

यदि इनके यहाँ तक पहुँचने का कोई मार्ग है तो उनके लिए तर्कशास्त्र कोई नियम नही दे सकता। इसके अतिरिक्त इन्हे सिद्ध करने के लिए जो भी अनुमान हैं, वे सभी निगमनात्मक है। उनका मूल रूप है कि दिये हुए सामान्य या नियम से निष्कर्ष निकालना।

इस प्रकार यदि हम आगमन को सामान्य या नियम सिद्ध करने वाला माने, तो इसमे आती है (१) पूर्वमान्यता कि ससार मे सामान्य हैं, कि घटनाएँ नियय से सबद्ध हैं हम इस पूर्वमान्यता के साथ तथ्यो पर जाते है और वे तथ्य सकेत देते है कि कौन घटनाएँ सबद्ध हैं और उनको सबधित करने वाला कौन सा नियम वहाँ काम कर रहा है, (२) तथ्यो का प्रेक्षण, विश्लेषण तथा प्रयोग जबतक कि उनसे नियम या सबध का सकेत न मिल जाय, (३) सिद्ध करने की प्रणाली कि साकेतिक नियम या संबध वस्तुत ठीक हैं या नही और, यदि हाँ, तो उनमे से कौन ? इस अतिम चरण को हम सपूर्ण आगमन कह सकते है, किंतु जबतक नियम या सबध का सकेत न मिल जाय, तबतक यह प्रारभ नही हो सकता और यह अनुमान से नही, बल्कि अपरोक्षानुभूति से सभव है। कुछ अवस्थाओ मे तो हमे साकेतिक प्राक्कल्पना से ही सतोष कर लेना पडता है। गणना या सादृश्यानुमान के परे हम नही जा सकते। प्राक्कल्पना को प्रमाणित करने के लिए हमारे पास कोई साधन नही होता। जहाँ हम इसको आगे सिद्ध करने मे समर्थ होते हैं, वहाँ अनुमान नैगमनिक हो जाता है।

मिल के समय से विशेष कार्य-कारण-सबधो को सिद्ध करने की प्रणाली को आगमनिक अथवा प्रायोगिक विधियाँ कहा गया है। फिर भी प्रायोगिक विधियाँ प्राक्कल्पना प्रणाली के दृष्टात मात्र है, जैसे कार्य-कारण नियम प्राकृतिक नियमो के केवल उदाहरण हैं। परतु, जिस रीति मे निगमन का प्रयोग होता है, इन दोनो मे भिन्न हैं। सबद्ध घटना के स्वरूप के अनुसार यह भेद होता है। आगमनिक विधियो का प्रयोग केवल उन स्थानो पर होता है, जहाँ पर कारण का प्रेक्षण ही सकता है अथवा जहाँ कार्य को प्रायोगिक ढग से उसकी भिन्न-भिन्न परिस्थितियो मे विश्लेषण हो सकता है। और प्रायोगिक विधियों द्वारा प्रमाणित कारण-सबध के सत्य होने की सभावना अपेक्षाकृत तब बहुत अधिक हो जाती है जब वह सबध प्राक्कल्पना द्वारा सिद्ध किसी व्यापक नियम का दृष्टात दिखलाई पडता है। कुछ अवस्थाओ मे जहाँ आगमनिक विधियो को पूर्णत लागू करने की परिस्थिति नही होती, वहाँ कारण-सबंध केवल प्राक्कल्पना विधि से प्रमाणित मानी जाती है। इन विधियो मे से कोई भी हमे नितात अनिवार्यता नही दे सकती। जिन सबधो का सकेत इनसे मिलता है, उन्हे सिद्ध करने की अपेक्षा सदैव बनी रहती है।

अत, आगमन उन रीतियो से सबध रखता है, जिनसे व्यष्टिगत तथ्यो, के प्रेक्षण से प्रारभ कर सामान्य कार्य-कारण-सबध, प्राकृतिक नियम सर्वप्रथम सकेत के रूप

मे मिलते है और तब उनका प्रमाणीकरण होता है और वे सिद्ध होते हे। इस प्रकार यह मान लेता है कि ससार मे सामान्य एव नियम हे तथा घटनाएँ आपस मे कार्य-कारण के रूप मे सबधित हे। आगमन यह सिद्ध करने का प्रयास नही करता कि नियम और सबध ह, बल्कि वह केवल इतना ही दिखलाता हे कि कौन सी घटना किससे सबद्ध हे और उसके सबध मे कौन से नियम काम करते है। जबतक इस प्रकार तथ्यो को स्वत एक दूसरे पर आश्रित रहने की बात न हो, तो कोई अनुमान सभव नही हो सकता। हम ऐसा तर्क नही दे सकते कि चूँकि एक वस्तु है इसलिए दूसरी अवश्य होगी। निगमन मे सबध का सिद्धात, जिसके आधार पर अनुमान चलता है ज्ञात या दिया हुआ मान लिया जाता है। किंतु आगमन मे न यह दिया हुआ रहता है, न स्पष्ट। आगमन व्यष्टियो या घटनाओ या इनके समूहो से प्रारभ करता है: व्यष्टियो को यह सामान्यो का दृष्टात, तत्रो मे तत्त्व या नियमो की अभिव्यक्ति मानता है, परतु सर्वप्रथम यह सामान्यो या तत्रो या नियमो का स्वरूप नही जानता। दूसरे शब्दो मे जिन व्यष्टियो से यह प्रारभ करता है, वे आपस मे सबद्ध दिखलाई पडते हैं और विश्वास होता है कि उनमे आपस मे सबध है, किंतु यह सबध दिखलाई नही पड सकता। फिर भी पूर्ण विश्वास रहता हे कि सबध है अवश्य।

इस प्रकार आगमन भी घटनाओ के सबद्ध होने के पूर्वमान्यता पर वैसे ही आधारित है जैसे निगमन। इस सामान्य नियम का रूप जिसकी आगमन मे पूर्व-मान्यता है, सामान्यत नियम के राज्य का सिद्धात, या प्रकृति समरूपता, या सर्वव्यापी कार्य-कारण-सबध का सिद्धात कहा जाता है। सभवत इनमे से प्रथम प्राक्कल्पना विधि के पूर्वमान्यता के रूप मे सबसे अधिक प्रतिष्ठित कही जा सकती है और अतिम आगमनिक विधि की। आगे हम इन्ही पर विचार करेंगे।

— ० —

अध्याय ११

कार्य-कारण-नियम एवं प्रकृति समरूपता

§ १. आगमन की पूर्वमान्यता

हम देख चुके है कि आगमन छोटी-छोटी घटनाओं तथा तथ्यो के निरीक्षण से आरभ कर किसी व्यापक नियम की खोज करता है। घटनाओ के बीच जो सबध यहाँ-वहाँ दिखलाई पडता है, उसी को आगमन मे व्यापक रूप दे दिया जाता है, ताकि उस तरह की सभी घटनाओ को व्याख्या—भूत, भविष्य, वर्त्तमान मे हो सके। हम देखते है कि पानी डालने से आग बुझ जाती है, तो हम कह देते हैं 'पानी से आग बुझती है'। और जब कभी ऐसा अवसर आता है, 'जहाँ आग बुझाने की आवश्यकता पडती है, तो विश्वास के साथ कहते हैं 'पानी डाल दो'। अब प्रश्न है कि हमे कैसे विश्वास होता है कि जो पानी आज आग को बुझा रहा है, वह कल उसे और प्रज्ज्वलित नही कर देगा। किंतु यदि इस प्रकार का विश्वास उठ जाय, तो किसी प्रकार का निश्चित ज्ञान सभव नही। तब तो इस परिस्थिति मे हम यह भी नही कह सकेंगे कि कल सूर्य पूरब मे उगेगा या कलपेड से फल नीचे ही गिरेंगे। हम सदैव प्रेक्षित घटनाओ की सीमा मे ही रह जायेंगे, भविष्य मे वैसी घटनाओ का वही रुख रहेगा, ऐसा कहने का अधिकार नही होगा। ह्यूम की यही समस्या है। इस पर कुछ विचार आगे किया जायगा। इसे मान लेने पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि न साधारण जीवन के कार्य हो सकेंगे और न विज्ञान के।

विज्ञान दो घटनाओ के बीच सबध जानने का प्रयास करता है। वह इन सबधो को अपनी ओर से बनाता नही, बल्कि ढूँढता है। उसका विश्वास है कि ये सबध पहले से वहाँ उपस्थित है। अपनी खोज मे वह आगमन रीति को अपनाता

है। आगमन रीति यह मान कर आगे बढती है कि ससार मे छोटी-से-छोटी घटना का कुछ-न-कुछ कारण है और जब कभी उन परिस्थितियो मे वह कारण काम करेगा, तो वही कार्य होगा। इसे 'कारण-कार्य-नियम' कहते है, जो प्रकृति-समरूपता-नियम के साथ-साथ चलता है। ये दो आगमन की मान्यताएँ हैं, जिन्हे बिना स्वयसिद्ध के रूप मे माने हुए आगमन अपना काम प्रारभ नही कर सकता। इन्हे कभी-कभी आगमन के 'आकारिक आधार' भी कहते हैं, क्योकि आगमन इन्ही के आधार पर किसी प्रेक्षित घटना को व्यापक रूप दे पाता है।

'कार्य-कारण-नियम' एव 'प्रकृति-समरूपता-नियम' आगमन की मान्यता या आधार के रूप मे बहुत ही प्रसिद्ध है। इनके ऊपर शका करते ही आगमन के ज्ञान का पूरा ढाँचा ही बिखर जाता है। इनकी कुछ विस्तार से व्याख्या हम नीचे देंगे।

§ २. कार्य-कारण-नियम

मिल के शब्दो मे ससार की घटनाओ के पीछे एक नियम काम कर रहा है, वह है 'प्रत्येक घटना जो प्रारभ होती है, उसका अवश्य ही कुछ-न-कुछ कारण होता है'। इसी को कार्य-कारण का सार्वभौम नियम कहते है। कहने का अर्थ है कि ससार की घटनाएँ अलग-अलग सब स्वतत्र नही होती, बल्कि आपस मे एक दूसरे से अटूट सवध द्वारा बँधी रहती हैं। जो घटना इस समय हो रही है, उसके पूर्व कुछ विशेष परिस्थितयाँ उपस्थित होती हैं, उनके बिना वह नही हो सकती और जब कभी भी वे परिस्थितियाँ उसी रूप मे आ जायेंगी, तो वह घटना अवश्य हो जायेगी। उदाहरण के लिए लें 'ग्रहण का लगना, ऋतु का बदलना, और पौधो का उगना'—इन सभी कार्यों के होने के पूर्व कुछ विशेष परिस्थितियो का होना आवश्यक है, जिनके बिना ये हो नही सकते और जिनकी उपस्थिति होने पर इनका न होना भी असभव है। वेन कहते हैं, 'प्रत्येक घटना जो घटती है, अवश्य ही नियमित ढग से किसी पूर्ववर्त्ती घटना से सबधित रहती है, जिसके होने से वह होती है और न होने से नही होती'। ससार मे कोई भी घटना इस रूप मे आकस्मिक नही है, जिसका कोई कारण ही नही है। हाँ, कभी-कभी बिना उम्मीद घटनाएँ हो जाया करती है, जिनके कारण का कुछ पता नही लगता। परतु, उसका यह अर्थ नही कि वे बिना कारण होती है। वस्तुत बिना किसी ज्ञात या अज्ञात कारण से सबध स्थापित किये किसी घटना के बारे मे सोचना असभव है। इसलिए किसी घटना की व्याख्या करने का अर्थ होता है—उसके कारण को ढूँढना। कारण की खोज आगमन का मुख्य विषय है। अत, कारण के स्वरूप को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए।

§ २. कारण का स्वरूप

मिल ने कारण की परिभाषा देते हुए कहा है कि कारण घटना का सदैव ही पूर्ववर्त्ती होता है अथवा उसकी पूर्ववर्त्ती घटनाओ से सबधित रहता है जिस पर वह घटना नियमित एव अनौपाधिक रूप से फल के रूप मे आधारित होती है।* कारवेथ रीड ने गुणात्मक और परिमाणात्मक पहलू को स्पष्ट करते हुए कारण की परिभाषा दी, जो आजकल तार्किक क्षेत्र मे अधिक मान्य है। उनके अनुसार किसी घटना का कारण गुण की दृष्टि से 'फल का आसन्न, अनौपाधिक, नियत पूर्ववर्त्ती है' और परिमाण की दृष्टि से 'फल के बराबर है'। अब हम इसकी अलग-अलग व्याख्या करे।

गुण की दृष्टि से कारण को कार्य का आसन्न, अनौपाधिक, नियत पूर्ववर्त्ती माना गया है। कारण के ये चार गुण बडे ही महत्त्वपूर्ण हैं। इनमे से एक को भी हटाने पर कारण कारण नही रह जाता, जैसे कारण-कार्य का सदैव पूर्ववर्त्ती होता है। इसका अर्थ हुआ कि समय की दृष्टि से कारण का स्थान पहले आता है और कार्य का उसके बाद, जैसे पहले बादल तब पानी। यह अवश्य है कि कभी-कभी कारण और कार्य इस प्रकार आपस मे मिले होते है कि उनमे यह क्रम पाना कठिन होता है, किंतु ध्यानपूर्वक देखने से वहाँ भी यही बात मिलती है। जैसे अग्नि से गर्मी मिलती है, पर अग्नि और गर्मी का सबध आगे-पीछे का नही होता। ऐसे स्थलो पर, मेलोन के शब्दो मे, कारण-कार्य के बीच हमे काल्पनिक रेखा खीचनी चाहिए—ऐसी रेखा जिसमे किसी प्रकार की चौडाई न हो, फिर भी वह कारण और कार्य के बीच खडी होकर एक ओर कारण और दूसरी ओर कार्य को कर दे। यहाँ भी हम अपनी मानसिक विवेचना द्वारा कह सकते है—पहले कारण, तब कार्य। दूसरी बात जो इस उदाहरण में ध्यान देने योग्य है, वह है कि कारण कार्य के साथ-साथ कार्य करता जा रहा है। अग्नि और ताप का ताँता चलता रहता है। इसकी व्याख्या के लिए हमें समझना चाहिए कि कारण और कार्य दोनो छोटे-छोटे भागो के मेल से बने होते है। कारण का कोई विशेष भाग कार्य के अपने साथी विशेष भाग का पूर्वगामी होता है, सबका नही। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कारण और कार्य आपस मे एक दूसरे पर प्रभाव डालने लगते है, जैसे—दरिद्रता से व्यभिचार बढता है और व्यभिचार से दरिद्रता। ध्यान देने की बात है कि दरिद्रता और व्यभिचार मे जो भी कारण बनने का प्रयास करता है, वह अपने प्रभाव (कार्य) का पूर्वगामी ही होता है। प्रकृति की घटनाएँ इस प्रकार अलग-अलग नही होती कि कारण-कार्य के बीच समय का अतर

---

* सिस्टम ऑव् लॉजिक, III V 6

दिखलाई पडे। ये लगातार धाराप्रवाह के रूप मे चलती रहती हैं। एक तरह की परिस्थिति थोडी देर मे दूसरा रूप धारण कर लेती है और यह कहना कठिन हो जाता है कि यहाँ कारण है और वहाँ कार्य। वे एक दूसरे के वाद आती हैं, लेकिन वीच मे समय का अतर नही पडता। कभी-कभी कारण को पाने का एक ही मार्ग होता है—फल को उसके बनाने वाले तत्त्वो मे बाँट देना, जैसे जल को ऑक्सिजन और हाइड्रोजन मे विभक्त करना। यहाँ जल का कारण हुआ—हाइड्रोजन, ऑक्सिजन तथा उनका आपस मे सयोग। जब ऑक्सिजन और हाइड्रोजन आपस मे मिलते है, तब कारण नही प्राप्त होता, वल्कि सीधे फल 'पानी' प्राप्त होता है। अत', कार्य और कारण एक तरह से एक ही है, केवल दृष्टिकोण दो हो जाते हैं—कार्य वह सपूर्णता है, जिसमे तत्त्व आपस मे मिले हुए हैं और कारण, केवल तत्त्व तथा उनके आपस मे मिलने की क्रिया है। परतु, इससे हमारी मूल धारणा मे अतर नही पडता। यदि कार्य और कारण मे केवल दृष्टिकोण का अतर है, तो वे दृष्टिकोण ही आपस मे पूर्वगामी एव अनुगामी हो जाते हैं—कारण का दृष्टिकोण पहले और कार्य का वाद मे। हम मानते है कि ऑक्सिजन और हाइड्रोजन मिलते ही पानी बन जाता है। परतु, मन मे हम पहले दोनो गैसो के मिलने की क्रिया को सोचते हैं तब पानी का उद्भव। कारण और कार्य के दृष्टिकोण आपस मे पूर्ववर्त्ती एव अनुवर्त्ती के क्रम मे अवश्य हो जाते है। इस कठिनाई को देखते हुए कुछ विद्वानो का कहना है कि कारण-कार्य के बीच पूर्वगामित्व एव अनुगामित्व का सवध नही है, वल्कि सहगामित्व का सवध है। इस मत की पुष्टि के लिए वे तर्क देते है कि कारण-कार्य दोनो सापेक्ष पद है। कारण का अपना अथ तभी होगा, जव वह कार्य के साथ रहेगा। जब तक कार्य हो नही जाता, तव तक कारण का अपना रूप नही बनता। अत, दोनो साथ-साथ रहने वाले हैं, समय मे आगे-पीछे नही। कारवेथ रीड ने इसका उत्तर बडे ही सुदर ढग से दिया है। उनके अनुसार यह तो ठीक ही है कि कारण-कार्य सापेक्ष पद है, कारण शब्द कार्य शब्द के साथ ही समझा जाता है। किंतु, जैसे कारण के अर्थ मे कार्य मिला हुआ है, वैसे ही उसमे यह भी छिपा हुआ है कि वह कार्य के पहले आनेवाला है। कार्य शब्द भी साथ-साथ यही सकेत करता है कि कारण उसका पूर्वगामी है।

कारण कार्य का केवल पूर्ववर्त्ती ही नही होता, बल्कि नियत-पूर्ववर्त्ती होता है। किसी घटना के पूर्व ससार मे बहुत सी घटनाएँ हुई रहती है, सभी पूर्ववर्त्ती होने के नाते उस घटना का कारण नही हो सकती। हमे देखना पडेगा कि उन पूर्ववर्त्ती परिस्थितियो मे कौन ऐसी है, जो उस घटना के पूर्व कभी उपस्थित रहती है और कभी नही, क्योकि ऐसी परिस्थितियाँ जिनके कभी रहने पर और कभी नही रहने पर घटना होती है, कारण नही हो सकती। मुर्गा वोलता है, तभी सवेरा होता है और नही वोलता है, तव भी। इसलिए मुर्गे का वोलना सवेरा होने कारण नहीं हो सकता।

वे ही परिस्थितियाँ किसी घटना का कारण हो सकती है, जो उसके पूर्व नियत रूप मे सदैव वर्त्तमान रहती है। जैसे वर्षा के पूर्व आकाश मे कुछ-न-कुछ बादलो का होना, या आकाश मे इद्रधनुष उगने के पूर्व सूर्य-किरणो का बादलो के बीच से होकर निकलना। इसलिए कारण को 'नियत-पूर्ववर्त्ती' कहा गया है।

मनुष्यो मे अज्ञानवश केवल पूर्ववर्त्ती होने से ही किसी वस्तु को किसी घटना का कारण मान लेने की प्रवृति पायी जाती है। यह समाज मे अधविश्वास का एक बहुत बडा कारण हुई है। यदि कार्य प्रारभ करने के पहले छीक आ जाय और कदाचित् कार्य सपन्न न हो, तो उस कार्य के बिगडने का कारण छीक का आना मान लिया जाता है। प्रत्येक पूर्ववर्त्ती परिस्थिति को उसकी अनुवर्त्ती घटना का कारण मान लेना तर्कशास्त्र मे 'यदेव पूर्व तत्कारणम् (Post hoc ergo propter hoc) का दोष माना गया है, न्यायशास्त्र ने इसे 'काकतालीय न्याय' कहा है—जैसे किसी गिरने ही वाले ताड के पेड पर एक कौवा बैठ जाय, फिर लोग कहे कि ताड के पेड के गिरने का कारण कौए का बैठना है।

कारण कार्य का अवश्य ही नियत-पूर्ववर्त्ती होता है। पर, यहाँ भी सतर्कता की आवश्यकता है। प्रत्येक नियत-पूर्ववर्त्ती परिस्थिति को घटना का कारण समझ लेना भूल है। ह्यूम ने यही गलती की है। उनके अनुसार केवल नियमित ढग के पूर्ववर्त्ती होना कारण होने के लिए काफी है। किंतु, ऐसी परिस्थिति मे तो, जैसा कारवेथ रीड ने बतलाया है, दिन का कारण रात और रात का कारण दिन समझा जायगा, क्योकि नियमित ढग से रात के पहले दिन और दिन के पहले रात आती है। परतु, वस्तुस्थिति है कि दिन-रात दोनो ही पृथ्वी की दैनिक-गति के सहपरिणाम हैं। मिल, ह्यूम की इस बात से सहमत है कि कारण कार्य का नियत-पूर्ववर्ती है, पर उनका कहना है कि कारण की व्याख्या इतने ही से समाप्त नही होती, कारण का अनौपाधिक पूर्ववर्त्ती होना आवश्यक है। अनौपाधिक पूर्ववर्त्ती होने का अर्थ है कि कारण मे कार्य पैदा करने की स्वत क्षमता है। इसके लिए उसे किसी दूसरी परिस्थिति की सहायता नही लेनी पडती। यो तो प्रत्येक कारण कई परिस्थितियो के मेल से बनता है जैसे पौधे के उगने की परिस्थितियाँ हैं अच्छा बीज, हवा, पानी, मिट्टी इत्यादि। इन सब परिस्थितियो के सयोग से ही बीज उग सकता है। कारण के अनौपाधिक होने का अर्थ है कि कई परिस्थितियो के मेल से जो भी कारण बने, वह अपने मे स्वय पूर्ण हो, कार्य को पैदा करने मे उसे अपने समूह वाली परिस्थितियो को छोड अन्य किसी पर आधारित होना न पडे। कारण अनौपाधिक होता है, इसका अर्थ है कि कारण जब अपनी भीतरी परिस्थितियो के साथ पूर्णरूपेण आ जाता है, तो फिर उसे किसी का मुखापेक्ष नही होना पडता, वह कार्य को अवश्य ही पैदा कर देता है।

कारण के अनौपाधिक होने का गुण उसे कार्य का आसन्न-पूर्ववर्त्ती भी बना देता है। यदि कारण पूर्ण रूप से आ जाय तो कार्य तुरत हो ही जाता है, उसमे देर नही लग सकती, और यदि देर लगती है तो इसका अर्थ हुआ कि कारण पूर्ण नही हुआ है, अभी कुछ परिस्थितियो की कमी है, उनके आने की देर है। उनके आ जाने पर कार्य 'तुरत हो जायेगा। इस प्रकार हम भारत की स्वतत्रता का कारण १८५७ के सिपाही-विद्रोह को नही कह सकते, क्योकि उसके बाद ६० वर्षों तक फल की राह देखनी पडी। इस बीच मे जब कारण की तमाम परिस्थितियाँ परिपक्व हो गईं, तो फिर कार्य तुरत हो गया। अत, ध्यान रखने की बात है कि कारण कार्य के निकट का पूर्ववर्त्ती है, दूर का नही। इसीलिए मेलोन ने कारण-कार्य के बीच 'पूर्ण तदतर-सबध' पर बल दिया है। कारण तभी पूर्ण समझा जाता है, जब कार्य को कर देने मे समर्थ होता है, क्योकि प्रकृति की घटनाओ मे कही पर स्थिरता नही है।

ये कारण के बहुत ही महत्त्वपूर्ण गुण हैं—कारण कार्य का सदैव आसन्न, अनौपाधिक, नियत-पूर्ववर्त्ती होता है। पर, ये चारो कारण के भावात्मक पहलू है कुछ अभावत्मक पहलू भी होते है, जो कारण की बनावट मे अपना विशेप स्थान रखते हैं। उनको विना समझे कारण का स्वरूप स्पष्ट नहीं हो सकता। हम यहाँ कारण के कुछ महत्त्वपूर्ण अभावात्मक पहलू पर विचार करेंगे।

(क) जब हम 'कारण' शब्द का प्रयोग करते है, तो उसका मतलब विश्व मे होने वाली घटनाओ से होता है। यदि इस नियम को बढाते-बढाते विश्व के बाहर ले जाने की कोशिश करे, तो यह बेकार हो जाता है। हम कह सकते है कि विश्व का कारण ईश्वर है, किंतु फिर प्रश्न उठ खडा हो जाता है कि ईश्वर का क्या कारण है और यहाँ कारण की पूरी दीवार धराशायी हो जाती है, क्योकि तब तो इस प्रश्न का कही अत ही नही होगा। यह दशा विश्व के बाहर जाने पर ही होती है। तर्क-शास्त्र के पास ऐसा कोई मार्ग नही है, जिससे विश्व का कारण जाना जाय। अत., तर्कशास्त्र मे जब कभी कारण शब्द का प्रयोग किया जाता है, तो उसका अर्थ विश्व के अदर की घटनाओ से होता है।

(ख) ससार मे घटनाओ का ताँता बधा हुआ है। एक परिस्थिति बदल कर दूसरा रूप धारण कर लेती है। फिर वही दूसरी परिस्थिति तीसरी मे परिवर्तित हो जाती है और इस प्रकार क्रम चलता रहता है। इसलिए कभी यह नही समझना चाहिए कि ससार मे कारण जाति की एक घटना होती है और कार्य जाति की दूसरी। एक घटना जो किसी कारण का कार्य है, वही फिर वाद वाले कार्य के लिए कारण है। अत कारण और कार्य सापेक्ष शब्द हैं, ये साथ-साथ समझे जाते है और ससार मे होने वाले परिवर्त्तनो का क्रम बनाये रखते है।

(ग) कारण-कार्य-नियम वहुत ही व्यापक है, किंतु इसके प्रयोग मे सावधानी भी रखनी चाहिए। किसी तरह के साहचर्य को जहाँ पर 'क्योकि' शव्द का प्रयोग होता है, कारण का सवध नही समझ लेना चाहिए। 'वरामदा क्यो नही गिरता, क्योकि खभे रोके हुए हैं'। यहाँ पर खभो को वरामदा के खडे रहने का कारण समझ लिया जाता है। किंतु, वस्तुत यह कारण-कार्य का उदाहरण नही हो सकता। यहाँ पर वरामदे का प्रत्येक हिस्सा मिलकर एक पूर्ण ईकाई की रचना करता है, खभे उसके अग हैं, अत, जहाँ समष्टि एव व्यष्टि का सवध हो जिसे उपर्युक्त उदाहरण मे, या जहाँ अवयय-अवयवी का सवध हो, जैसे शरीर और उसके अग मे, वहाँ पर कारण कार्य का नियम नही समझना चाहिए। यह प्रकृति-समरूपता के नियमो मे आ सकता है।

कारण के स्वरूप को कुछ और विस्तार से समझने के लिये हम उसके विभिन्न पहलुओ का विवेचन करेंगे।

(अ) **कारण का परिमाणात्मक रूप** वहुत से तार्किको ने कार्य--कारण मे परिमाणात्मक समता स्थापित करने का प्रयास किया है। उनके अनुसार परिमाण की दृष्टि से कारण एव कार्य एक दूसरे के वरावर होते है। जैसे यदि पाँच सेर तैयार दूध का दही जमाया जाय, तो वह भी पाँच सेर होगा। दो किलोग्राम पानी तौल कर उसे वर्फ मे परिवर्तित किया जाय, तो वह भी दो किलोग्राम होगा। कारण एव कार्य के वीच कोई मूल भेद नही है। कारण वदल कर कार्य का रूप ले लेता है। इसलिए कार्य भी कारण ही है, केवल दृष्टिकोण मे अतर है। कार्य-कारण के वीच परिमाणात्मक समता का आधार भौतिक विज्ञानशास्त्र का 'द्रव्य-शक्ति-नित्यता-नियम' प्रदान करता है। इसके अनुसार विश्व मे शक्ति एव द्रव्य की मात्रा सदैव एक-सी रहती है। उसका रूपातर सभव है, किंतु मात्रा मे कमी या वेशी नही हो सकती। देखने मे ऐमा मान्नूम पडता है कि जल जाने के वाद मोमवत्ती का विनाश हो जाता है, पर विज्ञान कहता है कि उसने स्थूल से गैस का रूप ले लिया है, मात्रा मे एक रत्ती का भी अतर नही पडा। द्रव्यो की कौन कहे, शक्तियो का भी रूपातर होता है। विद्युत्, प्रकाश एव ताप का रूप ले सकनी है। पर, उनमे कमी या वेशी नही होती, क्योकि यदि उनमे अतर होने लगे, तो ससार का रूप स्थिर नही रहेगा। यो तो ससार अपने नाम ही से वोध कराता है कि वह स्थिर नही है, परिवर्तनशीलता उसका स्वभाव है। किंतु, यदि इस परिवर्तन मे शक्तियाँ कम होती रहती, तो वे वहुत पहले ही समाप्त हो गई होती, या वढती रहती तो पता नही वढ कर किस सीमा तक पहुँची होती। ससार के हर परिवर्तन के पीछे कार्य-कारण-नियम कार्य कर रहा है, प्रत्येक परिवर्तन का कुछ-न-कुछ कारण होता है। किंतु, जो शक्ति कारण के रूप से कार्य का रूप ले लेती है, उसमे केवल रूप-परिवर्तन होता है, मात्रा मे अतर नही होता। इसलिये कहा जाता है कि परिमाण की दृष्टि से कारण कार्य के वरावर होता है।

स्थूल दृष्टि से देखने पर कारण कार्य के बराबर नही लगता। बहुत छोटी वस्तु, कभी ऐसा ज्ञात होता है, बहुत बडे परिणाम को पैदा करने वाली हैं, जैसे एक चिनगारी फूस के सपर्क मे बहुत बडे अग्निकाड को। पर, इस तरह की धारणा मे एक बहुत बडा भ्रम काम करता है। हमलोग प्राय किसी एक परिस्थिति को कारण मान लेते है तथा अन्य सहगामी परिस्थितियो पर विचार नही करते।। इस उदाहरण मे ध्यान केवल आग की चिनगारी पर होता है, फूस तथा हवा पर नही। यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो वह चिनगारी, हवा एव जलने योग्य वस्तुओ के अभाव मे काम नही कर सकती। वस्तुत पूर्ण कारण कई परिस्थितियो के मेल से बनता है। यदि सबका हिसाब ठीक-ठीक लगाया जाय, तो अवश्य ही कार्य-कारण परिमाण मे बराबर होगे।

किंतु, कार्य-कारण के बीच परिमाणात्मक समता लगाने मे बडी सतर्कता से काम लेना चाहिए। मिल ने ठीक ही कहा है कि द्रव्य-शक्ति सरक्षण-सिद्धात को कार्य-कारण-नियम मे लाने पर कारण के वैज्ञानिक स्वरूप मे कोई अतर नही पडता। कारण कार्य का नियत, अनौपाधिक, आसन्न पूर्ववर्त्ती होता है। इसमे परिमाणात्मक समता के विचार को जोडने की कोई खास आवश्यकता नही है, क्योकि कुछ स्थलो पर इससे कार्य-कारण के बीच का सबध स्पष्ट तो हो जाता है। पर, इसे हर जगह लागू नहीं किया जा सकता जैसे गाली देने से कष्ट होता है और स्तुति करने से उल्लास, यहाँ कार्य-कारण के बीच परिमाणात्मक समता स्थापित करना बहुत ही कठिन है।

(ब) कारण एव परिस्थिति . जैसा मैंने ऊपर कहा है, कारण अकेली किसी एक परिस्थिति को नही कहते, वरन् यह कई परिस्थितियो का मेल है। किसी घटना के होने के पूर्व बहुत सी परिस्थितियो को जुटना पडता है अन्यथा उसका होना सभव नही। हम चलते ढग से कह देते हैं कि घोडे का गिरना बदूक छूटने का कारण है, परतु थोडा ही ध्यान देने पर ज्ञात हो जाता है कि घोडे का गिरना बदूक छूटने की बहुत सी परिस्थितियो मे से केवल एक है, और जबतक सबका सयोग नही जुटता, बदूक नही छूट सकती। कार्ट्रिज ठीक हो, अपने घर मे ठीक से बैठी हो, बदूक के सब कल-पुर्जे दुरुस्त हो, इत्यादि। यदि घोडा गिरने के बावजूद बदूक नही छूटती, तो हमलोग देखने लगते हैं कि कहाँ खराबी है, और ठीक करने का प्रयास करते हैं। इससे स्पष्ट है कि केवल घोडे का गिरना ही बदूक छूटने का कारण नही है। इस कार्य के लिये जितनी भी आवश्यक परिस्थितियाँ हैं, सभी के जुट जाने पर यह कार्य सभव होता है। इसलिये कहा गया है कि 'कारण सभी आवश्यक परिस्थितियो का सयोग है'।

कारण के किसी आवश्यक अग को 'परिस्थिति' कहते है। वह 'परिस्थिति' कार्य के होने मे किसी-न-किसी तरह की सहायता करती है, चाहे भावात्मक ढग से अथवा अभावात्मक ढग से। परिस्थितियो के दो रूप होते हैं भावात्मक एव अभावात्मक। भावात्मक परिस्थिति वह है, जिसकी उपस्थिति कार्य होने के लिए आवश्यक है। अभावात्मक परिस्थिति वह है, जिसके उपस्थित रहने से कार्य नही होता। जैसे उपर्युक्त उदाहरण मे भावात्मक परिस्थितियाँ हैं कार्ट्रिज को अपने घर मे ठीक बैठना, कल-पुर्जो का दुरुस्त होना, अभावात्मक परिस्थितियाँ है कार्ट्रिज का खराब होना, अपने घर मे ठीक नही बैठना, कल-पुर्जो का ठीक नही होना, इत्यादि। अभावात्मक परिस्थितियाँ जब तक अनुपस्थित नही रहेंगी, बदूक नही छूट सकती। इसलिए कारण मे केवल भावात्मक परिस्थितियाँ ही नही होती, अभावात्मक परिस्थितियाँ भी होती है, और ये कम महत्त्वपूर्ण नही होती। इसलिये कहा गया है कि कारण सभी भावात्मक एव अभावात्मक परिस्थितियो का सयोग होता है, जो कार्य को फलित करने के लिये आवश्यक हैं।

कारण एव परिस्थिति के बीच सबध समझने के लिये 'पूर्ण एव अश' की उपम ली जा सकती है, जैसे कोई पूर्ण अपने अशो का सयोग होता है वैसे ही कारण अपनी परिस्थितियो का सयोग होता है। एक दूसरे से अलग उनमे से किसी की सत्ता नही रह जाती। जब कभी परिस्थितियाँ, एक के अतिरिक्त, सभी उपस्थित हो जाती है, तो उस अतिम परिस्थिति के जुटते ही कार्य हो जाता है, और हम उस अतिम परिस्थिति को ही कारण कह बैठते हैं। जैसे यदि सब परिस्थितियाँ ठीक हो, तो घोडा के दबाते ही बदूक छूट जायगी, किंतु यहाँ मात्र घोडे का गिरना बदूक छूटने का कारण नही हो सकता। वस्तुत कारण गठित करने वाली परिस्थितियो की शृ खला मे वह केवल एक है। स्पष्टत जब तक सभी नही मिले, कार्य नही हो सकता।

अब यह तो स्पष्ट हो गया कि कारण बहुत सी परिस्थितियो की समष्टि है, किंतु इस विचार मे भी एक व्यावहारिक सीमा रखनी होगी। यदि इसके तार्किक पक्ष को बढाया जाय, तो हमलोगो को कहना पडेगा कि किसी घटना का कारण 'विश्व की पूर्ण परिस्थिति है' जो इसके घटित होने के तुरत पूर्व उपस्थित रहती है। किसी के पेड से गिरने का कारण केवल डालो की चिकनाहट एव पैरो का फिसलना ही नही, बल्कि पृथ्वी की गति और समुद्र तथा पहाड की स्थिति भी होगी। किंतु, ऐसी दशा मे विज्ञान एव व्यवहार दोनो के लिये कठिनाई उपस्थित हो जायगी और हमलोग किसी मे भी आगे नही बढ पायँगे। इसीलिये कहा गया है कि किसी घटना का कारण ढूँढते समय एक व्यावहारिक सीमा रखनी होगी। वे ही भावात्मक परिस्थितियाँ कारण बन सकती है, जिनका घटना से स्पष्ट सबध होता है। हाँ, अभावात्मक परिस्थितियो की गणना मे कठिनाई विशेष है, क्योंकि कभी भी इन सबका

उल्लेख सभव नही है। अभावात्मक परिस्थितियाँ वे है, जिनके उपस्थित रहने पर घटना नही हो सकती। तो स्पष्टत ऐसी असख्य परिस्थितियाँ हो सकती है, किंतु इन सबकी गणना की आवश्यकता नही है। जैसा मिल ने बतलाया है, उन सबको हम इतने ही मे कह सकते है—कारण को रोकने अथवा उसके उलटा काम करने वाली परिस्थितियो की अनुपस्थिति।

§ ३. बहुकारणवाद

हमने देखा है कि कारण कई परिस्थितियो की एक समष्टि होता है। उसमे से प्रत्येक परिस्थिति महत्त्वपूर्ण होती है। उन परिस्थितियो मे से किन्ही को अलग कर भिन्न नाम से पुकारना कोई वैज्ञानिक महत्त्व नही रखता, क्योकि जब तक कारण को गठित करनेवाली परिस्थितियाँ एकत्र नही होगी तब तक कार्य नही हो सकता, और जब सभी जुट जायेंगी, तो कार्य रूक भी नही सकता। कारण-कार्य के बीच इसी सबध की वजह से कारण कार्य का नियत-पूर्ववर्त्ती कहा जाता है। वस्तुस्थिति यह है कि कारण और कार्य परस्पर सबध अविच्छिन्न है। जहाँ भी देखिये, वही कारण, वही कार्य। प्रत्येक कारण अपने निश्चित कार्य को उत्पन्न करता है और वह कार्य अपने निश्चित कारण को छोड किसी भाँति भी पैदा नही किया जा सकता। कारण-कार्य के इस सबध को 'अन्योन्यसबध' कहते है। कारण मालूम हो तो कार्य निकाला जा सकता है, और यदि कार्य मालूम हो, तो कारण जाना जा सकता है।

किंतु, व्यवहार मे कारण-कार्य के बीच ऐसा वैज्ञानिक सबध नही देखा जाता। हमलोग तो नित्यप्रति पाते है कि एक घटना के कई कारण हैं। मृत्यु कभी बुखार से, कभी डूबने से, कभी सर्प के काटने से और कभी चोट लगने से होती है। वैसे ही प्रकाश सूर्य, चद्रमा, बिजली, या चिराग किसी से प्राप्त होता है। अत, जान स्टुअर्ट मिल, जिन्होने इस समस्या को बहुत ही उल्लेखनीय ढग से रखा है, कहते हैं 'यह सत्य नही है कि एक फल अवश्य ही एक कारण अथवा परिस्थिति समूह से सबधित होता है, या प्रत्येक घटना एक तरीके से पैदा की जा सकती है। एक ही घटना को प्रकट करने की प्राय बहुत सी रीतियाँ होती हैं, बहुत से कारण एक तरह की गति पैदा कर सकते हैं, बहुत से कारण एक तरह के सवेग पैदा कर सकते हैं, बहुत से कारण मृत्यु ला सकते हैं।' * प्रो० बेन भी मिल के इस मत से सहमत हैं।

पर, अब देखना है कि कारण के प्रति इस वैज्ञानिक और व्यावहारिक मतो मे इतनी भिन्नता कैसे आई। विज्ञान कहता है कि प्रत्येक घटना का विश्व मे अपना एक निश्चित कारण है। जब तक वह कारण नही आता, घटना नही होती, और अनुभव कहता है कि एक घटना के अनेक कारण हैं, उनमे से किसी की उपस्थिति होने

---

* लॉजिक, बुक III X, § I

पर कार्य हो जाता है। किंतु, ध्यान से देखने पर ऐसा मालूम होता है कि इस कठि-नाई के पीछे एक बहुत बडी भूल काम कर रही है, वह है—कारण या कार्य के शुद्ध रूप को न समझना। प्राकृतिक परिस्थितियाँ आपस मे ऐसी उलझी होती हैं कि उन्हे हम सहसा अलग नही कर पाते। किसी घटना के कारण और कार्य दोनो पक्षो मे आवश्यक परिस्थितियो के साथ बहुत सी अनावश्यक परिथितियाँ मिली होती हैं। मनुष्य अपनी साधारण दृष्टि से इन आवश्यक एव अनावश्यक परिस्थितियो का ठीक-ठीक भेद नही कर पाता, जिससे उसे एक घटना के कई कारण दिखलाई पडते हैं। इसके एक-एक पक्ष को लेकर समझा जाय।

हमलोगो ने पहले ही देखा है कि किसी घटना को पैदा करनेवाली कुछ निश्चित परिस्थितियो का सयोग होता है, जिसे कारण कहा जाता है। किंतु, उन परिस्थितियो के साथ कुछ अन्य परिस्थितियाँ भी मिली रहती हैं, वे कारण के रूप मे काम नही करती। हम उन्ही अनावश्यक परिस्थितियो की वजह से, जिन्हे हम अलग नही कर पाते, बहुकारणवाद के भ्रम मे पड जाते हैं। एक साधारण दृष्टात से समझा जाय · प्यास पानी से, दूध से, या शरबत से बुझ सकती है। यहाँ देखने मे प्यास बुझाने के तीन अलग-अलग कारण मालूम पडते हैं। इनमे से किसी से कार्य हो सकता है, किंतु ध्यानपूर्वक देखने पर ज्ञात होता है कि ये तीन अलग-अलग कारण नही हैं। वस्तुत प्यास बुझाने के लिए पानी ही एक कारण है, चाहे वह जिस रूप मे लिया जाय। शरबत मे प्यास बुझानेवाला तत्त्व पानी ही है, पर वह चीनी और कुछ रग के साथ मिला हुआ होता है। दूध मे भी वही पानी है, जो घी तथा कुछ अन्य तथ्यो के साथ मिला रहता है। वैसे ही प्रकाश के जो अनेक कारण माने जाते हैं, वे वस्तुत एक ही हैं। हर अवस्था मे प्रकाश का एक कारण है, अणुसघर्षण, चाहे वह सूर्य की किरणो के माध्यम से हो अथवा मोमबत्ती से।

कारण की तरह कार्य को भी समझने मे गलती होती है, बल्कि यों कहा जा सकता है कि बहुकारणवाद की भूल कराने में कार्य का अधिक हाथ है। कार्य के बारे मे हमलोग बहुधा अधूरा ज्ञान रखते हैं। फलत हमे मालूम पडता है कि एक कार्य के अनेक कारण हैं। कारण और कार्य दोनो ओर परिस्थितियाँ निश्चित होती हैं जैसे कारण कुछ निश्चित परिस्थितियो का सयोग होता है, वैसे ही उसका कार्य भी। हमलोग अपनी व्यावहारिक परख मे कार्य के स्थूल रूप को ही देखते हैं जैसे सभी मृत्यु को हमलोग एक तरह की समझते हैं। किंतु, वास्तविकता ऐसी नही है। विज्ञान बतलाता है कि भिन्न-भिन्न कारणो से हुई मृत्यु मे अतर होता है। विष की मृत्यु चोट अथवा बुखार की मृत्यु से भिन्न होती है। इतना ही नही, भिन्न-भिन्न विष जैसे आर्सनिक, अफीम और सखिया इत्यादि की मृत्यु मे भिन्नता होती है। वैसे ही भिन्न

प्रकार के ज्वरो की मृत्यु मे भिन्नता होती है। अन्यथा मरने के बाद शव-परीक्षा का सिद्धात व्यर्थ हो जाता। इसीलिए गिवसन ने कहा है कि 'यदि कार्य के हर पहलू को समझ लिया जाय, तो उसके लिए एक से अधिक कारण कभी नही मिलेगा। किसी भी मृत्यु मे हमलोग केवल शारीरिक शिथिलता देखते हैं यदि उसके हर पक्ष को देखा जाय तो स्पष्ट हो जायेगा कि वह किस कारण से हुई है। वैसे ही हम सूर्य, चद्रमा, और मोमबत्ती के प्रकाश को एक ही मान बैठते हैं। किंतु, वस्तुत उनमे भिन्नता होती है। यदि हर प्रकार के प्रकाश को समझ लिया जाय, तो कारण भी समझ में आ जायेगा, और कारण-कार्य के बीच अन्योन्य सबध मिलेगा—वही कारण, वही कार्य।

फिर, यदि कारण और कार्य के बीच इस प्रकार का नियत स बध न होता, तो ससार मे किसी अनिवार्य ज्ञान पर पहुँचना असभव था, क्योकि यदि एक ही घटना 'क' भिन्न-भिन्न अवसरो पर भिन्न-भिन्न कारण जैसे ख, ग, घ, इत्यादि से पैदा हो सकती है, तो हमलोग उस घटना का सबध इन कारणो में से किसी के साथ निश्चय-पूर्वक स्थापित नही कर सकते। हमलोग केवल इतना ही कह सकते हैं कि एक बार ख के बाद घटना 'क' मिली, दूसरी बार वही घटना 'ग' के बाद मिली, तीसरी बार 'घ' के बाद इत्यादि। ऐसी स्थिति मे हमलोग यह कहने के कभी अधिकारी नही हैं कि ख या ग या घ कारण है 'क' का, अथवा 'क' उनमें से किसी का कार्य है, क्योकि यदि फिर वही घटना 'क' घटे तो हमलोग नही कह सकते कि इसका कारण ख है, कि ग है, कि घ है, कि इनमे से कोई नही है, कोई दूसरा ही है 'म'। इस प्रकार हमलोगो के ज्ञान मे कभी निश्चयात्मकता नही आ सकती। जब तक कारण-कार्य के बीच उसी कारण और उसी कार्य का संबध नही होगा, तब तक हमलोग 'अवश्य' शब्द का प्रयोग नही कर सकते। यदि एक कारण ने आज एक कार्य किया, फिर वही कार्य दूसरे दिन दूसरे कारण से हुआ, तो इसका अर्थ होगा कि ससार में कोई नियम नही है। ऐसे अनियमित ससार का फिर टिकना ही असभव होगा। कारण शब्द का प्रयोग केवल इसी अर्थ मे हो सकता है कि कारण और कार्य के बीच नियत सबध है। अत, जोजेफ के शब्दो में, बहुकारणवाद मात्र दिखावटी है, सत्य नही। यह बहुधा इसलिए हमें मिलता है कि हमारा ज्ञान घटनाओ के बारे में अधूरा होता है फिर भी व्यावहारिक जीवन में इसका महत्त्व अवश्य है, क्योकि वस्तुओ के प्रति हमारा दृष्टि-कोण हर समय वैज्ञानिक नही रहता।

जैसे साधारण स्थिति में हमें एक ही घटना के अनेक कारण मिलते हैं, वैसे ही एक ही कारण के अनेक कार्य भी। जल प्राणिमात्र की प्यास बुझाता है, अग्नि को शात करता है, मशीन में शक्ति देता है, बादल बनाता है इत्यादि, परतु यह भी मत कारण के प्रति अधूरे ज्ञान पर ही आधारित है। कारण कई परिस्थितियो का समष्टि

होता है, किंतु व्यवहार में हमलोग किसी एक ही परिस्थिति को पूर्ण कारण मान लेते हैं, जिससे यह भ्रम होता है। परिस्थितियो के एक समूह में पानी प्यास बुझाता है, दूसरे में अग्नि को शात करता है, तीसरे में मशीन चलाता है, इत्यादि। किसी भी अवस्था मे पानी अकेले पूर्ण कारण नही है, वरन् परिरिथति-समूह मे केवल एक परिस्थिति है। यदि उन परिस्थितियो का पूर्ण ज्ञान हो जाय, तो हम इसी निर्णय पर पहुँचेंगे कि प्रत्येक कारण का एक निश्चित कार्य है, कारण-कार्य के बीच ऐसा अविच्छिन्न सबध है कि कारण मिलने पर कार्य मिल जाता है और कार्य मिलने पर कारण। अत, किसी भी रूप में बहुकारणवाद को सत्य समझना भूल है।

§ ४ सारांश चिंतन

विज्ञान के सबसे प्रारभिक रूप मे बहुरूपताएँ एकरूपताओ से भिन्न की जाती हैं तथा कुछ बहुरूपताओ में उन गुणो की पहचान होती है, जो इस प्रकार सुसगत रूप से जुडे होते है कि उनसे उच्चकोटि की एव अमूर्त एकरूपताओ की खोज हो सकती हैं। अत वैज्ञानिको का प्रथम कार्य है वर्णन करना एव वर्गीकरण करना। प्रत्येक व्यक्ति इस प्रकार के वैज्ञानिक कार्य मे सलग्न रहता है, हम अज्ञातरूप से सामान्यबुद्धि-ज्ञान से प्रारभ कर सुव्यवस्थित सामान्य बुद्धि से होते हुए ऐसे ज्ञान पर पहुँचते हैं, जो पूर्णत वैज्ञानिक कहा जा सकता है। कही भी अचानक क्रम भग नही है। जैसे जटिल मनो-वैज्ञानिक प्रयोगो का फल बहुधा सामान्य मनुष्य को ऐसा कथन लगता है मानो इस कला को सभी जानते हैं। फिर भी वैज्ञानिक खोज मानव-व्यवहार के प्रति अपेक्षा-कृत अधिक सुनिश्चित एव सामान्यीकृत कथन के लिए मार्ग प्रशस्त करती है, जो सामान्य बुद्धि के स्तर पर सभव नही है। आदिकालीन असभ्य जातियो को अपने वातावरण को नियन्त्रित करने में कुछ अभ्यास करना पडता था। पर, धीरे-धीरे वे बहुत आगे बढे और अनुभव किया कि ज्ञान शक्ति देता है।

वैज्ञानिक एकव्यापी कथन जैसे 'यह पानी अभी गरम हुआ है,' 'अब हमें गरमी का अनुभव हो रहा है,' 'यह मनुष्य क्रोधित है,' में रुचि नही रखता, हाँ, यदि वर्णन मे कुछ व्यवस्था के उदाहरण माने जायँ, तो वह उनका अध्ययन करेगा। विज्ञान सुव्यवस्थित ज्ञान की शाखाएँ हैं, वैज्ञानिक का लक्ष्य विशिष्ट प्रकार की वस्तुओ में, प्राकृनिक घटनाओ में सबध पाना तथा उन्हे तत्रो में सुव्यवस्थित करना होता है।

वैज्ञानिक, घटनाविशेष जैसे 'यह पानी अभी गरम हुआ है' पर केवल उन परिस्थितियो को निर्धारित करने के लिए ध्यान देते हैं जिनमे 'यह पानी' गरम हुआ है, जैसे क्वथनांक का तापक्रम, जब वह वाष्प मे बदलता है, तो उसमे क्या

परिवर्तन आता है, इत्यादि । पानी' अब विशेषताओ के सतत् सयोग का द्योतक है, जिसे हम जल के गुण-धर्म कहते हैं । यदि हम कहे कि 'इस वस्तु मे अमुक गुण हैं' तो इसका अर्थ है कि हम कह रहे हैं कि 'यह वस्तु विशिष्ट परिस्थितियो मे अमुक रीति से व्यवहार करती है'। उदाहरणार्थ, 'तापमान बढने के साथ-साथ लोहे मे फैलने का गुण है' का अर्थ है 'गरम करने पर लोहा फैलता है, 'चीनी मे घुलनशीलता का गुण है' का अर्थ है 'द्रव मे चीनी घुल जाती है' ।

ऊपर के उदाहरणो से जैसा सकेत मिलता है और हमारे नित्य के अनुभव भी पर्याप्त रूप से प्रदर्शित करते है कि जिस रीति से कोई वस्तु व्यवहार करती है जैसे चीनी का टुकडा या ताँबे की बाली, वह उस वस्तु-तत्त्व के प्रकार एव उसकी परिस्थिति विशेष दोनो पर आश्रित होता है । चीनी का यह टुकडा पानी मे घुल जाता है, ताँबे की यह बाली नही घुलती । बाली आग मे डालने पर गरम हो जाती है, बाहर निकाल लेने और जल मे डाल देने पर ठढी हो जाती है और बहुत कुछ अपनी पहली परिस्थिति मे आ जाती है । बार-बार गरम करने और ठढा करने की क्रिया से इसके आकार मे धीरे-धीरे परिवर्तन आने लगता है, अततोगत्वा शायद ही यह 'उस बाली' के रूप मे पहचानी जा सके । इन वस्तुओ में से प्रत्येक को हम प्राकृतिक जाति कहनेवाली वस्तु का एक दृष्टात पाते हैं, प्राकृतिक-जाति मे ऐसी विशिष्टताएँ होती हैं जो उस प्रकार की वस्तु की सज्ञा दिलाने मे सफल होती हैं । जब कभी किसी विशेष प्रकार की वस्तु किसी विशेष परिस्थिति मे होती है, तो वह व्यवहार के कुछ विशेष प्रकार व्यक्त करती है, ये परिवर्तन के प्रत्यावर्त्ती प्रकार है । परिवर्तन के इन प्रत्यावर्त्ती प्रकारो के सिद्धातो को कार्य-कारण-नियम कहते हैं ।

वस्तु-जातियाँ विशेष प्रकार से व्यवहार करती हैं । इसका बोध हो जाना हमे कारण एव उपाधियो की खोज की ओर अग्रसर करता है । विशेष दृष्टिकोणो से भिन्न परिस्थितियो मे भी एक ही प्रकार के परिवर्तनो की पुनरावृत्ति होती है । लोहा भट्ठी मे, झोपडी की आग मे, दाहक कारखाने मे तप कर लाल हो जाता है । यदि हम अपनी सुपरिचित घटनाओ को भूल न सकें तो बहुत ही भिन्न परिस्थितियो को जिनमे कोई बहुत ही सुपरिचित घटना हो रही हो (लोहा का तपकर लाल हो जाना) इस प्रकार सक्षेप मे व्यक्त करना हमारे वर्त्तमान उद्देश्य के लिए उपयोगी नहीं होगा । (उदाहरणार्थ, चार्ल्स लैम द्वारा लिखित चिनमैन की रोस्टपोर्क की खोज नामक कहानी पर ध्यान दें) हम पाते हैं कि किसी घटना को घटित करनेवाली कुछ परिस्थितियाँ हैं, जो उसी समय एव स्थान पर होने वाली अन्य घटनाओ के लिए अप्रासगिक हैं । यदि ऐसी बात न होती, तो कार्य-कारण-नियम ही न होता और न विज्ञान होता । कार्य-कारण नियम की खोज का अर्थ है कि किसी दिये हुए व्यवहार पर्याय क्या सगत है—

उसकी खोज । इसीलिए कार्य-कारण-नियम की खोज के लिए विशेप परिस्थितियो का प्रेक्षण आवश्यक है । केवल प्रेक्षण से ही हम जानते है कि चीनी जल में घुल जाती है तथा लोहे का टुकडा तपकर लाल हो जाता है । अत , निष्क्रिय प्रेक्षित किसी एक परिस्थिति से कार्य-कारण नियमो का निगमन नही हो सकता, उनकी खोज विभिन्न परिस्थितियो के विश्लेषण से होती है, जिनमे कुछ वस्तु दूसरी वस्तुओ से सबद्ध की जाती है, परिस्थितियो को परिवर्तित कर हम उनके व्यवहार का प्रेक्षण करते हैं। विभिन्न परिस्थितियो मे उपस्थित कारको के निरास से हम खोज सकते है कि कौन कारक किसी दिये हुए व्यवहार पर्याय (Mode of behaviour) के लिए असगत है ।

कार्य-कारण नियमो को दृष्टात रूप मे व्यक्त करने वाली विशिष्ट प्रतिज्ञप्तियो से नियमो को पृथक् करना आवश्यक है । विशेप कारणवाची प्रतिज्ञप्ति केवल एक बार घटित हो रही कारण सवधी घटना का कथन करती है, जैसे 'सीने मे मारी हुई इस गोली से इस मनुष्य की मृत्यु हुई' । इसकी मृत्यु गोली के कारण हुई, इस कथन मे हम दो विशिष्ट घटनाएँ सयुक्त रूप से घटित हुई है, के ऐतिहासिक तथ्य से अधिक अभिकथन कर रहे है । यदि कोई घटना हो रही है, तो उसके साथ-साथ अन्य वहुत-सी घटनाएँ भी हो रही हैं और बहुत निकट के अनुक्रम मे । यह कहना कि इस मनुष्य की मृत्यु गोली के कारण हुई, का अवश्य अर्थ होना चाहिए कि जब कभी वदूक का छर्रा किसी मनुष्य के हृदय से होकर पार हो जायेगा, तो उसके हृदय की गति वद हो जायेगी, अर्थात् उसकी मृत्यु हो जायेगी । इस प्रकार के कार्य-कारण-नियम का रूप है : जब कभी कोई प गुण वाली घटना $ट_1$ पर $क_1$ प्रकार की वस्तु के लिये घटित होती है, तो स गुण वाली कोई घटना $ट_2$ समय पर $क_2$ प्रकार की वस्तु के लिये घटित होती है । ऐसा हो सकता है कि (i) प एव स एक ही प्रकार के गुणधर्म हैं, (ii) $क_1$ एव $क_2$ एक ही वस्तु है, (iii) $ट_1$ एव $ट_2$ एक ही समय हैं । कार्य-कारण-नियम ही मूल है, न कि कारणता के किसी दृष्टात को व्यक्त करने वाली कारणवाची विशिष्ट प्रतिज्ञप्ति ।

जब हम किसी घटना के कारण के बारे मे पूछते है, जैसे इस खिडकी के टूटने का कारण, तो हम ऐसे उत्तर की अपेक्षा रखते है, जो दूसरे अवसरो पर भी सत्य होगा । कम-से-कम चिंतन के आधार पर हमे स्वीकार करना चाहिए कि जिस कारण से यह खिडकी टूटी, उससे दूसरी खिडकियाँ भी टूट जायेंगी । किंतु, जब हम खिडकी के टूटने के बारे मे प्रश्न करते हैं, तो हमारे चिंतन का स्तर सदैव एक नही होता । 'खिडकी कैसे टूटी' एक प्रश्न है, जिसके लिए सभवत यह उत्तर पर्याप्त होगा कि 'हवाई हमले से' अथवा 'बम से' । प्रथम उत्तर नितात अस्पष्ट है, परतु प्रश्न के किसी सतोषप्रद उत्तर मे उपस्थित एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व की ओर यह अवश्य सकेत करता है, क्योंकि यह ऐसी घटना का उल्लेख करता है, जिसके बिना वह विशेप खिडकी, जैसी

थी, टूटी न होती । दूसरा उत्तर विशेष परिस्थिति मे एक आवश्यक कारक का उल्लेख करता है । पर, यह बिना किसी हिचक के स्वीकार किया जायेगा कि पास मे किसी बम की उपस्थिति मात्र उस हानि के लिए पर्याप्त कारण नही हो सकती । अविस्फुटित बम अनिष्टशून्य होता है । तीसरा उत्तर हो सकता है, किसी बम का विस्फोट' । फिर हम कल्पना करें कि और भी खिडकियाँ उसी पडोस मे है, जो नही टूटी । चौथा उत्तर, 'किसी विस्फुटित बम के झोका मे आ जाने से' चिंतन के वैज्ञानिक स्तर तक पहुँचता है । सामान्य जीवन मे 'खिडकी कैसे टूटी' सभवत प्रथम या द्वितीय उत्तर के चिंतन-स्तर पर पूछा जाता है, अतिम दो परिस्थितियो को अधिक सतर्कता से व्यक्त करते हैं ।

यह उदाहरण प्रदर्शित करने के लिए पर्याप्त हो सकता है कि 'किसी घटना अ का कारण' एक अस्पष्ट-कथन है । पाठक को स्वय पूछना चाहिए कि यदि स्वास्थ्य विभाग का कोई पदाधिकारी पूछता है कि 'मेरे जिले मे टायफॉयड के इस प्रकार फैलने का क्या कारण हो सकता है ?' तो इसके लिए किस प्रकार का उत्तर सतोपप्रद होगा । वह डण्डाणु की शब्दावली मे उत्तर नही चाहता, वह जानता है कि जहाँ कही मनुष्यो को टायफॉयड की बीमारी होती है, वहाँ डण्डाणु (Bacillus) उपस्थित होता है, डण्डाणु किस माध्यम से पहुँचे, इसमे उसकी रूचि है, जल, या दूध, या मास, या किस वस्तु से ? किंतु यह ज्ञान लबी एव धैर्यपूर्वक की गई खोज के द्वारा प्राप्त करना पडेगा । टायफॉयड से बीमार मनुष्यो से सबद्ध जटिल परिस्थितियो की परीक्षा प्रारभ मे कर लेना, इसमे सम्मिलित है, उनकी परिस्थितियो का ध्यानपूर्वक प्रेक्षण करना पडेगा और एक प्रकार की स्थिति को दूसरे से मिलाकर देखना पडेगा । इस प्रकार के चिंतन की गति को नियत्रित करने वाले प्रश्न का रूप है 'इन परिस्थितियो मे कौन कारक पाया जाता है, जो ऐसा है, कि जब कभी वह उपस्थित है, तो टायफॉयड हो जाता है ?' यहाँ कारक को किसी सरल वस्तु का द्योतक नही मान लेना चाहिए ।

हम तब कह सकते हैं 'अ ब का कारण है' का अर्थ है 'दिया गया है कि अ घटना होती है, तो ब घटना होती है' । प्रारभिक अवस्था मे खोज का निर्देशन करने के लिए यह रूप पर्याप्त शुद्ध है । 'कारण' एव 'कार्य' कार्य-कारण सबध के क्रमश निर्देश्य एव सबधी के लिए प्रयोग होने वाले नाम है । यह सबध असममित है, 'कारण है' शब्द के कुछ प्रयोगो मे यह अनेक-एक सबध भी है ।

§ ५. प्रकृति-समरूपता

आगमन के 'दो' आकारिक आधारो मे से प्रकृति-समरूपता एक है । केवल कार्य कारण-नियम से ही व्यापक नियम नही प्राप्त हो सकता, उसके साथ-साथ प्रकृति-समरूपता का होना आवश्यक है । प्रकृति-समरूपता की व्याख्या भिन्न-भिन्न विद्वानो ने

भिन्न-भिन्न प्रकार से की है। मिल का कहना है, 'भविष्य भूत की तरह रहेगा, अज्ञात ज्ञात की तरह होगा'। बेन कहते है, 'प्रकृति के नियम एक तरह से काम करते है'। बोसाक्वेट के अनुसार 'प्रकृति के परिवर्तनो के बीच नियम की समरूपता है'। इन सभी कथनो का अर्थ है कि प्रकृति का वास्तविक रूप-एक सा रहता है। अग्नि मे जलाने की शक्ति सदैव से है और रहेगी और पानी मे आग बुझाने की, सूर्य का प्रकाश भविष्य मे भी प्रखर रहेगा और चद्रमा का शीतल, ऐसा कभी नही होगा कि आज तक जो फल अपनी जगह से छूटने पर पृथ्वी पर गिरते रहे, वे कल ऊपर आकाश मे चले जायेंगे, या अन्न, जो आज तक हमारी भूख शात करता रहा, कल उसे और प्रज्ज्वलित कर देगा।

किंतु, इससे यह नही समझ लेना चाहिए कि प्रकृति मे परिवर्तन नही होते, सभी चीजे सदैव एक रूप मे बनी रहती हैं। बल्कि इसके प्रतिकूल हम प्रकृति मे प्रतिक्षण परिवर्तन पाते है। यहाँ तक कि बहुत से विद्वानो ने परिवर्तन को ही ससार का मूल रूप माना है। सस्कृत शब्द 'ससार' या 'जगत' का अर्थ होता है—बदलने वाला। इसी परिवर्तन की झलक, हीरक्लाइटस के कथन मे मिलती है, 'तुम नदी के एक ही पानी मे दुबारा डुबकी नही लगा सकते'। अर्थात् जैसे नदी का पानी जो सदैव आगे बढता चला जा रहा है, दूसरी डुबकी के लिए एक स्थान पर स्थिर नही रहगा, वैसे ही प्रकृति भी है, यह प्रतिक्षण बदलती रहती है। बर्गसॉ ने इसी के आधार पर 'एमर्जेन्ट इवोलुशन' चलाया है। मिल भी कहते है, 'कोई ऐसा विश्वास नही करता कि वर्षा और सुदर ऋतु जो इस समय एक दूसरे के बाद आये है, भविष्य मे भी हर साल इसी तरह से आयेंगे। कोई आदमी एक ही स्वप्न प्रत्येक रात मे देखन की आशा नही करता'। आँधी, पानी, भूकप, इत्यादि घटनाएँ इतनी अनिश्चित नही हैं कि इन्हें देखते हुए प्रकृति को समरूप कहना एक तरह से हास्यास्पद मालूम होता है।

उपर्युक्त दोनो मतो में केवल दृष्टिकोण का भेद है, ये एक दूसरे के विरोधी नही हैं। प्रकृति-समरूपता का अर्थ हर प्रकार की परिवतन-विहीनता से नही है। परिवर्तनों के बावजूद प्रकृति एक ही रूप मे चली आ रही है और भविष्य मे भी रहेगी। प्रकृति-समरूपता का वास्तविक अर्थ है कि प्रकृति के नियम सदैव एक से रहेगे। प्यास पानी से मिटेगी, ताप अग्नि से प्राप्त होगी, सूर्य पूव मे उदय होगा। प्रत्येक घटना कुछ परिस्थितियो के इकट्ठा होने पर होती है और यदि भविष्य मे भी वे सभी परिस्थितियाँ इकट्ठी होगी, तो वही घटना होगी। जिस प्रकार का ग्रहण, जिस प्रकार की आँधी, जिस प्रकार की वर्षा आज हो रही है, ठीक उसी प्रकार के ग्रहण, आँधी और वर्षा भविष्य मे भी यदि वे सभी पहले वाली परिस्थितियाँ इकट्ठी हो जायें, तो किसी समय भी हो सकती है। 'वही कारण—वही कार्य' का नियम हर

स्थान पर और हर काल मे एक-सा सत्य रहेगा। वस्तुओ का स्वभाव नही बदलेगा। फौलाद जिससे आज तलवार बनती है, कल रूई या कागज की तरह मुलायम नही हो जायेगी, क्योकि यदि ऐसा होने लगे, तो हमलोग कभी भी भविष्य के लिए कोई योजना नही बना सकते और न कभी व्यापक सत्य पर पहुँच सकते। यदि प्रकृति मे ऐसी समरूपता न हो, तो अनुभव का कोई अर्थ ही न रह जायेगा।

वेन के अनुसार प्रकृति मे केवल समरूपता नही, वल्कि समरूपताएँ हैं। ऐसा वे इसलिए कहते हैं कि प्रकृति वहुत से विभागो मे बँटी हुई है और हर विभाग के अपने नियम हैं। रसायन-शास्त्र, भौतिक-शास्त्र, जीव-शास्त्र, ज्योतिष, इत्यादि के अलग-अलग नियम है। एक विभाग के नियम अपने ही क्षेत्र तक सीमित होते हैं, दूसरे पर लागू नही होते। वे अपने क्षेत्र मे अनतकाल से चले आ रहे हैं और भविष्य मे भी वैसे ही रहेगे। इन नियमो की अनेकता को देखते हुए प्रकृति-समरूपता नही, बल्कि प्रकृति-समरूपताओ की बात करनी चाहिए।

वेन का यह विचार अधिकाश विद्वानो को मान्य नही है। उन्होने प्रकृति-समरूपता को प्राकृतिक नियम समझा है और नियमो की अनेकता को देखते हुए प्रकृति-समरूपता को प्रकृति-समरूपताएँ कर दिया है। परतु, इसकी कोई आवश्यकता नही। सभी विभाग अलग-अलग होते हुए भी एक ही प्रकृति के अग है। जैसे शरीर से अलग होकर हाथ, आँख, पैर, इत्यादि कोई अर्थ नही रखते, वही सबध प्रकृति और उसके विभागो मे है। विभागो मे समरूपताएँ इसलिए है कि स्वय प्रकृति मे समरूपता है। प्रकृति मे समरूपता कहने से ज्ञात या अज्ञात सभी विभागो के नियमो की समरूपता का बोध हो जाता है। समरूपताएँ कहकर मानसिक एकता को व्यर्थ ही बिखेरना है। बेल्टन एव जोजेफ ने इस कठिनाई से बचने के लिए 'प्रकृति-समरूपता' की जगह 'प्रकृति की एकता' (Unity of Nature) का व्यवहार किया है। किंतु, इसकी भी कोई आवश्यकता नही है। 'प्रकृति-समरूपता' शब्द 'प्रकृति की एकता' से अधिक मान्य इसलिए होना चाहिए कि यह केवल प्राकृतिक नियमो की समानता को ही नही वतलाता, बल्कि इसके साथ-साथ प्रकृति के प्रवाह की ओर सकेत करता है।

प्रकृति-समरूपता का सक्षेप मे अर्थ हुआ कि परिवर्तनो के बावजूद प्राकृतिक नियमो और वस्तुओ के स्वभाव मे समानता पायी जाती है। प्रकृति एक तत्र के रूप मे है, जो सदा एक-सी रहती है यद्यपि अग-प्रत्यग बराबर परिवर्तित होते रहते हैं। वस्तुत ये परिवर्तन उस गठन की आवश्यकता के अनुसार हुआ करते हैं। यही समरूपता आगमन का आकारिक आधार है, जिसके विना यह अपनी खोज मे आगे नहीं वढ सकता।

§ ६ आगमन का विरोधाभास

मिल ने प्रकृति-समरूपता को आगमन का आधार माना है। किंतु, ये आगे चलकर कहते है कि प्रकृति-समरूपता का सिद्धात आगमन से प्राप्त होता है। इसको आगमन का विरोधाभास (Paradox of Induction) कहा गया है। मिल अपने बहुत से कथनो मे प्रकृति-समरूपता को आगमन का मूल सिद्धात या पूर्वमान्यता कहते है। इसका अर्थ होता है कि प्रकृति-समरूपता एक ऐसा आधार है कि विना इसकी सत्यता को माने आगमन द्वारा किसी सत्य की खोज नही हो सकती। किंतु, जब प्रश्न उठता है कि प्रकृति-समरूपता का सिद्धात कैसे मिलता है, तो मिल कहते हैं कि आगमन के द्वारा। * उनके अनुसार हम नित्यप्रति के अनुभव मे पाते हैं कि समान परिस्थितियो मे समान घटना होती है, इसमे कभी विरोध नही देखा जाता, तो निष्कर्ष निकलता है कि प्रकृति मे समरूपता है। प्रकृति की समरूपता इस तरह सरल गणनात्मक आगमन द्वारा मिल जाती है। अनुभव समान परिस्थितियो मे प्रकृति को सदैव समरूप पाता है। आग सदैव जलाती है, पानी सदा अग्नि शात करता है। इसलिए मानना पडता है कि प्रकृति समरूप है। यदि ऐसी बात नही होती, तो इस सिद्धात को खडित करने वाला कोई-न-कोई उदाहरण मिल ही जाता है।

मिल के उपर्युक्त दोनो कथन एक दूसरे के विरोधी है। पर, मिल इसे मानने के लिए तैयार नही है। अधिकाश विद्वानो ने मिल के इन दोनो कथनो मे चक्रक-अनुमान का दोष पाया है। आगमन की समस्या पर प्रकाश डालते हुए मिल प्रश्न उठाते हैं कि क्यो कभी अकेला एक उदाहरण आगमनिक व्याप्ति पर पहुँचने के लिए पर्याप्त होता है, जबकि दूसरे समय बहुत से उदाहरण यथार्थ आगमन देने मे असमर्थ होते है? इसके उत्तर मे वे कहते हैं कि समान परिस्थितियो मे समान घटना होती है, इसलिए यदि किसी घटना की सभी परिस्थितियाँ मालूम हो जायँ, तो एक ही उदाहरण से यथार्थ आगमन पर पहुँचा जा सकता है। मिल के इस कथन से आगमन मे प्रकृति-समरूपता का अर्थ स्पष्ट हो जाता है। शुद्ध आगमन का आधार प्रकृति-समरूपता केवल उदाहरण नही। प्रकृति-समरूपता को मान लेने के पश्चात् ही किसी नियम की खोज हो सकती है अन्यथा नही। परतु, फिर जब वे प्रकृति-समरूपता को आगमन का फल कह देते हैं तो ये दोनो कथन आपस मे विरोधी हो जाते हैं। मिल के आलोचको का कहना है कि मिल ने जो न्यायवाक्य के खिलाफ आत्माश्रय-दोष लगाया है, यहाँ वे स्वय उसी के शिकार हो जाते हैं। जो सरल आगमन मात्र उदाहरणो के

---

* मिल, लॉजिक, बुक III, [चैपटर xxı, सेक्शन, २]

आधार पर कहता है कि प्रकृति-समरूप है वह पहले ही प्रकृति-समरूपता को मान-लेता है। इस प्रकार मिल की व्याख्या मे जिसे सिद्ध करना है, उसी को पूर्वमान्यता के रूप मे लेकर चला जाता है। यह स्पष्टत 'आत्माश्रय-दोष' का उदाहरण है।

मिल प्रकृति-समरूपता का आधार अनुभव मानते है। पर, बहुत उदाहरण अथवा असख्य उदाहरण जो हमे मिल चुके है, और सभी मे मैंने देखा है कि समान परिस्थितियो मे समान घटनाएँ होती हैं, यह गारटी नही दे सकते कि उन्ही परिस्थितियो मे वही घटना भविष्य मे भी होती रहेगी। समान परिस्थितियो मे समान घटना को देखते-देखते मनुष्य मे सोचने की एक आदत पड जाती है कि उन्ही परिस्थितियो मे वही घटना आगे भी होगी। परतु, जैसा लेयरड ने कहा है, 'आदत हमारे भीतर की चीज है, बाहर की नही।' हमारी आदतो से प्रकृति की घटनाएँ नही बंधी है। बार-बार एक ही तरह की घटना देखने से हमारी मानसिक प्रक्रिया पर असर होता है, वस्तुओ पर नही। यदि अनुभव को ही आधार माना जाय, तो हम केवल आशा कर सकते हैं कि भविष्य मे भी उन्ही परिस्थितियो मे वही घटना होगी। हो सकता हैं कि हमारी यह आशा पूरी न हो। अत, सरल-आगमन के सभी निष्कर्ष केवल सभावित रहेंगे।

फिर मिल से यह पूछा जा सकता है कि प्रकृति-समरूपता का आधार अनुभव कैसे है, जब अनुभव मे प्रकृति की विषमता भी मिलती है? जब अनुभव मे केवल समरूपता मिलती, विपमता नही, तो हम ये कहने के अधिकारी होते कि अनुभव आगमन का आधार है। पर, मिल ने तो स्वय माना है कि किसी को प्रकृति मे सदैव समरूपता की आशा नही करनी चाहिए। वे कहते है, 'प्रकृति का रास्ता वास्तव मे केवल समरूप नही है। यह अनत रूप से विषम भी है। कुछ घटनाएँ ऐसी मिलती हैं, जो सदैव ठीक उन्ही परिथितियो मे होती है, जिन परिस्थतियो में वे पहले हुई है। किंतु, कुछ दूसरी भी मिलती है, जो सर्वथा मनमाने ढग से होती हैं।'* ज्ञानेंद्रियो पर आश्रित अनुभव प्रकृति को समरूपता और विषमता दोनो देता है। इसलिए वह अकेले समरूपता का आधार नही बन सकता। यह अवश्य है कि जब हमलोग वैज्ञानिक ढग से घटनाओ को समझने का प्रयास करते है, तो विषमता की अपेक्षा समरूपता का महत्व बढ जाता है और हमे बहुत से व्यापक नियम प्राप्त होते है। किंतु, यहाँ समरूपता का ज्ञान देने वाला अनुभव नही, बुद्धि है, जो मिल के लिए मान्य नही। मिल अनुभववादी है। उनके अनुसार हर प्रकार के ज्ञान के लिए अनुभव ही एक मार्ग है। इसलिए प्रकृति-समरूपता का ज्ञान वह अनुभव द्वारा ही पाने का प्रयास करते हैं। किंतु, कुछ ज्ञान ऐसे भी है, जिन्हे अनुभव नही दे सकता बल्कि पूर्व-मान्यता के रूप मे ग्रहण कर लेता है। प्रकृति-समरूपता वैसा ही ज्ञान है। आगमन के समक्ष समस्या है कि

---

* लॉजिक, बुक, III चैप III आर्ट २

एक ही तरह के उदाहरणो से किसी व्यापक सत्य पर कैसे पहुँचा जाय। यदि यह मान लिया जाय कि प्रकृति-समरूप रहती है, तो कार्य-कारण के किसी वास्तविक सबध को पाकर यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि इन परिस्थितियो मे सदैव यही घटना घटेगी। किंतु, जब तक प्रकृति-समरूपता पहले से ही पूर्व-मान्यता के रूप मे स्वीकार नही हो जाती, एक तरह के कितने भी उदाहरण क्यो न प्राप्त हो, उनसे भविष्य के बारे मे निश्चयपूर्वक कुछ नही कहा जा सकता। अत, आगमन प्रकृति-समरूपता को सिद्ध नही कर सकता, क्योकि जब तक प्रकृति-समरूपता पहले नही मान ली जाती, आगमन कुछ भी नही दे सकता।

विज्ञान ने यह मानकर कि ससार मे नियम है, अपनी खोज प्रारभ की है और उसने कुछ ऐसे नियमो को ढूँढ कर अपने विश्वास की पुष्टि की है। सभवत उसके पास ऐसे सिद्धातो को सिद्ध करने का यही एक मार्ग है। यदि सिद्ध करने का अर्थ लगाया जाय कि अपने से अधिक किसी निश्चित एव व्यापक तथ्य से निगमन के रूप निकालना, तो प्रकृति-समरूपता को सिद्ध करना असभव है, क्योकि इससे अधिक निश्चित एव व्यापक सत्य कोई दूसरा हमे दिखलाई नही पडता, जिससे यह निकाली जाय। किंतु, इसका अर्थ यह नही कि यह स्वय निश्चित नही है जैसे विचार-नियम सिद्ध नही हो सकते, वैसे ही प्रकृति-समरूपता भी। मूल सिद्धातो का तो केवल अभावात्मक प्रमाण दिया जा सकता है, जैसे कहे, 'क्या इनको अस्वीकार करके किसी निश्चित सत्य पर पहुँचा जा सकता है?' उत्तर होगा, 'नही'। यही इनका प्रमाण है। जिस सिद्धात पर ये आधारित हैं, उसे बोसाक्वेट के शब्दो मे कहा जा सकता है, 'यही या कुछ नही' का सिद्धात।*

§ ७. कार्य-कारण-नियम तथा प्रकृति-समरूपता सिद्धांत मे संबंध

कार्य-कारण नियम के अनुसार 'ससार मे प्रत्येक घटना का कुछ-न-कुछ कारण है'। प्रकृति-समरूपता सिद्धात कहता है कि चूँकि प्रकृति मे विडबना नही है वह एक-सी रहने वाली है, इसलिए कार्य-कारण के बीच समरूप सबध रहता है। वही कारण, वही कार्य। जब भी उस कारण को लाइए,वह कार्य होगा। कार्य-कारण नियम और प्रकृति-समरूपता सिद्धात दोनो मिलकर वैज्ञानिक आगमन का आधार बनते हैं। दार्शनिको मे इस बात को लेकर मतभेद है कि दोनो में सबध होता है। कोई कहता है कि कार्य-कारण-नियम समरूपता सिद्धात का एक अग है। दूसरे कहते हैं कि

---

*इ म्प्लिकेशन एंड लीनियर इनफरेन्स, पृष्ठ ३

प्रकृति-समरूपता कार्य-कारण-नियम का एक अग है। इन दोनो से भिन्न तीसरे प्रकार का मत है कि कार्य-कारण तथा प्रकृति-समरूपता के सिद्धातो मे घनिष्ठ सबध होते हुए भी उनका अपना विशिष्ट पक्ष है। अब हम इन तीनो को सक्षेप मे समझने का प्रयास करेंगे।

मिल, वेन, रीड, इत्यादि विद्वानो का मत है कि कार्य-कारण-नियम स्वतत्र नही है, वस्तुत प्रकृति-समरूपता का ही एक अग है। ससार के विभिन्न क्षेत्रो को लिया जाय, तो बहुत तरह की समरूपताएँ मालूम पडेगी। किसी वस्तु के कुछ खास अपने गुण होते है, जो सदा समान रूप से उस वस्तु मे पाये जाते हैं। दो रेखाएँ, जो अलग-अलग किसी तीसरी रेखा के बराबर होती हैं, आपस मे भी बराबर होती है, इत्यादि समरूपताएँ हम नित्य देखते हैं। उसी प्रकार कार्य-कारण मे भी एक समरूपता है, जिसे तदनतर समरूपता कहते है। इसलिए कारण-कार्य-नियम समरूपता के अधिक व्यापक नियम का एक अग है।

जोजेफ, मेलोन, इत्यादि विद्वानो का इसके प्रतिकूल कहना है कि कार्य-कारण-नियम ही मूल है, जो अकेले आगमन का आधार है। यह प्रकृति-समरूपता का अग नही है, बल्कि प्रकृति-समरूपता ही इस पर आश्रित है। कारण-कार्य-नियम कहता है कि प्रत्येक घटना का कारण होता है, जैसे ख का कारण क है। किंतु, यदि समान रूप से क ख को लाने मे सफल न हो, तो हमलोग क को ख कारण मानने के अधिकारी नही है। प्रत्येक पूर्ववत्ती परिस्थिति घटना का कारण नही होती। केवल वही पूर्ववर्त्ती परिस्थिति घटना का कारण होती है, जो नियत रूप से सदैव उपस्थित रहती है। यदि ऐसी बात न हो, तो कोई घटना किसी दूसरी घटना को पैदा कर सकती है, जिसका अर्थ होगा कि ससार मे किसी तरह का कार्य-कारण सबध नही है। वस्तुत जो कारण समान रूप से कार्य न करे, वह कारण नही है। अग्नि जो आज गरमी दे और कल नही, तो गरमी का कारण अग्नि नही कहा जा सकता। अत, कारण मे समरूपता निहित है।

उपर्युक्त दोनो मतो से भिन्न तीसरा मत है, जिसके अनुसार कार्य-कारण-नियम और प्रकृति-समरूपता दो अलग-अलग सिद्धात है। इस मत के पोषक सिगवर्ट, बोसाक्वेट, वेल्टन इत्यादि है। इनके अनुसार कारण का नियम केवल इतना ही कहता है कि प्रत्येक घटना का कारण होता है, समरूपता इस सिद्धात को आगे बढाती है कि प्रत्येक कारण का अपना निश्चित कार्य है—वही कारण, वही कार्य। वस्तुत दोनो मिलकर वैज्ञानिक आगमन का आधार बनते हैं।

ऊपर के तीनो मत एक दूसरे के विरोधी होते हुए भी अपने-अपने स्थान पर न्यायसगत है। इनके वाद-विवाद मे अधिक विस्तार से न जाकर इतना कहा जा सकता है कि तीसरा मत प्रथम दो मतो से अधिक व्यावहारिक है। यदि गहराई से

वहुत दूर तक जाने का प्रयास किया जाय, तो सभी सत्य मूल मे एक दूसरे से सवद्ध है और किसी व्यापकता के अग। अवश्य ही कार्य-कारण-नियम मे समरूपता है और समरूपता मे कार्य-कारण-नियम। किंतु, हम व्यवहार मे इन्हे अलग-अलग मानते हैं, क्योकि दोनो दो भिन्न सिद्धात हैं। हाँ, यह अवश्य है कि वे एक दूसरे के पूरक हैं। विना कारण को आधार वनाये आगमन अपना कार्य नही कर सकता, क्योकि केवल प्रकृति-समरूपता के आधार पर प्राप्त की हुई व्याप्ति अत्यत ही खतरनाक होती है। परतु, समरूपता का विना सहारा लिये केवल कारण से काम नही चलता। कारण, सिद्धात तो इतना ही कहता है कि अमुक घटना का अमुक कारण है। उसमे समरूपता को विना लाये हम यह नही कह सकते कि यह कार्य-कारण सवध नित्य रहेगा। अत, जब कार्य-कारण तथा प्रकृति-समरूपता के सिद्धात, दोनो मिल जाते है, तब सच्चे आगमन के आधार वनते हैं।

—o—

अध्याय १२

प्रायोगिक अन्वेषण–विधियाँ

§ १. अन्वेषण-विधियों की आवश्यकता एवं उनके आधार-सिद्धांत

हमारी कठिनाई है कि हम घटनाओ के बीच कार्य-कारण-सबध को देख नही पाते। अधिक-से-अधिक जिसे हम देख सकते हैं, वह है कोई घटना, कोई परिवर्तन, किसी वस्तु का कोई पहलू और उसके बाद फिर कोई दूसरी वस्तु। हम यह नही देखते कि एक ने दूसरे को पैदा किया वरन् देखते हैं, ऊपरी सबध, एक के बाद दूसरे का आना। तो स्वाभाविक प्रश्न है कि हम कैसे किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि कोई एक घटना किसी दूसरी घटना का कारण है।

हमारी समस्या की कल्पना इससे भी वृहद् रूप मे हो सकती है। हम, एक समय मे केवल एक घटना के बाद दूसरी का होना नही देखते। ससार मे प्रत्येक क्षण अनेक घटनाएँ होती रहती हैं और उसके दूसरे क्षण भी अनेक। कुछ देखने मे एक-सी-लगती हैं, कुछ भिन्न। अब प्रश्न उठता है कि पहले क्षण की कौन सी घटना दूसरे क्षण की किस घटना से कारण के रूप मे सबधित है? इसके लिये प्रेक्षण एव प्रयोग की आवश्यकता पडती है। जैसे, हम एक सीधा-सा उदाहरण लें—रात मे हम सो जाते हैं, सवेरे उठते हैं, तो देखते हैं कि बगीचे मे एक पेड गिर गया है। मन मे प्रश्न उठता है, 'इसका क्या कारण हो सकता है?' जिन परिस्थितियो के बीच यह पेड गिरा, उन सबका वर्णन असभव है। रात मे आँधी आई होगी, बिजली चमकी होगी, बगीचे मे बालू रखा होगा, रात मे ग्रहण लगा होगा। इस प्रकार उस रात भर मे हजारो घटनाएँ घटी होगी। किंतु, हमारा साधारण ज्ञान भी इतना बिखरा नही होता। हम इस वृहद् क्षेत्र को छोटा करने मे समर्थ है, जिसे 'सभव कारण का

क्षेत्र' कहा जा सकता है। हम, कारण सोचते समय, ससार की बहुत सी घटनाओ को अनावश्यक समझ कर अलग कर देते हैं। इस क्रिया मे कभी खतरा हो जाने का भी भय है, कभी आवश्यक परिस्थिति का अनावश्यक के भ्रम मे निरसन हो जाता है। किंतु, इसके बिना व्यवहार सभव नही। अब इस छोटे क्षेत्र मे कुछ परिथितियाँ ऐसी रह जाती हैं, जिन्हें अलग करने मे काफी कठिनाई होती है। विज्ञान का मुख्य कार्य है, बार-बार प्रेक्षण एव प्रयोग द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि अमुक घटना का क्या कारण है।

विशिष्ट तथ्यो एव घटनाओ के कारण निश्चित करने के अभिप्राय से जे० एस० मिल ने कुछ सुव्यवस्थित कार्य-प्रणालियो का सुस्पष्टता के साथ वर्णन किया है। उन्हें स्वय जिस उपलब्धि को प्राप्त कर लेने का विश्वास हो गया था, वह वस्तुत प्राप्त तो नही हुई, किंतु उनकी 'विधियाँ', कुछ विशेष शर्तो के साथ, ऐसा मार्ग प्रदर्शित करती हैं, जिसके अनुसार प्रश्न, 'र' का क्या कारण है?' (यहाँ 'र' एक निदर्शी प्रतीक है) का उत्तर प्राप्त करने के लिये हमे आवश्यक सामग्री तैयार करने मे काफी सहायता मिलती है। इन विधियो मे गुण कारण सबधी अन्वेषण मे निरसन द्वारा प्रतिपादित मूल भूमिका को सुस्पष्ट करने का है।

ये विधियाँ कार्य-कारण की विचारधारा के मूल मे पाये जाने वाले दो सिद्धातो पर आधारित हैं (१) किसी कार्य का वह परिस्थिति कारण नही हो सकती, जो कार्य होने के समय अनुपस्थित हो, (२) किसी कार्य का वह परिस्थिति कारण नहीं हो सकती, जो कार्य के न होने पर भी उपस्थित हो। व्यावहारिक स्तर पर ये विधियाँ मान्य हैं, वस्तुत जब सामान्य मनुष्य ऐसे प्रश्नो के उत्तर पाने का प्रयास करता है, जैसे 'आलमारी क्यो नही खुल रही है?', 'कार क्यो नही चालू हो रही है?' इस वर्ष इस जिले मे दूध इतना दुर्लभ क्यो हो गया है?', तो मिल की विधियाँ कार्य-प्रणाली को सुव्यवस्थित करने के अतिरिक्त कुछ नही करती।

विधियो के वर्णन मे हम हर स्थल पर मान लेंगे कि हम किसी घटना 'र' का कारण ढूंढ रहे हैं। अब यहाँ हमे 'र' का कारण ढूंढने के लिये अपनी सामग्री तैयार करनी है, कारण के उपर्युक्त दो सिद्धात बतलाते हैं कि हमे दो बातें करनी चाहिए (i) जहाँ-जहाँ 'र उपस्थित है, उन परिस्थितियो की आपस मे तुलना की जाय, (ii) 'र' के साथ घटित होने वाली उन परिस्थितियो की तुलना उन दूसरी परिस्थितियो से की जाय, जिनमे अन्य बहुत से पहलुओ मे समानता है, पर 'र' नही है।

मिल ने इसके लिए पाँच विधियो का उल्लेख किया है, वे हैं .

(१) अन्वय-विधि।

(२) व्यतिरेक-विधि।

(३) अन्वय-व्यतिरेक-विधि ।

(४) सह-परिवर्तन-विधि ।

(५) अवशेष-विधि ।

मिल ने इन विधियो को निरसन-विधि भी कहा है । निरसन का अर्थ है, कारण के साथ मिली अन्य अनावश्यक आकस्मिक परिस्थितियो को अलग करना । किंतु, इसे यह नही समझना चाहिए कि इन नियमो का काम निषेधात्मक है । वस्तुत इनसे भावात्मक एव अभावात्मक दोनो तरह के काम लिये जाते है । अभावात्मक काम है : कारण से भिन्न अनावश्यक परिस्थितियो को अलग करना और भावात्मक काम है कारण की खोज और उसका प्रमाणीकरण । दोनो को साथ मिलाकर हम कह सकते है कि इन विधियो का वास्तविक कार्य निरसन द्वारा घटनाओ के बीच कारण सबध ढूँढना है ।

अब हम इन अन्वेषण-विधियो का सक्षेप मे अलग-अलग वर्णन करेंगे ।

§ २. अन्वय-विधि

मिल ने अन्वय-विधि की परिभाषा इस प्रकार की है यदि किसी घटना के दो या अधिक उदाहरणो मे कोई एक स्थिति समान रूप से पायी जाती हो, तो वह परिस्थितिविशेष, जिसकी उन सभी उदाहरणो मे समानता पायी जाय, उस घटना का कार्य या कारण होगी ।

इसे हम इस प्रकार समझ सकते हैं—यदि किसी घटना र के दो या अधिक दृष्टातो मे केवल एक कारक सर्वनिष्ठ हो, तो वह कारक, केवल जिस पर सभी दृष्टातो का अन्वय हो रहा है, 'र' का कारण है । उदाहरण के लिए हम लें कि आत्रज्वर से पीडित सभी रोगियो (किसी एक सदर्भगत जिला मे) मे यह पाया जाता है कि उन सबो ने एक ही जल-सभार का व्यवहार किया है, अत आत्रज्वर के रोगियो के साथ जल का कारण सबद्ध है ।

यह देखा जा सकता है कि उदाहरण नियम के साथ मेल नही खाता । अपने मन मे कल्पना करें कि जब किसी एक ही जिले मे बहुत से लोग आत्रज्वर या किसी दूसरी बीमारी के रोगी हो जायँ, तो क्या होता है । प्राक्कल्पनात्, वे सभी एक ही पडोस मे रहते हैं, किंतु अवश्य ही उनमे से कुछ पुरुष होगे, कुछ स्त्रियाँ, कुछ मोटे, कुछ पतले, कुछ भूरे बाल वाले, कुछ काले बाल वाले, कुछ खेतिहर मजदूर, कुछ मिस्त्री, कुछ विश्वविद्यालय के विद्यार्थी, इत्यादि । यह 'इत्यादि' शब्द उपयुक्त है, क्योकि हम सभी इनका सरलतापूर्वक विस्तृत वर्णन दे सकते हैं । हम जानते हैं

कि कुछ रोगी पुरुष होने मे अनुरूप होंगे, दूसरे खेत मे मजदूरी करने मे अनुरूप होगे, कुछ तीसरे गोरे होने मे अनुरूप होगे इत्यादि। ऐसे दृष्टातो को पाना सभव नही है, जिनमे एक को छोड शेष सभी परिस्थितियो मे भिन्नता हो रही हो। इस नियम का व्यवहार हम तब तक प्रारभ नही कर सकते जब तक हम इसकी असबद्धता से अत्यधिक निर्णय न ले लें। ऐसा कर लेने के बाद हम पा सकते हैं कि किसी दृष्टात समूह मे जिनमे 'र' उपस्थित है, केवल एक ही कारण सदैव पाया जा रहा है। ऐसी परिस्थिति मे हम यह अभिकथन करने के योग्य हैं कि यह कारक 'र' का कारण है। किंतु, अधिकाश स्थलो पर हम निश्चित नही कर सकते कि हमारे असबद्धता के निर्णय ठीक हैं, अत व्यावहारिक सामान्य बुद्धि के स्तर पर हमे ऐसे स्थलो की खोज प्रारभ कर देनी चाहिए, जो पहले वालो के बहुत समरूप हैं, फिर भी उनमे 'र' अनुपस्थित है।

इस विधि से विज्ञान मे काफी महत्त्वपूर्ण सकेत मिले हैं। सर डेविड ब्रेस्टर तथा अन्य अन्वेषको का ध्यान स्पेक्ट्रम के विश्लेषण के समय उसमे पीले रग की प्रधानता पर गया। उनलोगो ने सोचा कि इस पीले रग का कारण कोई अवश्य होगा। तल्बट का ध्यान गया कि इसका कारण पानी हो सकता है। किंतु, फिर देखा गया कि जिन वस्तुओ मे पानी नही था, वहाँ भी पीला रग मिलता था। स्वान ने सन् १८५६ मे ढूँढा कि सोडियम क्लोराइड के कारण यह पीला रग है। इसके पूर्व डेवी ने यह दिखलाया था कि हवा मे सोडियम क्लोराइड की कुछ मात्रा पायी जाती है। अत, यह निश्चित हुआ कि हवा मे सोडियम क्लोराइड की उपस्थिति ही स्पेक्ट्रम के पीले रग का कारण है। व्यवहार मे भी हम देखते हैं कि इस विधि से बहुत सी सामान्य घटनाओ के कारण प्राप्त होते हैं। जैसे जब-जब पूर्वा हवा चलती है, तब-तब गठिया के बीमार का दु ख बढ जाता है, तो निष्कर्ष निकाला जाता है कि बीमारी बढने का कारण पूर्वा हवा का चलना है। वैसे ही जहाँ-जहाँ मलेरिया बुखार के मरीज पाये जाते हैं, वहाँ-वहाँ अनोफिल मच्छर भी मिलते हैं। इसलिये निष्कर्ष निकलता है कि मलेरिया बुखार का कारण अनोफिल मच्छर है।

परतु, यह विधि बहुत वैज्ञानिक नही है। परिस्थितियो पर नियन्त्रण न होने के कारण इस विधि से बहुत अच्छे फल नही मिलते और यह केवल प्रेक्षण की ही विधि तक सीमित रहती है। इसकी अच्छाई है कि बहुत सरलतापूर्वक इसका व्यवहार हो जाता है। उन स्थलो पर तो यह बहुत काम करती है, जहाँ शुद्ध प्रयोग-विधि का उपयोग नही हो सकता। प्रेक्षण पर आधारित होने का कारण इसका क्षेत्र बहुत बडा है। इसीलिये यह कारण ढूँढने की 'सर्वव्यापी विधि' कही गई है। किंतु, इससे हम मजिल तक नही पहुँच सकते। इसकी खोज अतिम नही होती। अन्य रीतियो द्वारा जब तक निष्कर्ष की पुष्टि न हो जाय, तबतक शका बनी ही रहती है। इसमे

बहुत उदाहरण की आवश्यकता पडती है नही तो सामान्यीकरण ठीक नही हो सकता। दस-बीस उदाहरण ऐसे मिल सकते है, जहाँ चोरी करनेवाले विद्यार्थी हो, पर इससे यह निष्कर्ष नही निकाला जा सकता कि विद्यार्थी चोरी करते हैं। और जहाँ पर किसी घटना के बहुत से कारण हो सकते हैं, वहाँ तो यह रीति बिल्कुल काम नही कर सकती, क्योकि प्रेक्षण से कार्य मिलता है, कोई ऐसी पूर्ववर्त्ती परिस्थिति नही मिलती जो स्पष्टत कारण हो। अबाध रूप से पूर्ववर्त्ती होने पर भी हो सकता है कि घटना का कारण न हो। जैसे मान लें कि हमने सात तरह के विष सात आदमियो को अलग-अलग दिए, किंतु हर बार विष पानी के साथ दिया गया तो इससे यदि यह निष्कर्ष निकाला जाय कि मृत्यु का कारण पानी है, तो यह भारी भूल होगी। वैसे तो कारण बहुत वैज्ञानिक दृष्टि से असगत है, किंतु नित्य के जीवन मे यह प्राय मिलता है और कम-से-कम अन्वय-विधि के रास्ते मे तो रोडा अटकाता ही है। मिल ने भी यह स्वीकार किया है कि कारणो की अनेकता मे काम न करने की अन्वय-विधि मे स्वाभाविक कमी है।

इन कठिनाइयो को दृष्टि मे रखते हुए यही कहा जा सकता है कि अन्वय-प्रणाली के प्रयोग मे बहुत सतर्क रहना चाहिए। मिल ने इसकी परिभाषा मे जो बाते कही हैं, वे सब घटना के प्रेक्षण से प्राप्त नही हो सकती। इससे अधिक-से-अधिक कारण के बारे मे केवल अनुमान लगाया जा सकता है। अत, यह रीति प्राक्कल्पना दे सकती है, कारण नही।

§ ३ व्यतिरेक-विधि

मिल ने व्यतिरेक-विधि की निम्न परिभाषा दी है

यदि किसी उदाहरण मे एक घटना उपस्थित हो और दूसरे उदाहरण मे वह घटना न हो और दोनो मे अन्य सभी परिस्थितियाँ समान हो, सिवा एक के जो पहले मे है और दूसरे में नही, तो जिस परिस्थिति मे दोनो उदाहरण आपस मे भिन्न हैं, वही परिस्थिति घटना का कारण या कार्य या कारण का आवश्यक अग होती है। व्यतिरेक-विधि का सिद्धात है कि जो कुछ प्रेक्षित घटना मे बिना परिवर्तन लाये हटाया न जा सके, वह अवश्य ही घटना से कार्य-कारण के रूप मे सबधित होगा। यदि कही किसी परिस्थिति के हटाते ही कोई घटना विलीन हो जाती है यद्यपि अन्य सभी परिस्थितियाँ ज्यो-की-त्यो रहती हैं, तो मानना पडेगा कि वही परिस्थिति जिसके हटाने से घटना भी हट जाती है, उस घटना का कारण या आवश्यक कारणाश है। जैसे यदि एक घटना मे 'र' पाया जाता है और दूसरी घटना मे 'र' नही पाया जाता तथा इन घटनाओ मे 'अ' के अतिरिक्त सभी कारक उभयनिष्ठ हैं, और अ केवक उसी घटना मे पाया जाता है जिनमे 'र' पाया जाता है, तो अ र का कार्य, कारण, या र के कारण का आवश्यक अग है।

यह प्रणाली अपने निष्कर्ष मे अन्य विधियो से अधिक निश्चयात्मक है। अन्वय-विधि से हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि दो सहवर्त्ती घटनायें, जैसे किसी कारखाने मे भोपू बजने की आवाज तथा किसी स्कूल मे घटी बजने की आवाज एक दूसरे के कार्य या कारण हैं। विज्ञापनो मे छपे अयाचित प्रमाणपत्रो के आधार पर लोग बहुधा मान लेते हैं कि कोई पेटेंट दवा किसी रोग को दूर करने वाली है, वे भूल जाते हैं कि जिनका रोग इससे अच्छा नही हुआ, उन्होंने इसके मालिको को नही लिखे। यदि हमें ऐसा निषेधात्मक उदाहरण मिल सके, जो एक कारक के अतिरिक्त सभी सगत कारको मे भावात्मक उदाहरण के समरूप है, तो वह कारक अवश्य ही र से कारण रूप में सबधित है। जैसे हवा से भरे किसी शीशे के बर्तन मे बिजली की घटी बजायी जाय, तो आवाज सुनाई पडती है पर जब बर्तन से हवा बिलकुल निकाल दी जाय और फिर घटी बजायी जाय, तो घटी की आवाज हमे सुनाई नही देती। यहाँ दोनो हालत मे केवल एक को छोड अन्य सभी परिस्थितियाँ समान हैं। पहले मे हवा है, दूसरे में हवा निकाल दी गई है। तो इससे यह कहा जायगा कि आवाज के सुनाई देने का कारण हवा है। वैसे ही मोमबत्ती के जलने का उदाहरण ले सकते हैं। जैसे किसी बर्तन में ऑक्सिजन है, तो मोमबत्ती जलती है और जब ऑक्सिजन बिलकुल नही रहता, तो मोमबत्ती बुझ जाती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मोमबत्ती के जलने का कारण ऑक्सिजन है।

व्यतिरेक-विधि प्रधानत प्रयोग की विधि है, क्योंकि जबतक परिस्थितियो पर अपना अधिकार नही होगा तबतक इस विधि की आवश्यकताओ की पूर्ति नही हो सकती। इसमें केवल दो ही उदाहरणो की आवश्यकता होती है। इसलिए यह देखने में आसान है। किंतु दो ही उदाहरण में सभी परिस्थितियो पर नियत्रण होना मुश्किल होता है। फिर यद्यपि अन्वय-विधि की भाँति यह कारण बहुत्व से दूषित नही होती, क्योंकि अन्वय में सदैव उपस्थित रहनेवाली परिस्थिति कारण नही भी हो सकती, और व्यतिरेक मे यह सभव नही कि जिस परिस्थिति के हटाने से घटना हट जाती है, वह कारण का कोई अश भी न हो। किंतु, व्यतिरेक-विधि भी यह बतलाने में समर्थ नही है कि अमुक घटना का केवल अमुक कारण है, दूसरा नही। व्यतिरेक-विधि केवल इतना हो सिद्ध कर सकती है कि दिये हुए उदाहरण में अमुक पूर्ववर्त्ती परिस्थिति घटना के कारण या कारणाश के रूप में सबधित है, लेकिन वह परिस्थिति अकेले कारण है दूसरे कारण से यह घटना नही घट सकती यह बतलाने में वह असमर्थ है। अत, व्यतिरेक-विधि भी बहुकारणवाद को पूर्णरूपेण नही हटा सकती।

मूलत प्रयोग की विधि होने के कारण व्यतिरेक-विधि में प्रयोग की कठिनाइयाँ भी निहित हैं। इसमे हमलोग कारण से कार्य की ओर जा सकते हैं पर कार्य से कारण की ओर नही। प्रयोग में कारण ही हाथ मे होता है, कार्य नही। जिस प्रकार कारण

मे परिस्थितियो का जोड-घटाव हो सकता है, उस प्रकार कार्य मे नही। जब कभी भी कारण पर पहुँचना होगा, तो अन्वय-विधि के सहारे अनुमान लगाना होगा और फिर प्रयोग से देखना पडेगा कि उन परिस्थितियो मे कार्य होता है अथवा नही। इस प्रकार इससे कारण की खोज नही हो सकती, सिर्फ इससे प्रमाणीकरण हो सकता है।

यह विधि तभी लागू होती है, जब हम 'र' की अनुपस्थिति के अतिरिक्त बिना कोई दूसरा परिवर्तन लाये अ को निकाल लें अथवा सन्निविष्ट कर दें। हाँ, यदि हम तर्कसगत ढग से निश्चित कर सकें कि दो दृष्टातो मे केवल एक तर्कसगत पहलू पर भेद है, तो यह विधि विशेप प्रायोगिक परिस्थितियो मे लागू होगी। जैसे यदि तेजाव मे हम नीला लिटमस कागज डाले, तो यह लाल हो जाता है, हम निष्कर्ष निकालते हैं कि तेजाव ही रग-परिवर्तन का कारण है। एक प्याली चाय मे हम चीनी छोडते हैं और इसका स्वाद बदल जाता है, तो चीनी स्वाद-परिवर्तन का कारण कही जाती है। ये सब उदाहरण व्यतिरेक-विधि के हैं। किंतु, ये उदाहरण इस विधि को स्पष्ट करने के लिए कृत्रिम ढग से अपनाये गये है। हम जानते हैं कि कौन दृष्टात लेना ठीक होगा। किंतु, यदि हम देखें कि इस प्रणाली का प्रयोग कैसे होता है, तो हम इसे व्यवहार मे लाने मे तभी समर्थ हो सकते है जब हम वास्तव मे कारण जानने के लिए किसी घटना की जाँच करे, और न कि किसी दूसरे व्यक्ति के अन्वेपण के बारे मे बात करते रहे। हाँ, केवल यह जानने मे हमे बहुत ही सतर्क रहना चाहिए कि असबद्धता के हमारे निर्णय न्यायसगत है। ये बातें सभी प्रणालियो पर लागू हो सकती हैं, पर व्यतिरेक-प्रणाली के सदर्भ मे इसका सबसे स्पष्ट निदर्शन होता है।

§ ४. अन्वय-व्यतिरेक-विधि

अन्वय-व्यतिरेक-विधि की परिभाषा मिल ने इस प्रकार दी है 'यदि किसी घटना को दो या अधिक उदाहरणो मे पाये और इनमे कोई एक परिस्थिति समान रूप से हो और फिर ऐसे दो या अधिक उदाहरण मिलें, जिनमे यह घटना न हो और साथ-ही-साथ उस पूर्व परिस्थिति की अनुपस्थिति भी समान रूप से हो, तो इन दोनो प्रकार के उदाहरणो मे जो परिस्थिति भिन्नता लाती है, वह या तो कारण या कार्य या कारण का आवश्यक अग होगी।

अन्वय-व्यतिरेक-विधि मे दो तरह के उदाहरण लिये जाते हैं। एक भावात्मक जिसमे घटनाविशेप पायी जाती है, और दूसरा अभावात्मक जिसमे वह घटना नही मिलती। इसमे अन्वय-विधि का ही दो रूप मे व्यवहार होता है—भावात्मक तथा अभावात्मक। जैसे यदि 'र' घटना के दृष्टातो के एक समूह मे केवल एक कारक 'अ'

सर्वनिष्ठ हो लेकिन अनेक दूसरे दृष्टातो मे, जिनमे 'र' नही पाया जाता, र के साथ उपस्थित अ के अतिरिक्त अन्य कारक अलग-अलग पाये जायँ, तो अ सभवत र के साथ कारक रूप मे सबधित है ।

इस विधि का सकेत है कि हमे अवश्य ही कुछ दृष्टातो का एक समूह लेना चाहिए, जिनमे बहुत से कारको के साथ 'र' उपस्थित है । किंतु, किन्ही दो दृष्टातो मे केवल एक कारक 'अ' दोनो मे उपस्थित है । इन्हे भावात्मक दृष्टात कहते है । फिर हमे ऐसे दृष्टातो का एक समूह लेना चाहिए, जो पहले वाले दृष्टातो के अधिकाधिक समरूप हो पर उन सब मे 'र' की अनुपस्थिति की अनुरूपता हो । इन्हे निषेधात्मक दृष्टात कहते हैं । दृष्टातो के इन दो समूहो की तुलना से व्यक्त होता है कि जब 'अ' उपस्थित है, तो 'र' पाया जाता है, जब 'अ' अनुपस्थित है तो 'र' नही पाया जाता । इन उदाहरणो के आधार पर निष्कर्ष निकलता है कि 'अ' 'र' का कारण है अथवा कम-से कम कारण के साथ सबधित है । उदाहरणार्थ आत्रज्वर के अन्वेषण मे यह आशका हो सकती है कि आत्रज्वर-सक्रामण का मूल कारण जल है । यदि आत्रज्वर से पीडित सभी मनुष्यो ने एक ही जल-भडार से पानी प्राप्त किया है, तो उस जिले मे रहने वाले उन सभी मनुष्यो पर विचार करने मे सहायता मिलेगी, जिन्हे आत्रज्वर नही हुआ है और जिन्होने दूसरे जल-भडार से पानी लिया है, और तब हम यह भी जानने का प्रयास करेंगे कि क्या इनमे से कुछ ने उसी दूकान से मास लिया है, जहाँ से कुछ आत्रज्वर के मरीजो ने, और क्या एक दुग्ध-आपूर्ति केंद्र से दोनो समूहो मे से कुछ लोगो ने दूध लिया ? यदि हाँ, तो हम निर्णय निकाल सकते है कि मास तथा दूध असबद्ध कारक हैं ।

यह विधि व्यवहार मे बहुत काम करती है । कोई मनुष्य देखता है कि जब कभी वह एक विशेष प्रकार के पौधो की पत्तियो को सूँघता है, तो उसके सर मे चक्कर आने लगता है । और जब उन्हे वह दूर कर देता है, तो चक्कर का आना भी दूर हो जाता है । फिर वह दूसरे प्रकार के पौधो की पत्तियो को सूँघता है और देखता है कि उससे चक्कर नही आता । इससे उसका पहले वाला निर्णय बहुत कुछ दृढ हो जाता है । मिल ने उदाहरण दिया है कि ओस की बूँदें उन्ही चीजो पर दिखलाई पडती हैं, जिनमे से गर्मी शीघ्र निकल जाती है और हमलोग यह भी देखते हैं कि जिन वस्तुओ से गर्मी शीघ्र नही निकलती, उन पर ओस की बूँदें भी नही जमती । इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि गर्मी का शीघ्र निकलना ओस की बूँद दिखाई देने का कारण है । यह देखा जाता है कि जो लोग चेचक का टीका लेते हैं, उन्हें चेचक नही निकलती या यदि निकलती भी है तो बहुत साधारण, और जो लोग चेचक का टीका नही लेते है, उन्हें चेचक बहुत भयकर प्रकार की निकलती है । इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि चेचक का टीका लेने से चेचक से रक्षा होती है ।

प्रेक्षण की विधि होने के कारण अन्वय-व्यतिरेक-विधि बहुत सुलभ है। जहाँ कही परिस्थिति अपने नियन्त्रण मे नही है और प्रयोग सभव नही है, वहाँ यह विधि बहुत काम करती है। अन्वय-विधि से अन्वय-व्यतिरेक-विधि अधिक निश्चयात्मक निर्णय देती है। अभावात्मक उदाहरणो को भी देख लेने से अन्वय मे मिला हुआ कारण-सकेत इसमे अधिक निश्चित हो जाता है। इसलिये यह विधि खोज की एक अच्छी प्रणाली कही जाती है। दो परिस्थितियो के साथ-साथ उपस्थित और अनुपस्थित होने पर यह अनुमान लगाना सरल है कि इनका आपस मे कारण सबध है, जैसे जहाँ-जहाँ अनोफिल मच्छर होते हैं, वहाँ-वहाँ मलेरिया होता है और जहाँ-जहाँ अनोफिल मच्छर नही होते, वहाँ-वहाँ मलेरिया नही होता। इससे अनुमान लगता है कि सभवत मच्छर मलेरिया के कारण हैं।

इस विधि मे अपनी कठिनाइयाँ भी है। जब तक अभावात्मक उदाहरण इतने अधिक न हो कि उस तरह की प्रत्येक परिस्थिति की जाँच हो जाय, तब तक बहुकारण-वाद की सभावना बनी रहती है और प्रत्येक परिस्थिति की जाँच साधारणत सभव नही। इस कठिनाई के कारण इस विधि से अधिक लाभ नही हो पाता। इसमे बहुत से उदाहरणो की आवश्यकता पडती है। भावात्मक तथा निषेधात्मक उदाहरणो की सख्या और भिन्नता पर ही इस विधि से प्राप्त परिणाम की सत्यता आधारित है, फिर भी परिणाम सभव ही रहेगा, सिद्ध नहीं हो सकता। अन्वय-विधि की तरह इसमे भी यह कठिनाई पायी जाती है कि सभवत कोई छिपी परिस्थिति काम कर रही हो, लेकिन प्रेक्षण की पकड मे न आती हो। इस विधि से सहचारी परिस्थितियो एव कारण के बीच पहचान नही हो पाती। जैसे जब बिजली चमकती है, तो बादलो मे गडगडाहट होती है और जब बिजली नही चमकती, तो गडगडाहट भी नही होती। किंतु, बिजली का चमकना गडगडाहट का कारण नही है, वरन् दोनो किसी अन्य कारण के सहपरिणाम है।

§ ५ सहपरिवर्तन-विधि

सहपरिवर्तन-विधि की परिभाषा मिल ने इस प्रकार दी है "जब कभी एक घटना मे किसी तरह का परिवर्तन होता है और साथ-ही-साथ उसी तरह का परिवर्तन दूसरी घटना मे भी होता है, तो वे आपस मे एक दूसरे का या तो कारण या कार्य होते हैं या तो दोनो मे किसी-न-किसी अनुपात मे आपस मे कार्य-कारण का सबध रहता है।"

इसको स्टॉक बहुत सीधे ढग से रखते हैं "जब दो घटनाएँ साथ-साथ बढती-घटती है, तो उनका आपसी सबध किसी-न-किसी मात्रा मे कारण कार्य का होता है।"

यह साधारण विश्वास की भी बात हो जाती है कि जब एक घटना का परिवर्तन दूसरी घटना मे भी परिवर्तन लाता है, तो दोनो घटनाएँ आपस मे बहुत निकट समझी जाती है अथवा उनमे कार्य-कारण का सबध माना जाता है। यह कोई आवश्यक नही कि दोनो घटनाओ का परिवर्तन केवल सीधा ही हो या उलटा भी हो सकता है, अर्थात् एक घटना मे बढती हो सकती है और दूसरी मे घटती।

इस प्रणाली को इस प्रकार और स्पष्ट किया जा सकता है यदि किसी जटिल परिस्थिति मे जिसमे 'अ' एव 'र' दोनो हो, जब कभी 'अ' मे परिवर्तन होता है तो कारक 'र' मे भी किसी रूप मे परिवर्तन हो जाता है, तो कहा जा सकता है कि 'अ' का 'र' के साथ कारण सबध है।

हम इस प्रणाली के अनुसार ऐसे स्थल पर तर्क करते है, जहाँ दा वस्तुआ मे परिवर्तन साथ-साथ होते है। पैस्कल ने इस विधि के सहारे सिद्ध किया कि वायुमडल का दबाव बैरोमीटर के पारे की ऊँचाई का कारण है, क्योकि बैरोमीटर को लेकर ज्यो-ज्यो ऊँचाई पर जाया जाय, त्यो-त्यो पारे की भी ऊँचाई कम होती जाती है। यहाँ ऐसा इसलिए होता है कि ऊँचाई पर जाने पर वायुमडल का दबाव कम होता जाता है और पारा गिरता जाता है। वैसे ही किसी धातु के टुकडे को जितना ही गरम किया जाता है, वह बढता है। एक चीज को दूसरी से जितना ही रगडिये, उतनी अधिक गर्मी पैदा होती जाती है। (अतिम दोनो उदाहरणो मे सीमा का ध्यान होना चाहिए)। मात्रिक परिवर्तनो की जाँच मे यह विधि महत्त्वपूर्ण कार्य करती है, इसमे माप के आधार पर दत्तो की आवश्यकता होती है। यदि हम तबाकू की खपत पर, तबाकू की कीमत मे बढती के प्रभाव की समीक्षा करना चाहें, तो हमे सहपरिवर्तन के सिद्धात का प्रयोग करना चाहिए। किंतु, सभवत परिवतन बिलकुल परिशुद्ध नही होगा, बहुत से बाधक कारक हो सकते है, इससे हम निश्चित ढग से नही कह सकते कि जब ये कारक अनुपस्थित हैं, तो कीमत मे कितनी बढती उपभोग मे कमी लायेगी।

इस विधि मे अन्वय-व्यतिरेक की अधिकाश कठिनाइयाँ पायी जाती है। यह विधि भी कारण तथा सहचारी परिस्थितियो के बीच भेद नही कर पाती, इसलिए इससे कारण सबध सिद्ध नही होता। दो घटनाएँ साथ-साथ घट या बढ सकती हैं, क्योकि दोनो एक तीसरे कारण पर आधारित हैं, जैसे घडी के घटे और मिनट वाली सूई। किंतु, इनमे आपस मे कार्य-कारण का सबध नही है। इस विधि की सबसे बडी कमी तो यह है कि जहाँ पर वैविध्य गुणात्मक है वहाँ इसका प्रयोग ही नही हो सकता, और मात्रा की भी विभिन्नता मे कमी-वेशी ठीक ढग से न हो, किसी विशेष स्थान पर जाकर रूक जाने वाली हो, तो वहाँ भी इसका प्रयोग नही हो सकता। जैसे तापक्रम की कमी के साथ-साथ पानी के आयतन मे भी कमी होती है, किंतु

वह भी कुछ हद तक ही (४° से० तक), वैसे ही कसरत करने से शरीर बनता है पर यदि कसरत आवश्यकता से अधिक हो जाय, तो शरीर बनने की जगह बिगडने लगेगा। फिर भी इस बीच मे अपनी कुछ विशेषताएँ हैं, जिनका उल्लेख यहाँ करना उपयुक्त होगा।

प्रकृति मे कुछ ऐसी शक्तियाँ है जो नित्य है, उनका अशेष निरसन नही हो सकता। वे हैं—गर्मी, आकर्षण-शक्ति, वायुमडल का दबाव विद्युत्, चुबक-शक्ति, इत्यादि। किसी वस्तु से पूरी गर्मी या बिजली नही निकाली जा सकती। सहपरिवर्तन-विधि ऐसे ही स्थल मे काम करती है। इसमे हमलोग एक घटना का नये-नये स्थान पर प्रेक्षण करते है और उसमे पाये जाने वाले परिवर्तनो को नोट करते हैं, फिर दूसरी घटना को भी देखते है कि साथ-ही-साथ उसमे भी परिवर्तन हो रहा है। इससे यह निर्णय निकाला जाता है कि दोनो मे कार्य-कारण का सबध है। अत, जहाँ परिस्थितियो का पूर्ण निरसन सभव नही है, वहाँ इसी विधि से काम लिया जाता है।

जहाँ पर दो घटनाओ के परिवर्तन ठीक-ठीक नापे जा सकते हैं, वहाँ सह-परिवर्तन-विधि और प्रणालियो की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय और महत्त्वपूर्ण फल देने मे सफल होती है। ऐसे स्थलो पर यह अन्य नियमो का केवल पूरक नही होती, बल्कि अकेले ऐसा निर्णय देती हैं दूसरो की अपेक्षा नही रहती। तब इसका काम केवल कारण खोजना नही रह जाता, बल्कि इससे दो घटनाओ के बीच सबध की माप भी होती है। भौतिक-विज्ञानविद् गुण सबधो को मात्रा सबधो मे बदलने की कोशिश करते हैं और जबतक इसमे सफल नही होते, तबतक अपना काम पूरा नही समझते। वे केवल दो घटनाओ मे कार्य-कारण का सबध दृढ कर सतुष्ट नही होते। वे कुछ अधिक निश्चित परिणाम पर पहुँचना चाहते है। इसमे यही सहपरिवर्तन विधि-सहायता करती है। वैज्ञानिक केवल इतने ही से सतुष्ट नही होता कि सघर्षण से गर्मी पैदा होती है, बल्कि वह देखना चाहता है कि कितनी रगड से कितनी मात्रा की गर्मी पैदा होती है और इससे वह किसी निश्चित फार्मूले पर पहुँचता है। जब ऐसे परिणाम मिल जाते है, तो उनके आगे साधारण कारण-कार्य-सबध की खोज फीकी मालूम होती है।

§ ६. अवशेष-विधि

मिल ने अवशेष-विधि की परिभाषा इस प्रकार की है "यदि पूर्व आगमन द्वारा यह मालूम हो चुका हो कि किसी घटना मे कुछ कार्य कुछ पूर्ववर्त्ती परिस्थितियो के द्वारा उत्पन्न होते है, तो उनको अलग करने से यह ज्ञात हो जायगा कि शेष भाग, शेष पूर्ववर्त्ती परिस्थितियो के द्वारा उत्पन्न होगा।"

अवशेप-विधि का मूल सिद्धात है कि जो एक वस्तु का कारण है, वह किसी दूसरी वस्तु का कारण नही हो सकता। कभी कभी घटनाए बहुत उलझी हुई रहती है। बहुत सी परिस्थितियाँ सम्मिलित रूप से पूर्वगामी होती है, और वैसा ही बहुत सी अनुगामी। यदि इनमे कुछ परिस्थितियो का ज्ञान पहले से हो, अर्थात् उनका क्या फल है यह मालूम हो, तो शेष का फल निकाला जा सकता है। जैसे यदि किसी मिश्र घटना मे कारक व, म, र पहले के अन्वेपणो के आधार पर च, ई, ह के कार्य के रूप मे मालूम है तो शेप कार्य ज का कारण अवशिष्ट कारक अ है, जो व, म, र के साथ सयुक्त रूप मे उपस्थित है। पानी से भरे गिलास के भार मे से पहले से ज्ञात खाली गिलास का भार घटाने से पानी का भार मालूम हो जाता है। जेवन्स ने इसे 'रासायनिक विश्लेपण' (केमिकल एनॉलिशिस) की प्रणाली कही है। रासायनिक विश्लेपण मे इस रीति से प्राय वस्तुओ का भार निकाला जाता है। जैसे ज्ञात मात्रा मे कॉपर-ऑक्साइड लेकर उस पर गरम नली से हाइड्रोजन दिया जाय और उससे प्राप्त पानी को एक दूसरी नली मे इकट्ठा किया जाय जिसमे गधक का तेजाब हो, इस दूसरी नली के पहले वाले भार को अब वाले भार से घटाने पर नये बने पानी का भार मालूम हो जायगा, और कॉपर-आक्साइड के पहले वाले भार मे से अब वाले भार को घटाने से पानी बनाने वाले ऑक्सिजन का भार मालूम हो जायगा। ऑक्सिजन के इस भार को पानी के भार से घटाने पर हाइड्रोजन का भार मालूम हो जायगा, जिसने ऑक्सिजन के साथ मिलकर पानी बनाया है। इन्ही प्रकार के रासायनिक विश्लेषणो मे अवशेष-विधि का व्यवहार किया जाता है।

अवशेष-विधि का यह स्वरूप स्पष्टत निगमनात्मक है, किंतु हम इसका व्यवहार आगमनात्मक रीति से भी कर सकते है। जैसे मान लें कि किसी घटना की तमाम परिस्थितियाँ निश्चित रूप से ज्ञात नही है। घटना के कुछ भाग का कारण मालूम है, लेकिन कुछ भाग का नही। इस प्रणाली से उस अज्ञात भाग के कारण ढूँढने की ओर सकेत मिलता है। अवशेष-विधि का प्रयोग वस्तुत इस रूप मे अधिक होता है। मिल द्वारा दी गई अवशेष-विधि की परिभाषा सर्वथा निगमनात्मक है, इसलिए यह एकागी कही जा सकती है। मेलोन ने उसे पूरा करने के लिए इन बातो की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है मान ले कि क, ख, ग एक मिश्र घटना है। इसमे हमे मालूम है कि ख का कारण ब और ग का कारण स है, तो शेष क का भी कुछ-न-कुछ कारण होगा ही। जबतक उसे नही ढूँढा जाय, तबतक घटना पूर्णरूपेण स्पष्ट नही कही जा सकती। अत, इस प्रणाली मे उस अज्ञात कारण की ओर ढूँढने का सकेत है। जब अवशेष-विधि का व्यवहार इस रूप मे होता है, तो यह प्रमाणीकरण की रीति न रहकर खोज की रीति हो जाता है। इससे कल्पना बनाने मे बडी सहायता मिलती है। नेपचून नक्षत्र तथा आॅर्गन गैस की खोज इसी प्रकार

हुई है। अवशेष-विधि के आगमनात्मक पहलू को स्पष्ट करने के लिए ये उदाहरण प्राय दिये जाते है। यह देखा गया कि हवा से प्राप्त नाइट्रोजन अन्य रीति से मिले नाइट्रोजन से कुछ भारी है। भार मे इस अतर का कारण ढूँढते हुए रैले और राम्जे ने देखा कि हवा मे आर्गन गैस मिली हुई है और इसी के कारण यह अतर है। वैसे ही ऐडम्स और लेभेरियर ने नेपचून नक्षत्र की खोज की। यह देखा गया कि यूरेनस नक्षत्र अपनी उस कक्षा से कुछ इधर-उधर हट जाता है, जिसे गणना निर्धारित करती है। अत मे उन्हे मालूम हुआ कि दूसरा नक्षत्र भी है, जिसके आकर्षण के कारण यूरेनस अपने कक्ष से हटता है। इस नक्षत्र का नाम उनलोगो ने नेपचून रखा।

छिपे हुए अज्ञात कारण की खोज मे अवशेष-विधि का बहुत हाथ रहता है। नक्षत्र-विज्ञान तथा रसायनशास्त्र मे तो इसके सहारे महत्त्वपूर्ण अन्वेषण हुए हैं। इसके अतिरिक्त राजनीति, अर्थशास्त्र इत्यादि मे भी इसका प्रयोग बहुत होता है। अवशेष-विधि का मुख्य कार्य वहाँ आरभ होता है, जहाँ किसी मिश्रित घटना का अधिक भाग ज्ञात हो गया रहता है, और थोडा बच जाता है। जब विज्ञान की उन्नति होती है, उसका कार्य आगे बढता है और उसकी गणना के फल कही पर कुछ भिन्न आने लगते हैं, तो इसी रीति से काम लिया जाता है। विज्ञान जैसे-जैसे उन्नति करता है, वैसे-वैसे इस प्रणाली की आवश्यकता बढती जाती है। हरसेल के अनुसार विज्ञान की अभी तक की उन्नति मुख्यत इसी प्रणाली से हुई है।

किंतु, अवशेष-विधि मे सबसे बडी कमी है कि यह अकेले कोई परिणाम नही दे सकती। इसका प्रयोग उन्ही स्थलो पर सभव है, जहाँ विज्ञान बहुत आगे बढ चुका हो और अन्य विधियाँ काफी काम कर चुकी हो। यह स्वय कारण नही ढूँढ सकती, बल्कि कारण की ओर केवल सकेत कर सकती है। अन्य नियमो से कारण की खोज होती है, इससे कारण का केवल सकेत मिलता है। यो तो देखा जा चुका है कि अवशेष-विधि मे निगमनात्मक और आगमनात्मक दोनो पहलू हैं, किंतु विशेष रूप से वे प्रेक्षण पर आधारित नही रहते। प्रेक्षण से इसे केवल इतना ही मिलता है कि कुछ परिस्थितियाँ पूर्ववर्त्ती हैं और कुछ अनुवर्त्ती। अधिक काम इसमे गणना से लिया जाता है। हम गणना करके देखते हैं कि पूर्ववर्त्ती एव अनुवर्त्ती परिस्थितियो मे कुछ अनुवर्त्ती परिस्थितियो के कारण के रूप मे कुछ पूर्ववर्त्ती परिस्थितियाँ मालूम हैं। इससे निष्कर्ष निकालते हैं कि शेष घटना का कारण शेष पूर्ववर्त्ती परिस्थिति होगी। यहाँ सीधे प्रेक्षण से कोई परिणाम नही मिलता। इसमे मुख्यत गणना और निगमन का हाथ रहता है। इस दृष्टि से अवशेष-विधि को मुख्यत निगमन की विधि कहना चाहिए।

§ ७. अन्वेषण-विधियों पर समीक्षात्मक पुनर्विचार

अन्वेषण-विधियों पर एक समान दृष्टि डालने से तुरत मालूम हो जाता है कि अन्वय एवं व्यतिरेक-विधियाँ ही मौलिक हैं। अन्य तीनों विधियाँ इन्हीं दोनों पर किसी-न-किसी रूप में आधारित हैं। अन्वय-व्यतिरेक-विधि कोई स्वतंत्र विधि नहीं है, क्योंकि इसमें केवल अन्वय-विधि का दोहरा व्यवहार होता है। इसीलिये कभी-कभी इसे द्वन्वय-विधि भी कहा गया है। अन्वय-विधि कारण-बहुत्व से दूषित हो जाती है। उसे दूर करने के लिए मिल ने द्वन्वय-विधि की कल्पना की। सहपरिवर्तन-विधि का प्रयोग आवश्यकतानुसार अन्वय या व्यतिरेक रूप में होता है। यदि अन्य परिस्थितियाँ प्रत्येक उदाहरण में एक-सी रहती हैं, तो वह व्यतिरेक का रूपांतर होता है, और यदि अन्य परिस्थितियाँ भी प्रत्येक उदाहरण में बदलती रहती हैं, तो वह अन्वय-विधि का रूपांतर होता है। इसी प्रकार अवशेष-विधि भी व्यतिरेक विधि का ही एक विशेष रूपांतर है। दोनों के मूल में सिद्धांत एक ही है, अंतर है केवल अभावात्मक उदाहरण पाने में। व्यतिरेक में अभावात्मक उदाहरण प्रेक्षण से प्राप्त होता है और अवशेष में गणना से।

अन्वय एवं व्यतिरेक-विधियों को विशेष महत्त्वपूर्ण मानते हुए भी मिल ने व्यतिरेक-विधि पर अधिक बल दिया है, क्योंकि अन्वय-विधि से कारण का केवल अनुमान लगाया जाता है, किंतु व्यतिरेक-विधि से वह सिद्ध होता है। लेकिन, अन्वय-विधि का महत्त्व कम नहीं है। यह सरल है और विस्तृत क्षेत्र में काम करती है। यह भी कहना सर्वथा सत्य नहीं होगा कि अन्वय प्रेक्षण-विधि है और व्यतिरेक प्रयोग की, क्योंकि प्रेक्षण का ही एक छोटा रूप प्रयोग है, जिसमें परिस्थितियाँ नियन्त्रित रहती हैं। जब अन्वय को प्रधानतः प्रेक्षण-विधि कहा जाता है, तो इसका अर्थ यह नहीं होता कि इसमें प्रयोग से कोई प्रयोजन नहीं। प्रयोग का भी व्यवहार इसमें हो सकता है। हाँ, प्रयोग के व्यवहार में व्यतिरेक-विधि अधिक अच्छा फल दे सकती है।

मिल ने इन पाँच अन्वेषण-विधियों की बड़ी बड़ाई की है। उनके अनुसार ये ही पाँच आगमनिक निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए सीधे मार्ग हैं। यदि इनके नियमों का अच्छी तरह पालन किया जाय, तो आगमनिक तर्क बिलकुल सच्चा होगा। किंतु, आजकल के विद्वान इन विधियों को उतना महत्त्व देने के लिए तैयार नहीं, हैं जितना मिल ने दिया है। इनमें तीन कठिनाइयाँ देखी गई हैं, जिनका संक्षेप में आगे उल्लेख किया जाता है।

प्रायोगिक विधियों के लिए पहली कठिनाई है कि प्राकृतिक घटनाएँ बहुत उलझी

होती हैं। वे इतनी सीधी नही होती कि उन्हे सरलतापूर्वक इन विधियो के साधारण फार्मूलो मे बाँट दिया जाय। इन विधियो मे यह मानकर आगे बढा जाता है कि कुछ पूर्ववर्त्ती परिस्थितियाँ है और कुछ अनुवर्त्ती जिनका साधारण बँटवारा अ, ब,स एव क, ख, ग, इत्यादि मे हो सकता है। किंतु व्यवहार मे ऐसी घटनाएँ नही मिलती, जिनका ऐसा साधारण बँटवारा हो सके। इतना ही नही, कभी तो यह भी पहचानना कठिन हो जाता है कि कौन पूर्ववर्त्ती परिस्थिति है और कौन अनुवर्त्ती। अत घटनाओ का अ, ब, स— क, ख, ग मे वर्णन करना व्यावहारिक दृष्टि से सगत नही। ह्वीवेल ने कहा है कि 'मिल' के वर्णित प्रयोगात्मक विधियो मे उन चीजो को मान लिया जाता है, जिनका पाना ही दुर्गम है, जैसे—प्रकृति की मिश्रित घटना का साधारण वर्गीकरण। 'मिल' ने इस कठिनाई को स्वीकार किया है, पर उनका कहना है कि प्रकृति की मिश्रित घटनाओ का साधारण बँटवारा करने के पूर्व उसका नियम निर्धारित कर लेना चाहिए, जैसे—निगमन मे तर्क के पूर्व न्यायवाक्य का नियम बना लिया जाता है। लेकिन, उनके प्रत्युत्तर मे हम कह सकते है कि नियम तो निर्धारित हो जाता है, पर उससे व्यवहार मे लाभ नही होता।

यदि सिद्धात रूप मे अन्वेषण-विधियो को मान भी लिया जाय, तो दूसरी कठिनाई उठ खडी होती है। जहाँ किसी घटना के कई कारण हो सकत है, वहाँ इन विधियो से शुद्ध निर्णय नही मिल सकता। अन्वय-विधि को हमलोगो ने देखा, कारण-बहुत्व से बिलकुल ही दूषित हो जाती है। यदि उदाहरणो की सख्या बहुत बढायी जाय और सयुक्त अन्वय-व्यतिरेक-विधि का सहारा लिया जाय, तो यह कठिनाई कुछ हद तक दूर हो सकती है, तब भी यह मूल से नही जा सकती। व्यतिरेक-विधि से सिद्ध हो सकता है कि किसी विशेष उदाहरण मे अमुक घटना का अमुक कारण है। किंतु, इससे यह नही सिद्ध होता कि उस घटना का वही सदा कारण हर अवस्था मे रहेगा। इसी प्रकार यदि बहुत से फल भी आपस मे मिलकर एक हो गये हो तो इन विधियो से शुद्ध परिणाम नही निकल सकता।

'मिल' की अन्वेषण-विधियो पर तीसरा दोषारोपण हो सकता है कि ये विधियाँ कहने मात्र को आगमनात्मक हैं, पर वस्तुत ये सभी निगमनात्मक हैं। 'बेन' ने तो यहाँ तक कहा है कि हमलोग केवल सभ्यता के नाते इन्हे आगमन-विधि की सज्ञा देते हैं। यह कहना अधिक न्यायसगत होगा कि 'आगमनिक खोज मे ये नैगमनिक विधियाँ हैं'। यह इसलिए कहा गया है कि सभी विधियाँ कारण की परिभाषा पर आधारित हैं और उसके किसी एक पहलू को लेकर आगे बढती हैं।

मिल की विधियो का इस प्रकार सक्षेप मे वर्णन करने मे हमारा सकेत रहा है कि यदि कारण-सबधो को सिद्ध करने के लिए इन्हे पूर्णत सुव्यवस्थित

कार्य-प्रणालियो के रूप मे लिया जाय, तो इनमे गम्भीर दोष मिलते हैं। इन बातो पर ध्यान देने योग्य है (१) प्रत्येक विधि की पूर्वमान्यता है कि असवद्धता के निर्णय ठीक-ठीक ले लिये गये हैं। (२) इसका अर्थ है कि अन्वेषक कार्य प्रारभ करने के पूर्व प्राक्कल्पना को इस रूप मे सूत्रबद्ध करने की स्थिति मे है कि परिस्थितियाँ अ, ब, स, द, मे बाँट दी गई हैं। किंतु, यह कदम अत्यत कठिन है और इन विधियो के मिल' के विवरण मे कही कोई ऐसी बात नही मिलती, जिससे मालूम हो कि उन्होने इसकी कठिनाई या महत्व को स्वीकार किया है। (३) समुचित रूप मे प्रयुक्त होने पर प्रत्येक विधि से प्राप्त होने वाले निष्कर्ष के लिए कुछ आधार मिलते है, पर ये आधार निर्णायक नही हो सकते ।

'मिल' की प्रणालियो का मूल्य वस्तुत इसमे है कि घटनाओ के कारण ढूँढने की दिशा मे वे अल्पतम परिस्थितियाँ प्रस्तुत करती है। बडी सावधानीपूर्वक इनका प्रयोग करने से हम उन कारको का निरसन करते हैं, जो सभव कारण मालूम पड सकते हैं, क्योकि जब अन्वेषित कार्य का प्रथम प्रेक्षण हुआ था, तो ये कारक उपस्थित थे. ये विधियाँ प्रदर्शित करती हैं कि र का कारण अ तब तक नही हो सकता, जब तक (i) नियमित रूप से अ के बाद र नही आये, (ii) र के अनुपस्थित रहने पर अ कभी भी उपस्थित न रहे, (iii) अ एव र मे सहपरिवर्तन हो।

— o —

अध्याय १३

§ प्राक्कल्पना

§ १. प्राक्कल्पना का स्वरूप एवं महत्त्व

यदि हम उस प्रणाली मे रुचि रखते हैं, जिसके द्वारा वैज्ञानिक खोजें होती है, तो प्राक्कल्पना के प्रतिपादन एव अभिवर्धन द्वारा सपन्न कार्य के महत्त्व की शायद ही अतिशयोक्ति कर सकें। प्राक्कल्पना एक प्रतिज्ञप्ति है, जिसका सकेत प्राप्त प्रमाण द्वारा मिलता है, वह प्रमाण निष्कर्ष को सस्थापित कर सकता है, किंतु उसे सिद्ध क ने मे अपर्याप्त होता है। जब हम पूछना चाहे कि कोई घटना क्यो हुई है, तो वहाँ पर प्राक्कल्पना की रचना होती है। उदाहरणार्थ मूल्यो मे सहसा गिरावट के वाद सहसा वृद्धि क्यो होती है ? पानी बहकर मैदान से पहाडी पर क्यो नही चढता, लेकिन नल मे ऊपर चढता है ? पानी नल मे समुद्र की सतह से तेंतीस फीट से ऊपर क्यो नही चढता ? कुछ मनुष्य कुस्वप्नों से अत्यधिक कष्ट क्यो पाते हैं ?

'क्यों' के रूप मे पूछे गये प्रश्नो के उत्तर की अपेक्षा मानवीय या दैवी लक्ष्य की शब्दावली मे हो सकती है, अथवा ऐसे उत्तर के रूप मे हो सकती है कि पहले क्या घटना घट चुकी है, जिसके कारण यह घटना हुई है। पहले मे प्रयोजनमूलक व्याख्या की माँग है, दूसरे मे अपेक्षा है कि वस्तुएँ कैसे किसी की इच्छा या उद्देश्य से स्वतत्र आपस मे सवद्ध हैं। इसे बहुधा वैज्ञानिक व्याख्या कहते हैं, फिर भी यह सोचना भूल होगी कि वैज्ञानिक व्याख्याएँ उद्देश्यो के सदर्भ नही हो सकती, यदि कार्य प्राकृतिक घटनाओ से भिन्न हैं, तो उनके सदर्भ मे ऐसी व्याख्याएँ अवश्य हो सकती है।

ज्ञातव्य है कि प्रश्न को प्रेरित करने वाली परिस्थितियो के बारे मे कुछ भी ज्ञान के आधार के अभाव मे 'क्यो' या 'कैसे' से प्रारभ होने वाला बुद्धिमानीयुक्त

प्रश्न नही किया जा सकता और प्रश्नकर्त्ता को जितना ज्ञान है, उससे काफी अधिक ज्ञान के आधार के बिना इसका उत्तर नही दिया जा सकता। एक ही व्यक्ति द्वारा प्रश्न और उसका उत्तर दोनो तैयार किया जा सकता है, ऐसी परिस्थिति मे वह पहले ज्ञान की खोज मे है, बाद मे वह अपेक्षित ज्ञान प्राप्त कर चुका है (मान लिया जाता है कि उसने प्रश्न का उत्तर ठीक दिया है)। वैज्ञानिक अन्वेषण के इतिहास का साधारण परिचय यह प्रदर्शित करने के लिए पर्याप्त है कि सबद्ध ज्ञान की पृष्ठभूमि कितना अनिवार्य है। इस सक्षिप्त विवरण मे हम सबद्ध ज्ञान की प्राप्ति मान लेते हैं। पर, भूलना नही चाहिए कि हमने ऐसा किया है।

किसी प्रश्न के उत्तर के लिए प्राक्कल्पना के प्रयोग करने, की विधि मे सामान्यत चार कदम माने जाते हैं (१) किसी जटिल सुपरिचित परिस्थिति का बोध होना, जिसमे किसी वस्तु की व्याख्या का अनुभव होता है। (२) किसी प्राक्कल्पना को सूत्रबद्ध करना, अर्थात् किसी प्रतिज्ञप्ति का कथन करना, जो पूर्व प्रेक्षण के आधार पर प्राप्त दत्त से बिना व्याख्या हुई घटना को जोडता है, प्रतिज्ञप्ति ऐसी हो कि यदि वह सत्य है, तो दी हुई घटना अभी तक अप्रेक्षित घटनाओ के साथ निगमित हो सके। (३) प्राक्कल्पना से उसके निष्कर्ष निकालना, इन निष्कर्षो मे दोनो को सम्मिलित रहना चाहिए, दी हुई घटना तथा मानी हुई घटनाएँ जिनका होना, यदि प्रतिज्ञप्ति सत्य है, अनिवार्य है। (४) प्रेक्षित घटनाओ के सहारे प्राक्कल्पना का परीक्षण करना। इस अतिम कदम को प्राय कल्पना का 'सत्यापन' कहा जाता है। यह नाम बहुत सु दर नही है, क्योंकि जिसका सत्यापन होता है, वह कि परिणाम निकलते हैं, न कि मूल प्रतिज्ञप्ति की प्राक्कल्पना सत्य है। प्रासगिक घटना, जिसकी खोज की जा रही है, का होना विभिन्न प्राक्कल्पनाओ से मेल खा सकता है।

एक साधारण उदाहरण लें। हम कल्पना करे कि कोई पूछता है आलमारी मे रखा हुआ दही क्यो नही है, मैंने आज ही प्रात उसमे रखा था? प्रथम प्राक्कल्पना (क[1]) सभवत कोई भीतर आया और उसे चुरा ले गया। यदि ऐसी बात है, तो तुमने खिडकी के पास से किसी को जाते हुए अवश्य देखा होगा (क्योंकि दही वाली आलमारी पीछेवाले बगीचे मे है, और कोई व्यक्ति पीछे वाली चहारदिवारी को पार नही कर सकता, वहाँ पहुँचने का केवल एक ही मार्ग घर की बगल से है, जो कोई वहाँ जाता, सामने के बैठनेवाले कमरे की खिडकी के पास से जाता)। किंतु तुमने किसी को खिडकी के पास से जाते हुए नही देखा, तो हम निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि किसी व्यक्ति ने नही लिया, क्योंकि दिन के इस समय खिडकी पर पडती हुई छाया को तुम सदैव देखते हो। फिर संभवत महरिन ने दही को बर्तन माँजनेवाले स्थान पर रख दिया है (क[2])। यदि ऐसी बात है, तो वह वहाँ अभी भी होगा, पर वहाँ नही है।

सभवत· कोई बिल्ली दीवार फाँद कर चली आई और दही को खा गई। यदि ऐसी बात है, तो आलमारी की लकडी पर खरोच होंगे, उस पर खरोच के चिह्न है, अत कोई बिल्ली भीतर घुस आई और दही खा गई।

इस तर्क का आकार इस प्रकार है यदि $क_1$ तो प (अ) (यहाँ 'अ', $क_1$ से निगमित तथाकथित घटना के लिए शॉर्टहैंड है, और 'प (अ)' प्रतिज्ञप्ति के लिये शॉर्टहैंड है कि घटना हुई। ऐसे ही शॉर्टहैंड प्रतीक प्रत्येक स्थल पर प्रयुक्त हुए हैं)। पर न-प (अ)। यदि $क_2$ तो प (ब), पर न-प (ब)। यदि $क_3$ तो प (स), पर प (स)। आकारिक निगमन के नियम प्रदर्शित करते हैं कि $क_1$ आपादन करता है प (अ), तो न-प (अ) आपादन करता है $क_1$। अत प (अ) नहीं है यह सत्य (अर्थात् प (अ) की असत्यता) हमारे इस कथन को न्यायसगत बनाते हैं $क_1$ असत्य है। $क_2$ के साथ भी आकारिक प्रणाली वही है। पर $क_3$ के सदर्भ मे स्थिति दूसरी है, यहाँ हमे प्राप्त होता है, यदि $क_3$ तो प (स), पर प (स), इसलिये $क_3$। यहाँ फलवाक्य-विधान-दोप हो जाता है। इसलिए हम $क_3$ को केवल इसी शर्त पर स्वीकार कर सकते हैं कि $क_1$, $क_2$, $क_3$ सम्मिलित रूप मे सभी सभव कल्पनाओ को समाप्त कर देते हैं, तब हमे निम्न वैध तक प्राप्त होगा (जहाँ 'प (ओ) दही गायब हो गया है प्रतिज्ञप्ति के लिये शॉर्टहैंड है)।

(i) यदि प (ओ), तो या तो $क_1$ या $क_2$ या $क_3$,
$क_1$ या $क_2$ या $क_3$ ≡ $क_1$ एव $क_2$ एव $क_3$ असत्य है।

(ii) यदि $क_1$, तो प (अ), लेकिन प (अ) असत्य हे $क_1$ असत्य है।

(iii) यदि $क_2$, तो प (ब), लेकिन प (ब) असत्य है, $क_2$ असत्य है।

(iv) यदि प (ओ), तो या तो $क_1$ या $क_2$ या $क_3$,
परतु $क_1$ या $क_2$ नही,

∴ यदि प (ओ), तो $क_3$, परतु प (ओ), $क_3$।

यह कहा जा सकता है कि तथ्यात्मक अन्वेपणो मे उपर्युक्त (i) के आकार मे किसी प्रतिज्ञप्ति का अभिकथन कभी भी सभव नही है, हमे निश्चय नही हो सकता कि सभी सभव प्राक्कल्पनाएँ समाप्त हो गई हैं। अत अभिकथन कि हमारी प्राक्कल्पना निष्कर्षों के आधार पर सत्यापित हो गई है, इस अभिकथन का द्योतक नही होता कि प्राक्कल्पना निश्चित सत्य है, बल्कि हमे कहना चाहिए कि निगमित निष्कर्ष सत्यापित हो गये हैं और प्राक्कल्पना की सपुष्टि हो गई है।

जब निगमित निष्कर्षों का सत्यापन नही होता (अर्थात् प्रतिज्ञप्ति, जिसमे कहा जाता है कि अमुक घटना हुई है, असत्य है), तो इससे सदैव ऐसी बात नही निकलती

कि मूल प्राक्कल्पना पूर्णत सदेहात्मक है, सभव है कि इस रूप मे सशोधन हो सकता है कि मूल निगमित निष्कर्ष का अब आपादन नही हो। किसी प्राक्कल्पना को सिद्ध करने मे सफल भविष्योक्ति बहुधा बहुत महत्त्वपूर्ण समझी जाती है। फिर भी इसके महत्त्व को वास्तविकता से अधिक समझना आसान है, यदि हम याद रखे, कि एक से अधिक प्राक्कल्पनाएँ तथ्य के साथ सगत हो सकती हैं। समाचारपत्रीय ज्योतिषियो की भविष्यवाणी पर विश्वास करने वाले इसे भूल जाते हैं, वे सोचते हुए जान पडते हैं कि सफल भविष्यवाणी के साथ सगत एक मात्र प्राक्कल्पना है कि ज्योतिषी ने नक्षत्रो से अपनी सूचना प्राप्त की है।

§ २. प्राक्कल्पना, सिद्धांत, नियम और तथ्य

प्राक्कल्पना (Hypothesis), सिद्धात (Theory), नियम (Law), और तथ्य (Fact), ये चारो पद आपस मे ऐसे मिले हुए हैं कि इनके प्रयोग मे अक्सर भूल हो जाया करती है। बोलचाल की भाषा को कौन कहे, वैज्ञानिक क्षेत्र मे भी इनके व्यवहार सदा ठीक ढग से एक अर्थ मे नही हुए हैं। इसलिए इनके अतर को स्पष्ट समझ लेना आवश्यक है।

प्रेक्षण मे हमे घटना या वस्तु के रूप मे कोई तथ्य मिलता है। वह तथ्य किसी कल्पना की ओर सकेत करता है, जिससे उसकी व्याख्या हो सके। प्राक्कल्पना केवल अटकल मात्र है। यह सोच-समझ कर की जाती है, ताकि उससे एक तरह की घटनाओ की व्याख्या हो सके। लेकिन, उसके गलत होने की सभावना बराबर बनी रहती है। यदि किसी प्राक्कल्पना से घटनाविशेष के सब पहलू स्पष्ट नही हुए, तो त्याज्य हो जाती है अथवा उसमे आवश्यकतानुसार बहुत परिवर्तन कर दिये जाते हैं। इसीलिये प्राक्कल्पना की अवस्था सदिग्ध अवस्था कही जाती है। यह आगे चलकर सत्य भी सिद्ध हो सकती है और असत्य भी। यदि कल्पना बराबर वैसी घटनाओ की स्पष्ट व्याख्या करती गई और प्रमाणीकरण से भी शुद्ध निकलती गई, तो उसका महत्त्व बढ जाता है। अब यह केवल प्राक्कल्पना नहीं रह जाती, बढकर सिद्धात (Theory) हो जाती है। यदि सिद्धात अपने क्षेत्र मे बहुत दिन तक काम करता रहे, उसके क्षेत्र को सभी घटनाएँ उससे स्पष्ट होती रहें, यहाँ तक कि लोग सर्वमान्य ढग से उसके आधार पर भविष्यवाणी करने लग, तब यह नियम (Law) का स्थान ले लेता है। जब नियम का भी दर्जा आगे बढ जाता है, तो लोग उसे नितात सत्य मान लेते हैं। यह नियम फिर हमारे लिए तथ्य (Fact) हो जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वैज्ञानिक अपनी खोज मे किसी निश्चित तथ्य से प्रारभ करता है और प्राक्कल्पना, सिद्धात तथा नियम के दर्जो को तय करते हुए

फिर तथ्य पर पहुँच जाता है। वैज्ञानिक का लक्ष्य रहता है कि उसकी खोज तथ्य की तरह निश्चित हो। हो सकता है कि इसमे समय बहुत लगे, कई पीढी तक उस क्षेत्र मे अनुसधान का क्रम जारी रहे। किंतु, जब तक नियम तथ्य न बन जाय, तब तक उसका काम पूरा नही समझा जाता।

इन पदो का अर्थ हमलोग उदाहरण द्वारा समझ सकते हैं। हमलोग कहते हैं—नेबुलर प्राक्कल्पना (Nebular hypothesis), विकास के सिद्धात (The theory of evolution), गति के नियम (The laws of motion), गणित के तथ्य (The facts of mathematics)। इनके सत्य होने की सभावना क्रमश बढती जाती है। अत मे हम उस स्तर पर पहुँच जाते हैं जहाँ हमे सर्वमान्य सत्य मिलते हैं, गणित के तथ्य जैसे स्वयसिद्धियाँ। यह क्रम देखने मे तो आसान मालूम होता है, पर व्यवहार की दुनिया मे इस पर काफी मतभेद है। कोई 'विकासवाद' को सिद्धात मानता है तो कोई उसे तथ्य, और इन दोनो के प्रतिकूल कोई तीसरे इसे केवल अप्रमाणित कल्पना या अटकल मानते हैं। ऐसी परिस्थिति मे निर्णय देनेवाला वही हो सकता है, जो वास्तव मे अधिकारी हो।

§ ३. प्राक्कल्पना की शर्तें एवं प्रमाण

मनमाने ढग के अटकल को प्राक्कल्पना नही कहते। वैज्ञानिक प्राक्कल्पना वह, जो प्रमाणित होने पर नियम मे परिणत हो जाय। इसलिये प्राक्कल्पना बनाते समय इसके कुछ मुख्य नियमो का पालन करना आवश्यक है, अन्यथा वह शुद्ध वैज्ञानिक प्राक्कल्पना नही होगी। शुद्ध वैज्ञानिक प्राक्कल्पना की शर्तें निम्नलिखित हैं—

(१) प्राक्कल्पना को निश्चित एव तर्कसगत होना चाहिए। जो भी प्राक्कल्पना की जाय, उसका एक निश्चित रूप होना आवश्यक है, नही तो वह प्राक्कल्पना वैज्ञानिक नही होगी। जैसे, यदि शीत-ज्वर के कारण के बारे मे प्राक्कल्पना की जाय कि किसी भीतरी गडबडी से हुआ है, तो वह प्राक्कल्पना किसी निश्चित कारण के बारे मे नही हुई, इसलिए इसका कोई वैज्ञानिक महत्त्व भी नही है। प्राक्कल्पना सदा किसी निश्चित कारण के बारे मे होनी चाहिए, ताकि उसके सत्य होने पर विचार हो सके। किसी निश्चित कारण को प्राक्कल्पना के रूप मे पाकर उसे तर्क की कसौटी पर कसना पडता है। इसका मुख्य रूप है—कारण का स्वत सगठित होना। यदि किसी कारण मे आतरिक विरोध हो, तो वह कारण त्याज्य है। जैसे यदि कहा जाय कि पृथ्वी शेपनाग के फण पर है, तो प्रश्न उठता है कि शेपनाग कहाँ पर हैं? यदि वे कछुए के पीठ पर हैं, तब भी प्रश्न ज्यो-का-त्यो बना रहता है कि वह कछुआ किस चीज पर है। यह प्राक्कल्पना स्वत व्याघाती है और फलत त्याज्य हो जाती है।

(२) प्राक्कल्पना सदैव किसी यथार्थ कारण के बारे मे होनी चाहिए, अर्थात् जिस पर विश्वास जम सके। जैसे रात मे यदि कोई आदमी कही भाग गया हो, तो कोई प्राक्कल्पना करे कि उसे 'मच्छर उठा ले गये होगे', या दिल की धडकन बद हो जाने के कारण मरे हुए आदमी को देखकर कोई कहे कि 'भूत ने इसकी श्वास नली मे बैठकर श्वास बद कर दिया होगा', तो ये सर्वथा अयथार्थ कल्पनाएँ होगी। विज्ञान के क्षेत्र मे ऐसी प्राक्कल्पनाओ का कोई मूल्य नही है। इसीलिए न्यूटन ने कहा है कि केवल यथार्थ कारण (Vera-Causa) ही प्राक्कल्पना के रूप मे मान्य हो, दूसरी नही। यथार्थ कारण से हमारा यह तात्पर्य नही है कि हम उसे पहले से ही सत्य जानते हैं अथवा वह हमारी इन्द्रियो की पकड मे आने वाला है। यदि कारण को हम इतने सकुचित अर्थ में समझेंगे, तो विज्ञान की प्रगति बद हो जायेगी। हम विज्ञान मे ईथर और परमाणु की कल्पना करते हैं, जो न इन्द्रियगम्य हैं और न तो जीवन मे कारण के रूप मे मिलते हैं, पर विज्ञान में इनका महत्त्व बहुत है। वैज्ञानिक अन्वेषणो मे ये प्राक्कल्पताएँ बहुत लाभप्रद सिद्ध हुई हैं। इसलिए यथार्थ कारण से हमारा मतलब है कि उसे वैज्ञानिक बुद्धि यथार्थ मानने को तैयार हो। जो कारण इन्द्रिय-गम्य नही हैं और जिनका प्रमाणीकरण भी सभव नही है, किंतु जिनके मानने से घटनाओ की व्याख्या होती है और नये-नये सिद्धातो के ढूँढने मे सहायता मिलती है, तो वे भी यथार्थ कारण की कोटि मे आते हैं। ये प्राक्कल्पनाएँ यथार्थ कारण का प्रतिनिधित्व करती हैं।

(३) प्राक्कल्पना को प्रमाणित होने योग्य होना चाहिए। जो प्राक्कल्पना प्रमाणित नही हो सके, उसका कोई वैज्ञानिक महत्त्व नही है। हमलोग किसी घटना के कारण के बारे मे प्राक्कल्पना करते हैं और जब तक वह किसी तरीके से सिद्ध नही हो जाती, तब तक वह सदिग्ध अवस्था मे रहती है। ऐसी प्राक्कल्पना से कोई वैज्ञा-निक सिद्धात नही निकलता। इसलिये प्राक्कल्पना की यह महत्त्वपूर्ण शर्त है कि उसमे प्रमाणित होने की क्षमता हो। यदि किसी की बीमारी का कारण भूत-प्रेत माना जाय या अतिवृष्टि का कारण इन्द्र का प्रकोप माना जाय, तो ये ऐसी प्राक्कल्पनाएँ होगी, जो प्रेक्षण, प्रयोग या किसी अन्य रीति से प्रमाणित नही हो सकती। किसी प्राक्कल्पना को प्रमाणित करने की रीति है उसे सत्य मानकर निगमन निकालना और प्रेक्षण द्वारा उसकी पुष्टि करना। भूत-प्रेत की प्राक्कल्पना से ऐसा कोई निगमन नही निकलता, जो उस तरह की घटनाओ का समान रूप मे स्पष्टीकरण करे। निगमन मे कुछ कल्पनाएँ अवश्य है, जिनका साक्षात् प्रमाण नही है, किंतु घुमा-फिरा कर उसे सिद्ध कर सकते हैं। जैसे ईथर का प्रेक्षण और प्रयोग सभव नही है, किंतु इसे सत्य मान कर जो प्रयोग किये जाते हैं, वे सत्य निकलते हैं और उनसे विज्ञान की उन्नति होती है। इसलिए इसे यथार्थ ही माना जाता है।

(४) प्राक्कल्पना को स्थापित नियमो का विरोधी नही होना चाहिए। इस शर्त को हॉब्स और ह्वायल ने प्रस्तुत किया है। इससे उनका तात्पर्य यह है कि वैज्ञानिक को नई कल्पना बनाते समय पहले प्राप्त तथ्यो का ध्यान रखना चाहिए। कुछ नियम ऐसे है जो प्राय सत्य के रूप मे मान लिये गये हैं। इसलिये यदि कोई प्राक्कल्पना उनके विरोध मे आ रही हो, तो उसके प्रति बहुत सतर्क हो जाना चाहिए। जैसे कोई वैज्ञानिक ऐसी प्राक्कल्पना से किसी घटना की व्याख्या करे जो शक्तिसरक्षण नियम का विरोधी हो या कोई गणितज्ञ ऐसी सख्या की बात करे, जिसमे एक जोडने पर भी वृद्धि नही होती, तो हमलोगो को उसके सत्य होने मे शका होने लगती है।

फिर भी यह शर्त केवल सतर्क करती है। इसको अक्षरश सत्य नही मान लिया जा सकता। ऐसी भी प्राक्कल्पनाएँ हुई हैं, जिनसे पीछे के स्थिर नियम भी परिवर्तित हो गये है। यहाँ तक कि उस क्षेत्र का पूरा ढाँचा ही बदल गया है। कोपरनिकस (१४७३-१५४३) के पहले प्राय यह स्थिर सत्य था कि पृथ्वी नही चलती, सूर्य इसके चारो ओर घूमता है। पर, उसकी प्राक्कल्पना ने इसका पूरा रूप ही बदल दिया। इसलिए यह शर्त केवल सतर्क करती है कि यदि पीछे के नियमो से विरोध हो, तो बडी सतर्कता से इसके जाँच होनी चाहिए।

अब हम प्राक्कल्पना के प्रमाणीकरण पर विचार करेंगे। प्राक्कल्पना किसी घटना की व्याख्या के लिए की जाती है, किंतु उतने ही से वह सत्य नही मान ली जाती। नियम के रूप मे लाने के पहले उसकी पूरी जाँच की जाती हैं। हर दृष्टि से खरी उतरने के बाद ही वह सर्वमान्य होती है। प्राक्कल्पना की परीक्षा निम्न रीतियो से की जाती है—

(१) समर्थन—वास्तविक वस्तु से प्राक्कल्पना को मिलाकर देखना कि दोनो मे मेल है कि नही, समर्थन कहलाता है। यह प्राक्कल्पना की सबसे सु दर जाँच है। इसको प्रेक्षण एव प्रयोग से पूरा किया जाता है। जैसे, यूरेनस के कक्ष मे गडबडी देखकर प्राक्कल्पना की गई कि पास मे कोई ग्रह है, जिसके आकर्षण से यह गडबडी है। इसका समर्थन प्रेक्षण द्वारा हुआ। खूब शक्तिशाली दूरबीन से देखा गया, तो वास्तव मे एक ग्रह मिला, जिसका नाम नेपचून पडा। कल्पना के अनुसार यह समर्थन प्रयोग से भी मिलता है। जैसे, प्राक्कल्पना की गई कि मलेरिया बुखार का कारण एक प्रकार का जहरीला मच्छर (अनोफिल) है। इसकी जाँच के लिए प्रयोग किया गया, मच्छर के कीटाणु को आदमी के खून मे इ जेक्शन द्वारा पहुँचाया गया और फलस्वरूप वही बुखार मिला। इस प्रकार इस प्राक्कल्पना की जाँच हो गई।

कुछ ऐसी भी प्राक्कल्पनाएँ हैं, जिनका साक्षात् समर्थन प्रेक्षण या प्रयोग द्वारा नही हो सकता। ऐसी प्राक्कल्पनाओ के लिए परोक्ष समर्थन का रास्ता अपनाया

जाता है। जैसे ईथर के बारे मे कल्पना की गई है। यह इन्द्रियगम्य वस्तु नही है। इसलिए इसकी जाँच प्रेक्षण और प्रयोग दोनो मे से किसी से नही हो सकती। इसकी जाँच के लिए परोक्ष समर्थन से काम लिया गया। ईथर को सत्य मानकर निष्कर्ष निकाला गया। एक के बाद एक सभी निष्कर्ष सत्य निकलते गये, तो उसको ग्राह्य मान लिया गया।

(२) अपने क्षेत्र मे अकेली प्राक्कल्पना होना। यदि प्राक्कल्पना को प्रमाणित करने के लिए अनुभव का समर्थन न मिल सके, तो देखना चाहिए कि अपने क्षेत्र मे वह कैसा काम करती है। यदि कोई प्राक्कल्पना उस प्रकार के सभी उदाहरणो की व्याख्या सतोपप्रद कर लेती है और साथ-ही-साथ उस क्षेत्र मे अकेले है, वैसी सतोपप्रद व्याख्या दूसरी कल्पनाओ से नही मिलती, तो उसे प्रमाणित समझा जाता है। जैसे ईथर की प्राक्कल्पना से प्रकाश के हर एक व्यापार की व्याख्या हो जाती है और यह कल्पना अपने क्षेत्र मे अकेली है। दूसरी कोई प्राक्कल्पना इतना सतोषप्रद फल नही देती, इसलिये यह मान्य है। वैसे ही लोग ईश्वर की कल्पना करते है। उनके अनुसार विश्व के कण-कण की व्याख्या ईश्वर के मानने पर होती है। कोई दूसरी प्राक्कल्पना सब चीजो की इतनी सतोषप्रद व्याख्या नही कर पाती। इसलिए ईश्वर का अस्तित्व प्रमाणित समझना चाहिए।

पर, इस प्रमाण से मनोवैज्ञानिक सतोष मिलता है, तार्किक नही। यदि प्राक्कल्पना अकेली है और सब उदाहरणो की व्याख्या करती है तो हम सोचने लगते हैं कि यह सत्य होगी। पर, साक्षात् या परोक्ष किसी तरह से अनुभव का समर्थन न पाकर इसके गलत होने की आशका बनी रहती है। शायद भविष्य मे ऐसी प्राक्कल्पना मिले, जो इस तरह के उदाहरणो की व्याख्या करने के साथ-साथ अनुभवगम्य भी हो सके।

(३) आगमन-अनुरूपता ह्वीवेल के अनुसार कल्पना को प्रमाणित करने का आगमन-अनुरूपता एक अच्छा तरीका है। आगमन-अनुरूपता का अर्थ है एक कल्पना कई क्षेत्रो मे काम करना। जैसे—गुरुत्वाकर्षण की कल्पना से केवल पृथ्वी पर गिरने वाली चीजो की ही व्याख्या नही होती, बल्कि उससे ग्रहो की चाल तथा ज्वार-भाटा की भी व्याख्या हो जाती है। इस प्रकार यदि कल्पना केवल अपने ही क्षेत्र तक सीमित न रहकर अन्य क्षेत्रो की भी प्राक्कल्पनाओ को आवश्यकता दूर कर देती है, तो उसे प्रमाणित समझा जाता है।

विश्व के गठन को देखकर मन मे ऐसा विश्वास उठता है कि सब नियम जो अलग-अलग दिखलाई पडते है, शायद एक ही मूल स्रोत से मिले हुए हैं। सभ्यता के प्रारभ से ही मनुष्य उस मूल सत्ता की खोज मे पडा हुआ है। यूनानी विद्वानो ने इसी

प्रयास मे उसको जल, वायु या अग्नि समझा। उपनिषद् के ऋषियो ने उसे ब्रह्म माना। आज विज्ञान भी अपनी खोज से सिद्ध करता जा रहा है कि ज्ञान के अलग-अलग क्षेत्र आपस मे मिले हुए है और अततोगत्वा एक हैं। ऐसी परिस्थिति मे जब कोई प्राक्कल्पना अपने ही सकुचित दायरे मे बँधी न रह कर अन्य क्षेत्रो मे भी काम करने लगती है, तो उसे हमलोग मान्य समझने लगते है। यथार्थत यह प्रमाण अतिम नही होता, फिर भी इससे प्राक्कल्पना मे बल बहुत आ जाता है।

(४) प्राक्कल्पना मे भविष्यवाणी करने की शक्ति होना ह्वीवेल ने भविष्य-वाणी करने की शक्ति को भी प्राक्कल्पना का प्रमाण माना है। यदि किसी प्राक्कल्पना मे भविष्य की घटनाओ का भी रूप निर्धारित हो जाय और उसके बारे मे कहा हुआ ठीक निकले, तो उस प्राक्कल्पना को हमलोग सत्य समझने लगते है। नेपचून ग्रह के बारे मे इसी प्रकार भविष्यवाणी की गई थी। आज भी हर साल ग्रहण के बारे मे भविष्यवाणी होती है और वह सत्य ही निकलती है। इसलिए इन प्राक्कल्पनाओ को सत्य समझा जाता है।

भविष्यवाणी करने की शक्ति वैज्ञानिक प्राक्कल्पना का एक महत्त्वपूर्ण गुण है। पर, हम इसे अतिम नही मान सकते, क्योकि कभी-कभी गलत प्राक्कल्पनाओ से भी भविष्यवाणी हो जाती है। जैसे टॉलेमी के सिद्धात से पृथ्वी को स्थिर और सूर्य को चल मान कर भी ग्रहण की भविष्यवाणी हो जाती है। अत, इस प्रमाण के लिए अन्य प्रमाणो की पुष्टि आवश्यक है।

(५) निर्णायक दृष्टात कभी-कभी ऐसा भी होता है कि एक ही क्षेत्र मे दो या अधिक प्राक्कल्पनाएँ एक ही साथ काम करने लगती हैं। ऐसी परिस्थिति मे किसी एक को चुनना पडता है। इसलिए, जैसा बेकन ने बतलाया है, ऐसा उदाहरण ढूँढना चाहिए, जिसकी व्याख्या प्रतियोगी प्राक्कल्पनाओ मे से किसी एक से हो, दूसरे से न हो। ऐसे उदाहरण को निर्णायक दृष्टात कहते है। यदि ऐसा उदाहरण प्रयोग द्वारा प्राप्त हो, तो उसे निर्णायक प्रयोग कहते है। जैसे चौराहो पर लगे क्रास या हस्त-चिह्न से हमे निश्चित रूप से मालूम हो जाता है कि अमुक स्थान का कौन रास्ता है, वैसे ही निर्णायक दृष्टात यह सिद्ध कर देते हैं कि प्रतिद्वद्वी प्राक्कल्पनाओ मे कौन ठीक है और कौन गलत। यह ऐसा उदाहरण है, जो दो या दो से अधिक प्राक्कल्पनाओ के बीच का झगडा सदा के लिए समाप्त कर देता है। जेवन्स के शब्दो मे इसके दो काम है—एक प्राक्कल्पना का समर्थन और दूसरे का निषेध।

विज्ञान मे बहुत से स्थल मिलते है, जहाँ प्रतिद्वद्वी कल्पनाएँ काफी दिनो तक साथ-साथ काम करती रही। भिन्न-भिन्न क्षेत्रो से कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं

जानवरो और वनस्पतियो मे भिन्न रूपता की व्याख्या करने के लिए दो प्राक्कल्पनाएँ थी —स्पेशल क्रियेशन तथा ट्रासफार्मिज्म, सडी-गली चीजो मे छोटे-छोटे कीटाणुओ की उपस्थिति की व्याख्या के लिए दो प्राक्कल्पनाएँ थी—'स्पाटेनियस' जेनरेशन तथा 'बायोजेनिमिम'। ग्रहो की चाल की दो प्राक्कल्पनाएँ थी—जियोसेट्रिक तथा हीलियोसेंट्रिक। प्रकाश के व्यापार की व्याख्या के लिए दो प्राक्कल्पनाएँ थी—वेभ थ्योरी तथा कार्पुस्कुलर थ्योरी। ताप के व्यापार की व्याख्या के लिए दो प्राक्कल्पनाएँ थी—कैलॉरिक थ्योरी तथा 'मोशन थ्योरी'। इन सभी प्रतिद्वद्वी प्राक्कल्पनाओ के लिए निर्णायक दृष्टात ढूँढने पडे। उदाहरण के लिए कैलॉरिक थ्योरी तथा मोशन थ्योरी को लिया जाय। ताप की व्याख्या के लिए पहले कैलॉरिक थ्योरी प्रचलित थी। इसने बहुत दिनो तक सतोषप्रद व्याख्या की। फलस्वरूप लोगो ने इसका स्तर प्राक्कल्पना से बढाकर सिद्धात कर दिया। इसके अनुसार ताप एक प्रकार का द्रव है, जो वस्तुओ के कणो मे छिपा रहता है। जब कुछ तापद्रव बह कर बाहर निकल जाता है, तो वह वस्तु ठढी हो जाती है और जब वह द्रव उसमे और पहुँच जाता है, तो वह चीज और गरम हो जाती है। जैसे यदि दो अलग-अलग तापमान की वस्तुएँ एक मे मिला दी जायँ, तो ऊँचे तापमानवाली वस्तु से गर्मी बह कर नीचे के तापमान वाली वस्तु मे पहुँच जायेगी। यह क्रम तब तक चलता रहता है, जब तक दोनो का तापमान एक-सा नही हो जाता। १८वी सदी के अत तक इन प्राक्कल्पनाओ से तब तक की मालूम घटनाओ की व्याख्या होती रही। इसके आधार पर भविष्यवाणी भी की जाती थी और वह सत्य निकलती थी। व्याख्या को कुछ और आसान करने के विचार से १७ वी शताब्दी मे ही एक दूसरी प्राक्कल्पना का जन्म हुआ—इसके अनुसार प्रकाश के सदृश ताप को भी गति का एक रूप माना गया। इससे भी ताप के सब ज्ञात उदाहरणो की व्याख्या हो जाती थी। लेकिन चूँकि कैलॉरिक थ्योरी पहले से चली आती थी, इसीलिये लोग उसे आसान समझ कर अपनाये रहे। सन् १७९८ ई० मे काउट रमफोर्ड ने एक प्रयोग किया, जिसका निष्कर्ष कैलॉरिक थ्योरी से ठीक स्पष्ट नही होता था। इसलिये कैलॉरिक थ्योरी के सत्य होने मे कुछ शका होने लगी। कुछ ही दिन बाद सर हम्फ्री डेवी ने एक प्रयोग किया, जो निर्णायक हुआ। उन्होने दिखलाया कि यदि बर्फ के दो टुकडे ऐसी जगह पर रख दिये जायँ, जहाँ किसी तरह भी बाहर की गर्मी न पहुँच सके और यदि उसमे बराबर रगड होती रहे, तो वे बर्फ के टुकडे गलकर पानी हो जाते हैं। अब प्रश्न उठता है कि वहाँ गर्मी कैसे पहुँची? दोनो का तापमान बराबर था इसलिये कैलॉरिक थ्योरी के अनुसार गर्मी बह कर एक दूसरे मे जाने की गुजाइश नही थी। इसकी व्याख्या दूसरी प्रतिद्वद्वी प्राक्कल्पना, 'मोशन थ्योरी' से आसानी से हो जाती थी। बर्फ के दोनो टुकडो मे बराबर रगड होती रही, इसीलिये वहाँ पर

गति थी और उसी से बर्फ गलकर पानी हो गया। इसलिये सिद्ध हो गया कि ताप गति का एक रूप है। यह प्रयोग निर्णायक प्रयोग कहा जता है।

निर्णायक दृष्टात प्रेक्षण से भी प्राप्त होते है। उदाहरण के लिये, टालमी और कोपरनिकस के सिद्धातो को ले ले। टालमी के अनुसार पृथ्वी स्थिर है सूर्य, चद्रमा तथा अन्य ग्रह इसके चारो ओर घूमते है। कोपरनिकस के अनुसार सूर्य स्थिर है तथा पृथ्वी, च द्रमा इत्यादि ग्रह इसके चारो ओर घूमते हैं। दोनो सिद्धातो से ग्रहण इत्यादि की व्याख्या हो जाती थी पर प्रेक्षण द्वारा पाया गया कि ग्रहो की चाल मे कुछ व्यतिक्रम है। पृथ्वी से जब किसी ग्रह को देखा जाता है, तो वह कुछ समय तक आगे चलता हुआ मालूम पडता है, फिर अत मे वह आगे बढने लगता है। टालमी के सिद्वात से जब इस घटना की व्याख्या नहीं हुई, तो हर एक ग्रह की चाल के साथ-साथ एक छोटे गोलाकारगति (Epicycle) की कल्पना की गई। सोचा गया कि प्रत्येक ग्रह जो पृथ्वी की परिक्रमा करता है, अपने कक्ष पर छोटे से गोले मे भी घूमता है, इसीलिये कभी-कभी पीछे की ओर जाता हुआ मालूम होता है। इस तरह का छोटा गोला सब ग्रहो का अपना-अपना भिन्न है। यदि कोई नया ग्रह मिलता था, तो उसके साथ एक खास छोटे गोले की भी प्राक्कल्पना होती थी। फलस्वरूप टालमी का सिद्धात बहुत जटिल हो गया। कोपरनिकस के सिद्धात से ग्रहो की चाल मे यह व्यतिक्रम आसानी से स्पष्ट हो जाता है और प्रत्येक ग्रह के साथ-साथ छोटे गोले की प्राक्कल्पना भी नही करनी पडती। इसके अनुसार ग्रहो का पीछे चलना इसलिए मालूम होता है कि पृथ्वी की गति उससे तेज है। यह उदाहरण निर्णायक होने के साथ-साथ यह भी बतलाता है कि प्रतिद्व द्वी प्राक्कल्पनाओ मे साधारण प्राक्कल्पना जटिल प्राक्कल्पना से अधिक मान्य होती है। प्रकृति मे मितव्ययिता का नियम काम करता है। जहाँ कम-से-कम मान्यताओ से काम लेना पडे, वहाँ प्राक्कल्पना अच्छी समझी जाती है।

—o—

अध्याय १४

साम्यानुमान

§ १ साम्यानुमान का स्वरूप

दो या अधिक वस्तुओ के बीच कुछ गुणो की समानता देखकर एक म पाये जाने वाले किसी अन्य गुण का आरोप दूसरे मे भी करना साम्यानुमान कहा जाता है। जैसे, मगल और पृथ्वी मे कुछ गुणो मे समानता पायी जाती है—दोनो ग्रह है, दोनो मे वायुमडल है, दोनो मे जीवो के रहने लायक गर्मी है, दोनो मे भूमि, समुद्र और ध्रुव-प्रदेश हैं, दोनो सूर्य की परिक्रमा करते है और उससे प्रकाश पाते है। इन समानताओ के आधार पर यह कहा जा सकता है कि चूंकि पृथ्वी पर जीव है, अत मगल पर भी होगे। साम्यानुमान का साकेतिक उदाहरण होगा—

'अ' और 'ब' के बीच क ख, ग, घ, इत्यादि गुणो की समानता है।

अ मे एक अन्य गुण 'प' भी पाया जाता है।

अत, व मे भी वह गुण 'प' पाया जाता है।

अरस्तू के अनुसार साम्यानुमान का साकेतिक उदाहरण है, क ख अ व अर्थात् क और ख मे जो सवध है, वही अ और व में है। इसलिये क और ख के सबध के वारे में जो कुछ कहा जाएगा, वही बात अ और ब के सबध में भी लागू होगी। हैव्टले और फर्ग्यूसन ने इस प्रकार के सादृश्य को 'सबध सादृश्य' कहा है। इस साम्य को आधार मानकर निम्न रीति से तर्क किया जा सकता है

किसी मातृदेश का सवध अपने उपनिवेशो के साथ वैसा ही है, जैसा मात का अपने बच्चो के साथ। इसलिये जैसा बच्चो का कर्त्तव्य है कि वे अपनी माँ की आज्ञा मानें, वैसे ही उपनिवेशो का कर्त्तव्य है कि व अपने मातृदेश की आज्ञा मानें।

यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय, तो उपर्युक्त तर्क मे निष्कर्ष की सत्यता बिलकुल ही संबंध की सत्यता पर आधारित है और यह एक मूल प्रश्न हो सकता है कि क्या मातृदेश और उसके उपनिवेशो मे ठीक वही संबंध है, जो माता और उसके बच्चो मे होता है ? माता और उसकी संतान मे स्वाभाविक प्रेम होता है। माता संतान को अपने खून से सींचती है, उसके लिये सर्वस्व न्योछावर करने के लिये तैयार रहती है, पर मातृदेश उलटे ही उपनिवेशो का खून चूसकर अपने बलवान बनता है। ऐसी परिस्थिति मे माता और उसकी संतान के बीच वाले आदर्श संबंध की कल्पना मातृदेश और उसके उपनिवेशो के बीच करना हास्यास्पद है। अरस्तू के अनुसार तर्क के लिए संबंध-सादृश्य इतना दृढ होना चाहिए जितना गणित का समानुपात, जैसे २ ४ ३ ६। पर, यदि इतने दृढ संबंध को आधार मानकर तर्क किया जाय, तो वह नैगमनिक होगा, साम्यानुमान नही। सामाजिक विज्ञानो मे दो वस्तुओ के बीच इस प्रकार का समानुपातिक संबंध पाना भी मुश्किल है। इन्ही सब कारणो से आजकल के विद्वानो मे संबंध सादृश्य से तर्क करने की प्रथा उठ-सी गई है। आजकल साम्यानुमान मे गुण-साम्य देखने पर जोर दिया जाता है, संबंध-साम्य पर नही। जैसे साम्यानुमान मे हम इस प्रकार का तर्क कर सकते है

महात्मा गाधी और विनोबा जो राजनीतिवेत्ता है, दार्शनिक है,
जयप्रकाश और जवाहरलाल राजनीतिवेत्ता है,
इसलिये जयप्रकाश और जवाहरलाल दार्शनिक हैं।

इस तर्क मे स्पष्टत गुण-साम्य को आधार माना गया है। जवाहरलाल और जयप्रकाश मे दार्शनिक होने के गुण का आरोप किया है, क्योकि उन लोगो मे राजनीतिवेत्ता होने का गुण पाया जाता है और राजनीतिवेत्ता तथा दार्शनिक दोनो गुण साथ-साथ महात्मा गाधी और विनोबा अथवा अन्य जगह भी देखे जाते है।

पर, यहाँ पर इस बात को स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि किस प्रकार का गुण-साम्य साम्यानुमान का आधार है, क्योकि गुण-साम्य तो नैगमनिक तथा, आगमनिक हर तरह के तर्क मे पाया जाता है। जब हमलोग कहते है सभी मनुष्य मरणशील हैं, सुकरात मनुष्य हैं, इसलिये वह मरणशील है, तो यहाँ सुकरात के मरणशील होने का निष्कर्ष तभी सत्य होगा, जब हम सुकरात तथा अन्य सभी मनुष्यो मे मनुष्यत्व गुण की समानता स्वीकार करेंगे। वैसे ही आगमन मे हम तर्क करते है कि अमरूद मे भार होता है, ऊपर से छोडने पर नीचे गिरता हैं, आम मे भार होता है, ऊपर से छोडने पर नीचे गिरता है, पत्थर मे भार होता है, ऊपर से छोडने पर नीचे गिरता है। अत, हम कह सकते है कि सभी भार वाली चीजे यदि आकाश मे

छोडी जायँ, तो वे नीचे गिरेंगी (गुरुत्वाकर्षण नियम)। यहाँ भी चीजों मे वजन का गुण समान रूप से सभी मे होने से उनके नीचे गिरने का निष्कर्ष निकाला जाता है। लेकिन, इस तरह के गुण साम्य और साम्यानुमान के गुण–साम्य मे वहुत अतर होता है। अभी कहे गये उदाहरणो मे यदि नये गुण का आरोप किसी भी समानता के आधार पर किया गया है, तो उन दोनो गुणो मे कारण-कार्य का सवध है। मनुष्यत्व और मरणशीलता, वजन और नीचे पृथ्वी की ओर गिरना, इनमे आवश्यक सवध हैं। इसलिये जहाँ-जहाँ मनुष्यत्व गुण पाते हैं, मरणशीलता का आरोप कर देते हैं, या जहाँ-जहाँ नीचे गिरने का गुण पाते है, वहाँ-वहाँ गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव समझ लेते है। साम्यानुमान मे जिन गुणो की समानता पर नये गुण का आरोप किया जाता है, उनमे आवश्यक सवध नही होता। जैसे ऊपर साम्यानुमान से निष्कर्ष निकाला गया है कि जयप्रकाश और जवाहरलाल दार्शनिक हैं, केवल इस समानता पर कि वे लोग गाधी जी तथा विनोवा की तरह राजनीतिज्ञ हैं। यहाँ पर राजनीतिज्ञ और दार्शनिक होने के गुणो मे कारण-कार्य सवध नही है। इसलिये यह निष्कर्ष केवल सभव हो सकता है, आवश्यक नही। यदि हम इसे न्यायवाक्य के रूप मे रखें, तो तीसरी आकृति मे अयोग्य रूप बनता है —

गाधी जी और विनोवा दार्शनिक हैं,
गाधी जी और विनोवा राजनीतिवेत्ता हैं,
इसलिये सभी राजनीतिवेत्ता दार्शनिक हैं।

यहाँ लघु पद निगमन मे व्याप्त है, जो लघु वाक्य मे व्याप्त नही है। इसलिये निष्कर्ष केवल सभव हो सकता है। इसी प्रकार पृथ्वी और मगल मे वहुत से गुणो मे समता देखकर मगल मे भी पृथ्वी की तरह जीव होने की वात कही जाती है। किंतु, यह भी निष्कर्ष केवल सभव हो सकता है। अत, साम्यानुमान की मुख्य पहचान है कि इसमे निष्कर्ष अपूर्ण समता पर आधारित है। यदि समानता वैज्ञानिक ढग से हर रूप मे पूर्ण हो जाय, तो उसका निष्कर्ष शुद्ध निगमन या आगमन का रूप होगा।

अव हम लोग साम्यानुमान के मुख्य लक्षणो को आसानी से देख सकते हैं

(१) साम्यानुमान की पहचान है कि इसमे हम एक वस्तु से दूसरी वस्तु पर पहुँचते हैं। इसमे किसी व्यापक सिद्धात की खोज नही होती, बल्कि दो वस्तुओ के बीच कुछ गुणो की समानता देखकर एक में पाये जाने वाले किसी अन्य गुण का आरोप विना निरीक्षण किये दूसरे में भी कर दिया जाता है। 'मिल' ने इसका सिद्धात इस प्रकार कहा है दो वस्तुएँ एक या अधिक वातो मे एक दूसरे के समान हैं। एक के वारे में कोई वात सच है, अत वह वात दूसरे के बारे मे भी सच होगी।

(२) साम्यानुमान का आधार केवल गुण-साम्य होता है। वेन कहते है—"साम्यानुमान यह मानता है कि चूँकि दो वस्तुएँ कुछ बातो मे समानता रखती हैं, अत, वे किसी अन्य बात मे भी समान होगी। इस अन्य बात के सबध में यह ज्ञात नही होता कि वह कारण-नियम या साहचर्य-नियम से समान बातों मे सबधित है।"

(३) साम्यानुमान का निष्कर्ष केवल सभव होता है, निश्चित नही। यह गुण ऊपर कहे गये दूसरे लक्षण से ही निकलता है। जब निष्कर्ष का आधार कारण नही है, केवल कुछ गुणो की समानता है, तो निश्चित फल की आशा भी नही की जा सकती। इसीलिये इसे 'अपूर्ण समानता पर आधारित सभव प्रमाण' कहा गया है।

यद्यपि साम्यानुमान से निश्चित निष्कर्ष नही निकलता, फिर भी मिल ने इसे आगमन की कोटि मे रखा है। इसमे आगमन के सभी मुख्य लक्षण मिलते है। जैसे, (क) साम्यानुमान आगमन की तरह अनुभव से प्रारभ होता है। प्रेक्षण इसका पहला कदम है। दो वस्तुओ के बीच कुछ गुणो की समानता देख उनमे किसी अन्य गुण के भी होने की बात कहना साम्यानुमान है। इससे स्पष्ट है कि जबतक प्रेक्षण द्वारा कुछ गुणो की समानता का आधार नही मिल जाता, आगे नही बढा जा सकता। (ख) साम्यानुमान मे भी ज्ञात से अज्ञात की ओर जाने का मार्ग है। दो वस्तुओ मे कुछ गुणो की समानता देखी जाती है। फिर उनमे से एक मे कोई अन्य गुण देखा जाता है, तो वही गुण बिना देखे दूसरे मे भी आरोपित कर दिया जाता है। उदाहरणार्थ, पृथ्वी और मगल के बीच गर्मी, जल और हवा के गुणो की समानता देखकर यह अनुमान किया जाता है कि पृथ्वी की तरह मगल पर भी जीव हैं। यहाँ कुछ ज्ञात गुणो के आधार पर अज्ञात गुण पर पहुँचा जाता है—जीवो का मगल पर पाय जाना। (ग) साम्यानुमान मे भी सामान्यीकरण किया जाता है। दो वस्तुओ के बीच कुछ गुणो की समानता देखकर प्रकृति-समरूपता के आधार पर कहा जाता है कि वे अन्य गुणो के भी समान होगी। किंतु, चूँकि इस सामान्यीकरण का आधार कार्य-कारण सबध नही है, इसलिये सरल आगमन की तरह इसका भी निष्कर्ष केवल सभव होता है, निश्चित नही। इस प्रकार साम्यानुमान हर तरह से आनुमानिक है।

साम्यानुमान का स्वरूप, वैज्ञानिक आगमन तथा सरल गणनात्मक आगमन से तुलना करने पर और स्पष्ट हो जायगा।

वैज्ञानिक आगमन मे निष्कर्ष का आधार कार्य-कारण सबध होता है, साम्यानुमान मे केवल गुण-साम्य का आधार होता है। वैज्ञानिक आगमन अपने प्रयासो द्वारा कार्य-कारण सबध स्थापित करने की कोशिश करता है और जब तक उसे ऐसा

सवध नही मिलता, वह आगे नही वढता। लेकिन, साम्यानुमान कारण पाने का कोई प्रयत्न नही करता। यदि निष्कर्ष के रूप मे निकाले गये नये गुण का सवध समान गुणो के साथ कारण का हो, तो जैसा फॉउलर ने कहा है, वह तर्क साम्यानुमान का नही रह जाता, वल्कि वैज्ञानिक आगमन का हो जाता है। वैज्ञानिक आगमन का लक्ष्य रहता है किसी सामान्य सत्य की खोज करना, जैसे ताप से चीजें फैलती है, आकाश मे छोडी हुई भारवाली चीजें जमीन की ओर गिरती है, इत्यादि। इसके लिए वह उस क्षेत्र के कुछ उदाहरणो का प्रेक्षण करता है। फिर उनके मूल मे रहनेवाले कारण का पता लगाकर सर्वव्यापी सत्य स्थापित करता है, जो सत्य उस तरह के असख्य उदाहरणो पर प्रत्येक काल और प्रत्येक स्थान पर लागू होता है। साम्यानुमान मे मुख्यत समान गुणवाली केवल दो चीजें ली जाती हैं। उनमे से किसी एक मे पाये जानेवाले किसी नये गुण का आरोप दूसरे मे भी किया जाता है। इस प्रकार साम्यानुमान मे एक विशेप उदाहरण से दूसरे विशेष उदाहरण पर पहुँचा जाता है। किंतु, वैज्ञानिक आगमन मे विशेप उदाहरणो से वढकर सामान्य सत्य की स्थापना होती है। वैज्ञानिक आगमन आगमनिक खोज का सबसे उत्कट रूप है, साम्यानुमान उसमे सहायता पहुँचाता है। दो वस्तुओ मे कुछ गुणो की समानता देखकर अन्य गुणो की समानता की कल्पना करना खोज की ओर कदम उठाना है। पर यह तो सदिग्ध अवस्था है, केवल कल्पनामात्र। जब वह कल्पना सिद्ध हो जाती है, तब वह वैज्ञानिक आगमन का रूप ले लेती है। इस प्रकार साम्यानुमान का महत्त्व है—कल्पना वनाने मे सहायता कर वैज्ञानिक आगमन की ओर अग्रसर कराना। साम्यानुमान का रास्ता सरल है, पर वैज्ञानिक आगमन बडा ही उलझनपूर्ण है। कार्य-कारण-सवध सिद्ध करना सरल नही है।

साम्यानुमान सरल गणनात्मक आगमन से भी भिन्न है। साम्यानुमान मे दो वस्तुओ के वीच महत्त्वपूर्ण गुणो की समानता देखी जाती है। ये समान गुण जितने ही अधिक होगे, निष्कर्ष के सत्य होने की उतनी ही अधिक सभावना रहती है। सरल गणनात्मक आगमन मे एक ही गुण अधिक-से-अधिक उदाहरणो मे देखा जाता है जैसे, कोयल मे कालापन। इसका वल है, विपरीत उदाहरणो का अभाव। इस प्रकार साम्यानुमान मे महत्त्वपूर्ण गुणो की सख्या पर वल रहता है, किंतु सरल गणनात्मक आगमन मे उदाहरणो की सख्या पर। साम्यानुमान मे विशेप-से-विशेप की ओर बढा जाता है, पृथ्वी पर जीवो को देखकर मगल पर भी उनके होने का अनुमान करते है। सरल गणनात्मक आगमन का मार्ग विशेप से सामान्य की ओर होता है। इसका निष्कर्ष है, सभी कौवे काले होते हैं, सभी लडके खेल पसद करते हैं, सभी मनुष्य मरणशील होते हैं, इत्यादि। हाँ, दोनो के निष्कर्ष केवल सभव होते हैं, निश्चित नही। दोनो आगमनिक खोज मे प्राक्कल्पना वनाने मे सहायक होते हैं।

§ २ साम्यानुमान का बल

मिल के अनुसार साम्यानुमान के सत्य होने की संभावना तीन बातो पर निर्भर करती है (१) ज्ञात समान गुणो की संख्या एवं उनका महत्त्व जितना अधिक हो, साम्यानुमान का मूल्य भी उतना ही अधिक होता है जैसे—यदि अच्छी प्रकार प्रेक्षण के बाद ज्ञात हो कि अ और ब ज्ञात दस महत्त्वपूर्ण गुणो मे से नौ मे समान हैं तो अगले अनुमान को सत्य होने की ९/१० संभावना से तर्क कर सकते है कि अ मे पाया जाने वाला कोई अन्य गुण 'ब' मे भी पाया जायगा। (२) ज्ञात असमान गुणो की संख्या और उनका महत्त्व जितना ही अधिक होगा, साम्यानुमान का मूल्य उतना ही कम होगा। (३) अज्ञात गुणो की संख्या ज्ञात गुणो से जितनी ही अधिक होगी, साम्यानुमान का मूल्य उतना ही कम होगा।

साम्यानुमान की यथार्थता जाँचते समय यदि उन तीनो नियमो का व्यवहार किया जाय, तो ऐसा मालूम होता है कि गणित के समानुपातिक हिसाब की तरह सर्वथा ठीक फल प्राप्त हो सकता है। पहला नियम यथार्थता को बढाने वाला है, दूसरे और तीसरे उसे कम करने वाले हैं। लगता है, जहाँ कही भी आवश्यकता हो, यदि हिसाब ठीक ढग से लगा दिया जाय, तो निष्कर्ष पूरा हो जायगा। किंतु, ध्यान से देखने पर मालूम होगा कि ऐसी बात नही है। सर्वप्रथम इन नियमो को देखते ही खटकने वाली चीज मिलती है, वह है—तीसरे नियम मे कही हुई बात। यदि गुण अज्ञात है, तो उनकी संख्या भी निश्चित नही की जा सकती, क्योकि यदि हम यह जानने मे समर्थ हो जायँ कि किसी चीज के अज्ञात गुण कितने हैं तो इसका अर्थ हुआ कि उनको जानते है, वे अज्ञात नही हैं। अज्ञात गुणो की संख्या के बारे मे बात करना व्याघात की भाषा अपनानी है। दूसरी बात है कि साम्यानुमान की यथार्थता समान या असमान गुणो की संख्या से जाँचना बहुत ही भ्रामक है। बहुत से गुण समान होते हुए भी ऊपरी हो सकते है। उनसे कोई भी निष्कर्ष नही निकाला जा सकता। जैसे, यदि हम कहे अ और ब दो विद्यार्थी हैं, दोनो लबे और गोरे हैं, दोनो एक ही गाँव के रहने वाले हैं, दोनो एक ही जाति के है दोनो समवयस्क हैं, एक ही वर्ग मे पढते है। मालूम है कि उनमे से अ पढने मे तेज है, तो हम निष्कर्ष निकालें कि ब भी पढने मे तेज होगा, तो यह बिलकुल ही अयोग्य होगा, क्योकि तेज होने वाले गुणो और उन ऊपरी दिखावटी गुणो मे कोई संपर्क नही हैं। वैसे ही कभी एक असमान गुण बहुत से समान गुणो से अधिक प्रभावशाली हो सकता है, जैसे पृथ्वी और चंद्रमा के बीच बहुत-सी बातो मे समानता है, किंतु उससे यह नही कहा जा सकता कि पृथ्वी की तरह चंद्रमा पर भी

जीव हैं, क्योंकि इस दृष्टि से एक ही असमान गुण इतना महत्त्वपूर्ण है कि उससे निष्कर्ष गलत हो जाता है, वह है—पृथ्वी पर वायुमडल है, किंतु चद्रमा पर वायुमडल नही है।

गुणो को गिनने मे बडी कठिनाई है। वेल्टन और मोनहन ने प्रश्न उठाया है कि यदि हम गुणो को गिनना चाहे, तो कैसे गिनें ? कौन तय करेगा कि समानता या असमानता की किसी विशेष बात मे एक ही गुण है अथवा अधिक ? उत्तर कुछ भी दिया जा सकता है, किंतु वह मनमाने ढग का होगा, क्योंकि गुण पत्थर के टुकडे की तरह एक दूसरे से बिलकुल अलग नही होते, वे आपस मे ऐसे मिले रहते हैं कि उनको अलग करना असभव है। वस्तुत गुण के क्षेत्र मे सख्या की बात भ्रामक है। अत, साम्यानुमान की यथार्थता कुछ समान गुणो की सख्या पर नही आँकी जा सकती। उन गुणो को महत्त्वपूर्ण होना चाहिए। वोसाक के शब्दो मे साम्यानुमान मे समान गुणो को तौलना चाहिए, गिनना नही। मिल ने भी गुणो के महत्त्वपूर्ण होने पर बल दिया है, पर साथ-साथ वे उन गुणो की अधिकता की भी बात कहते हैं। दोनो को एक मे मिला देने पर कभी-कभी इसमे भ्रम हो जाने का भय रहता है और जीवन मे उनका सामजस्य पाना प्राय असभव होता है। निष्कर्ष की दृष्टि से एक ही महत्त्वपूर्ण गुण-साम्य साम्यानुमान मे पूरा बल दे सकता है। ऊपरी गुणो की समानता सख्या मे बहुत अधिक होने पर निरर्थक होती है। इस प्रकार साम्यानुमान का सिद्धात केवल एक है 'समान गुणो को निष्कर्ष की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होना चाहिए'।

किंतु, 'महत्त्वपूर्ण' या 'आवश्यक' शब्द सापेक्ष हैं। किसी भी वस्तु या गुण का महत्त्व अकेले अपने मे नही होता। वह सदैव किसी दूसरी सबधित वस्तु की ओर सकेत करता है। उसी सबध की दृष्टि से वह महत्त्वपूर्ण भी होता है। जैसे, यदि हम निष्कर्ष पर पहुँचना चाहें कि चद्रमा पर जीव रहते हैं कि नही, तो हमे दो गुणो पर ध्यान देना चाहिए। पहला, कही भी जीवो के लिए तापमान समशीतोष्ण होता है, न बहुत गर्मी और न बहुत ठढक। दूसरा, जीवो के लिए हवा का होना आवश्यक है। अब हम चद्र-लोक मे जीवो के होने की बात सोचें, तो पृथ्वी से सादृश्य ढूँढते समय इन दो गुणो की समानता पर बल देना आवश्यक है, क्योंकि कहीं भी जीवो के होने के लिये ये दो गुण महत्त्वपूर्ण हैं। इस निष्कर्ष के लिए पृथ्वी और चद्रमा मे अन्य गुणो की समानता कोई विशेष महत्त्व नही रखती। बहुत से अन्य गुणो की समानता के बावजूद इन दो गुणो के अभाव मे चद्रमा पर जीव नही मिलते। अत, इस निष्कर्ष के लिए ये दो गुण महत्त्वपूर्ण हैं। हो सकता है, दूसरे किसी निष्कर्ष के लिए इनका कोई महत्त्व न हो। इसलिये सिजविक के शब्दो मे, 'जब कभी समानता या असमानता की मात्रा या सख्या की बात की जाती है, तो विद्यार्थियो को अवश्य ध्यान मे रखना चाहिए कि सभी तरह के तर्क के लिए समानता या असमानता अधिक या कम इस दृष्टिकोण से

नही होती कि वह प्रेक्षक के ध्यान को आसानी से आकर्षित करती है, अथवा उसकी व्याख्या बहुत मे भिन्न-भिन्न टुकडो मे हो सकती है, वल्कि इस दृष्टिकोणमे होती है, कि हाथ मे लिए हुए लक्ष्य के लिए वह हर तरह से महत्त्वपूर्ण है।" *

§ ३. भ्रामक साम्यानुमान तथा साम्यानुमान का महत्त्व

साम्यानुमान का मूल्य कल्पना बनाने मे सहायता करना है। इससे आगमनिक खोज प्रारभ होती है। किंतु, इससे और अधिक आशा करना भूल है। सबसे यथार्थ साम्यानुमान भी प्रमाण नही हो सकता। इसमे सबध की कल्पना की जाती है, वह कल्पना कभी सत्य और कभी असत्य होती है। फिर भी अपने इसी सभाव्य निष्कर्ष से साम्यानुमान बहुत लाभप्रद सिद्ध हुआ है। विज्ञान का इतिहास बतलाता है कि किस प्रकार बहुत से महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक नियमो की खोज साम्यानुमान के सकेत से हुई है। गिरते हुए सेब का सादृश्य न्यूटन को गिरते हुए नक्षत्र से लगा, जिससे गुरुत्वाकर्षण-नियम की खोज हुई। व्यापार की दुनिया मे एक दूसरे से आगे निकल जाने की प्रवृत्ति ने डार्विन को जीवधारियो मे 'प्रकृति-चुनाव' की ओर सकेत किया, जिससे जाति-विकास का नियम प्राप्त हुआ। प्रकाश की उपमा मे १६६० ई० मे ही हीगेन्स को सकेत मिला कि गर्मी गति का रूप है। जल ने इसी सिद्धात को करीब १५० वर्ष बाद सिद्ध किया। बिजली की चमक और चिनगारी के प्रकाश मे साम्य देखकर फ्रैंकलिन की समझ मे आया कि दोनो मलत एक ही हैं विद्युत् शक्ति के दो स्वरूप, जो सत्य निकला। यह सत्य है कि विज्ञान मे ही ऐसे बहुत से उदाहरण है, जहाँ भ्रामक सादृश्य से भिन्न सबध के सकेत मिले और वडे-वडे वैज्ञानिक भी उसमे बहुत दिनो तक उलझे रहे। केपलर के बारे मे प्रसिद्ध है कि ग्रहो के कक्ष के ठीक नियम ढूँढने के पहले उन्होने १९ गलत कल्पनाओ की जाँच की थी और ये सभी कल्पनाएँ प्राय साम्यानुमान की देन थी। एक कल्पना के बनाने और जाँचने मे महीनो या वर्षो लगते हैं और अत मे उसे छोडना पडता है। किंतु, इतना मानना पडेगा कि उन गलत कल्पनाओ से भी जिन्हे अत मे बदलना पडा विज्ञान के क्षेत्र मे बहुत लाभ हुआ है। जीवन के कुछ ऐसे भी क्षेत्र है, जहाँ साम्यानुमान को छोड तर्क करने का कोई दूसरा रास्ता नही। हम दूसरे मनुष्यो के आचरण देखते हैं और उन्ही परिस्थितियो मे अपने आचरण के सादृश्य से निष्कर्ष निकालते हैं। इसी सादृश्य का सहारा लेकर हमलोग बच्चो, जानवरो या जगलियो की मन स्थिति का भी अनुमान करते हैं। व्यस्को के बारे मे किये गये अनुमान की जाँच उनसे पूछ कर की जा सकती है, किंतु बच्चो और जानवरो के क्षेत्र मे केवल सभाव्य निष्कर्ष से ही काम चलाना पडता है। मनोविज्ञान का यह क्षेत्र केवल साम्यानुमान पर टिका हुआ है। ऐसे ही उदाहरण हमे

---

* प्रॉमिस ऑफ आर्गुमेंट, पृष्ठ १९४।

ऐंथ्रोपॉलोजी मे भी मिलते हैं। नित्यप्रति के व्यवहार मे साम्यानुमान की बडी उपयोगिता है। हम पग-पग पर इसके सहारे तर्क करते हैं। यह ठीक है कि उनमे से कुछ यथार्थ और कुछ भ्रामक होते है, पर यह तो विस्तार मे व्याख्या की वस्तु है। इससे साम्यानुमान का जीवन मे जो स्थान है उसमे किसी तरह का अतर नही पडता। बडे-बडे लेखको की कृतियाँ साम्यानुमान से भरी पडी हैं। यदि उन सबका केवल सभाव्य समझ कर निकाल दिया जाय, तो हम अनुमान नही कर सकते कि जीवन कितना निर्धन और नीरस हो जायगा।

अब हम कुछ दोषपूर्ण साम्यानुमान का उदाहरण देंगे।

आलकारिक भाषा के प्रयोग मे साम्यानुमान का दोष बहुधा देखने मे आता है। हम्फ्री विलकर लडन के बारे मे कहते है, 'राजधानी आवश्यकता से अधिक बढे हुए शैतान की तरह हो गई है, जो बीमारी से बढे सर की तरह कुछ दिनो मे शरीर के और अगो को बिना खुराक और सहारा छोड देगी।' यहाँ अलकार की भाषा मे बढी हुई राजधानी की तुलना बीमारी से बढे हुए सर से की गई है, जो योग्य नही है, क्योकि बढी हुई राजधानी मे व्यापार और कल-कारखानो के इतने केंद्र निकल सकते हैं, जो पूरे देश को सपन्न और समृद्ध बनाने मे बडी सहायता कर सकते हैं। किंतु, बीमारी से बढे हुए सर मे शरीर को पोषित करने की कोई गुजाइश नही।

प्लैटफार्म वक्ता सरकार की आलोचना करते हुए बहुधा सुने जाते हैं, 'आयात पर कर रूपी दीवार देश के व्यवसाय मे बाधक है। यह जितनी ही ऊँची होगी, व्यापार की प्रगति उतनी ही अवरुद्ध होगी।' यहाँ आयात पर कर की उपमा दीवार से दी गई है, पर यह साम्य योग्य नही है। दीवार आवागमन मे बाधक होती है, किंतु आयात पर कर देश के व्यवसाय मे बाधक नही होता, बल्कि बाहर की वस्तुओ को रोक कर भीतरी व्यवसाय की उन्नति करता है।

आजकल का प्रचलित भ्रामक सादृश्य है समाज या राज्य की तुलना व्यक्ति से देना। 'जैसे व्यक्ति मे लडकपन, तरुणाई, बुढापा और मृत्यु की अवस्थाएँ होती है, वैसे ही किसी राज्य मे भी होती हैं। कोई देश जो आज बहुत शक्तिशाली और सपन्न है, धीरे-धीरे अपनी शक्ति खोवेगा और अत में समाप्त हो जायगा।' बडे-बडे साम्राज्यो के उत्थान और पतन की व्याख्या कर इतिहास इसमे और बल देता है। किंतु, यह साम्यानुमान दोषपूर्ण है। राज्य मे व्यक्ति की तरह तरुणाई और बुढापा अवस्था के कारण क्रम से नही आते और साथ-साथ व्यक्ति की तरह उसका समाप्त हो जाना आवश्यक नही। यह केवल अलकार की भाषा है। इसमे तार्किक महत्त्व नही।

अलकार की भाषा को छोड देने पर भी साम्यानुमान मे बहुधा दोष देखे जाते हैं, क्योकि लोग भूल जाते हैं कि प्रत्येक निष्कर्ष के लिये कुछ खास महत्त्वपूर्ण

गुण हैं। यदि उनमे समता न मिले, तो अन्य गुणो के सादृश्य से वह निष्कर्ष नही नही निकल सकता। जैसे चद्रमा और पृथ्वी मे बहुत गुणो मे समान होने पर भी यह निष्कर्ष नही निकाला जा सकता कि पृथ्वी की तरह चद्रमा पर भी जीव हैं, क्योकि इस निष्कर्ष के लिये वायुमडल का गुण-साम्य होना आवश्यक है।

प्लेटो ने रिपब्लिक * मे सुकरात से हँसी के लिये कहलवाया है "यदि न्याय धन को सुरक्षित रखने में है, तो न्यायी मनुष्य भी एक तरह का चोर होगा, क्योकि जो कला मनुष्य को धन की सुरक्षा करने योग्य बनायेगी, वही उसे चुराने के लिये भी प्रेरित करेगी।" यहाँ पर जिस गुण-साम्य से न्यायी को चोर बनाया गया है वह ठीक नही है, क्योकि चोर होने के लिये धन को सुरक्षित रखने का गुण महत्त्वपूर्ण नही है, विचार महत्त्वपूर्ण है।

यदि बहुत छिछले गुणो की समानता से कोई गभीर निष्कर्ष निकाला जाय, तो हास्यास्पद हो जाता है। जैसे कोई पागल कहे कि गोस्वामी तुलसीदास मनुष्य थे, हम भी मनुष्य है, इसलिये हम भी उन्ही की तरह 'रामचरितमानस' ऐसे ग्रथ की रचना करेगे, तो हास्यास्पद लगेगा। शेक्सपियर ने 'हेनरी पचम' मे इसी तरह की हँसी की है। फ्लुएलेन नामक पात्र कहता है, "राजा हेनरी का जीवन सिकदर महान् के समान होगा, क्योकि दोनो का जन्म ऐसे स्थान मे हुआ है, जिनका नाम 'म' से प्रारभ होता है—हेनरी 'मनमथ' मे और सिकदर 'मेसीडोन' में। दोनो स्थानो मे एक नदी बहती है और दोनो नदियो में 'सॉलमन' नामक मछलियाँ पायी जाती है। दोनो राजाओ मे, क्रोध, आवेग आदि समान है।'

कुछ लोगो ने तर्क किया है कि चूँकि सात पूर्ण इकाई है और यहाँ सात तरह की धातुएँ है, इसलिये ग्रह जो अपने पूर्ण हैं अवश्य सख्या मे सात होगे। यद्यपि पूर्णता और सात इकाई मे किसी तरह का सबध नही है पर इसी को आधार मानकर निष्कर्ष निकाला गया है। यह देखने ही मे हास्यास्पद लगता है।

§ ४. विज्ञान में व्यवस्थापन

यद्यपि विज्ञान के अन्वेषण टुकडो मे होते हैं, जैसे पप मे पानी ऊपर उठता है, ज्यो-ज्यो पहाड पर ऊपर चढा जाता है श्वास लेने मे त्यो-त्यो कठिनाई होती जाती है, किंतु जब तक इस प्रकार के अन्वेषणो के सेट आपस मे सबद्ध नही होते, विज्ञान की प्रगति बहुत दूर तक नही हो पाती। हवा मे भार होता है, इस खोज ने बैरोमीटर मे पारा का उठना, पप मे पानी का उठना, समुद्र की सतह एव हिमालय की चोटी जल के क्वथनाक अतर होना इत्यादि को सबद्ध कर दिया। सक्षेप मे कहा जा सकता है कि न्यूटन के महत्त्वपूर्ण भौतिक सश्लेषण से निराधार

* रिपब्लिक I, ३३४।

पिडो का गिरना, ज्वार-भाटा का होना, चद्रमा की गति, ग्रहो का सूर्य के चारो ओर चक्कर लगाना आदि (यह सूची काफी वढायी जा सकती है) आपस मे सवद्ध हो गये। विज्ञान की एक शाखा के छोटे विभाग मे किये गये अन्वेपण उसी शाखा के दूसरे विभाग में किये गये अन्वेपणो से सगत रूप में सवद्ध हो जाते है, विज्ञान की एक शाखा (जैसे रसायनशास्त्र) में की गई खोजे विज्ञान की दूसरी शाखा (जैसे शरीर विज्ञान) में की गई खोजो से सवद्ध हो जाती है, विशेष फल ज्ञान का एक प्रारूप ले सकता है और उसे विज्ञान की किसी नई शाखा का पद प्राप्त हो सकता है (जैसे जीव-रसायन-शास्त्र)। शाखाओ का रूपक महत्वपूर्ण है (यदि इसे वहुत आगे न वढाया जाय), क्योकि यह सकेत करता है कि विभिन्न विज्ञान मिलकर साथ-साथ आगे वढते है, इसलिये एक में की गई खोजे दूसरी शाखा की खोजो को पुष्ट करती हैं। यह वर्णन नितात सक्षिप्त है और यदि यह भूल जायँ कि हम यहाँ बहुत बडे विपय पर केवल छोटी सी टिप्पणी कर रहे हैं, तो जो कुछ अभी कहा गया है, वह पूर्णतया भ्रामक हो सकता है। यहाँ केवल इस बात पर बल देना है कि बहुत से प्रतिबधो के साथ हम अभिकथन कर सकते है कि प्राकृतिक घटनाए आपस में इस प्रकार सबद्ध है कि, उदाहरणार्थ, पेडो में रसारोहण कैसे होता है, के पूर्ण ज्ञान मे गुरुत्वाकर्षण के सिद्धात तथा जीवित प्राणियो के व्यवहार पर भी ध्यान देने का प्रश्न उठ जायगा।

इस बात को हम इस प्रकार रख सकते हैं किस आधार पर मेरा विश्वास करना न्यायसगत है कि पानी पहाडी से नीचे की ओर वहता है ? हमे इसका विश्वास है, इस पर सदेह नही किया जा सकता। बच्चो का उत्तर है 'क्योकि पानी सदैव पहाडी से नीचे की ओर बहता है,' कुछ अधिक उपयुक्त उत्तर है, 'जल अपना तल स्वय प्राप्त करता है,, तीसरा उत्तर है, क्योकि जल द्रव का बहुत सु दर उदाहरण है।' इन प्रत्येक उत्तरो सें जल के व्यवहार को कुछ अन्य वस्तुओ के साथ सवद्ध करने का प्रयास किया जाता है, बच्चे के उत्तर में भी अभिकथन है कि इस पहाडी से नीचे की ओर आते हुए इस जल को बिलकुल असबद्ध घटना नही समझनी चाहिए। हमारा आज का उत्तर सभवत होना चाहिए जल का पहाडी से नीचे की ओर बहना यान्त्रिकी के सिद्धातो से निकलता है। अत, या तो यान्त्रिकी के सिद्धातो में कुछ गलती है या जल पहाडी से नीचे की ओर बहता है। यान्त्रिकी के सिद्धातो के वारे में विवाद करना सुव्यवस्थित ज्ञान के सपूर्ण क्षेत्र को अस्त-व्यस्त करना है। इसे करना पड सकता है, आइन्सटाइन के अन्वेषणो के फलस्वरूप कुछ अश तक यह किया भी गया है, किंतु यह कार्य दो शर्तो को पूरा न करने पर स्वीकृत न हुआ होता, वे शर्तें हैं (१) नई प्रावकल्पना सभी प्रेक्षित घटनाओ की सगति में हो, इन घटनाओ में न्यूटन के सिद्धातो द्वारा अभी तक जितनी व्याख्या

हुई है और जिनकी नही हुई है, वे सभी सम्मिलित हैं, (२) नई प्राक्कल्पना अनुवर्ती प्रायोगिक अन्वेषण का मार्ग प्रदर्शित करने वाला लाभदायक निगमन प्रदान करती हो। यह सबको मालूम है कि आइन्सटाइन का सिद्धात इन शर्तो को पूरा करता है।

विज्ञान की प्रणाली कभी-कभी सापेक्ष निगमनात्मक (Hypothetico-deductive) कही जाती है इस उपाधि में कुछ अच्छाई है। आइन्सटाइन ने कहा है,'यद्यपि प्रत्येक वैज्ञानिक सिद्धात के प्रति सबसे महत्त्वपूर्ण अपेक्षा बनी रहेगी कि वह अवश्य तथ्यो के मेल में हो, फिर भी सिद्धात आगमनात्मक से निगमनात्मक प्रणाली की ओर अधिकाधिक बढने के लिये बाध्य होता है।' सिद्धात जितना ही उच्च होता है उसका प्रतिपादन उतना ही अधिक निगमनात्मक रूप में होता है। फलत, उच्च कोटि का विज्ञान आपस में सबद्ध तथ्यो का एक विशाल तत्र है, नई खोजें तत्र मे ठीक से बैठा दी जाती हैं, कभी-कभी उन खोजो को स्थान देने के लिए तत्र मे सशोधन भी करना पडता है। किसी एक सामान्यीकरण (जो सरल गणना के 'खतरनाक एव बचकानी' विधि से प्रारभ हो सकता है) में हमारा विश्वास सपूर्ण तत्र के हमारे विश्वास पर बहुत आधारित रहता है। प्रेक्षित घटनाओ के सदर्भ मे तत्र की सचाई पर हमारी आस्था रहती है, क्योकि हम पाते है कि यह काम करता है, आगे प्रायोगिक प्रेक्षणो के लिये यह हमे गाइड करता है, जो अभी तक वियुक्त रहा और जिसकी व्याख्या नही हो सकी, उन सबको यह सबद्ध कर देता है। किसी कथन को समझने का अर्थ है जानना कि यह किसमे निहित था और इसमे क्या निहित है।

—o—

अध्याय १५

आगमन—तर्कदोष

तर्कशास्त्र आदर्शमूलक विज्ञान है। शुद्ध तर्क करने के लिये इसके बहुत से नियम बतलाये गये हैं। पर, व्यवहार मे इन नियमो का बहुधा उल्लघन होता रहता है। तर्क के नियमो का पालन न करने पर युक्ति मे जो दोप आता है, उसे तर्कदोप कहते हैं। प्रत्येक नियम का उल्लघन अपने ढग का दोप पैदा करता है। इसलिये जितने प्रकार के नियम हैं, प्राय उतने प्रकार के दोप भी। तर्कशास्त्र का यह सबसे विवादास्पद विषय है। विषय के स्वरूप के कारण, तर्कदोषो का कोई स्पष्ट वैज्ञानिक वर्गीकरण नही हो सकता, क्योकि जैसा जोजेफ ने कहा है, 'सत्य का मापदड हो सकता है किंतु दोपो का तो अनत विस्तार है और वे वर्गीकरण की परिधि मे नही आ सकते।' * डी मार्गन भी कहते हैं, 'उस रीति का कोई वर्गीकरण नही है, जिसके अनुसार मनुष्य गलतियाँ करते है, शायद ही कभी ऐसा हो सकता है।" + कुछ भ्रामक युक्तियाँ ऐसी होती हैं जो कभी तर्कदोषो के अदर आ सकती हैं, और कुछ इतनी मूर्खतापूर्ण होती हैं जिनका कोई तारतम्य नही होता और न हम उनको किसी नियम की कसौटी मे रख सकते हैं। अत, तर्कदोषो का कोई वर्गीकरण पूर्ण नही हो सकता। व्यावहारिक दृष्टि से हम इन्हे दो भागो मे बाँट सकते हैं निगमानात्मक एव आगमनात्मक। निगमनात्मक तर्कदोषो को हमने नियमो के सदभ मे स्थान-स्थान पर देखा है। यहाँ हम केवल आगमन-सबधी दोपो पर विचार करेंगे।

§ १ आगमन-दोष के प्रकार

आगमन-दोष को साधारण तरीके से दो भागो मे बाँटा जाता है (क) आनुमानिक और (ख) अनानुमानिक। (क) आनुमानिक तर्कदोष आगमनिक रीति से अनु-

* इट्रोडक्शन टु लॉजिक, पृष्ठ ५६६।

+ फॉरमल लॉजिक, पृष्ठ २३६।

मान निकालते समय गलती करने पर होता है। शुद्ध आगमन तीन माने जाते हैं वैज्ञानिक आगमन, सरल गणनात्मक आगमन, और सादृश्यानुमान। इनके अपने अलग-अलग नियम हैं। जैसे वैज्ञानिक आगमन का नियम है कि कारण पा जाने के बाद सामान्य सत्य पर पहुँचा जाय। सरल गणनात्मक आगमन का नियम है कि अकाट्य अनुभव के आधार पर निष्कर्ष निकाला जाय। सादृश्यानुमान का नियम है कि वस्तुओ के बीच महत्त्वपूर्ण गुणो की समानता पाने के बाद और गुणो की समानता का फल निकाला जाय। जब इनके नियमो का उल्लघन होता है, तो अनुमान मे उसीसे सबधित दोष आ जाता है। इन तीनो प्रकार के आगमन और उनके नियमो को ध्यान मे रखते हुए आनुमानिक तर्कदोष को तीन भागो मे बाँट सकते हैं—

(१) कारण सबधी दोष।

(२) सामान्यीकरण के दोष।

(३) सादृश्यानुमान के दोष।

(ख) अनानुमानिक तर्कदोष आगमन से सबधित क्रियाओ के नियमोल्लघन मे पाया जाता है। हम जानते है कि आगमन से सबधित बहुत सी प्रक्रियाएँ है जैसे प्रेक्षण, वर्गीकरण, कल्पना इत्यादि, जिससे आगमन मदद लेता है। उन प्रक्रियाओ के भी अपने-अपने नियम हैं। यदि उनका पालन नही होता, तो तर्क मे दोष आ जाता है। ये दोष निम्नलिखित हैं

(१) परिभाषा के।

(२) व्याख्या के।

(३) प्रेक्षण के।

(४) प्राक्कल्पना के।

(५) वर्गीकरण के।

(६) नामकरण के।

इन सभी अनानुमानिक दोषो का वर्णन पहले के अध्यायो मे भिन्न-भिन्न स्थानो पर हो चुका है। इसलिये उनको यहाँ फिर से लिखने की कोई आवश्यकता नही है। वर्ग 'क' के दोषो मे भी भ्रामक सादृश्य का वर्णन सादृश्यानुमान के अध्याय मे हुआ है। केवल कारण और सामान्यीकरण के दोषो का यहाँ कुछ विस्तार से वर्णन किया जायगा। यद्यपि इनके भी वर्णन कारण और सरल गणनात्मक आगमन के बयानो मे कुछ हो चुके हैं, फिर भी सुसंगठित ढग से उनके सब पहलुओ को यहाँ रखना आवश्यक प्रतीत होता है।

कारण-सबधी दोष —हमलोग कारण का वैज्ञानिक स्वरूप देख चुके है। यह गुण की दृष्टि से कार्य का 'आसन्न, अनौपाधिक, नियत पूर्ववत्ती' होता है और परिमाण की दृष्टि से 'कार्य के बराबर' होता है। यदि कारण के इस स्वरूप का ख्याल न कर किसी भी परिस्थिति को मनमाने ढग से कारण मान लिया जाय, तो कारण-सबधी दोष आ जाता है। इस तरह के कुछ प्रधान दोष नीचे दिये जाते हैं

(१) अकारण-कारण-दोष (Non Causa-Pro Causa)—कभी-कभी कारण के वैज्ञानिक स्वरूप पर बिना कुछ विचार किये ही लोग ऐसी चीजो को कारण मान लेते हैं, जिनका प्राकृतिक दुनिया से कोई मतलब नही होता। जैसे भूकप का कारण भगवान का क्रोध, हैजे का कारण काली का क्रोध, अतिवृष्टि का कारण इद्र का क्रोध, इत्यादि। इसी प्रकार कार्य से असबधित ऊल-जलूल वस्तु को कारण मानना अकारण को कारण मानने का दोष कहा जाता है।

(२) काकतालीय न्याय (Post hoc ergo propter hoc)—कारण-काय का पूर्ववर्त्ती होता है। पर, किसी घटना के घटने के समय असख्य परिस्थितियाँ पूवर्वत्ती के रूप मे वर्त्तमान रहती है। उनमे से सब उसका कारण नही हो सकती। पर, कुछ लोग केवल पूर्ववर्त्ती होने के नाते किसी परिस्थिति को कारण मान लेते है। जैसे, काम बिगडने के पहले छीक आ जाने पर लोग छीक को उसका कारण कह देते हे। वैसे ही पुच्छल तारे का दर्शन देश की गर्दिश का कारण मान लेते है या पूजा-पाठ को पानी बरसाने का कारण कहते हैं। भारतीय नैयायिको ने इसका एक सु दर उदाहरण दिया है। एक ताड का पेड गिरने ही वाला था कि उस पर एक कौवा आकर बैठ गया। कौवे को बैठते ही पेड को गिरते देखकर लोगो ने कौवे का बैठना ताड के पेड के गिरने का कारण कहना शुरू किया। इसीलिये इसको काकतालीय न्याय कहा जाता है। पोस्ट हॉक अर्गो प्राप्टर हॉक का भी अर्थ इसी से मिलता-जुलता है—"इसके बाद इसलिये इसके कारण से"। यह दोष अधविश्वास का अच्छा मसाला है।

(३) सहगामी परिस्थितियो को कारण-कार्य समझ लेने का दोष —साथ-साथ पायी जानेवाली परिस्थितियो को लोग बहुधा कारण-कार्य समझ लेते है, जबकि इनमे इस तरह का कोई सबध नही होता। जैसे स्कार्लेट रग के फूल मे किसी तरह की गध नही होती, तो लोग उन फूलो की गध-विहीनता का कारण स्कार्लेट रग को मान लेते हैं। अन्वय-विधि से प्राप्त, कारण कार्य सबध मे इस तरह की गलती की काफी गु जाइश रहती है।

(४) एक ही कारण के सह-कार्यो को आपस मे कारण-कार्य मान लेने का दोष — कभी एक ही कारण कई के परिणाम साथ ही साथ पैदा होते है। भूलवश लोग उन्ही

सहपरिणामों का आपस में एक को कारण और दूसरे को कार्य मान लेते हैं। जैसे, पृथ्वी की दैनिक गति के कारण रात और दिन दोनों होते हैं। पर, यदि रात को दिन का या दिन को रात का कारण मान लिया जाय, तो यह भूल होती है। वैसे ही बादलों के टकराने से बिजली और गर्जन की आवाज दोनों साथ-साथ पैदा होते हैं पर, अनभिज्ञ लोग बिजली को गर्जन-ध्वनि का कारण मान लेते हैं। गर्मी की कमी होने पर थर्मामीटर का पारा नीचे गिरता है और पानी भी जम जाता है। यदि पानी के जमने का कारण पारे का नीचे गिरना मान लिया जाय, तो यहाँ भी वही भूल कही जायेगी।

(५) कारण की एक परिस्थिति को पूर्ण कारण मान लेने का दोष — वैज्ञानिक दृष्टि से कारण कई परिस्थितियों का संयोग होता है। यदि इसका ख्याल न कर किसी एक ही महत्त्वपूर्ण परिस्थिति को पूर्ण कारण मान लिया जाय तो दोष, आ जाता है, जैसे मेहनत से पढने को परीक्षा में पास होने का एकमात्र कारण मान लेना। वास्तव में परीक्षा की सफलता में पढाई के साथ-साथ बुद्धि, निर्देशन, स्वास्थ्य, इत्यादि और कई परिस्थितियों का हाथ रहता है। केवल एक को पूर्ण कारण मान लेना भूल है। वैसे ही बंदूक छूटने का कारण घोडे का गिरना मान लिया जाता है। पर, केवल घोडा गिर कर क्या करेगा यदि कार्ट्रिज, टोपी तथा बंदूक के कल-पुर्जों की ठीक व्यवस्था न हो। यह दोष व्यावहारिक जीवन में बहुधा देखने को मिलता है।

(६) अभावात्मक परिस्थिति को छोड देने का दोष —ऊपर बतलाये गये दोष का यह भी एक रूप है। वैज्ञानिक दृष्टि से कारण भावात्मक तथा अभावात्मक सभी प्रकार की परिस्थितियों का संयोग होता है। जहाँ लोग भावात्मक परिस्थितियों पर तो विचार कर लेते हैं, पर अभावात्मक को बिलकुल छोड देते हैं, वहाँ यह दोष होता है। जैसे, लोग पैर फिसल कर गिर जाने को मरने का कारण मान लेते हैं और भूल जाते हैं कि अभावात्मक परिस्थितियों का भी महत्त्वपूर्ण हाथ रहा है। यदि वहाँ रूई या बालू के ढेर का अभाव न होता, तो गिरने पर भी उतनी चोट न आती, या शरीर की बनावट कुछ और मजबूत होती तो भी मृत्यु नहीं होती इत्यादि। आजकल बहुधा लोग कहते हुए सुने जाते हैं कि शिक्षा बेकार है, क्योंकि विद्यार्थियों में अनुशासनहीनता बढती जा रही है। इस कथन में यही अभावात्मक परिस्थिति को छोडने का दोष है। शिक्षा का तो काम विद्यार्थियों में अनुशासन बढाना ही है पर इसके प्रतिकूल अभावात्मक परिस्थितियाँ काम कर रही हैं जिन-पर वे विचार नहीं करते, जैसे सामाजिक व्यवस्था, दरिद्रता इत्यादि। ये सभी शिक्षा के प्रभाव को कम कर देती हैं।

(७) दूर की किसी परिस्थिति को कारण मान लेने का दोष —वैज्ञानिक दृष्टि से कारण-कार्य का आसन्न पूर्ववर्त्ती होता है, पर लोग कभी-कभी किसी बहुत दूरस्थ पूर्ववर्त्ती अवस्था को कारण मान लेते हैं, यह दोषपूर्ण है। भारत की स्वतन्त्रता (१५ अगस्त, १९४७) का कारण १८५७ का गदर मानना, या नेपोलियन के पतन का कारण उसकी रूस पर चढाई मानना, इसी दोष का उदाहरण है। यह सत्य है कि इन उदाहरणो मे उन दूर वाली परिस्थितियो का भी कुछ हाथ रहा है, पर उनको कारण मान लेना भ्रामक है। परिस्थिति और कार्य के बीच इस लबे समय मे और अन्य बहुत सी परिस्थितियाँ भी आ गई हैं, जिन्होने कार्य के होने मे काफी सहयोग दिया है। सबकी शृ खलाबद्ध व्याख्या ही कार्य से उसे दूरस्थ परिस्थिति का सबध बतला सकती है, पर वह कभी उस कार्य का कारण नही हो सकती। हो सकता है वह परिस्थिति अपनी निकट वाली घटना का कारण हो, वह घटना फिर अपने निकट वाली किसी दूसरी घटना का कारण हो, दूसरी घटना तीसरी का कारण हो और इस प्रकार शृ खला की कडी की तरह बढते-बढते कार्य विशेष तक चली आई हो। पर, ऐसी हालत मे यह याद रखना चाहिए कि कार्य का कारण कोई निकट की पूर्ववर्त्ती परिस्थिति ही है, वह दूर वाली परिस्थिति केवल उस कारण की शृ खला से बँधी है।

(८) कार्य के किसी एक हिस्से को पूरा कार्य मान लेना —कार्य भी कारण की तरह कई परिस्थितियो का सयोग होता है। किसी एक परिस्थिति या भाग को पूरा कार्य मान लेना दोषपूर्ण है। हमलोग कार्य के उसी हिस्से पर ध्यान देते है, जो हमारे काम की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होता है और दूसरे को छोड देते हैं जैसे शराब पीने से वात रोग मे लाभ होता है और साथ-ही साथ यकृत कमजोर होता हैं। पर, लोग पहले ही वाले परिणाम को ले लेते है और दूसरे पर ध्यान नही देते।

(९) कारण को कार्य और कार्य को कारण मानने का दोष —कही-कही पर यह भी दोष देखने मे आता है कि लोग कारण को कार्य मान लेते हैं और कार्य को कारण। जैसे, हम कहते हैं कि स्त्री-शिक्षा भारतीय जागृति का कारण है। पर, वास्तव मे इसका उलटा सत्य है—भारतीय जागृति स्त्री-शिक्षा का कारण है।

अवैध सामान्यीकरण—मनुष्यो मे सामान्यीकरण करने की प्रवृत्ति प्रबल है। घटनाओ के मूल मे बिना गये थोडे समान उदाहरणो को देखकर वे सामान्यीकरण कर देते है। इसी को अवैध सामान्याकरण का दोष कहते हैं। हमलोगो ने देखा है कि बिना कारण-सबध प्राप्त किये किसी सामान्य सत्य पर पहुँचना हो, तो उसके लिये अधिक-से-अधिक उदाहरणो को पाने की कोशिश करनी चाहिए और यदि सब मे एक तरह का अकाट्य अनुभव मिले, तभी उससे सामान्यीकरण करना चाहिए।

सहपरिणामो को आपस मे एक को कारण और दूसर को काय मान लेते है। जैसे, पृथ्वी की दनिक गति के कारण रात और दिन दोनो होते ह। पर, यदि रात को दिन का या दिन को रात का कारण मान लिया जाय, तो यह भूल होती है। वैसे ही बादलो के टकराने से बिजली और गर्जन की आवाज दोनो साथ-साथ पैदा होते हे पर, अनभिज्ञ लोग बिजली को गर्जन-ध्वनि का कारण मान लेते हैं। गर्मी की कमी होने पर थर्मामीटर का पारा नीचे गिरता है और पानी भी जम जाता है। यदि पानी के जमने का कारण पारे का नीचे गिरना मान लिया जाय, तो यहाँ भी वही भल कही जायेगी।

(५) कारण की एक परिस्थिति को पूर्ण कारण मान लेने का दोष — वैज्ञानिक दृष्टि से कारण कई परिस्थितियो का सयोग होता हे। यदि इसका ख्याल न कर किसी एक ही महत्त्वपूर्ण परिस्थिति को पूर्ण कारण मान लिया जाय तो दोष, आ जाता है, जैसे मेहनत से पढने को परीक्षा मे पास होने का एकमात्र कारण मान लेना। वास्तव मे परीक्षा की सफलता मे पढाई के साथ-साथ बुद्धि, निर्देशन, स्वास्थ्य, इत्यादि और कई परिस्थितियो का हाथ रहता है। केवल एक को पूर्ण कारण मान लेना भूल है। वैसे ही बदूक छूटने का कारण घोडे का गिरना मान लिया जाता है। पर, केवल घोडा गिर कर क्या करेगा यदि कार्ट्रिज, टोपी तथा बदूक के कल-पुर्जो की ठीक व्यवस्था न हो। यह दोष व्यावहारिक जीवन मे बहुधा देखने को मिलता है।

(६) अभावात्मक परिस्थिति को छोड देने का दोष —ऊपर बतलाये गये दोष का यह भी एक रूप है। वैज्ञानिक दृष्टि से कारण भावात्मक तथा अभावात्मक सभी प्रकार की परिस्थितियो का सयोग होता है। जहाँ लोग भावात्मक परिस्थितियो पर तो विचार कर लेते हैं, पर अभावात्मक को बिलकुल छोड देते हैं, वहाँ यह दोष होता है। जैसे, लोग पैर फिसल कर गिर जाने को मरने का कारण मान लेते है और भूल जाते हैं कि अभावात्मक परिस्थितियो का भी महत्त्वपूर्ण हाथ रहा है। यदि वहाँ रुई या बालू के ढेर का अभाव न होता, तो गिरने पर भी उतनी चोट न आती, या शरीर की बनावट कुछ और मजबूत होती तो भी मृत्यु नही होती इत्यादि। आजकल बहुधा लोग कहते हुए सुने जाते हैं कि शिक्षा बेकार है, क्योंकि विद्यार्थियो मे अनुशासनहीनता बढती जा रही है। इस कथन मे यही अभावात्मक परिस्थिति को छोडने का दोष है। शिक्षा का तो काम विद्यार्थियो मे अनुशासन बढाना ही है पर इसके प्रतिकूल अभावात्मक परिस्थितियाँ काम कर रही हैं जिन-पर वे विचार नही करते, जैसे सामाजिक व्यवस्था, दरिद्रता इत्यादि। ये सभी शिक्षा के प्रभाव को कम कर देती है।

(७) दूर की किसी परिस्थिति को कारण मान लेन का दोप —वैज्ञानिक दृष्टि से कारण-कार्य का आसन्न पूर्ववर्त्ती होता है, पर लोग कभी-कभी किसी वहुत दूरस्थ पूर्ववर्त्ती अवस्था को कारण मान लेते हैं, यह दोपपूर्ण है। भारत की स्वतन्त्रता (१५ अगस्त, १९४७) का कारण १८५७ का गदर मानना, या नेपोलियन के पतन का कारण उसकी रूस पर चढाई मानना, इसी दोप का उदाहरण है। यह सत्य है कि इन उदाहरणो मे उन दूर वाली परिस्थितियो का भी कुछ हाथ रहा है, पर उनको कारण मान लेना भ्रामक है। परिस्थिति और कार्य के बीच इस लवे समय मे और अन्य बहुत सी परिस्थितियाँ भी आ गई है, जिन्होने कार्य के होने मे काफी सहयोग दिया है। सवकी शृ खलावद्ध व्याख्या ही कार्य से उसे दूरस्थ परिस्थिति का सवध वतला सकती है, पर वह कभी उस कार्य का कारण नही हो सकती। हो सकता है वह परिस्थिति अपनी निकट वाली घटना का कारण हो, वह घटना फिर अपने निकट वाली किसी दूसरी घटना का कारण हो, दूसरी घटना तीसरी का कारण हो और इस प्रकार शृ खला की कडी की तरह वढते-बढते कार्य विशेष तक चली आई हो। पर, ऐसी हालत मे यह याद रखना चाहिए कि कार्य का कारण कोई निकट की पूर्ववर्त्ती परिस्थिति ही है, वह दूर वाली परिस्थिति केवल उस कारण की शृ खला से बँधी है।

(८) कार्य के किसी एक हिस्से को पूरा कार्य मान लेना —कार्य भी कारण की तरह कई परिस्थितियो का सयोग होता है। किसी एक परिस्थिति या भाग को पूरा कार्य मान लेना दोषपूर्ण है। हमलोग कार्य के उसी हिस्से पर ध्यान देते हैं, जो हमारे काम की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होता है और दूसरे को छोड देते हैं जैसे शराब पीने से वात रोग मे लाभ होता है और साथ-ही साथ यकृत कमजोर होता हैं। पर, लोग पहले ही वाले परिणाम को ले लेते है और दूसरे पर ध्यान नही देते।

(९) कारण को कार्य और कार्य को कारण मानने का दोष —कही-कही पर यह भी दोष देखने मे आता है कि लोग कारण को कार्य मान लेते हैं और कार्य को कारण। जैसे, हम कहते है कि स्त्री-शिक्षा भारतीय जागृति का कारण है। पर, वास्तव मे इसका उलटा सत्य है—भारतीय जागृति स्त्री-शिक्षा का कारण है।

अवैध सामान्यीकरण—मनुष्यो मे सामान्यीकरण करने की प्रवृत्ति प्रवल है। घटनाओ के मूल मे बिना गये थोडे समान उदाहरणो को देखकर वे सामान्यीकरण कर देते है। इसी को अवैध सामान्याकरण का दोष कहते हैं। हमलोगो ने देखा है कि विना कारण-सवध प्राप्त किये किसी सामान्य सत्य पर पहुँचना हो, तो उसके लिये अधिक-से-अधिक उदाहरणो को पाने की कोशिश करनी चाहिए और यदि सब मे एक तरह का अकाट्य अनुभव मिले, तभी उससे सामान्यीकरण करना चाहिए।

यद्यपि उसके भी निष्कर्ष की सचाई पर प्रश्न-चिह्न लगा ही रहता है। इसलिये बेकन सरल गणनात्मक आगमन के किसी रूप को मानने के लिये तैयार नही हैं।

अवैध सामान्यीकरण का दोप बहुधा उस समय होता है, जब हमलोग, अपने प्रेक्षण को बहुत सीमित क्षेत्र मे रखते है या बहुत थोडे उदाहरण से ही सामान्यीकरण कर देते हैं। जैसे, कुछ पजाबियो को लवा देखकर कह देते हैं कि पजाबी लवे होते हैं, या कुछ अग्रेज यात्रियो को खर्चीला देखकर कहते हैं कि अग्रेज खर्चीले होते है। ये सभी अवैध सामान्यीकरण है, क्योकि यदि थोडे ही और उदाहरण लिए जाते, तो इसकी असत्यता स्पष्ट प्रकट हो जाती। मिल बतलाते है कि इसी अवैध सामान्यीकरण के फलस्वरूप अरस्तू के समय मे लोगो का विश्वास था कि दासत्व प्रथा बिना समाज की उन्नति के सभव नही है। वैसे ही आज लोगो मे धारणा है कि दार्शनिक व्यापार के लिये अयोग्य हैं।

मिल की व्यतिरेक-विधि को छोड अन्य प्रयोगात्मक विधियो से भी केवल सभव फल प्राप्त होता है। इसलिये यदि पूर्ण सतर्कता न बरती जाय, तो इनके आधार पर किये गये सामान्यीकरण भी अवैध हो जायेंगे।

§ २ तर्केतर दोष

तर्केतर दोष तर्क के नियमो से नही, बल्कि उसकी वास्तविकता से सबधित होते है। इसलिये उन्हे तत्वगत तर्कदोष (Material fallacies) भी कहते हैं। इनके कुछ मुख्य रूप नीचे दिये जाते हैं

(१) आत्माश्रय-दोष (Petitio Principii) —आत्माश्रय-दोप उस समय होता है, जब हम लोग या तो जिसे साबित करना है उसी को सत्य मान लेते हैं या उसे ऐसे वाक्यो द्वारा साबित करते हैं, जो उसी पर आधारित रहते हैं। इस दोष मे हम लोग तर्क नही करते, बल्कि तर्क का एक बनावटी बाहरी रूप देते है। इसमे जो कुछ कहा जाता है, वह नया नही होता, बल्कि उसी की पुनरावृत्ति होती है। मिल, अरस्तू के प्रथम आकारीय न्यायवाक्य पर यही दोष लगाते हैं। उनका कहना है कि इस प्रकार के सभी न्यायवाक्य मे सामान्य वाक्य निष्कर्ष को पहले ही मान लेते हैं। जैसे हम कहते हैं कि सभी मनुष्य मरणशील है, सुकरात एक मनुष्य हैं, इसलिये वह मरणशील हैं, तो यहाँ सुकरात की मरणशीलता पहले ही वाक्य—सभी मनुष्य मरणशील हैं—मे मान ली जाती है। अत, निष्कर्ष केवल साध्य वाक्य की पुनरावृत्ति करता है। उसी प्रकार यदि कहा जाय कि अफीम नीद लाती है, क्योकि उसमे नीद लाने का गुण है, या प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि भिखारियो को भीख दे, क्योकि दानी होना उसका कर्त्तव्य है, तो ये आत्माश्रय-दोप वाले तर्क होंगे। जो

निष्कर्ष है, वही आधार भी। यह दोष कभी-कभी बहुत चक्करदार रूप धारण कर लेता है, जो आसानी से समझ मे नही आता। बहुत पढे-लिखे आदमी भी इस तरह की गलती बहुधा करते हैं, क्योकि सभी लोग कुछ-न-कुछ धारणा बनाये रहते हैं। अरस्तू ने इसके निम्नलिखित पाँच रूप बतलाये है —

(1) जिस बात को सिद्ध करना है, उसी को मान लेना—इस दोष का खास नाम "बेगिंग दि क्वेश्चन" (begging the question) है। इसके भी दो रूप हैं पूर्वापरक्रम-दोष (hysteron-proteron), और चक्रक-युक्ति-दोष (circulus in demonstrandos)

पूर्वापरक्रम-दोप उस समय होता है, जब निष्कर्ष और आधारवाक्य प्राय एक ही होते है। इसका साकेतिक उदाहरण इस प्रकार होगा क ख है, इसलिये क ख है। अरस्तू ने इसका उदाहरण इस प्रकार दिया है तीन सीधी रेखाओ से घिरे हुए प्रत्येक समतल धरातल के कोणो का योग दो समकोण के बराबर होता है, त्रिभुज तीन सीधी रेखाओ से घिरा हुआ समतल धरातल है, इसलिये प्रत्येक त्रिभुज के कोणो का योग दो समकोण के बराबर होता है। यह दोप व्यावहारिक जीवन मे बहुत देखने को मिलता है। हमलोग कहते है कि अफीम खाने से नीद आती है, क्योकि इसमे नीद लाने का गुण है, या ठढा करने पर चीजें सिकुडती है, क्योकि उसके कण नजदीक आ जाते हैं।

चक्र-युक्ति-दोष मे आधारवाक्य निष्कर्ष को मान नही लेता, बल्कि आधार-वाक्य को सिद्ध करने के लिये स्वय निष्कर्ष आवश्यक होता है। जोजेफ * इसका उदाहरण देते हैं यदि कहा जाय कि प्राचीन ट्यूटानिक सोसाइटी का आधार खानदानी सबध था, क्योकि उस समय की सभी सस्थाओ का यही आधार था, तो यहाँ चक्रक-युक्ति-दोष होगा। यहाँ आधारवाक्य है—प्राचीन समय की सभी सस्थाओ का आधार खानदानी सबध था। लेकिन, यह तथ्य गणनात्मक है। प्रारभिक ट्यूटानिक सोसाइटियो की बिना जाँच किये यह नही कहा जा सकता कि प्राचीन सभी सस्थाओ का आधार खानदानी था। अत, यहाँ आधारवाक्य को सिद्ध करने के लिये निष्कर्ष की ही सहायता लेनी पडती है। यदि आधारवाक्य और निष्कर्ष मे कुछ दूरी हो जाय और उसी से फायदा उठाते हुए ऐसा तर्क किया जाय कि कभी आधारवाक्य से निष्कर्ष सिद्ध किया जाय और कभी निष्कर्ष ही से आधार वाक्य * तो चक्रक-युक्ति-दोष आता है। ह्वाटले भी इसका एक अच्छा उदाहरण देते है +

*ऐन इट्रोडक्शन टु लॉजिक, पृष्ठ ५९२।

+ लॉजिक, पृष्ठ २२५।

यद्यपि उसके भी निष्कर्ष की सचाई पर प्रश्न-चिह्न लगा ही रहता है। इसलिये वेकन सरल गणनात्मक आगमन के किसी रूप को मानने के लिये तैयार नही हैं।

अवैध सामान्यीकरण का दोष वहुधा उस समय होता है, जव हमलोग, अपने प्रेक्षण को वहुत सीमित क्षेत्र मे रखते है या वहुत थोडे उदाहरण से ही सामान्यीकरण कर देते है। जैसे, कुछ पजावियो को लवा देखकर कह देते है कि पजावी लवे होते हैं, या कुछ अग्रेज यात्रियो को खर्चीला देखकर कहते है कि अग्रेज खर्चीले होते हैं। ये सभी अवैध सामान्यीकरण हैं, क्योकि यदि थोडे ही और उदाहरण लिए जाते, तो इसकी असत्यता स्पष्ट प्रकट हो जाती। मिल वतलाते है कि इसी अवैध सामान्यीकरण के फलस्वरूप अरस्तू के समय मे लोगो का विश्वास था कि दासत्व प्रथा बिना समाज की उन्नति के सभव नही है। वैसे ही आज लोगो मे धारणा है कि दार्शनिक व्यापार के लिये अयोग्य है।

मिल की व्यतिरेक-विधि को छोड अन्य प्रयोगात्मक विधियो से भी केवल सभव फल प्राप्त होता है। इसलिये यदि पूर्ण सतर्कता न बरती जाय, तो इनके आधार पर किये गये सामान्यीकरण भी अवैध हो जायेगे।

§ २ तर्केतर दोष

तर्केतर दोष तर्क के नियमो से नही, वल्कि उसकी वास्तविकता से सबधित होते है। इसलिये उन्हे तत्त्वगत तर्कदोष (Material fallacies) भी कहते है। इनके कुछ मुख्य रूप नीचे दिये जाते हैं

(१) आत्माश्रय-दोष (Petitio Principii) —आत्माश्रय-दोष उस समय होता है, जव हम लोग या तो जिसे साबित करना है उसी को सत्य मान लेते है या उसे ऐसे वाक्यो द्वारा सावित करते हैं, जो उसी पर आधारित रहते हैं। इस दोष मे हम लोग तर्क नही करते, बल्कि तर्क का एक बनावटी बाहरी रूप देते हैं। इसमे जो कुछ कहा जाता है, वह नया नही होता, बल्कि उसी की पुनरावृत्ति होती है। मिल, अरस्तू के प्रथम आकारीय न्यायवाक्य पर यही दोष लगाते हैं। उनका कहना है कि इस प्रकार के सभी न्यायवाक्य मे सामान्य वाक्य निष्कर्ष को पहले ही मान लेते हैं। जैसे हम कहते हैं कि सभी मनुष्य मरणशील है, सुकरात एक मनुष्य हैं, इसलिये वह मरणशील हैं, तो यहाँ सुकरात की मरणशीलता पहले ही वाक्य—सभी मनुष्य मरणशील हैं—मे मान ली जाती है। अत, निष्कर्ष केवल साध्य वाक्य की पुनरावृत्ति करता है। उसी प्रकार यदि कहा जाय कि अफीम नीद लाती है, क्योकि उसमे नीद लाने का गुण है, या प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि भिखारियो को भीख दे, क्योकि दानी होना उसका कर्त्तव्य है, तो ये आत्माश्रय-दोष वाले तर्क होगे। जो

निष्कर्ष है, वही आधार भी। यह दोष कभी-कभी वहुत चक्करदार रूप धारण कर लेता है, जो आसानी से समझ मे नही आता। बहुत पढे-लिखे आदमी भी इस तरह की गलती वहुधा करते हैं, क्योकि सभी लोग कुछ-न-कुछ धारणा वनाये रहते हैं। अरस्तू ने इसके निम्नलिखित पाँच रूप वतलाये है —

(1) जिस वात को सिद्ध करना है, उसी को मान लेना—इस दोष का खास नाम "वेगिंग दि क्वेश्चन" (begging the question) है। इसके भी दो रूप हैं पूर्वापरक्रम-दोष (hysteron-proteron), और चक्रक-युक्ति-दोष (circulus in demonstrandos)

पूर्वापरक्रम-दोष उस समय होता है, जव निष्कर्ष और आधारवाक्य प्राय एक ही होते हैं। इसका साकेतिक उदाहरण इस प्रकार होगा क ख है, इसलिये क ख है। अरस्तू ने इसका उदाहरण इस प्रकार दिया है तीन सीधी रेखाओ से घिरे हुए प्रत्येक समतल धरातल के कोणो का योग दो समकोण के वरावर होता है, त्रिभुज तीन सीधी रेखाओ से घिरा हुआ समतल धरातल है, इसलिये प्रत्येक त्रिभुज के कोणो का योग दो समकोण के बराबर होता है। यह दोष व्यावहारिक जीवन मे बहुत देखने को मिलता है। हमलोग कहते है कि अफीम खाने से नीद आती है, क्योकि इसमे नीद लाने का गुण है, या ठढा करने पर चीजें सिकुडती हैं, क्योकि उसके कण नजदीक आ जाते हैं।

चक्र-युक्ति-दोष मे आधारवाक्य निष्कर्ष को मान नही लेता, बल्कि आधारवाक्य को सिद्ध करने के लिये स्वय निष्कर्ष आवश्यक होता है। जोजेफ * इसका उदाहरण देते हैं यदि कहा जाय कि प्राचीन ट्यूटानिक सोसाइटी का आधार खानदानी सवध था, क्योकि उस समय की सभी सस्थाओ का यही आधार था, तो यहाँ चक्रक-युक्ति-दोष होगा। यहाँ आधारवाक्य है—प्राचीन समय की सभी सस्थाओ का आधार खानदानी सवध था। लेकिन, यह तथ्य गणनात्मक है। प्रारभिक ट्यूटानिक सोसाइटियो की विना जाँच किये यह नही कहा जा सकता कि प्राचीन सभी सस्थाओ का आधार खानदानी था। अत, यहाँ आधारवाक्य को सिद्ध करने के लिये निष्कर्ष की ही सहायता लेनी पडती है। यदि आधारवाक्य और निष्कर्ष मे कुछ दूरी हो जाय और उसी से फायदा उठाते हुए ऐसा तर्क किया जाय कि कभी आधारवाक्य से निष्कर्ष सिद्ध किया जाय और कभी निष्कर्ष ही से आधारवाक्य * तो चक्रक-युक्ति-दोष आता है। ह्वाटले भी इसका एक अच्छा उदाहरण देते हैं +

*ऐन इट्रोडक्शन टु लॉजिक, पृष्ठ ५६२।

+ लॉजिक, पृष्ठ २२५।

कुछ वैज्ञानिक सिद्ध करना चाहते है कि पदार्थ के प्रत्येक कण पर गुरुत्वाकर्षण-शक्ति का समान मात्रा मे प्रभाव पड रहा है, क्योकि जिन पदार्थो मे कणो की सख्या अधिक हे, वे अधिक शक्ति से आकर्षित हो रहे है—अर्थात् अधिक भारी हैं। लेकिन, इसके प्रतिकूल तर्क दिया जा सकता है कि जो पदार्थ वजनी है, वे आवश्यक रूप से लवे-चौडे शरीर वाले नही है। इसका उत्तर होगा, 'नही, फिर भी उनमे कण अधिक होते है यद्यपि वे थोडी ही दूरी मे वहुत नजदीक-नजदीक रहते हैं।' 'यह मालूम कैसे होता है ?' 'क्योकि वे भारी हैं' उससे यह सिद्ध कैसे होता है ?' 'क्योकि पदार्थ के सभी कणो पर समान शक्ति से आकर्पण हो रहा है,' उन पदार्थो मे, जो अपेक्षाकृत अधिक वजनी है, उतनी ही जगह मे अधिक कण होते हैं।'

(ii) आत्माश्रय-दोप का दूसरा रूप है, किसी सामान्य सत्य को मान लेना जिसमे वह विशेप भी छिपा रहता है, जिसे सिद्ध करना है। जिस सामान्य वाक्य को अभी सिद्ध करना बाकी है, उसे निष्कर्प निकालने के लिये स्वयसिद्ध नही मान लेना चाहिये। यदि कहा जाय कि सभी वणिक कजूस हैं, रमेश वणिक है, इसलिये वह कजूस है, तो यहाँ आत्माश्रय-दोष होगा। इसमे निष्कर्ष सामान्य वाक्य मे छिपा हे और सामान्य वाक्य को अभी सिद्ध करना बाकी ही है, वह कोई स्वयसिद्धि नही है। मिल ने इसी आधार पर न्यायवाक्य की आलोचना की है। आत्माश्रय-दोष का यह रूप सबसे शुद्ध और महत्त्वपूर्ण है।

(iii) इसका तीसरा स्वरूप है सामान्य को सिद्ध करने लिये विशेष को सत्य मान लेना, जो विशेष उसी सामान्य मे छिपा हुआ है। आगमन का तरीका यहाँ सरल गणनात्मक होता है। स्वय अरस्तू इसके शिकार हुए है जब वह कहते है दासता प्राकृतिक नियम के अनुसार है, क्योकि पडोसी बारबेरियस जो बुद्धि मे निम्नकोटि के हैं, यूनानियो के लिये जन्मसिद्ध दास है।

(iv) आत्माश्रय-दोष का चौथा रूप बहुत कुछ पहले का ही रूपातर है। इसमे सामान्य वाक्य को छोटे-छोटे भागो मे बाँटा जाता हे और प्रत्येक भाग को सत्य मानकर सिद्ध किया जाता है कि वह सामान्य वाक्य भी सत्य है। अरस्तू का ही उदाहरण लिया जाय वह कहते हैं कि उचित तथा अनुचित पथ्य का ज्ञान ही निरोग होने के उपाय का ज्ञान है। यहाँ यह मान लिया गया है कि इन दोनो तरह के पथ्यो का ज्ञान पूरे स्वस्थ रहने के ज्ञान के बराबर है।

(v) इसका पाँचवा रूप है कि विना किसी दूसरे प्रमाण के केवल विलोम से कथन की सत्यता सिद्ध करना, जैसे कहा जाय कि इलाहाबाद बनारस के पश्चिम है इसलिये बनारस इलाहाबाद के पूरब है, या दशरथ राम के पिता थे, इसलिये

राम दशरथ के पुत्र थे। इस तरह के उदाहरणो मे विचार मे गति नही हे। दोनो वाक्यो मे एक ही बात कही जाती है, केवल शब्दो का अतर रहता है। यहाँ यह भी नहीं पाया जाता कि नये वाक्य मे कोई छिपी हुई बात प्रकट की जाती हो।

(२) अर्थातर-सिद्धि-दोष (Ignoratio Elenchi) —अर्थातर-सिद्धि-दोप का अर्थ है इच्छित निष्कर्प से भिन्न कोई दूसरा निष्कर्प सिद्ध करना। इसमे तर्क करने का तरीका बिलकुल ठीक हो सकता है, केवल निष्कर्ष वह नही होगा जिसकी उस परिस्थितिविशेष मे आवश्यकता है। अरस्तू इसका व्यवहार उस जगह करते हैं, जहाँ कोई नैयायिक अपने विरोधी के निष्कर्ष का तार्किक विलोम न सिद्ध कर कोई दूसरी बात सिद्ध करता है, अर्थात् ऐसी बात कहता है जो उसके विरोधी की बात को खडित करने वाली नही होती। पर, आजकल इसका व्यवहार उन सभी जगहो मे होने लगा है, जहाँ जिस चीज को सिद्ध करने की आवश्यकता है, उससे भिन्न कोई दूसरी चीज सिद्ध होती हो। जैसे, यदि कोई न्यायाधीश किसी अपराधी के आचरण से असतुष्ट होकर उसे सजा देता है यद्यपि जिस अपराध को वह देखने चला था, उसके लिये उसे कोई सबूत नही मिलता, तो वहाँ भी यही अर्थातर-सिद्धि-दोप कहा जायगा। अत, यह हर तरह के अनावश्यक निष्कर्ष पर लागू होता है।

अर्थातर सिद्धि-दोष व्यवहार मे बहुत मिलता है और इसके बहुत से रूप भी देखने मे आते हैं, यहाँ तक कि इसके बहुधा पाये जाने वाले रूपो के अलग-अलग नाम पड गये है। उनमे से कुछ मुख्य रूप नीचे दिये जाते हैं

(क) लाछन-युक्ति (Argumentum ad hominem)—अनावश्यक निष्कर्ष निकालने का यह एक रूप है, जिसमे हमारा लक्ष्य व्यक्ति रहता है, उसका कथन नही। यदि हम कहे कि श्याम झूठा है, क्योकि वह शराबी है, तो लाछन-युक्ति-दोष होगा। यहाँ श्याम की बातो को झूठ सिद्ध करना है, तो उन बातो की व्याख्या कर हम यह दिखलाने की कोशिश नही करते कि किस प्रकार वे झूठी हैं, बल्कि श्याम को ही अपना लक्ष्य बना लेते है और कहते हैं कि चूँकि वह शराबी है, इसलिये उसकी बातें झूठी हैं। झूठ बोलने और शराब पीने मे कोई आवश्यक सबध न होने के कारण तार्किक दृष्टि से यह तर्क अनावश्यक है। राजनीति के क्षेत्र मे यह दोष बहुधा देखने को मिलता है। एक व्यक्ति दूसरे के सिद्धातो का खडन उसके आचरण की खराबी दिखलाकर करता है। वकीलो की बहस मे भी कभी-कभी यह दोष पाया जाता है। यदि किसी के चोरी करने का सबूत उन्हे नही मिलता, तो वे यह सिद्ध करने की कोशिश करते हैं कि उस आदमी की चोरी करने की आदत है।

(ख) श्रद्धामूलक युक्ति (Argumentum ad Verecundiam)—यह दोष उस समय होता है, जब तर्क का आधार किसी शब्द (आप्त वचन) या प्रभुत्व को छोड कोई दूसरा नही रहता। जैसे, कुछ लोग जाति-प्रथा को इसलिये मान्य बतलाते

हैं कि तुलसीदास इसको मानने के लिये कहते हैं, या पुराणो मे इसको मानने की बात कही गई है। मध्यकालीन यूरोप मे यह दोष बहुत प्रचलित रूप मे मिलता था। लोग बहुत सी न्यायसगत बातें बाइबिल के नाम पर त्याग देते थे। बहुत दिनो तक कोपरनिकस का सिद्धात इसलिये मान्य नही हुआ कि बाइबिल मे पृथ्वी के स्थिर रहने की बात लिखी हुई है।

(ग) लोकोत्तेजक युक्ति (Argumentum ad Populum)—यह दोष उस समय होता है, जब अपनी बात सिद्ध करने के लिये किसी न्यायसगत युक्ति का सहारा न लेकर दूसरे की भावना को उत्तेजित किया जाता है, ताकि वह उसकी बातें मान ले। जैसे, वोट के समय काग्रेसी लोग कहते हैं कि यदि जनता काग्रेस को वोट न देगी, तो जवाहरलाल, पतजी, श्रीबाबू ऐसे लीडर, जिन्होने स्वतत्रता प्राप्त करने के लिये अपनी जान की बाजी लगा दी थी, की शान मे बट्टा लग जाएगा। बडे-बडे वक्ता सभाओ मे भावना को ही उत्तेजित कर जनता मे अपना काम बनाते हैं। जो लोग विकास-वाद के विरूद्ध हैं, वे कहते हैं कि यदि डार्विन की बाते मान ली जायेगी, तो यह भी मानना पडेगा कि हमलोगो के पूर्वज बदर थे।

(घ) पराज्ञानमूलक युक्ति (Argumentum ad ignorantiam)—यदि अपने प्रतिवदी के अज्ञान का सहारा लेकर कोई बात सिद्ध की जाय, तो वहाँ यह दोष होता है। बहुत सी जगहो मे यह सोचकर कोई बात कही जाती है कि सुनने वाला इतना मूर्ख है कि इसकी गलती नही देख सकेगा और बात मान लेगा। इन जगहो पर भरोसा अपनी युक्ति का नही है, बल्कि दूसरे की अज्ञानता का है। पढे-लिखे आदमी अनपढो के सामने इससे लाभ उठाते हैं। कभी-कभी लोग अपनी बात ठीक सिद्ध करने की कोशिश न कर दूसरे से कहते हैं कि वह उसे गलत सिद्ध करे। वहाँ भी दूसरे के अज्ञान का भरोसा रहता है।

(ङ) मुष्टि-युक्ति (Argumentum ad baculum)—यह दोष वहाँ होता है, जहाँ प्रतिवादी के तर्क का खडन अपने तर्क से न होने पर बल का प्रयोग किया जाता है, जैसे जोर से चिल्ला-चिल्ला कर या घूसा या तलवार दिखला कर प्रतिवादी को चुप कर देना। भेडिया और मेमने की कहानी इसका सु दर उदाहरण है। स्टाक ने इसकी आलोचना मे कहा है, अपने से मतभेद होने पर किसी को मारकर गिरा देना शरीर के बल को सिद्ध करता है, तर्क के बल को नही।

(३) नानुमिति-दोष (Non sequitur)—यह दोष वहाँ होता है, जहाँ निष्कर्ष आधारवाक्यो से आवश्यक रूप मे नही निकलता। आधारवाक्य और निष्कर्ष दोनो अपनी-अपनी जगह पर ठीक हो सकते हैं, लेकिन उनका सबध इस रूप मे नही हो सकता कि आधारवाक्यो से निष्कर्ष निगमन के रूप मे निकले। जैसे, यदि कोई

कहे कि कालेजो का बढना बुरा हुआ है, क्योकि देश मे डकैती बढ गई है, तो नानु-मिति-दोष होगा। इसका उत्तर दिया जा सकता है कि डकैती बढने की पूर्ववर्त्ती घटनाओ मे केवल कालेजो का बढना ही नही है, बल्कि और भी बहुत सी चीजे हैं, जो डकैती बढने के कारण के रूप मे शायद अधिक यथार्थ हैं।

अरस्तू ने इस दोष को फलवाक्य दोष (Fallacy of Consequent)— के रूप मे लिया है, जो हेतुफलाश्रित निगमन का एक मुख्य दोष है। जैसे, कहे 'यदि पानी बरसेगा तो कालेज बद हो जायगा, कालेज बद हो गया है, अत पानी बरसा है' तो यह दोष होगा, क्योकि कालेज बद होने के लिये पानी बरसने के अतिरिक्त बहुत सी अन्य पूर्ववर्त्ती परिस्थितियाँ भी हैं। कालेज बद देखकर इस निष्कर्ष पर नही पहुँचा जा सकता कि पानी ही बरसने से वह बद है।

(४) प्रश्न छल (Fallacy of many questions)—यदि प्रश्न इस प्रकार बनाया जाय कि उसका 'हाँ' या 'ना' मे कोई भी उत्तर उससे सबधित बात को सत्य सिद्ध करे, तो वहाँ प्रश्न छल होता है। जैसे, यदि पूछें क्या तुमने चोरी करना छोड दिया ? तो उसके 'हाँ' या 'ना' किसी प्रकार के उत्तर से यह सिद्ध हो जाता है कि उसमे चोरी करने की आदत थी। यहाँ यह प्रश्न अकेले नही है, इसमे और भी प्रश्न छिपे हुए हैं, जिनके उत्तर इसी से प्राप्त हो जाते हैं।

—o—

अध्याय १६

नैयायिक व्याप्ति-विधि एवं हेत्वाभास

§ १. व्याप्ति-विधि

भारत के महान् तार्किक गौतम के अनुसार ज्ञानप्राप्ति के चार साधन हैं (१) प्रत्यक्ष, (२) अनुमान, (३) उपमान और (४) शब्द। यहाँ हमे अनुमान तथा उसके आधार पर विचार करना है।

अनुमान दो शब्दो के मेल से बना है, वे हैं ' अनु और मान। अनु का अर्थ है 'बाद' और मान का अर्थ है, ज्ञान। अत अनुमान का शाब्दिक अर्थ हुआ 'पश्चात् ज्ञान' वह ज्ञान जो दूसरे ज्ञान पर आधारित हो। एक वस्तु को जानकर उसी के द्वारा किसी अन्य वस्तु का ज्ञान प्राप्त करना अनुमान कहलाता है। जैसे—किसी जगह पर धुएँ को देख कर हम तुरत समझ जाते हैं कि वहाँ आग है। यहाँ आग का प्रत्यक्ष ज्ञान नही है, बल्कि इसका ज्ञान धुएँ के प्रत्यक्ष ज्ञान से होता है। हम पहले से जानते है कि जहाँ धुआँ होगा आग अवश्य होगी। इसी पूर्वज्ञान के आधार पर हम धुएँ को देख कर आग के अस्तित्व का अनुमान करते हैं। अत, अनुमान वह मानसिक क्रिया है, जिसमे ज्ञात के आधार पर अज्ञात् के विषय मे ज्ञान प्राप्त किया जाता है। जैसे —

पहाडी पर आग है।
क्योंकि वहाँ धुआँ है।
और जहाँ-जहाँ धुआँ है, वहाँ-वहाँ आग है।

पहाडी पर आग है, यही इस अनुमान का निष्कर्ष है। इस निष्कर्ष की प्राप्ति दो बातो पर आधारित है। पहला, पहाडी पर धुएँ का प्रत्यक्ष होना और दूसरे, यह ज्ञान रहना कि जहाँ-जहाँ धुआँ होगा, आग अवश्य होगी। अगर हमे पहाडी पर

धुआँ का प्रत्यक्ष नही होता, तो हम वहाँ आग होने का अनुमान नही कर पाते। अनुमान की क्रिया मे प्रथमत प्रत्यक्ष ज्ञान का होना आवश्यक है, क्योंकि उसी प्रत्यक्ष ज्ञान के आधार पर अज्ञात के विषय मे अनुमान किया जाता है। इसीलिये वात्स्यायन ने यह कहा है कि प्रत्यक्ष ज्ञान के अभाव मे अनुमान सभव नही है। लेकिन, अनुमान के लिये प्रत्यक्ष ही सब कुछ नही है। सिर्फ धुआँ देखने से आग का ज्ञान नही होता, निगमन के लिये धुआँ और आग के बीच व्यापक सबध का ज्ञान रहना जरूरी है, क्योंकि अबोध बच्चे को धुआँ देखने के बाद आग का ज्ञान नही होता। इसका मुख्य कारण यह है कि उसे धुआँ और आग के बीच व्यापक सबध का ज्ञान नही रहता। न्यायशास्त्र मे इस व्यापक सबध का नाम 'व्याप्ति' दिया गया है। अनुमान की क्रिया मे सर्वप्रथम पक्ष के साथ हेतु का प्रत्यक्ष होता है, जैसे पहाडी पर धुएँ का देखना। यहाँ धुआँ हेतु तथा पहाडी पक्ष है। फिर हेतु और साध्य के बीच व्याप्ति सबध को स्मरण करते है, और तब पक्ष मे साध्य को सिद्ध करते है कि पहाडी मे आग है। व्याप्ति-ज्ञान ही निष्कर्ष का आधार है। इस ज्ञान के अभाव मे निष्कर्ष निकालना सभव नही है। इसीलिये भारतीय तार्किको ने 'अनुमान' उस विचार प्रणाली का नाम दिया है, जिससे हम किसी लिंग (हेतु) के द्वारा अन्य वस्तु के सबध मे ज्ञान प्राप्त करते हैं। ऊपर के उदाहरण में धुएँ के आधार पर आग का अनुमान किया जाता है। धुआँ आग का सूचक है अर्थात् धुआँ और आग के बीच व्याप्ति-सबध है।

धुआँ देखकर हमलोग आग का अनुमान करते हैं, किंतु पत्थर को देखकर (आग का अनुमान) नही करते। ऐसा क्यो? इसका एकमात्र उत्तर होगा कि धुआँ और आग के बीच व्याप्ति-सबध है अर्थात् जहाँ-जहाँ धुआँ है, वहाँ-वहाँ आग भी रहती है। लेकिन, पत्थर और आग के बीच ऐसे सबध का अभाव है। व्याप्ति-ज्ञान के आधार पर ही हम प्रत्यक्ष ज्ञान से बाहर जाते हैं। वही अनुमान का मूल साधन है। अत, स्वभावत यह प्रश्न उठता है कि व्याप्ति क्या है तथा इसका ज्ञान मनुष्य को कैसे होता है?

व्याप्ति क्या है?—व्याप्ति का अर्थ है एक प्रकार का विशेष सबध। साधारणत दो पदार्थों या घटनाओ के विशेष सबध को व्याप्ति कहा जाता है। लेकिन, अनुमान मे सिर्फ तीन पद होते हैं—साध्य, हेतु (लिंग) और पक्ष। ऊपर के उदाहरण मे पहाडी पक्ष है, धुआँ हेतु या लिंग और आग साध्य पद है। यहाँ निष्कर्ष वाक्य (पहाडी पर आग है) हेतु और साध्य के सबध पर निर्भर करता है। इसी हेतु और साध्य के विशेष सबध का नाम व्याप्ति है। लेकिन, यह विशेष सबध क्या है? ऊपर धुएँ के आधार पर आग का अनुमान किया गया है, क्योंकि इनमे नियत साहचर्य का सबध है। जहाँ धुआँ होगा, आग अवश्य होगी। अत, इस विशेष सबध का

अर्थ है, दो पदार्थों का नियत साहचर्य। साहचर्य का अर्थ है, एक साथ रहना। यह साहचर्य सबध दो तरह का होता है (१) नियत, (२) अनियत। नियत साहचर्य उन दो पदार्थों के सबध को कहते है, जो सदा एक साथ रहते है। उदाहरणस्वरूप यह धुआँ और आग मे हे। जहाँ धुआँ होगा, आग अवश्य होगी। ऐसा कभी नही हो सकता, धुआँ रहे और आग का अभाव हो। लेकिन, दो पदार्थों मे ऐसा सबध हो कि वे दोनो कभी साथ रहें तथा कभी साथ न रहें, तो उनके साहचर्य सबध को अनियमित साहचर्य सबध कहा जायगा। अनियमित साहचर्य सही अनुमान का आधार नही बन सकता। ऐसा सबध 'सवेरा' और कुहासा मे है। सवेरा और कुहासा एक साथ पाये जा सकते है। किंतु, इनमें नियत साहचर्य का सबध नही है। ऐसा हम कभी नहीं कह सकते कि प्रत्येक सवेरा मे कुहासा अवश्य होगा, क्योकि किसी दिन सवेरा मे कुहासा रहता है तथा कभी नही भी रहता। अर्थात् अनियमित दो पदार्थों के उस सबध को कहते हैं, जिसमे एक के अभाव मे भी दूसरे का भाव हो सकता है। न्यायदर्शन मे ऐसे सबध को 'व्यभिचरित' सबध कहा गया है। अत, अव्यभिचारित या नियत साहचर्य सबध ही व्याप्ति है। व्याप्ति मे व्यभिचार या अपवाद नही होता। जैसे—धुआँ और आग मे नियत साहचर्य पाया जाता है। धुआँ कभी आग से अलग नही रहता। वह एकनिष्ठ होकर आग के साथ रहता है। अर्थात् व्याप्ति-सबध ऐकातिक होता है। धुआँ सिर्फ आग मे ही होता है, किसी अन्य पदार्थ मे नही। इसलिये धुआँ और आग के इस प्रकार के सबध को 'अविनाभाव' कहा जाता है। अविनाभाव का शाब्दिक अर्थ है—जिसके बिना न हो। जब एक वस्तु दूसरे के बिना नही रह सकती, तो उनके सबध को अविनाभाव सबध कहा जाता है। धुआँ कभी आग के बिना नही रह सकता। आग के अभाव मे धुएँ का अस्तित्व सभव नही है। अत, कही-कही व्याप्ति-सबध को अविनाभाव भी कहा गया है।

लेकिन दो पदार्थों के सिर्फ नियत साहचर्य सबध को व्याप्ति कहना ठीक नही है, क्योकि सिर्फ नियत साहचर्य के आधार पर सही निष्कर्ष नही निकलता, वल्कि दो पदार्थों का नियत साहचर्य अनौपाधिक रहना चाहिये। जब हम बिजली का बटन दबाते हैं, तो पखा चलने लगता है और नही दबाने पर वह नही चलता। फिर भी बटन दबाने और पखा चलने मे व्याप्ति-सबध नही कहा जा सकता, क्योकि यहाँ पखा चलने की एक शर्त है। वह है विद्युत् शक्ति का होना। यदि बिजली नही रहेगी तो हम लाख बटन दबाये, पखा नही चल सकता। बटन दबाने पर पखे का चलना निर्भर नही करता—बल्कि वह बिजली पर आधारित है। ठीक इसी तरह से आग और धुएँ का सबध भी सापेक्ष है। आग मे यदि ईधन भीगा रहेगा, तभी धुआँ निकलता है। आग की उपस्थिति मे हम धुएँ का अनुमान नही कर सकते। बिना धुएँ के भी आग पायी जाती है। गर्म लोहा इसका उदाहरण है। गर्म लोहे

मे आग है, पर धुआँ नही। लेकिन धुएँ और आग का सबध उपाधिरहित है। जब कभी धुआँ होगा, आग अवश्य होगी। अत , सही अनुमान के लिये हेतु और साध्य के बीच अनौपाधिक सबध रहना आवश्यक है। इसीलिये वाचस्पति मिश्र ने दो पदार्थों के अनौपाधिक साहचर्य को व्याप्ति कहा है। अत मे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि दो पदार्थों या घटनाओ का नियत तथा अनौपाधिक सबध का नाम व्याप्ति है। यदि दो पदार्थों मे ऐसा सबध रहेगा, तो एक के भाव के आधार पर दूसरे का अनुमान कर सकते हैं। गौतम का यह व्याप्ति-सबध पाश्चात्य तर्कशास्त्र के कारण-कार्य सबध से मिलता है। मिल ने कारण को कार्य का नियत तथा अनौपाधिक पूर्ववर्त्ती कहा है। वहाँ यही कारण-कार्य नियत के आधार पर सामान्यीकरण किया जाता है।

अब प्रश्न यह है कि किसमे किसकी व्याप्ति है और कौन किसका सूचक है। जो व्याप्त रहता है, उसे 'व्यापक' और जिसमे व्याप्त रहता है, उसे 'व्याप्य' कहते है। ऊपर व्याप्ति के उदाहरण मे धुएँ और आग का सबध बतलाया गया है। इस उदाहरण मे आग व्यापक है और धुआँ व्याप्य। संपूर्ण धुआँ आग के अदर है, किंतु सपूर्ण आग धुआँ मे सीमित नही है। आग धुएँ के विना भी पायी जा सकती है। अत , धुएँ मे आग की व्याप्ति है, किंतु आग मे धुएँ की नही। अर्थात् धुएँ आग का सूचक है, आग धुएँ का नही। हम यह कह सकते है कि जहाँ-जहाँ आग है, वहाँ-वहाँ आग है, किंतु इसका उल्टा वाक्य अर्थात् जहाँ-जहाँ आग है, वहाँ-वहाँ धुआँ है, नही कह सकते।

नैयायिको के अनुसार यह व्याप्ति-सबध दो तरह का होता है। पहला सम-व्याप्ति, दूसरा विषम-व्याप्ति। दो बराबर वस्त्वर्थ वाले पदो के बीच यदि व्याप्ति-सबध रहे, तो उने सम-व्याप्ति कहते हैं। ऐसे व्याप्ति-सबध से किसी एक के आधार पर दूसरे का अनुमान किया जा सकता है। जैसे, पृथ्वी और गध मे या मनुष्य और विवेकशीलता मे यह सबध है। हेतु और साध्य के समव्याप्ति सबध को यदि तार्किक वाक्य मे प्रकट किया जाय, तो यह शाब्दिक सामान्य वाक्य का रूप होगा, जिसका उद्देश्य तथा विधेय दोनो व्याप्त रहता है। विषम व्याप्ति के आधार पर सिर्फ हेतु के भाव से साध्य का भाव सिद्ध किया जा सकता है, किंतु इसका बिपरीत ठीक नही। ऊपर के उदाहरण मे धुएँ और आग के बीच विषम व्याप्ति का सबध है, क्योकि धुएँ को देखकर आग का अनुमान किया जा सकता है, पर आग के भाव के आधार पर धुएँ का अनुमान करना भूल होगी।

§ २. व्याप्ति की स्थापना

व्याप्ति के सबध मे दूसरा प्रश्न है—'व्याप्ति का ज्ञान कैसे होता है ?' ऊपर के उदाहरण मे धुआँ और आग के बीच व्याप्ति-सबध बतलाया गया है। यहाँ

प्रश्न यह है कि हम कैसे जानते है कि जहाँ-जहाँ धुआँ है, वहाँ-वहाँ आग भी है, अर्थात् सभी धुएँवाले पदार्थो मे आग है या सभी मनुष्य मरणशील हैं ? पाश्चात्य तर्कशास्त्र मे यह आगमन की स्थापना का प्रश्न है, क्योकि आगमन का उद्देश्य है सामान्य वास्तविक वाक्य की रचना करना। अत, व्याप्ति की स्थापना किस प्रकार की जाती है ? इस प्रश्न का मतलब है कि सामान्य वाक्य की रचना किस प्रकार की जाती है ? पाश्चात्य तर्कशास्त्र मे आगमन कारण-कार्य सबध पर निर्भर करता है। आगमन की स्थापना के लिये, या यो कहा जाय कि दो पदार्थो या घटनाओ के बीच कारण-कार्य सबध निश्चित करने के लिये, मिल ने पाँच नियम बतलाये हैं, जिसका नाम उन्होने प्रयोगात्मक विधि दिया है। भारतीय तार्किक इस प्रश्न का समाधान अपने ढग से करते हैं।

चार्वाक दार्शनिक केवल प्रत्यक्ष को ही ज्ञानप्राप्ति का साधन स्वीकार करते है। उनके अनुसार अनुमान ज्ञानप्राप्ति का सही तरीका नही है। अत, उनके सामने व्याप्ति का प्रश्न नही उठता। इस समस्या के सबध मे गौतम तथा अन्य नैयायिको के विचारो का उल्लेख करने के पहले अन्य भारतीय दार्शनिको का विचार जान लेना अच्छा होगा।

बौद्ध दार्शनिको के अनुसार व्याप्ति का ज्ञान कारण-कार्य सबध तथा तादात्म्य सबध के द्वारा होता है। यह ज्ञान अनुभवनिरपेक्ष तथा स्वाभाविक है। यदि दो पदार्थों मे कारण-कार्य का सबध रहे, तो उनसे सामान्य वाक्य की रचना हो सकती है, क्योकि बिना कारण का कार्य सभव नही है। लेकिन, यहाँ सवाल यह है कि कारण-कार्य का सबध किस प्रकार निश्चित किया जाय, इसके जाने बिना व्यापक वाक्य नही बन सकता ? बौद्ध तार्किको ने कारण-कार्य सबध को निश्चित करने के लिये एक तरीका बतलाया है, जिसका नाम पचकरणी विधि है। इसमे पाँच सीढियाँ हैं। वे इस प्रकार हैं (अ) कारण तथा कार्य दोनो का अभाव है, (ब) कारण का भाव हुआ (स) तो कार्य का भी भाव हुआ (द) फिर कारण का अभाव हुआ (प) तो कार्य का भी अभाव हुआ। यही पचकरणी विधि बौद्धो के अनुसार कारण-कार्य सबध निश्चित करने की विधि है। उदाहरणार्थ हम यह कह सकते है कि (अ) पहले न मच्छड था, न मलेरिया (ब) मच्छड का भाव हुआ (स) तो मलेरिया रोग भी आया और (द) फिर मच्छड़ के नाश के बाद (प) मलेरिया का भी नाश हुआ। इस उदाहरण को देखते हुए हम बौद्ध दार्शनिको के अनुसार यह कहेंगे कि मच्छड़ ही मलेरिया का कारण है। कहने का तात्पर्य यह है कि जब किसी घटना के अभाव में दूसरी घटना अभाव और उसके भाव मे दूसरी घटना का भी भाव हो, तो उन घटनाओ के बीच कारण-कार्य सबध होगा। बौद्धो की यह पचकरणी विधि मिल के प्रेक्षण पर आधारित व्यतिरेक-विधि से कुछ मिलती है।

इसके अलावे तादात्म्य सवध आधार पर भी व्याप्ति की स्थापना बौद्ध दार्शनिक करते हैं। तादात्म्य का अर्थ है—अभेद। किंतु, यहाँ तादात्म्य का यह अर्थ नही है कि वे दोनो पदार्थ एक ही हो। बल्कि इसका तात्पर्य यह है कि जब दो पदार्थों मे एक ही सार गुण वर्त्तमान हो, तो उनसे व्याप्ति सिद्धि होती है। बौद्ध दर्शन का यह तादात्म्य सवध पाश्चात्य तर्कशास्त्र की जाति और उपजाति के सबध है। जाति का गुण उपजाति मे वर्त्तमान रहता है। मनुष्य और पशु दोनो मे पशुता सारगुण है। इसलिये बौद्ध, दार्शनिको के अनुसार इसमे तादात्म्य सवध है। अत, उनके अनुसार इस सवध के आधार पर यह व्यापक वाक्य बन सकता है कि सभी मनुष्यो मे पशुता है। इस प्रकार कारण-कार्य सवध तथा तादात्म्य सवध को बौद्ध दर्शन मे व्याप्ति का सवध माना जाता है।

वेदात के अनुसार भी व्याप्ति अनुमान का मूल आधार है, जिसकी स्थापना सरल गणनात्मक आगमन के आधार पर की जाती है। जब दो वस्तुएँ या घटनाएं सदा साथ-साथ रहें, इसका कोई अपवाद न मिले, तो उसके सवध को व्याप्ति कहा जायगा। जैसे धुआँ है और आग बराबर साथ रहते है। ऐसा कभी नही होता कि धुआँ रहे और आग का अभाव हो। इसी अव्याघातक अनुभूति के आधार पर ये लोग धुआँ और आग के बीच व्याप्ति मानते है। वेदात दर्शन की यह विधि मिल की अन्वय-विधि से मिलती है, किंतु सरल गणनात्मक आगमन का निष्कर्ष केवल सभव होता है। अत, इस विधि के द्वारा निश्चित और सही व्यापक वाक्य की स्थापना सभव नही है।

यो तो भारतीय दर्शन मे व्याप्ति की स्थापना के लिए अनेक विधियाँ बतलायी गई हैं। उन सबकी चर्चा करना यहाँ सभव नही है। हमारा ध्यान मुख्यत नैयायिक विधि पर है। अन्य प्रमुख विधियो की चर्चा प्रसगवश की गई है। ऊपर यह बतलाया गया है कि बौद्ध दार्शनिको के अनुसार कारण-कार्य नियम तथा तादात्म्य नियम द्वारा ही व्याप्ति-सबध या व्यापक वाक्य की स्थापना होती है। किंतु, नैयायिक इस बात से सहमत नही है। ये लोग कुछ अश तक वेदात के विचार को मान लेते है। वेदात दार्शनिको की तरह नैयायिक भी यह मानते हैं कि व्याप्ति-सबध का ज्ञान सरल गणनात्मक आगमन पर निर्भर करता है। जब दो घटनाएँ सदैव साथ रहे, उनका कोई विरोधी उदाहरण न मिले, तो उनमे व्याप्ति-सबध होगा। किंतु, नैयायिक वेदात दर्शन की तरह सिर्फ अव्याघातक अनुभूति को व्याप्ति ज्ञान का आधार नहीं मानते। इसके अलावे ये लोग तर्क तथा सामान्य लक्षण द्वारा व्याप्ति-सबध की पुष्टि करते हैं।

नैयायिक व्याप्ति-विधि मे सर्वप्रथम अन्वय-विधि का सहारा लिया जाता है। हम यह देखते हैं कि दो पदार्थ साथ-साथ उपस्थित होते है अर्थात् एक के भाव

मे दूसरे का भी भाव होता है। जैसे मच्छड के भाव मे मलेरिया हुआ। लेकिन, दो पदार्थों का सिर्फ अन्यव सबध ही व्याप्ति-स्थापना के लिए पर्याप्त नही है। वे यह देखने की चेष्टा करते हैं कि दोनो साथ-साथ अनुपस्थित हैं या नही। उदाहरण-स्वरूप यह देखते हैं कि जहाँ मच्छड नही है, मलेरिया भी नही है। न्याय के इस अन्वय तथा व्यतिरेक-विधि को मिला दिया जाय, तो इनका सम्मिलित रूप पश्चात् तार्किक मिल की सयुक्त विधि के सदृश हो जाता है। किंतु, सयुक्त विधि द्वारा भी सच्ची व्याप्ति की रचना सभव नही है। इसके अन्वय-व्यतिरेक के साथ-साथ अपवाद देखना आवश्यक है। जैसे जहाँ-जहाँ धुआँ है—वहाँ-वहाँ आग भी हे, इसका एक भी विरोधी उदाहरण नही मिलना चाहिए, तभी इनमे व्याप्ति-सबध कहा जायगा।

लेकिन, फिर भी हम यह नही कह सकते कि अन्वय-व्यतिरेक तथा अव्याघातक उदाहरण पर आधारित व्याप्ति सही है, क्योकि हो सकता है कि किसी उपाधि के कारण उनमे अपवाद नही मिला है। जैसे पहले एक उदाहरण दिया गया है कि जब-जब बटन दबाते है, पखा चलने लगता है और जब बटन नही दबाते, पखा नही चलता। इसका कोई अपवाद भी नही मिलता। फिर भी बटन दबाने और पखा चलने मे व्याप्ति-सबध नही कहा जा सकता, क्योकि पखा चलना बिजली पर निर्भर करता है। अत, दो घटनाओ का साहचर्य उपाधिरहित रहना जरूरी है। यहाँ व्याप्ति की स्थापना अनुभव के बल पर करने की चेष्टा की गई है। अन्वय, व्यतिरेक, अव्याघातक उदाहरण तथा उपाधि का अभाव प्रेक्षण द्वारा जाना जाता हैं। प्रेक्षण मे गलती होने की सभावना रहती है। इसलिये यह निश्चय-पूर्वक नही कहा जा सकता कि अमुक घटनाओ का साहचर्य उपाधि और अपवाद-रहित है। प्रेक्षण की इस भूल से बचने के लिये नैयायिको ने उन घटनाओ के अनेक उदाहरण को देखने के लिए कहा है। यदि अनेक बार उनका साहचर्य देखा जाय, तो उसमे भूल होने की कम गुजाइश रहेगी। इस अनेक बार देखने की विधि को भारतीय तर्कशास्त्र मे भूयोदर्शन कहा गया है।

व्याप्ति की रचना मे नैयायिक अनौपाधिक सबध की स्थापना कर छोड नही देते, बल्कि इसकी पुष्टि के लिये वे तर्क तथा सामान्य-लक्षण प्रत्यक्ष का सहारा लेते हैं। उनका कहना है कि चार्वाक आदि सशयवादी यह शका उठा सकते है कि अनुभव पर आधारित व्याप्ति सिर्फ वर्त्तमान के लिए सही हो सकती है। वर्त्तमान मे हम देखते हैं कि जहाँ धुआँ है, वहाँ आग है या सभी मनुष्य मरणशील हैं। लेकिन, यह कैसे कहा जायगा कि भविष्य मे भी मनुष्य मरेंगे? पश्चात्य तार्किक ह्यूम ने भी सामान्य वाक्य की रचना पर ऐसी शका उठायी है। उनके अनुसार

सामान्य वाक्य की रचना सभव नही है, क्योकि भविष्य पर मनुष्य का कोई अधिकार नही है। अत , यह कहना कि भविष्य मे भी मनुष्य मरेंगे, सही नही मालूम होता। ह्यूम और चार्वाक-जैसे सशयवादियो के उत्तर के लिये नैयायिको ने तर्क का सहारा लिया है। उनका कहना है कि यह वाक्य कि "जहाँ-जहाँ धुआँ है, वहाँ-वहाँ आग भी है" यदि सही नही है, तो इसका व्याघातक कुछ धुआँवाली वस्तु अग्नियुक्त नही है, अवश्य इसका व्याघातक कुछ धुआँवाली वस्तु अग्नियुक्त नही है, अवश्य सही होगा, क्योकि व्याघातक वाक्यो मे एक की असत्यता दूसरे की सत्यता सिद्ध करती है। किंतु, यहाँ व्याघातक सही नही है, क्योकि कोई भी धुआँ वाली वस्तु अग्नि-रहित नही है तथा किसी धूमवान पदार्थ को अग्निरहित होना सभव भी नही है। ऐसा होने का मतलब है कि बिना कारण के भी कार्य होगा। अत , यह वाक्य कि जहाँ धुआँ है वहाँ आग भी है, अवश्य सही है। अर्थात् धुएँ और आग के बीच व्याप्ति-सबध है।

नैयायिक व्याप्ति की स्थापना मे सामान्य लक्षण प्रत्यक्ष की भी मदद लेते है। साधारणत लोग प्रत्यक्ष ज्ञान का अथ इ द्रियज्ञान से समझते है, जो सिर्फ कुछ का हो सकता है। किंतु, न्याय का यह सामान्य लक्षण प्रत्यक्ष साधारण प्रत्यक्ष ज्ञान नही है। यह अलौकिक प्रत्यक्ष का एक रूप है। इस प्रत्यक्ष द्वारा हमे व्यक्ति-विशेष के प्रेक्षण से उसके सामान्य गुण का ज्ञान होता है। जैसे, राम, श्याम आदि को देखकर उनमे मनुष्यत्व का ज्ञान होता है। और उन्हे मरते देख यह ज्ञान होता है कि जिसमे मनुष्यत्व है वह मरणशील है, अर्थात् सभी मनुष्य मरणशील है। नैयायिक इसी प्रत्यक्ष को व्याप्ति का आधार मानते हैं। इससे प्राप्त ज्ञान निश्चित होता है, जिसे हम नीचे लिखे उदाहरण द्वारा समझ सकते हैं। जैसे सभी कौवे काले हैं और सभी मनुष्य मरणशील हैं—ये दोनो व्यापक वाक्य हैं, दोनो की स्थापना अव्याघातक अनुभूति पर हुई है। लेकिन, ध्यान से देखने पर यह स्पष्ट होता है कि "सभी कौए काले हैं" यह वाक्य उतना निश्चित है। इसका मुख्य कारण यह है कि मनुष्य तथा मरणशीलता का सबध सामान्य लक्षण प्रत्यक्ष द्वारा स्थापित किया है। लेकिन, कौए और कालेपन मे वैसा गुण नही है, जैसा मनुष्य और मरणशीलता मे। कौवा दूसरे रग का भी हो सकता है "किंतु मनुष्य मरणशील नही है" यह वाक्य असभव-सा लगता है। इस तरह नैयायिको के अनुसार किसी व्यक्ति को देखकर सामान्य लक्षण प्रत्यक्ष द्वारा उसकी जाति के गुण को जानते है तथा जब यह देखते हैं कि उस व्यक्ति का साहचर्य दूसरे पदार्थ से है, तो उस व्यक्ति की जाति तथा उस पदार्थ के बीच व्याप्ति-सबध स्थापित करते है। इस तरह नैयायिक व्यक्तिविशेष को देखकर उसके जाति-गुण के आधार पर सामान्य वाक्य की रचना करते हैं।

इस तरह हम देखते है कि ये लोग व्याप्ति की रचना मे अन्वय-व्यतिरेक-विधि के अतिरिक्त तर्क तथा सामान्य लक्षण प्रत्यक्ष का भी सहारा लेते हैं। किंतु चार्वाक

के अनुसार न्यायिको की यह व्याप्ति-विधि दोषरहित नही है। नैयायिको के लिए व्याप्ति ही अनुमान का आधार है, जिसकी स्थापना अनुभव पर होती है। अनुभव मे गलती होने की सभावना रहती है, अनुभव से प्राप्त ज्ञान निश्चित नही कहा जा सकता। साथ ही अनुभव कुछ का ही सभव है। अत, अनुभव के बल पर सामान्य वाक्य नही बन सकता।

§ ३. व्याप्ति-विधि के आधार पर अनुमान के भेद

अन्वय और व्यतिरेक विधियो के द्वारा व्याप्ति की स्थापना होती है। इन विधियो के अनुसार अनुमान तीन तरह का होता है (१) केवालान्वयी (२) केवल-व्यतिरेकी (३) अन्वय-व्यतिरेकी।

(१) केवलान्वयी — अनुमान व्याप्ति-सबध पर निर्भर करता है। लिंग तथा साध्य के नियत साहचर्य का नाम व्याप्ति है। जिस अनुमान मे लिंग (हेतु) तथा साध्य के बीच केवल अन्वय-सबध हो, तो उसे केवलान्वयी अनुमान कहते हैं। अन्वय, सबध का मतलब है कि एक की उपस्थिति मे दूसरे का होना। जैसे—

जहाँ-जहाँ धुआँ है, वहाँ आग है।
पहाडी पर धुआँ है
इसलिये पहाडी पर आग है।

यहाँ धुआँ लिंग तथा आग साध्य है। इन दोनो मे भावात्मक सबध बतलाया गया है।

(२) केवल-व्यतिरेकी — वह अनुमान है, जिसकी व्याप्ति निषेधात्मक उदा-हरणो पर निर्भर करती है। ऐसे अनुमान मे लिंग तथा साध्य का सबध निषेधात्मक रहता है। जैसे—

जिसमे आत्मा नही है, उसमे चेतनता नहीं है।
पत्थर मे आत्मा नही है।
अत, पत्थर मे चेतनता नहीं है।

ऊपर के उदाहरण मे यह देखते हैं कि लिंग तथा साध्य के बीच भावात्मक सबध नही है। यह व्यतिरेक-विधि पाश्चात्य तार्किक मिल की व्यतिरेक-विधि से भिन्न है। मिल की व्यतिरेक-विधि के अनुसार व्यापक वाक्य की रचना के लिए उदाहरणो की आवश्यकता है, जिसमे एक भावात्मक तथा दूसरा निषेधात्मक होता है। भावात्मक उदाहरण मे कारण के भाव से कार्य का भाव दिखाया जाता है, किंतु अभावात्मक उदाहरण मे कारण-कार्य दोनो का अभाव दिखाया जाता है। इन भावात्मक तथा अभावात्मक उदाहरणो के द्वारा दो घटनाओ मे कारण-कार्य सबध स्थापित किया जाता है। लेकिन, नैयायिक व्यतिरेक-विधि मे व्यापक वाक्य की रचना केवल निषे-धात्मक उदाहरणो के द्वारा होती है।

(३) अन्वय-व्यतिरेकी — अनुमाम मे व्यापक वाक्य की रचना के लिये भावात्मक तथा अभावात्मक दोनो प्रकार के उदाहरणो की मदद ली जाती है। भावात्मक उदाहरण द्वारा यह सिद्ध किया जाता है कि एक के भाव मे दूसरे का भी भाव रहता है तथा निषेधात्मक उदाहरण द्वारा यह प्रमाणित किया जाता है कि लिंग के अभाव मे साध्य का भी अभाव रहता है। इसकी व्याप्ति अन्वय तथा व्यतिरेक दोनो प्रणाली पर निर्भर करती है। जैसे—

सभी धुआँ वाली वस्तुएँ अग्नियुक्त है।

पहाडी धुआँ वाली वस्तु है।

अत, पहाडी पर आग है।

अग्निहीन पदार्थ मे धुआँ नही रहता।

पहाडी मे धुआँ है।

अत, पहाडी पर आग है।

न्याय की यह अन्वय-व्यतिरेक-विधि मिल की सयुक्त विधि से मिलती-जुलती है।

§ ४. हेत्वाभास

न्याय के अनुसार अनुमान व्याप्ति सबध पर आश्रित है। यदि व्याप्ति सबध सही न हो, तो उससे बना अनुमान अवश्य दोषपूर्ण होगा। हेतु और साध्य के नियत और अनौपाधिक साहचर्य सवध को व्याप्ति कहते हैं। इसलिये दोषपूर्ण व्याप्ति का अर्थ है—हेतु और साध्य मे नियत साहचर्य न होना। वह अनुमान दोषपूर्ण समझा जायगा, जिसका निष्कर्ष हेतु पर निर्भर नही करता। अनुमान मे गलती चूँकि हेतु के कारण होती है, इसलिये भारतीय तर्कशास्त्र मे अनुमान की गलती का नाम हेत्वाभास दिया गया है। हेत्वाभास (हेतु + आभास) दो शब्दो के योग से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ होता है—हेतु का आभास। इसी शाब्दिक अर्थ को लेकर हेत्वाभास शब्द का प्रयोग दो अर्थो में हुआ है। हेतु में जो दोष रहता है, उसे हेत्वाभास कहते हैं, किंतु, दूसरे अर्थ मे दोषपूर्ण अनुमान को हेत्वाभास कहते है। साधारणत इस शब्द का प्रयोग गलत अनुमान के लिये ही होता है। पाश्चात्य तर्कशास्त्र में सत्यता की दृष्टि से अनुमान में दो प्रकार की गलतियाँ होती हैं (१) आकारिक तथा (२) तात्त्विक। किंतु, भारतीय अनुमान में केवल तात्त्विक दोष पर ही विचार किया गया है, क्योंकि यहाँ आकारिक दृष्टि मे गलती की सभावना नही मानी जाती।

हेत्वाभास के प्रकार

हेत्वाभास दोप पाँच प्रकार का होता है —

(१) सव्यभिचार ।

(२) विरूद्ध ।

(३) सत्प्रति पक्ष ।

(४) असिद्ध ।

(५) बाधित ।

(१) सव्यभिचार— सही अनुमान के लिये हेतु और साध्य के बीच नियत साहचर्य रहना आवश्यक है, जैसे धुआँ और आग मे । किंतु, धुआँ सिर्फ आग मे ही होता है अर्थात् धुआँ ऐकातिक है । वह सदा साध्य (अग्नि) के साथ रहता है । लेकिन, जब हेतु तथा साध्य का सबध नियत एव अनौपाधिक नही होगा, तो उस व्याप्ति पर आधारित अनुमान गलत होगा । इस गलती का नाम सव्यभिचार है । अनुमान मे हेतु साध्य के साथ भी रह सकता है तथा अलग भी । जैसे —

सभी ज्ञात पदार्थो मे आग है ।
पहाडी ज्ञात पदार्थ है ।
अत , पहाडी पर आग है ।

यहाँ हेतु और साध्य मे नियत साहचर्य नही है , क्योकि हेतु साध्य से अलग भी पाया जाता है । इस उदाहरण मे हेतु है 'ज्ञात पदार्थ' तथा आग साध्य है । यह कोई जरूरी नही कि आग सभी ज्ञात पदार्थों मे हो । आग कुछ ज्ञात पदार्थ जैसे रसोईघर, अगीठी आदि मे है किंतु कुछ ज्ञात पदार्थ जैसे तालाब, नदी आदि मे नही है । अत , यहाँ हेतु अनैकातिक है । इसलिये ऊपर का उदाहरण गलत है, जिस गलती का नाम सव्यभिचार है ।

(२) विरूद्ध—किसी भी अनुमान मे हेतु के आधार पर ही साध्य को सिद्ध करते हैं । लेकिन, जो सिद्ध करना चाहते हैं, उसका उल्टा यदि हेतु द्वारा सिद्ध हो, तो वह अनुमान गलत समझा जायगा । इस गलती का नाम विरूद्ध हेत्वाभास है । जैसे—ससार नित्य है, क्योकि वह कार्य है । इस अनुमान मे हेतु 'कार्य' है । कार्य से अनित्यता सिद्ध होती है , क्योकि कार्य का अर्थ है किसी घटना का फल होना जो उस घटना के होने के पहले नही था । अत , यहाँ हेतु साध्य का उल्टा ही सिद्ध कर रहा है, क्योकि इस हेतु के बल पर ससार अनित्य सिद्ध होता है, नित्य नही । इसलिये इसमे विरूद्ध हेत्वाभास का दोप है ।

(३) सत्यप्रति पक्ष—जब साध्य के पक्ष तथा विपक्ष मे दो तुल्य हेतु रहे, तो अनुमान के उस दोष को सत्यप्रति पक्ष हेत्वाभास कहते हैं। यहाँ दोनो हेतुओ मे एक साध्य को प्रमाणित करता है तथा दूसरा अप्रमाणित। दोनो हेतुओ की शक्ति बराबर रहती है। अत, उनमे से किसी एक को सही बताना कठिन है। जैसे—

शब्द नित्य है, क्योकि वह सर्वत्र सुनायी पडता है।
शब्द अनित्य है, क्योकि घर की भाँति वह एक कार्य है।

यहाँ दूसरा अनुमान पहले अनुमान के निष्कर्ष को गलत सिद्ध करता है। दोनो अनुमान के हेतु बराबर बलवान हैं। अत, दोनो मे कौन सही निष्कर्ष है—यह कहना कठिन है।

विरूद्ध और सत्यप्रति पक्ष हेत्वाभास मे अतर यह है कि विरूद्ध मे हेतु के द्वारा निगमन का विरोधी सिद्ध होता है। किंतु, सत्यप्रति पक्ष मे निगम अन्य हेतु के द्वारा गलत सिद्ध किया जाता है।

(४) असिद्ध—हेतु के आधार पर ही निष्कर्ष निकाला जाता है। साध्य को प्रमाणित करने का वही आधार है। किंतु, यदि हेतु ही असिद्ध होगा, तो उससे सही अनुमान नही निकल सकता। असिद्ध हेतु के द्वारा निष्कर्ष निकालने पर अनुमान मे असिद्ध हेत्वाभास का दोष होता है। जैसे—

आकाश का फूल सुगधित है, क्योकि सभी फूल सुगधित होते हैं।

यह असिद्ध हेत्वाभास तीन तरह का होता है। (क) आश्रयासिद्ध (ख) स्वरूपा सिद्ध (ग) अन्यथासिद्ध।

(क) आश्रयासिद्ध—अनुमान की क्रिया मे सर्वप्रथम पक्ष मे हेतु को देखते हैं। जैसे पहाडी पर धुआँ है। यहाँ पहाडी (पक्ष मे) ही हेतु का आश्रय माना गया है। यदि हेतु का आश्रय अर्थात् पक्ष ही असिद्ध रहे, तो अनुमान के उस दोष का नाम आश्रयासिद्ध हेत्वाभास' है। जैसे—

'आकाश का फूल' सुगधित है, क्योकि सभी फूल सुगधित होते हैं। यहाँ पक्ष अर्थात् 'आकाश का फूल' ही असिद्ध है।

(ख) स्वरूपासिद्ध—अनुमान का वह दोष है, जिसमे दिया हुआ हेतु पक्ष मे नही रहता। जैसे ध्वनि नित्य है, क्योकि वह दृश्य पदार्थ है। यहाँ पक्ष (ध्वनि) मे हेतु (दृश्य पदार्थ होना) असिद्ध है।

(ग) अन्यथासिद्ध—उस हेत्वाभास को कहते हैं, जिसमे दिये गये हेतु के अभाव मे भी साध्य का सिद्ध होना सभव है। जब हेतु उपाधियुक्त रहता है या यो कहा जाय कि हेतु तथा साध्य के बीच सही अर्थ मे व्याप्ति सबध नही रहता, तो वैसी

व्याप्ति के आधार पर निकाला गया निष्कर्ष गलत होता है। इस गलती का नाम अन्यथासिद्ध हेत्वाभास है। जैसे—वह मनुष्य विद्वान है, क्योंकि वह ब्राह्मण है। यहाँ ब्राह्मण और विद्वान के बीच सही अर्थ मे व्याप्ति सबध नही है, क्योंकि यह कोई आवश्यक नही कि जो ब्राह्मण है, वह विद्वान ही हो, वह मूर्ख भी हो सकता है।

(५) बाधित.—अनुमान मे हेतु के द्वारा ही साध्य को प्रमाणित किया जाता है। हेतु से बलवान दूसरा प्रमाण यदि साध्य को गलत सिद्ध करे, तो वह अनुमान दोषपूर्ण समझा जायगा। अनुमान के उस दोप का नाम बाधित हेत्वाभास है। यहाँ दूसरी रीति से साध्य का पक्ष मे अभाव सिद्ध किया जाता है। जैसे—आग ठढी है, क्योंकि वह एक द्रव्य है। यहाँ द्रव्यत्व के आधार पर आग को ठढा साबित करने की कोशिश की गई है। किंतु, प्रत्यक्ष द्वारा इसका विरोधी ही सिद्ध होता है। प्रत्यक्ष के द्वारा हम जानते है कि आग गर्म है। यहाँ प्रत्यक्ष तत्त्व हेतु से अधिक बलवान है, जो हेतु को उलटा ही सिद्ध करता है।

परिशिष्ट

आगे के अध्ययन के लिये सदर्भ-ग्र थो का उल्लेख, अभ्यास के लिये प्रश्न तथा उनके हल के सकेत यहाँ दिये जा रहे हैं।

संदर्भ-ग्रंथों की तालिका

१ एल० एस० स्टेबिंग, ए मॉडर्न इ ट्रोडक्शन टु लॉजिक (मैथून केवल द्वितीय या तृतीय सस्करण)।

२ एम० आर० कोहेन ऐंड अरनेस्ट नेगेल, ऐन इ ट्रोडक्शन टु लॉजिक ऐंड साइ टफिक मेथड। (जार्ज रूटलेज ऐंड सन्स लिमिटेड)।

३ आर० एम० ईटेन, जनरल लॉजिक। (न्यूयार्क चार्ल्स स्क्रिबनरर्स सन्स)

४ जे० एन० कीनेज, स्टडिज ऐंड इक्सरसाइजेज इन फारमल लॉजिक। (मैकमिलन)।

५ एफ० एम० चपमैन ऐंड पी० हेनली, द फण्डामेटल्स आँव लॉजिक। (चार्ल्स स्क्रिवनरर्स सन्स)।

६ एच० डब्लू० बी० जोजेफ, ऐन इ ट्रोडक्शन टु लॉजिक। (ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस)।

७. डब्लू ई० जॉन्सन, लॉजिक।

८ एस० के० लैन्जर, ऐन इन्ट्रोडक्शन टु सिबालिक लॉजिक (जार्ज अलेन ऐंड अनविन)।

९. बर्ट्रेंड रसेल, ऐन इ ट्रोडक्शन टु मैथेटिकल फिलॉसफी। (जार्ज अलेन ऐंड अनविन)।

१० जॉन स्टुवर्ट मिल, ए सिस्टम आँव लॉजिक।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. निम्नलिखित कथनो मे से प्रत्येक के सदर्भ मे, दो ऐसे कथन दें, जिनसे दिया हुआ कथन निकल सके (अ) कुछ कर अलाभकर हैं। (ब) श्री नलिन उबाने वाले व्यक्ति हैं। (स) मक्का धूप मे पकता है। (द) कुछ बदरो को व्यवहार-वैचित्र्य सिखाया जा सकता है।

२. तर्कशील वाद-विवाद का एक उदाहरण ढूँढिए (किसी पुस्तक से या किसी समाचारपत्र से लें), जिस निष्कर्ष पर लेखक पहुँचना चाहता है उसे लिखे, इसके आधारस्वरूप दिये गये आधारवाक्यो को निश्चित करे।

३ वैधता एव सत्यता मे भेद दिखलावे।

४ निरूपाधिक प्रतिज्ञप्तियो को स्थायी ए, ई, आइ, ओ० के रूप मे पुन अभिव्यक्त करने का क्या तात्पर्य है ? नीचे दिये कथनो मे से प्रत्येक को इन आकारो मे से एक (या अधिक) के रूप मे पुन अभिव्यक्त करने का प्रयास करें, यह भी निर्देशित करे कि क्या इस पुनर्अभिव्यक्ति मे कोई चीज नष्ट हो गई

(१) केवल धातु ताप के सुचालक हैं।

(२) वह जो लडता है और भाग जाता है, दूसरे दिन लडने के लिये जिंदा रह सकता है।

(३) कभी-कभी हमारे सभी प्रयास विफल रहते हैं।

(४) 'जो मोटे बैलो को हाँकता है, उसे स्वय मोटा होना चाहिये।'

(५) कार्य के अतिरिक्त प्रवेश निषेध है।

(६) केवल मनुष्य चिढता है।

(७) 'कोई मनुष्य हँसता रहेगा किंतु दुष्ट होगा।'

(८) 'बडे होने का अर्थ है कि लोग उसे गलत समझते हो।'

(९) जब तक अनुभव मे न आये, तब तक कोई वस्तु सत्य नही हो सकती।'

(१०) 'जो सबकी प्रशसा करता है, वह किसी की प्रशसा नही करता।'

(११) 'जहाँ कही तुम किसी निष्ठुर को देखो, तो समझो कि मैं किसी दुर्जन को देखता हूँ।'

(१२) 'जनप्रिय धर्मोपदेशक सदैव अच्छे तर्कशील नही होते।'

(१३) 'सभी चमकीली वस्तुएँ सोना नही होती।'

(१४) 'स्वच्छ विचार वालो को सभी चीजें स्वच्छ लगती हैं।'

(१५) सभी बडे शिक्षक विनोदप्रिय नही होते।

५. विरोध-चतुस्त्र को निर्दशित करने के लिये प्रतिज्ञप्तियो के एक सेट की रचना करें। इन प्रतिज्ञप्तियो मे कौन पद व्याप्त हैं और कौन अव्याप्त ?

६ निम्नलिखित प्रतिज्ञप्तियो मे से प्रत्येक जोडा के बीच तार्किक सवध निश्चित करें।*

(१) सभी निष्ठुर कार्य अनुचित हैं।

(२) सभी अनुचित कार्य निष्ठुर हैं।

(३) कुछ उचित कार्य निष्ठुर नही है।

(४) कोई उचित कार्य निष्ठुर नही हैं।

(५) कुछ उचित कार्य निष्ठुर हैं।

(६) कुछ निष्ठुर कार्य अनुचित नही हैं।

(७) कुछ कार्य जो निष्ठुर नही है, अनुचित नही हैं।

७ निम्नलिखित का प्रतिवर्त्ती एव प्रतिपरिवर्ती (जहाँ सभव हो) दें। (i) सभी मदिर जाने वाले व्यक्ति साधू नही होते (ii) टिन के बने सिपाहियो को केवल वच्चे प्यार करते हैं। (iii) आज झींगी नही मिल रही है।

८ आगे दी गई प्रतिज्ञप्तियो का इस प्रकार पुनर्कथन करें कि बिना दुर्वलित हुए उन सबके उद्देश्य एव विधेय पद वे ही रहे (i) सभी फ न-स हैं, (ii) कुछ न-फ स हैं, (iii) कोई न-फ स नही है, (iv) फ स हैं।

९. कुछ नाविक देशभक्त हैं, को सत्य मानकर बतलाएँ कि निम्नलिखित कथनो मे से कौन सत्य कहा जा सकता है, कौन असत्य, और कौन सदेहात्मक

(१) कुछ जो नाविक नही हैं, देशद्रोही हैं।

(२) कोई देशभक्त मनुष्य नाविक नही है।

(३) कुछ देशभक्त मनुष्य नाविको के अतिरिक्त नही हैं।

(४) कोई देशद्रोही मनुष्य नाविक नही है।

(५) कुछ नाविक देशद्रोही नही हैं।

---

* इस प्रकार के प्रश्नो के उत्तर देते समय प्रतिज्ञप्तियो को विभिन्न रूपो में सूचिबद्ध करने (जैसे प्रतिवर्तन, इत्यादि) से विद्यार्थियो को सभवत सहायता मिलेगी, क्योंकि अव्यवहित अनुमान के द्वारा तुल्य एव अतुल्य प्रतिज्ञप्तियाँ सरलतापूर्वक पहचानी जा सकती हैं।

१०. इनका व्याघाती एव विपरीत दे 'कोई व्यक्ति राजनीतिज्ञ नही हो सकता जब तक कि पहले वह इतिहासज्ञ अथवा पर्यटक न हो।'

११ दिखलाएँ कि कुछ वायुयान द्वितलविमान हैं अपने उपविपरीत के व्याघाती के विपरीत के उपापादक के व्याघाती का उपापादक है।

१२ निम्नलिखित कथनो मे कोई अनेकार्थकता है, कि नही इस पर विचार करें (i) सभी न्यायशील हैं नही जो मालूम पडते है। (ii) कुछ सिपाही डरने वाले नही थे। (iii) सभी मछलियो का भार ४ पौंड था। जितने भी अर्थ लगते हो, उन सबका व्याघाती दें।

१३ इसका व्याघाती दें 'मनुष्य स्वतत्र पैदा हुआ है, और हर स्थान पर वह बधन मे है।'

१४ निम्नलिखित प्रतिज्ञप्तियो मे से प्रत्येक सदर्भ मे मूल के तुल्य तीन अन्य सयुक्त (Composite) प्रतिज्ञप्तियाँ दें

(i) यदि वेतन बढा दिये जायें, तो वस्तुओ के मूल्यो मे वृद्धि हो जायेगी।

(ii) या तो लडके की शिक्षा गलत ढग से हुई है, या वह असाधारण मूर्ख है।

(iii) तुम दोनो नही कर सकते कि केक खाओ और घर भी ले जाओ।

(iv) यदि कोई मनुष्य निश्चित से प्रारभ करेगा, तो उसकी समाप्ति अनिश्चित मे होगी।

(vi) या तो हम अपने कार्यों के लिये उत्तरदायी भी नही हैं या हमारे कार्य हमारे वश मे हैं।

(v) यदि स, द है तो क, र नही है।

१५. कल्पना करे कि आप कोई अनुशिक्षक (Tutor) चुनना चाहते हैं, जो परीक्षा मे उत्तीर्ण होने के लिये आपको पर्याप्त तर्कशास्त्र पढा देगा। चार अनुशिक्षक अ, ब, स, द के बारे मे आपको निम्नलिखित प्रमाण मिले हैं

(क) या तो अ के द्वारा विद्यार्थी पढाया नही जाता, या परीक्षा मे उत्तीर्ण होने मे वह समर्थ नही होता।

(ख) जब तक विद्यार्थी ब के द्वारा नही पढाया जाता, वह परीक्षा मे असफल रहता है।

(ग) केवल यदि विद्यार्थी स के द्वारा नही पढाया जाता, तो वह उत्तीर्ण नही होता।

(घ) केवल यदि विद्यार्थी द के द्वारा नही पढाया जाता, तो वह उत्तीर्ण हो जाता है।

आप कैसे तय करेंगे कि कौन अनुशिक्षक चुना जाय ?

१६. निषेधक हेतुफलानुमान मे एक युक्ति की रचना करे, तुल्य आधारवाक्यो से वही निष्कर्ष प्राप्त करें, पर उनका कथन इनमे हुआ हो (i) निषेध-विधायक हेतुफलानुमान (ii) विधायी-निषेधक हेतुफलानुमान (iii) विधायी-विधायक हेतुफलानुमान।

१७ निम्नलिखित युक्तियो का तार्किक आकार व्यक्त करें, यदि किन्ही आधारवाक्यो की आवश्यकता हो, तो उन्हें जोडे भी, प्रत्येक के बारे मे तय करें कि युक्ति वैध है कि नही .

(i) 'यदि अब्राहम लिंकन आज जीवित होते, तो न्यायपूर्ण एव तर्कसगत शाति स्थापित हो जाती। परतु, चूँकि उनकी मृत्यु हो चुकी है, न्यायपूर्ण एव तर्कसगत शाति स्थापित नही होगी।'

(ii) 'यदि कानून सोचता है कि,' श्री बुम्बले ने कहा, ''कानून गधा है—मूर्ख है''।'

(iii) 'या तो ज्यामिति मे पैथागोरस का साध्य सत्य है या इसके अध्ययन मे लगे परिश्रम के योग्य नही है, परतु यह सत्य है, इसलिये, वह अध्ययन योग्य नही है।'

(iv) 'यदि अत्यधिक उत्पादन होता है, तभी मूल्यो मे गिरावट आती है। पर यदि अधिक उत्पादन न हो, तो कारखाने बद हो जाते हैं, यदि कारखाने बद हो जाते हैं, तो बेरोजगार लोगो की सख्या बढती है। यदि अधिक लोग बेरोजगार हो जाते हैं, तो असतोष फैलता है तथा सामाजिक अस्थिरता आती है। फलत' मूल्यो मे गिरावट आती है, तो असतोष तथा सामाजिक अस्थिरता फैलती है।'

(v) 'यदि लेखक अवश्य अव्यवस्थित बुद्धि वाला 'है, क्योकि, यदि मेरी समझ मे उसकी युक्ति आ जाती है तो वह अवश्य अव्यस्थित है, और यदि मेरी समझ मे नही आती, तो अपनी युक्ति के कथन मे अस्पष्ट है।',

(vi) 'यदि आपके चाचा धनी हैं, तो उनसे ऋण माँगने मे आपको भय नही होगा। पर, आप भयभीत नही हैं। अत , मैं निष्कर्ष निकालता हूँ कि आपके चाचा धनी है।'

(vii) 'सामाजिक अव्यवस्था के कारण की समीक्षा करना थोडी सौजन्यता का ही उत्तरदायित्व हो जाता है। यदि इस समीक्षा मे कोई मनुष्य

सफल नही होता, तो उसे निर्बल एव अव्यावहारिक समझा जायगा, यदि वह सच्ची शिकायत पर पहुँच जाता है,तो खतरा है कि वह समाज के सम्मानित एव प्रभावशील व्यक्तियो के निकट आ जायगा, जो अपनी भूलो को प्रकाश मे देखकर, अपने सुधार के सुअवसर पर आभारी होने की जगह, उत्तेजित हो जायँगे। यदि वह समाज मे प्रिय लोगो का दोष-निरूपण करता है, तो वह सत्ता का कठपुतली समझा जाता है, यदि सत्ताधारियो का दोष-निरूपण करता है, तो उसे गुटबदी का कारण माना जाता है। पर, कर्त्तव्य-पालन की हर अवस्था मे कुछ-न-कुछ दाव पर लगाना ही पडता है, (बर्क)।

१८. निम्नलिखित मे से तुल्य कथनो को चुनें—

(i) जहाँ तुम किसी निष्ठुर को देखो, समझो कि तुम किसी दुर्जन को देख रहे हो।

(ii) यदि तुम किसी निष्ठुर को देखते हो, तो तुम किसी दुर्जन को नही देखते।

(iii) यदि तुम किसी निष्ठुर को देखते हो, तो तुम किसी दुर्जन को देखते हो।

(iv) या तो तुम किसी दुर्जन को देखते हो या तुम किसी निष्ठुर को नही देखते।

(v) केवल यदि तुम किसी निष्ठुर को देखते हो, तो तुम किसी निष्ठुर को देखते हो।

(vi) केवल यदि तुम किसी दुर्जन को नही देखते, तो तुम किसी निष्ठुर को नही देखते।

(vii) जब तक तुम किसी दुर्जन को नही देखते, तुम किसी निष्ठुर को नही देखते।

१९ निम्नलिखित मे से प्रत्येक का व्याघाती एव विपरीत दें—

(i) 'यदि कविता इस प्रकार स्वाभाविक नही उठती जैसे पेड मे पत्ते, तो अच्छा है कि वह न उठे।'

(ii) मैं निश्चित हूँ कि आप गलती कर रहे है।

(iii) सभी एन्डोजन्स (Endogens), सभी समानातर पत्तियो वाले पौधे हैं।

२० निरूपाधिक न्यायवाक्य की वैधता को निश्चित करने के लिये जो नियम आवश्यक एव पर्याप्त है, उनका वर्णन करे। साक्षात् उन्ही नियमो से सिद्ध करें *

(i) प्रत्येक आकृति मे विन्यास ए, ई, ओ वैध तथा विन्यास ई, ए, ओ, अवैध हैं।

(ii) ओ आकृति 1 मे कोई आधार वाक्य, आकृति II मे साध्य-आधार-वाक्य, आकृति III मे पक्ष आधारवाक्य, आकृित IV मे कोई आधार-वाक्य नहीं हो सकता।

(iii) यदि साध्य-पद अपने ही आधारवाक्य मे विधेय हो, तो पक्ष-आधार-वाक्य निषेधात्मक नही हो सकता।

(iv) आ प्रतिज्ञप्ति केवल आकृति 1 मे सिद्ध हो सकती है।

(v) यदि मध्यपद दोनो आधारवाक्यो मे व्याप्त हो, तो निष्कर्ष अवश्य अशव्यापी होगा।

२१ न्यायवाक्य के सामान्य नियमो के आधार पर प्रदर्शित करें कि स $_{ए}$ प आकार की प्रतिज्ञप्ति को कितने प्रकार से सिद्ध करना सभव है।

२२ (i) सभी बुद्धिमान व्यक्ति समर्थ हैं।

(ii) कोई नादान व्यक्ति विश्वसनीय नही है।

(iii) सभी समर्थ व्यक्ति अविश्वसनीय नही हैं।

(iv) कुछ अविश्वसनीय व्यक्ति समर्थ नही हैं।

निर्धारित करें कि (i) एव (ii) के सम्मिलित रूप से (iii) एव (iv) आपादित हैं।

२३ किसी वैध न्यायवाक्य की आकृति एव विन्यास निर्धारित करें, जो इन शर्तो के अनुरूप हो (i) साध्य आधार वाक्यविधायक हो, (ii) साध्य-पद निष्कर्ष

---

*इस पर ध्यान रहे कि जो प्रमाण पूछा गया है, उसे न्यायवाक्य के सामान्य नियमो से निकालना है, प्रत्येक आकृति के विशेष नियमो से नही, जैसे (१) को चारो आकृतियो की बारी-बारी से समीक्षा करने से सिद्ध नहीं किया जा सकना, यह दिखलाना आवश्यक है कि ए ई की वैधता एव ई ए ओ की अवैधता सामान्य नियमो से साक्षात् निकलती है यहाँ पदो के स्थान का विचार नही रहता, अर्थात् विशेष नियमो के सदर्भ मे हम नही जाते।

एव अपने आधारवाक्य दोनो मे अव्याप्त हो। (iii) पक्ष पद आधारवाक्य एव निष्कर्ष दोनो मे अव्याप्त हो।

२४. वोचार्डो मे एक सार्थक न्यायवाक्य की रचना करें, युक्ति का इस प्रकार पुनर्कथन करे कि डारीरी विन्यास मे तुल्य आधारवाक्यो से तुल्य निष्कर्ष प्राप्त हो।

२५ आकृति I के विशेष नियमो को लिखें, असभवापत्ति से दिखलावें कि आकृति II मे निष्कर्ष अवश्य निषेधक होगा तथा आकृति III निष्कर्ष अवश्य अशव्यापी होगा।

२६. एक सक्षिप्त प्रगामी तर्कमाला की रचना करें, जिसमे पाँच प्रतिज्ञप्तियाँ हो तथा कुछ युवक अपने से वडो को सलाह देने मे सकोच नहीं करते, जिसका निष्कर्ष हो। सक्षिप्त प्रगामी तर्कमाला का जो रूप आप देख रहे हो, उसका नाम दें।

२७. यदि अ की उपस्थिति का प्रतीक स है, एव द की उपस्थिति का प्रतीक ब है, और यदि ब एव स कभी भी सहवर्त्ती (Coexistent) है, तो क्या यह वैध निष्कर्ष हो सकता है कि अ एव द कभी-कभी साथ-साथ नहीं पाये जाते ?

२८ निम्नलिखित युक्तियो की वैधता की जाँच करें, यदि कोई आधारवाक्य अर्तानिहित है, तो उसे व्यक्त करे

(i) 'उसकी उदारता उसकी मानवता से निगमित हो सकती हैं, क्योकि सभी उदार व्यक्ति मानवोचित हैं।'

(ii) 'सचमुच सयुक्त राष्ट्र अमेरिका, जातियो के समिश्रण के बावजूद, एक ऐंग्लो-सेक्शन जाति, क्योकि सभी ऐंग्लो-सेक्शन जातियाँ स्वतन्त्रताप्रेमी हैं और स्वतन्त्रता के प्रति प्रेम कहीं भी अमेरिका से अधिक स्पष्ट नहीं है।'

(iii) 'मैं इसे करने मे आपकी सहायता नही कर सकता, क्योकि इसे करने मे मैं स्वय समर्थ नही हूँ।'

(iv) 'केवल भावुक मनुष्य आलोचना से अप्रसन्न है और चूँकि केवल भावुक मनुष्य सगीतज्ञ है, तो इससे निकलता है कि सभी सगीतज्ञ मनुष्य आलोचना अप्रसन्न होते हैं।'

(v) 'यदि दो पिंडो के बीच कुछ न हो, तो वे अवश्य एक दूसरे को स्पर्श करेंगे, फलत रिक्त स्थान असभव है।'

(vi) आप समानुरूप ढग से सदैव नही कह सकते कि किसी व्यक्ति को, जो काम नही करता, और जिस धन को नही कमाया है, उसे नहीं, लेना

चाहिये,क्योकि आप मानते है कि मनुष्य को अपने पुत्रो एव पुत्रियो के लिये अपनी सपूर्ण सपत्ति छोडने का अधिकार होना चाहिये और वहुत-सी अवस्थाओ मे उनके बिना काम किये भी वह धन शेष जीवन भर जीविका के लिये पर्याप्त होता है।'

(vii) 'वह नही कह सकता कि सभी युद्ध अनुचित है, क्योकि अत्याचार का उचित होना वह अस्वीकार करता है और अत्याचारियो से विना युद्ध किये अत्याचार को रोकना कभी-कभी सभव नही होता।'

(viii) 'केवल शातिवादी साधू है, पर सभी शातिवादी साधू नही हैं, केवल समाजवादी—और उनमे से सभी नही—मार्क्सवादी है, शातिवादी एव समाजवादी दोनो मे आप उन व्यक्तियो को पाइएगा, जो स्कूल छोडने की उम्र को बढाने के पक्ष मे है। अत हम निष्कर्ष निकाल सकते है कि कोई साधू मार्क्सवादी नही है, पर सभी अमार्क्सवादी साधू नही हैं, आगे, कुछ वे व्यक्ति जो साधू नही है तथा कुछ वे भी जो मार्क्सवादी नही हैं, स्कूल छोडने की उम्र को बढाने के पक्ष मे हैं।'

(ix) यदि आप अस्वीकार करते हैं कि परिश्रम एव बुद्धि असयोज्य हैं, और मैं अस्वीकार करता हूँ कि वे अविच्छेद हैं, फिर भी हम सहमत हो सकते है कि कुछ परिश्रमी व्यक्ति बुद्धिमान होते है।'

(x) 'देश को चालाक राजनीतिज्ञ की आवश्यकता है, चालाक राजनीतिज्ञ वह है जो जानता है कि अपने दल के सगठन का कैसे नियत्रण किया जाता है, जो कोई जानता है कि अपने दल के सगठन को कैसे नियन्त्रित किया जाता है उसमे निद्य आचरण के प्रति प्रवृत्ति होती है। अत, हम निष्कर्ष निकालते है कि देश को ऐसे लोगो की आवश्यकता है, जिनमे निंद्य आचरण करने की प्रवृत्ति रहती है।'

(xi) 'जिसे सब चाहते है वही अभीष्ट है, सभी मनुष्य अपना सुख चाहते है, इसलिये प्रत्येक मनुष्य सभी मनुष्यो का सुख चाहते हैं, अत सार्वभौम सुख अभीष्ट है।'

(xii) 'कुछ फैशनेबुल मत सत्य नही है, क्योकि कोई फैशनेबुल मत सूक्ष्म नही है, और कुछ सत्य मत सूक्ष्म है।'

(xiii) 'धनी होना स्वस्थ नही होना है, स्वस्थ नही होना दु खी होना है; इसीलिये धनी होना दु खी होना है।'

(xiv) यह सिद्ध करना असभव है कि उद्योग की उन्नति बिना प्रतिद्वन्द्विता के हो सकती है जब तक आप यह भी सिद्ध न कर दें कि प्रतिद्वन्द्विता का सर्वथा अभाव श्रमिको मे उद्यम की कमी नही ला देता, क्योकि यह आवश्यक बात है कि जब श्रमिको के उद्यम मे कमी आ जाती है, तो उद्योग की उन्नति नही होती।

(xv) 'बैठक मे उपस्थित अधिकाश व्यक्ति अभी 'दूसरा मोरचा' खोलने के पक्ष मे थे और उपस्थित अधिकाश व्यक्ति काग्रेसी थे, अत कुछ काग्रेसी अभी 'दूसरा मोरचा' खोलने के पक्ष मे है ।

२९ नीचे दिये गये सबधो मे से प्रत्येक का एक सार्थक उदाहरण बनाइये और प्रत्येक के सदर्भ मे सबध का तार्किक गुण-धर्म निर्दिष्ट कीजिये उससे बडा, का जोड़वॉं, का पूर्वज, से विवादित, का घटक, रग मे बिलकुल मेल खाना, की चाची, के कर्ज मे, आपादन करता, का प्रेमी ।

३० इनके उदाहरण दे (i) अनैकैक-सबध, (ii) एकैक-सबध, (iii) सापेक्ष गुणनफल । तीन प्रतिज्ञप्तियो की रचना करें जिनमे से प्रत्येक मे आपके उदाहरणो में से एक का परिवर्तित रूप हो ।

३१ वर्ग क्या है ? कैसे बन सकता है (i) रिक्त वर्ग, (ii) एक-सदस्यीय वर्ग?

३२ निम्नलिखित प्रतिज्ञप्तियो को अस्तित्वपरक दृष्टि से सूत्रबद्ध करे

(१) कुछ इटैलियन फासिस्ट नही है ।

(२) बहादुरो के अतिरिक्त कोई दूसरे यश के योग्य नही है ।

(३) कोई तितली दीर्घजीवी नही होती ।

(४) केवल विधि-विषयक विशेषज्ञ ससद् के अधिनियम का प्रारूप तैयार कर सकते है ।

३३ सभी निगमनात्मक अनुमान सबधो के तार्किक गुण-धर्मो पर आधारित होते हैं' का विवेचन करे ।

३४ आधारवाक्य सभी स प है से अनुमान कुछ न-स न-प है की वैधता पर विचार-विमर्श करे । अपने उत्तर को इस प्रतिज्ञप्ति का प्रयोग कर सोदाहरण स्पष्ट करें कि सभी दूरदर्शी राजनेता युद्ध-समाप्ति के उपाय पाने मे असफल रहे हैं ।

३५ दिया हुआ है कि सर्वव्यापी प्रतिज्ञप्तियाँ अस्तित्वपरक दृष्टि से निषेधात्मक हैं तथा अशव्यापी प्रतिज्ञप्तियाँ अस्त्विपरक दृष्टि से विधेयक हैं, तो निम्नलिखित अनुमानो की वैधता निश्चित करें—

(i) $\text{स}_{\text{आ}}\text{प} \therefore \text{प}_{\text{ओ}}\bar{\text{स}}$

(ii) $\text{म}_{\text{आ}}\text{प}$ एव $\text{स}_{\text{आ}}\text{म}, \therefore \text{स}_{\text{ई}}\text{प},$

(iii) प ए स .'स ई प ।

३६ विस्तार एव वस्त्वर्थ का सोदाहरण भेद स्पष्ट करे ।

३७ निम्नलिखित पदो मे से प्रत्येक से सबधित कम-से-कम छह और अधिक-से-अधिक दस उपवर्गो के उदाहरण दे समतल आकृति, प्रतीक, सवारी (गाडी), विश्वविद्यालय के छात्र, धातु ।

३८ 'गुणार्थ' से आप क्या समझते है ? किसी स्कूल के किसी विद्यार्थी द्वारा पूछे गये इस प्रश्न का आप क्या उत्तर देंगे 'बुद्धिसगत बनाना" क्या है ?'

३६ निम्नलिखित के लिये विभिन्न विधेय-धर्मो को निर्धारित करें (i) वायुयान चालक, (ii) चतुर्दश पदो, (iii) स्कूनर, (iv) राज, (v) विज्ञप्ति ।

४० निम्नलिखित परिभापाओ मे आपको कौन दोषपूर्ण मालूम पडती है ? किस कारण ? इन उदाहरणो मे से किन्ही दो के लिये सशोधित उदाहरण निर्देशित करे

(१) वर्ग एक आयत है, (२) उपरिणीता उसे कहते है, जो रूई से सूत कातती है, (३) असावधानी यथोचित सावधानी का अभाव है, (४) टिमटिमाना एक प्रकार का चमकना है, (५) सिपाही सैन्यकौशल वाला एक मनुष्य है, जो फौज मे काम करता है ।

४१ जहाज पद को दृष्टात रूप मे लेकर निर्देशित करे कि वस्त्वर्थ एव गुणार्थ के बीच प्रतिलोम परिवर्तन का क्या अर्थ है ।

४२ निम्नलिखित को सुव्यवस्थि-ढग से क्रमबद्ध करे गीतिकाव्य, उपन्यास, कला का साहित्यिक कृत्य, चतुर्दश-पदी, महाकाव्य के उपयुक्त कविता, सुखातिकी, वर्णनात्मक गद्यकाव्य, ऐतिहासिक रचना, वैज्ञानिक शोध-प्रबध, सबोध-गीति, ओरिजिन आव स्पीसीज, ललि की प्रि सिपुल ऑव जियॉलाजी, कथा-साहित्य, अष्टपदी, मोल फ्लैन्डर्स, नाटक, एलिस इन वडरलैंड ।

४३ साधारण व्यक्तिवाचक नामो का शब्द-कोश मे स्थान न पाने का आप क्या कारण दे सकते हैं ? ऐसे नामो के तार्किक गुणो की व्याख्या करें ।

४४ निदर्शी प्रतीको के प्रयोग को स्पष्ट करे, उदाहरण भी दे । निदर्शी प्रतीको का चरो से भेद बतलावें ।

४५ व्याख्या करे एव उदाहरण दे प्रतिज्ञप्तीय आकार, परिवर्त्ती प्रतिज्ञप्ति, फलन के मूल्य, प्रतिज्ञप्तीय आकार के अभिव्यजकता का परास ।

४६ '⊃' की परिभषा करे तथा उदाहरण दें ।

४७ तार्किक संबंधों की 'विस्तार-व्याख्या' क्या है ?

४८ 'विचार-नियम' से क्या तात्पर्य है ? इस कथन पर टिप्पणी करें, 'तर्कशास्त्र विज्ञान है जो वैध विचार के सामान्य सिद्धांतों की व्याख्या करता है।' जो शब्दों ज्यादा काले अक्षरों में है, उनके संदर्भ में विशेष रूप से।

४९ निम्नलिखित कथनों में से प्रत्येक के प्रमाण में किस प्रकार के साक्ष्य की आवश्यकता है, सूचित करें

(१) बोधगया में एक मंदिर है।

(२) वर्ग में चार समकोण होते हैं।

(३) गरम करने पर लोहा फैलता है।

(४) राम श्याम से लंबा है, आपादन करता है कि श्याम राम से नाटा है।

(५) लाल गुलाब लाल होते हैं।

(६) चंद्रमा के उस बगल में पहाड़ है।

(७) प्रकाश-तरंगें विद्युत्-चुंबकीय हैं।

(८) गज में तीन फीट होते हैं।

(९) विवाहित पुरुष को पत्नी होती है।

(१०) किन्हीं दो व्यक्तियों के अंगूठे के निशान एक-से नहीं होते।

५० चक्रक-प्रमाण क्या है ?

५१ अनुनय एवं प्रमाण में भेद करें।

५२ इनके उदाहरण दें (i) आपातिक (ii) पुनरुक्त, (iii) स्वतोव्याघाती कथन।

५३ आप तर्कशास्त्र की क्या परिभाषा देंगे ?

—:०:—

अभ्यासार्थ प्रश्नो की कुंजी

जिन प्रश्नो के अतिम समाधान की गु जाइश है, केवल उन्ही के पूर्ण उत्तर दिये गये हैं।

१ (अ) ऐसे सभी कर जिनको वसूल करने मे अधिक खर्च होता है वे अलाभकर हैं, कुछ करो को वसूल करने मे अधिक खर्च होता है। (ब) सभी मनुष्य जिनके वार्तालाप मुख्यत अपनी ही करतूतो के बारे मे होते हैं, उबानेवाले है, श्री नलिन के वार्तालाप मुख्यत अपनी ही करतूतो के बारे मे होते है। (स) सभी प्रकार के अन्न धूप मे पकते हैं, मक्का एक प्रकार का अन्न है। (द) किसी पशु को, जो एकाग्र होता है और अनुकरणशील है, व्यवहारवैचित्र्य सिखाया जा सकता है, कुछ बदर एकाग्र होते है तथा अनुकरणशील है।

नोट—आधारवाक्यो के ये उदाहरण है, जिनसे प्रश्न की विशेप परिस्थिति पूर्ण होती है। ध्यान रहे कि प्रत्येक उदाहरण मे निगमन मे आनेवाले पदो मे से प्रत्येक, एक आधारवाक्य मे रहता है।

२ देखे अध्याय १, § २

३ देखे अध्याय १, § ३

४ देखें अध्याय २, § ३ किसी प्रतिज्ञप्ति के पुनर्कथन का तात्पर्य है कि उसमे पाये जाने वाले अगभूत तत्त्वो को स्पष्ट प्रदर्शित कर दिया जाय, यदि हमे कुछ सूत्रीकरण प्राप्त हो, जिन्हें आदर्श आकार माना जा सकता है, तो हम अधिक सरलता से देख सकते है कि विभिन्न कथन कैसे आपस मे तर्कसगत ढग से सबधित हैं। तथाकथित 'तार्किक आकार मे बदलना' सुविधा की बात है, किंतु सुविधा महत्त्वपूर्ण है, यह तय करने मे हमे सहायता की आवश्यकता होती है कि कौन अनुमान अनुमेय है। जैसे उदाहरणार्थ, $8x^2 = 3x - 8$ को सामान्यत लिखा जाता है $8x^2 - 3x + 8 = 0$ ताकि इसका प्रारूप $ax^2 + bx + e = 0$ के समान हो जाय, जो आदश आकार है।

(१) ताप के सभी सुचालक धातुएँ है (इस कथन को ऐसे भी लिखा जा सकता है कोई अ-धातु ताप का सुचालक नही हैं।)

(२) सभी जो लडते हैं और भाग जाते हैं, उन लोगो मे है, जो दूसरे दिन लडने के लिये जिंदे रह सकते है ? (इस पुनर्कथन का वल कुछ कम है, क्योकि रह सकना (may) का अर्थ, जव इसका प्रयोग विशेपणात्मक वाक्य मे होता है, तो दुर्वलित होता है।)

(३) कुछ विफलताएँ हमारे सभी प्रयासो की विफलताएँ है।

(४) सभी जो मोटे वैल को हाँकते है, अपने भी सचमुच मोटे होते है। ('होना चाहिये' के स्थान पर 'सचमुच है' लिखने से अर्थ दुर्वलित हो गया।)

(५) सभी जिनको प्रवेश की आज्ञा है, वे काम के लिये हैं।

(६) कोई अमनुष्य प्राणी ऐसा नही है, जो चिढता है। (विकल्प रूप से, *सभी जो चिढते है, मानव हैं और कोई जो अमानव नही हैं वे है जो चिढते हैं।*)

(७) कुछ मनुष्य जो हँसते रहते हैं, दुष्ट होते है। (इस पुनर्कथन से यह निहितार्थ समाप्त हो जाता है कि हँसना एवं दुष्टता आपस मे वेमेल हैं, पर तथ्यत: ऐसी वात नही है।)

(८) सभी जो वडे हैं, गलत समझे जाते है। (यह पुनर्कथन यह निहितार्थ देने मे असफल रहता है कि गलत समझा जाना बडे होने का निष्कर्ष है। आ, ए, ई, ओ प्रतिज्ञप्तियो के पारपरिक पुनर्सूत्रीकरण मे आकार की व्याख्या अस्तित्व की दृष्टि से विधेयक होती हैं, अर्थात् यह मान लिया जाता हे कि उद्देश्य एव विधेय पदो से निर्धारित होने वाले वर्गो मे सदस्य है। सभी स प हैं की अभियुक्ति हो सकती है मानो वर्ग स के सदस्यो की परीक्षा हो चुकी है, इससे सभावना खुली रहती कि स का प्रत्येक सदस्य प का भी सदस्य है, यद्यपि स एव प के बीच कोई आवश्यक सवध नही है।

(९) कोई अनुभव मे न आने वाली वस्तु सत्य नही है। (विकल्प मे सभी जो सत्य हैं, अनुभवगम्य हैं)

(१०) सभी जो हर एक की प्रशसा करते हैं, किसी के प्रशसक नही होते। [(८) पर की गई टिप्पणी को देखें।]

(११) सभी निष्ठुर दुर्जन है। (मूल से यह बहुत कम जोरदार है। आगे अभ्यास १८ देखें।)

(१२) कुछ जनप्रिय धर्मोपदेशक अच्छे तर्कशील नही हैं।

(१३) कुछ चमकीली वस्तुएँ सोना नही है। (ध्यान दे कि उदाहरण मे सभी नही ••, का प्रयोग ऐसा होता है कि सोना वस्तु व्याप्त हो जाती है, परतु चमकीली वस्तु अव्याप्त रह जाती है।)

(१४) सभी जो स्वच्छ विचार वाले हैं, वे ऐसे हैं, जिन्हे सभी वस्तुएँ स्वच्छ मालूम पडती हैं। (विकल्प रूप मे, सभी वस्तुएँ उनके लिये स्वच्छ हैं, जो स्वच्छ विचार वाले हैं)।

(१५) कुछ वडे शिक्षक विनोदप्रिय नही है।

५ (i) सभी सामुद्रिक (Sea-gulls) लोभी है, (ii) कोई सामुद्रिक लोभी नही है, (iii) कुछ सामुद्रिक लोभी है, (iv) कुछ सामुद्रिक लोभी नही हैं।

(i) एव (iv) व्याघाती है, (ii) एव (iii) व्याघाती हैं, (i) एव (ii) विपरीत है, (iii) एव (iv) उपविपरीत है, (i) अध्यापादक है (iii) का, (ii) अध्यापादक है (iv) का, जबकि (iii) उपापादक है (i) का और (iv) उपापादक है (ii) का, (iii) एव (iv) उपविपरीत है। अत, दी हुई चारो प्रतिज्ञाप्तियो से विरोध चतुस्त्र निदर्शित होता है।

६ (नोट—प्रश्न मे दी गई टिप्पणी के अनुरूप पद्धति का दृष्टात यहाँ दिये गये उत्तरो मे प्रस्तुत होता है। फिर भी ध्यान रहे कि यदि प्रत्येक उदाहरण मे तार्किक सबध का नाम दे दिया जाता है, तो प्रश्न का उत्तर पूर्ण हो जाता है।)

मान लें कि सामान्य परपरा के अनुसार ठ, च, $\bar{\text{ठ}}$, $\bar{\text{च}}$, क्रमश निष्ठुर कार्य, अनुचित, काय एव उनके व्याघातियो के द्योतक है। पहले हम प्रत्येक प्रतिज्ञप्ति को लिखेंगे और उनकी सीधी रेखा मे उनसे अनुमित कुछ अव्यवहित अनुमान, तब, जैसा कहा गया है, हम प्रश्न के पूर्ण उत्तर का निरूपण करेंगे।

$$c = \text{ठ}$$

$$b = \text{च}$$

(१) $\text{ठ}_{\text{आ}}\,\text{च} \equiv \text{ठ}_{\text{ए}}\,\bar{\text{च}}$ (परि०) $\equiv \bar{\text{च}}_{\text{ए}}\,\text{ठ}$ (परि० का प्रति०)

(२) $\text{च}_{\text{आ}}\,\text{ठ} \equiv \text{च}_{\text{ए}}\,\bar{\text{ठ}}$ (परि०) $\equiv \bar{\text{ठ}}_{\text{ए}}\,\text{च}$ (प्रति० का परि०)

$\equiv \bar{\text{ठ}}_{\text{आ}}\,\bar{\text{च}}$ (प्रति० का परि० का प्रति०)

(३) $\bar{\text{च}}_{\text{ओ}}\,\text{ठ} \equiv \bar{\text{च}}_{\text{ई}}\,\bar{\text{ठ}}$ (प्रतिव०) $\equiv \bar{\text{ठ}}_{\text{ई}}\,\bar{\text{च}}$ (प्रति० का परि०)

$\equiv \bar{\text{ठ}}_{\text{ओ}}\,\text{च}$ (प्रति० का परि० का प्रति०)

(४) $\bar{\text{च}}_{\text{ए}}\,\text{ठ} \equiv \bar{\text{च}}_{\text{आ}}\,\bar{\text{ठ}}$ (प्रतिव०) $\rightarrow \bar{\text{ठ}}_{\text{ई}}\,\bar{\text{च}}$ (प्रति० का प्ररि०)

(५) $\bar{\text{च}}_{\text{ई}}\,\text{ठ} \equiv \text{ठ}_{\text{ई}}\,\bar{\text{च}}$ (परि०) $\equiv \text{ठ}_{\text{ओ}}\,\text{च}$ (परि० का प्रतिव०)

(६) $\text{ठ}_{\text{ओ}}\,\text{च} \equiv \text{ठ}_{\text{ई}}\,\bar{\text{च}}$ (प्रतिव०) $\equiv \bar{\text{च}}_{\text{ई}}\,\text{ठ}$ (प्रति० का परि०)

$\equiv \bar{\text{च}}_{\text{ओ}}\,\bar{\text{ठ}}$ (प्रति का परि का प्रति)

(७) $\bar{\text{ठ}}_{\text{ई}}\,\text{च} \equiv \bar{\text{ठ}}_{\text{ओ}}\,\bar{\text{च}}$ (प्रति०) $\equiv \bar{\text{च}}_{\text{ई}}\,\bar{\text{ठ}}$ (प्रति० का परि०)

$\equiv \bar{\text{च}}_{\text{ओ}}\,\text{ठ}$ (प्रति का परि का प्रति)।

१ एव २ स्वतत्र (पूरक), १ का ३ उपापादक, १ एव ४ तुल्य, १ एव ५ व्याघाती, १ एव ६ व्याघाती, ७ का १ अध्यापादक (विपरिवर्तित), ३ का २ अध्यापादक (विपरिवर्तित), २ एव ४ स्वतत्र, २ एव ५ स्वतत्र, २ एव ६ स्वतत्र (प्रति-पूरक), ७ का २ अध्यापादक (विपरिवर्तित), ४ का उपपादक, ३ एव ५ उपविपरीत, ३ एव ६ उपविपरीत, ३ एव ७ तुल्य, ४ एव ५ व्याघाती, ४ एव ६ व्याघाती, ७ का ४ अध्यापादक, ५ एव ६ तुल्य, ५ एव ७ उपविपरीत, ६ एव ७ स्वतत्र।

७ (i) $\equiv$ कुछ जो मदिर जाते है, साधू नही हैं। प्रतिवर्ती कुछ जो मदिर जाते हैं साधुएतर है, प्रतिपरिवर्तित कुछ जो साधुएतर हैं मदिर जाते हैं। (ii) $\equiv$ सभी जो टिन के वने सिपाहियो से प्यार करते हैं, छोटे वच्चे है। प्रतिवर्तन कोई जो टिन के वने सिपाहियो से प्यार करते हैं छोटे वच्चो के अतिरिक्त नही है, प्रतिपरिवर्तित छोटे वच्चो के अतिरिक्त कोई दूसरे टिन के बने सिपाहियो से प्यार नही करते, (iii) प्रतिवर्तन सभी झिंगी आज अप्राप्य हैं, प्रतिपरिवर्तित कुछ आज अप्राप्य वस्तुएँ झिंगी हैं।

८. (i) $\text{फ}_{\text{आ}}\,\bar{\text{स}} \equiv \text{फ}_{\text{ए}}\,\text{स} \equiv \text{स}_{\text{ए}}\,\text{फ}$।

(ii) $\bar{\text{फ}}_{\text{ई}}\,\text{स} \equiv \text{स}_{\text{ई}}\,\bar{\text{फ}} \equiv \text{स}_{\text{ओ}}\,\text{फ}$।

(iii) $\bar{\text{फ}}_{\text{ए}}\,\text{स} \equiv \text{स}_{\text{ए}}\,\bar{\text{फ}} \equiv \text{स}_{\text{आ}}\,\text{फ}$।

(iv) $फ_{ई}स \equiv स_{ई}फ$ ।

अपेक्षित आकार है $C_{ए}फ$, $C_{ओ}फ$, $स_{आ}फ$, $स_{ई}फ$ ।

६ इन पाँच प्रतिज्ञप्तियों को अव्यवहित अनुमान मे पुन सूत्रीकरण कर उनके आपसी सबधो को हम व्यक्त कर सकते हैं

(नाविक के लिये स, उसके व्याघाती के लिये $\bar{स}$, देशभक्त व्यक्ति के लिये प, उसके व्याघाती के लिये $\bar{प}$ रख कर)

(१) $\bar{स}_{ई}\bar{प}$ ।

(२) $प_{ए}स \equiv स_{ए}प$ ।

(३) $प_{ओ}\bar{स} \equiv प_{ई}स$ (प्रति०) $\equiv स_{ई}प$ (परि०)

(४) $\bar{प}_{ए}स \equiv स_{ए}\bar{प} \equiv स_{आ}प$ ।

(५) $स_{ओ}\bar{प} \equiv स_{ई}प$ ।

इस प्रकार (२) से (५) विरोध चतुस्त्र बनाते है (ओ प्रतिज्ञप्ति को छोडकर), जब कि (५) का (१) प्रतिपरिवर्ती (Inverse) हैं, अत $स_{ई}प$ सत्य दिया हुआ है तो

(१) एव (४) सदेहात्मक हैं, (२) असत्य है, (३) एव (५) सत्य हैं ,

१० व्याघाती—कुछ मनुष्य बिना इतिहासज्ञ या पर्यटक हुए राजनीतिज्ञ हो सकते हैं ।

विपरीत—सभी मनुष्य विना इतिहासज्ञ या पर्यटक हुए राजनीतिज्ञ हो सकते हैं ।

११ मान लें कि वायुयान के लिये य, तथा द्वितल विमान के लिये व है, तो दी हुई प्रतिज्ञप्ति $य_{ई}व$ है । निम्न आरेख अपेक्षित वस्तु व्यक्त करता है
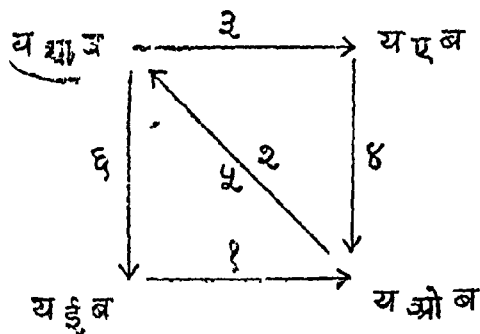
चारो प्रतिज्ञप्तियाँ मान ली जाती है कि विरोध चतुस्त्र के कोने पर हैं। तीर का चिह्न मार्ग व्यक्त करता है, य $_{ई}$ ब से उसके उपविपरीत य $_{आ}$ ब को, फिर य $_{आ}$ ब को, य $_{ए}$ ब का व्याघाती. ..इत्यादि गिने कदमो के अनुसार।

१२. (i) इस कथन का अर्थ हो सकता है कि कोई व्यक्ति जो न्यायशील मालूम पडता है न्यायशील नही है (ए प्रतिज्ञप्ति), या इसका अर्थ हो सकता है कुछ नहीं हैं (ओ प्रतिज्ञप्ति)।

(ii) इस कथन का अर्थ हो सकता है कि सिपाहियो मे कुछ डरने वाले थे कुछ नही डरने वाले थे, 'कुछ' का प्रयोग 'केवल कुछ' के लिये हो सकता है, इसका प्रयोग इस अभिकथन के लिये भी हो सकता है कि कम-से-कम कुछ सभवत सभी डरने वाले थे।

(iii) इस कथन का अर्थ हो सकता है—या तो सभी मछलियाँ मिलकर ४ पौ० थी या प्रत्येक मछली ४ पौं० थी। व्याघाती (व्याख्या के क्रम से) हैं,

(i) कुछ जो न्यायशील मालूम पडते है, न्यायशील हैं। सभी जो न्यायशील मालूम पडते हैं,न्यायशील हैं।

(ii) या तो कोई सिपाही डरने वाला नही था या सभी सिपाही डरने वाले थे। कोई सिपाही डरने वाले नही थे।

(iii) मछलियो का कुल भार ४ पौ० से कम, या अधिक था। कुछ मछलियो का भार ४ पौ० से कम या अधिक था।

१३ या तो मनुष्य स्वतत्र पैदा नही हुआ है या हर स्थान पर वह बधन मे नही है।

१४. (i) यदि मूल्यो मे वृद्धि न हो, तो वेतन नही बढाया जाता ।
या तो मूल्यो मे वृद्धि होगी या वेतन नही बढेगा ।
दोनो बातें नही होगी कि मूल्यो मे वृद्धि नही होगी और वेतन बढ जायगा ।

(ii) यदि लडके के शिक्षा गलत ढग से नही हुई है, तो वह असाधारण मूर्ख है ।

यदि लडका असाधारण मूर्ख नही है, तो उसकी शिक्षा गलत ढग से हुई है ।

दोनो बाते नही है कि लडके की शिक्षा गलत ढग से नही हुई थी और वह असाधारण मूर्ख भी नही है ।

(iii) या तो तुम अपनी केक नही खाओगे या तुम उसे ले नही जाओगे ।
यदि तुम अपनी केक खाते हो, तो उसे ले नही जा सकते ।
यदि तुम अपनी केक ले जाते हो, तो तुम उसे नही खा सकते ।

(iv) या तो कोई मनुष्य निश्चित से प्रारभ नही करेगा, या वह अनिश्चित मे अत करेगा ।
यदि कोई मनुष्य अनिश्चित मे अत नही करेगा, तो वह निश्चित से प्रारभ नही करेगा ।
दोनो बाते नही होगी कि कोई मनुष्य निश्चित से प्रारभ करेगा और अनिश्चित मे अत भी नही करेगा ।

(v) यदि हम अपने कार्यो के लिये उत्तरदायी हैं, तो हमारे कार्य हमारे बश मे हैं ।

यदि हमारे कार्य हमारे वश मे नही हैं, तो हम अपने कार्यो के लिये उत्तरदायी नही है ।

दोनो बातें नही हो सकती कि हम अपने कार्यो के लिए उत्तरदायी हैं और हमारे कार्य हमारे वश मे नही हैं ।

(vi) या तो स, द नही है या क र नही है ।
यदि क, र है तो स, द नही है ।
दोनो बातें नही हैं कि स, द है और क, र है ।

१५ दिये गये चारो कथनो का हेत्वाश्रित प्रतिज्ञप्तियो मे निम्न रूप से पुन सूत्रीकरण हो सकता है ।

(क) यदि कोई विद्यार्थी अ के द्वारा पढाया जाता है, तो वह अनुत्तीर्ण हो जाता है।

(ख) यदि कोई विद्यार्थी ब के द्वारा पढाया जाता है, तो वह अनुत्तीर्ण हो जाता है।

(ग) यदि कोई विद्यार्थी स के द्वारा पढ़ाया जाता है, तो वह उत्तीर्ण हो जाता है।

(घ) यदि कोई विद्यार्थी द के द्वारा पढाया जाता है, तो वह अनुत्तीर्ण हो जाता है।

(क), (ख) एव (घ) के पूर्ववर्त्तियो को क्रमश स्वीकार कर हम फलस्वरूप उनके अनुवर्त्तियो को स्वीकार करते हैं, अत ट्यूटर अ, ब, द प्रत्येक हटा दिये जाते हैं, (ग) का पूर्ववर्त्ती स्वीकार किया जाता है, तो हम उसके अनुवर्त्ती को स्वीकार कर सकते हैं कि वह उत्तीर्ण हो जाता है। इस प्रकार हम तय करते हैं कि स वह ट्यूटर है, जो निश्चित कर सकता है कि विद्यार्थी परीक्षा मे उत्तीर्ण होगे।

नोट—विद्यार्थियो के लिये निम्नलिखित तुल्यो का अध्ययन करना लाभप्रद होगा, (सार्थक उदाहरण अपने मन मे लेकर) वे निश्चित कर सकते हैं कि ये तुल्य व्यवहार मे काम करते है।

यदि प, तो क ≡ यदि क̅, तो प̅ ≡ या तो प̅ या क ≡ केवल यदि प̅ तो क̅ ≡ केवल यदि क, तो प ≡ जब तक प̅ नही तो क ≡ जब तक क नही प̅।

१६. **निषेधक हेतुफलानुमान** (Modus tollendo tollens) यदि नागरिक कायर हैं, तो हवाई हमले के समय कारखानो मे काम बद हो जायगा, पर कारखाने हवाई हमले मे बद नही है, नागरिक कायर नहीं हैं।

तुल्यताए

(i) या तो नागरिक कायर नही हैं, या कारखाने हवाई हमले मे बद हो जाते हैं।

किंतु, हवाई हमले मे कारखानो मे काम बद नही होता,

नागरिक कायर नही हैं।

(ii) दोनो बातें नही हो सकती कि नागरिक कायर हैं और हवाई हमले मे कारखाने बद नही होते।

किंतु, हवाई हमले मे कारखानो मे काम बद नही होता,

. नागरिक कायर नही है।

(iii) यदि हवाई हमले मे कारखानो मे काम होना बद नही होता, तो नागरिक कायर नही हैं।

किंतु, हवाई हमले मे कारखानो मे काम बद नही होता,

∴ नागरिक कायर नही हैं।

नोट—उपर्युक्त उदाहरण मे मूल युक्ति के पूर्ववर्त्ती दोनो कथन एव अनुवर्त्ती विधायक हैं, पर यह सदैव आवश्यक नही है।

१७ (i) यदि अब्राहम लिकन आज जीवित होते, तो न्यायपूर्ण एव तर्कसगत शाति स्थापित हो जाती।

अब्राहम लिकन आज जीवित नही हैं,

∴ न्यायपूर्ण एव तर्कसगत शाति स्थापित नही होगी।

अवैध : हेतुवाक्य-निषेध-दोष।

(ii) यदि कानून सोचता है कि कानून गधा है—मूर्ख है। (किंतु कानून ऐसा सोचता है),

∴ कानून गधा है—मूर्ख है।

वैध (यदि शर्तवाला आधारवाक्य मान लिया जाय)

(iii) या तो पैथागोरियन साध्य या परिश्रम योग्य नही।

किंतु पैथागोरियन साध्य सत्य है,

यह अध्ययन के योग्य नही है।

अवैध विकल्प-विधान दोष।

(iv) यदि मूल्यो मे गिरावट आती है, तो अत्यधिक (क) उत्पादन होता है, और यदि अत्यधिक उत्पादन न हो, तो कारखाने बद हो जाते हैं, (किंतु या तो अत्यधिक उत्पादन होता है या अत्यधिक उत्पादन नही होता)

या तो मूल्यो मे गिरावट होती है या कारखाने बद हो जाते हैं।

अवैध छोडा गया आधारवाक्य प्राय अवश्य ही शर्त मे दिया हुआ आधारवाक्य है। पर, यह आधारवाक्य प्रथम प्रतिज्ञप्ति के फलवाक्य का एव द्वितीय प्रतिज्ञप्ति के हेतुवाक्य का विधान करता है, किंतु निष्कर्ष को सिद्ध करने के लिये जो अपेक्षित है, वह है, दोनो हेतुवाक्यो का वैकल्पिक विधान।

(ख) यदि कारखाने बद हो जाते हैं, तो बेरोजगार लोगो की सख्या बढती है,

यदि बेरोजगार लोगो की सख्या बढती है, तो असतोष एव सामाजिक अस्थिरता होती है,

[∴ यदि कारखाने बद होते हैं, तो असतोप एव सामाजिक अस्थिरता आती है] वैध।

वैध।

यद्यपि ये दोनो युक्तियां वैध है, फिर भी मूल युक्ति मे दिया गया निष्कर्ष, अर्थात् यदि मूल्यो मे गिरावट आती है, तो असतोष एव सामाजिक अस्थिरता फैलती है—निकलता नही।

(क) एव (ख) के निष्कर्ष साथ मिलकर केवल इस निष्कर्ष को प्रमाणित करते है या तो मूल्यो मे गिरावट आती है या असतोष एव सामाजिक अस्थिरता फैलती है।

(v) यदि मेरी समझ मे उसकी युक्ति आ जाती है, तो वह अव्यवस्थित बुद्धि वाला है, यदि उसकी युक्ति मेरी समझ मे नही आती, तो वह अपने कथन मे अस्पष्ट है। (किंतु या तो मेरी समझ मे उसकी युक्ति आती है या नही आती है), ∴ या तो वह अव्यवस्थित बुद्धि है या अपने कथन मे अस्पष्ट।

वैध फिर भी, ध्यान रहे कि वक्ता ने शकापूर्ण मान्यता मानी है कि युक्ति को समझने की उसकी असमर्थता लेखक के कथन मे अस्पष्टता के अतिरिक्त किसी अन्य कारण से नही हो सकती।

(vi) यदि आपके चाचा धनी है, तो आपको उनसे ऋण भय नही होगी। किंतु आपको भय नही हैं, ∴ आपके चाचा धनी है।

अवैध फलवाक्य विधान-दोष (सभवत वक्ता के मन मे आधारवाक्य है, केवल यदि आपके चाचा , और यह तुल्य है यदि आप डरते नहीं, तो आपके चाचा हैं) तब युक्ति विधायक हेतुफलानुमान मे वैध हो जायगी।

(vii) (अ) यदि कोई मनुष्य सफल नही हो पाता वह निर्बल एव अव्यावहारिक समझा जाता है, और यदि वह सफल होता है (सच्ची शिकायत पर पहुँच जाता है), तो वह समाज के सम्मानित एव प्रभावशील व्यक्तियो उत्तेजित हो जायँगे।

(परतु वह सफल होगा या सफल नही होगा)

∴ या तो वह निर्बल एव अव्यावहारिक या निकट आ जायगा उत्तेजित हो जायँगे।

(ब) यदि वह समाज मे प्रिय लोगो , तो सत्ता का कठपुतली समझा जाता है, और यदि वह सत्ताधारियो तो गुटबदी का कारण । (किंतु या तो

वह समाज मे प्रिय लोगो का दोष-निरूपण करेगा या सत्ताधारियो का दोष-प्रदर्शन), ∴या तो वह सत्ता की कठपुतली समझा जायगा या गुटवदी का कारण।

(स) यदि कोई व्यक्ति निर्बल या निकट आता है उत्तेजित हो जाते हैं, या सत्ता की कठपुतली समझा जाता है या कारण, तो वह सौजन्यता का कुछ निर्वाह करता है। (पर जो कोई सामाजिक अव्यवस्था की समीक्षा करता है, उसे निर्बल या निकट आता है या सत्ता की कठपुतली समझा जाता है या कारण), ∴ जो कोई सामाजिक अव्यवस्था की समीक्षा करता है, वह सौजन्यता का कुछ निर्वाह करता है।

(द) यदि कोई व्यक्ति सौजन्यता का कुछ निर्वाह करता है, तो उसे कुछ-न-कुछ दांव पर लगाना पडता है,

(यदि कोई व्यक्ति अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहा है, तो उसे सौजन्यता का कुछ निर्वाह करना पडता है),

∴ यदि कोई व्यक्ति कर्त्तव्य का पालन कर रहा है, तो उसे कुछ-न-कुछ दाँव पर लगाना पडता है।

यदि अ तर्निहित आधारवाक्य—कोष्ठ मे रखे गये—मान लिये जायँ, तो ये चारो युक्तियाँ वैध हैं।

१८ कथन (१), (३), (४), (५), (७) सभी तुल्य हैं, प्रत्येक इस निरूपाधिक कथन के तुल्य हैं, सभी निष्ठुर दुर्जन हैं। कथन (२) इस निरूपाधिक कथन के तुल्य हैं, कोई निष्ठुर दुर्जन नहीं हैं।

(६) स्वतत्र है तथा सभी दुर्जन निष्ठुर हैं के तुल्य हैं।

१९ (१) व्याघाती दोनो बातें हैं कि कविता ऐसे स्वाभाविक ढग से नही आती जैसे पेड मे पत्ते तथा न आने से उसका आना अच्छा है।

विपरीत यदि कविता ऐसे स्वाभाविक ढग से आती है जैसे पेड मे पत्ते, तो वह अच्छी आई है।

(२) व्याघाती · मैं निश्चित नही हूँ कि आप गलती कर रहे हैं।

विपरीत मैं निश्चित हूँ कि तुम सही हो।

(३) व्याघाती · या कुछ एन्डोजन्स समानातर पत्तियो वाले नहीं हैं या कुछ समानातर पत्तियो वाले पौधे एन्डोजन्स नही है।

विपरीत कोई एन्डोजन्स समानातर पत्तियो वाले पौधे नही हैं।

२०. नियमो के लिये नियम-सबधी अध्याय देखें।

(१) सिद्ध करना है कि ए ई ओ प्रत्येक आकृति मे वैध है

चूँकि साध्य आधारवाक्य सर्वव्यापी है, इसका उद्देश्य व्याप्त है और चूँकि यह निषेधात्मक भी है, इसका विधेय व्याप्त है, साध्य एव मध्य पद दोनो इस आधारवाक्य मे व्याप्त ह चाहे आकार प-म हो या म-प हो। चूँकि निगमन अशव्यापी है पक्ष पद व्याप्त नही है, अत पक्ष-आधारवाक्य स ई म, या म ई स, क्रम से एक के वाद एक प ए म या म ए प से सबद्ध किया जा सकता है। इस प्रकार यह विन्यास ए ई ओ प्रत्येक आकृति मे वैध है।

(२) * (अ) ओ आकृति I मे साध्य-आधारवाक्य नही हो सकता, क्योकि यदि यह वैसा होगा, तो पक्ष-आधारवाक्य अवश्य विधायक होगा, ऐसी हालत मे म पक्ष-आधारवाक्य मे अव्याप्त हो जायगा, इसलिये म साध्य-आधारवाक्य मे अवश्य व्याप्त होगा। पर, यह उद्देश्य है और ओ अशव्यापी है, इसलिये इसका उद्देश्य अव्याप्त है,

∴ओ आकृति I मे साध्य-आधारवाक्य नही हो सकता।

(ब) ओ आकृति I मे पक्ष-आधारवाक्य नहीं हो सकता, क्योकि यदि ऐसा हो, तो साध्य-आधारवाक्य अवश्य विधेयक और निगमन निषेधक होगा। किंतु, साध्य-आधारवाक्य मे प विधेय है, और यदि यह आधारवाक्य विधायक है, तो प अव्याप्त होगा, इस प्रकार अव्याप्त-साध्य-दोष हो जायगा।

∴ओ आकृति I मे पक्ष-आधारवाक्य नहीं हो सकता।

(स) ओ आकृति II मे साध्य-आधारवाक्य नही हो सकता, क्योकि एक आधारवाक्य को अवश्य निषेधक होना चाहिये (ताकि म, जो दोनो मे विधेय है, व्याप्त हो सके), और फलत निगमन निषेधक होगा, जिसका विधेय व्याप्त होगा, अर्थात् प। किंतु, प साध्य-आधारवाक्य मे उद्देश्य है। यदि इसे व्याप्त करना है, तो साध्य-आधारवाक्य को सर्वव्यापी होना चाहिये ∴ओ आकृति II मे साध्य-आधारवाक्य नही हो सकता।

---

* विद्यार्थियो को ध्यान देना चाहिये कि कुछ-कुछ भिन्न बहुत-सी रीतियाँ हैं, जिनके अनुसार इस प्रकार के प्रमाण दिये जा सकते हैं। ठीक एक तरह की शब्दावली महत्त्वपूर्ण नही है। इसलिये निम्नलिखित उत्तरो मे भिन्नताएँ जान-बूझ कर लायी गई है, ताकि प्रदर्शित हो जाय कि सगत बातें भिन्न-भिन्न तरह से कही जा सकती हैं। यहाँ से स, म, प क्रमश साध्य, मध्य, एव पक्ष पदो के लिये रखे जाएँगे। प्रमाण धीरे-धीरे कम विस्तार से कहे जाएँगे, क्योकि यदि एक बार किसी विद्यार्थी की समझ मे रीति आ गई है, तो उत्तरो मे दिये गये सकेतो को बैठाने मे कठिनाई नही होगी।

(द) ओ आकृति III पक्ष-आधारवाक्य नही हो सकता। आकृति I के लिये जो कारण है, वही यहाँ भी लागू होगा (देखे ऊपर व)।

(त) ओ आकृति IV मे साध्य-आधारवाक्य नही हो सकता, इसके लिये भी वही कारण है, जो आकृति II के लिये (देखें ऊपर स)।

(फ) ओ आकृति IV मे पक्ष-आधारवाक्य नही हो सकता, इसके लिये वही कारण है जो आकृति I के लिये। अतर केवल इतना है कि यहाँ पर अव्याप्त पद म होगा, जो किसी अशव्यापी पक्ष-आधारवाक्य का उद्देश्य होगा और किसी विधायक साध्य-आधारवाक्य का विधेय होगा और इस प्रकार दो मे से किसी मे व्याप्त नही होगा।

( ) इस साध्य को प्रश्न (२) मे दिये गये कारणो से सिद्ध किया जा सकता है। (ध्यान रहे कि यदि प विधेय है अर्थात् साध्य-आधारवाक्य म-प है। तो यह तभी व्याप्त होगा, जब साध्य-आधारवाक्य निषेधक हो। किन्तु, यदि कोई भी आधारवाक्य निषेधक है, तो प निगमन मे व्याप्त होगा)

(४) किसी आ प्रतिज्ञप्ति को निगमन के रूप मे पाने के लिये दोनो प्रतिज्ञप्तियो का विधायक होना आवश्यक है और पक्ष-आधारवाक्य को स व्याप्त करने के लिये सर्वव्यापक होना होगा। अत, पक्ष-आधारवाक्य अवश्य ही स$_{\text{आ}}$म होगा। इस आधारवाक्य मे म अव्याप्त है, इसलिये इसे साध्य-आधारवाक्य मे अवश्य व्याप्त होना चाहिये, जो विधायक है, अत साध्य-आधारवाक्य अवश्य सर्वव्यापी विधायक होगा, जिसका म उद्देश्य होगा। इसलिये न्यायवाक्य होगा म$_{\text{आ}}$प, स$_{\text{आ}}$म, स$_{\text{आ}}$प, और आधार वाक्यो का कोई दूसरा सयोग स$_{\text{आ}}$प नही दे सकता।

(५) इसकी तीन अवस्थाएँ हो सकती है

(अ) दोनो विधायक चूँकि म को दोनो मे व्याप्त करना है, इसलिये यह दोनो मे उद्देश्य होगा और आधारवाक्य अवश्य सर्वव्यापी होगे, स किसी विधायक आधारवाक्य का विधेय होगा और इस प्रकार अव्याप्त होगा, अत निगमन अवश्य ही स$_{\text{ई}}$प होगा।

(ब) एक विधायक एव एक निषेधक आधारवाक्य वे सम्मिलित रूप से तीन पद व्याप्त करते है, इनमे से दो पद अवश्य ही म हैं, और शेष प (क्योकि

निगमन अवश्य निषेधात्मक होगा)। इस प्रकार स व्याप्त नहीं हो सकता, अर्थात् निगमन अवश्य ही $स_{ओ}प$ होगा।

(स) दोनो आधारवाक्य निषेधक है · गुण के सामान्य नियम द्वारा खडित।

२१ $म_{ए}प$ को सिद्ध करना।

दोनो आधारवाक्य अवश्य सर्वव्यापी होगे, उनमे से एक विधायक और एक निषेधक, अर्थात् आधारवाक्य आ एव ए किसी भी क्रम मे होगे।

(i) मान ल कि साध्य ए है अर्थात् या तो $म_{ए}प$ या $प_{ए}म$। पक्ष तब अवश्य विधायक होगा, जिसका स व्याप्त है, यह अवश्य होगा $स_{आ}म$

(ii) मान लें कि पक्ष ए है अर्थात् या तो $स_{ए}म$ या $म_{ए}स$। तब साध्य अवश्य विधायक होगा जिसका प व्याप्त है, ∴ यह अवश्य होगा $प_{आ}म$।

इस प्रकार, $स_{ए}प$ विभिन्न चार विन्यासो मे सिद्ध हो सकता है, अर्थात्

(१)	(२)	(३)	(४)
$म_{ए}प$	$प_{ए}म$	$प_{आ}म$	$प_{आ}म$
$स_{आ}म$	$स_{आ}म$	$स_{ए}म$	$म_{ए}स$
∴ $स_{ए}प$	∴ $स_{ए}प$	∴ $स_{ए}प$	$स_{ए}प$

(नोट—(१) एव (२) मे साध्य, तथा (३) एव (४) मे पक्ष-आधारवाक्य एक दूसरे के सरल परिवर्ती है।

२२ मान लें कि ब बुद्धिमान और $\bar{ब}$ अबुद्धिमान व्यक्ति के लिये, तथा स विश्वसनीय और $\bar{स}$ अविश्वसनीय व्यक्ति के लिये आता है, तो दी हुई चारो प्रतिज्ञप्तियाँ निम्न रीति से प्रदर्शित हो सकती हैं

(i) $ब_{आ}क$, (ii) $\bar{ब}_{ए}स$, (iii) $क_{ओ}\bar{स}$ (iv) $\bar{स}_{ओ}क$। अब (ii) $\bar{ब}_{ए}स \equiv स_{ए}\bar{ब}$ (परि०) $\equiv स_{आ}ब$ (प्रति०) सयुक्त करे $स_{आ}ब$ को (i) $ब_{आ}क$ से, और इस प्रकार प्राप्त होता है बारबारा न्यायवाक्य $ब_{आ}क$, $स_{आ}ब$

∴ $स_{आ}$ क अव (iii) $क_{ओ}$ $\bar{स}$ ≡ $क_{ई}$ स (प्रति०), जो $स_{आ}$ क का परिमित परिवर्ती है।

अत (i) एव (ii) सयुक्त रूप से (iii) का आपादन करते है।

अब (iv) $\bar{स}_{ओ}$ क ≡ $\bar{स}_{ई}$ $\bar{क}$ (प्रति०), तथा $\bar{स}_{ई}$ $\bar{क}$ विपरिवर्तित वाक्य $अ_{आ}$ क का है, अत (i) एव (ii) सयुक्त रूप से (iv) का आपादन करते है, किंतु यदि $\bar{स}$ एव $\bar{क}$ की सत्ता है।

२३ (i) के अनुसार साध्य-आधारवाक्य विधायक हे और (ii) के अनुसार साध्य-पद इस आधारवाक्य मे व्याप्त है, तो इसलिये यह पद अवश्य उद्देश्य एव आधारवाक्य सर्वव्यापी होगा, अत अपेक्षित आधारवाक्य प $_{आ}$ म है। (ii) के अनुसार साध्य-पद निगमन मे व्याप्त कहा गया है, वह, इसलिये, अवश्य निषेधक होगा, और चूँकि (iii) के अनुसार पक्ष-पद निगमन मे अव्याप्त है, इसलिये निगमन अवश्य स $_{ओ}$ प होगा। चूँकि म, प $_{आ}$ म मे अव्याप्त है, इसलिये पक्ष-आधारवाक्य मे इसे अवश्य व्याप्त होना चाहिए, इसलिये इसे निषेधक होना चाहिये और जिसका स भी अव्याप्त हो (iii से), अत पक्ष-आधारवाक्य स $_{ओ}$ म है। इस प्रकार अपेक्षित न्यायवाक्य है प $_{आ}$ म, स $_{ओ}$ म, स $_{ओ}$ प (अर्थात् आ ओ ओ आकृति II मे)।

२४ बोचार्डो कुछ धनुर्धर ललित नहीं है, सभी धनुर्धर व्यायामी है, कुछ व्यायामी ललित नहीं है। विन्यास डारीरो मे तुल्य आधारवाक्यो से तुल्य निगमन प्राप्त करने के लिये, हमे आ प्रतिज्ञप्ति साध्य-आधारवाक्य के रूप मे चाहिये जिसके उद्देश्य एव विधेय स्थानतरित हो गये हो। किंतु, यह करना सभव नही है, क्योकि आ की परिवर्त्ती ई होता है, जो अतुल्य है और अन्य अशव्यापी आधारवाक्य के साथ कोई निगमन नही दे सकता। और भी कठिनाई है कि ओ प्रतिज्ञप्ति का परिवर्त्ती नही होता। अत, तुल्य-आधारवाक्यो को पाने के लिये हमे प्रतिवर्तन तथा परिवर्तन दोनो का प्रयोग करना होगा। अपेक्षित पग इस प्रकार है (१) मूल साध्य का प्रतिवर्तन करे, (२) इस प्रतिवर्त्ती का परिवर्तन करे, (३) आधार का अतर्विनियम कर, (४) इस प्रकार प्राप्त आधारवाक्यो से निगमन निकालें। यह न्यायवाक्य डारीरो मे होगा, (५) नीचे निगमन का परिवर्तन करे, (६) परिवर्ती का प्रतिवर्तन करें, इससे मूल निगमन प्राप्त हो जाता है।

(१) कुछ धनुर्धर ललित नही हैं ≡ कुछ धनुधर अललित है ।

(२) कुछ अललित व्यक्ति धनुर्धर है ।

(३) (साध्य) सभी धनुर्धर व्यायामी है,

(पक्ष) कुछ अललित व्यक्ति धनुर्धर हैं,

(४) कुछ अललित व्यक्ति व्यायामी है,

(५) ≡ कुछ व्यायामी अललित हैं,

(६) ≡ कुछ व्यायामी ललित नही हैं ।

२५ चूँकि हमे दिया हुआ है कि साध्य-आधारवाक्य सर्वव्यापी हे तथा पक्ष विधायक है, इसलिये हम पाते हैं कि आकृति I मे विन्यास की योजना मे अवश्य ठीक उतरना चाहिये ।

यदि प्रत्येक (या कुछ) क, र है (या नही है) और प्रत्येक (या कुछ) ज, क है, तब, प्रत्येक (या कुछ) ज, र है (या नही है) ।

असमवापत्ति मे हम निष्कर्ष को अस्वीकार करते है, इस प्रकार हमे आरेख प्राप्त होता है, प्रत्येक (या कुछ) ज, र नही है (या है) । दोनो आधारवाक्यो के लिये इसे क्रम से एक के बाद दूसरे से आरेख से सयुक्त करने पर, हमे मिलता है

(i) यदि प्रत्येक (या कुछ) ज, र नही है (या है)— पक्ष-आधारवाक्य

और प्रत्येक क, र है (या नही है) — साध्य-आधारवाक्य

तव, प्रत्येक (या कुछ) ज, क नही है ।— निगमन ।

(ii) यदि प्रत्येक (या कुछ) ज, र नही है (या है)—साध्य-आधारवाक्य

और प्रत्येक (या कुछ) ज, क है— पक्ष-आधारवाक्य

तो, कुछ क, र नही है (या है) — निगमन ।

(i) आकृति II के विन्यास देता है, जिनमे से प्रत्येक मे निगमन अवश्य निषेधक होगा, (ii) आकृति III के विन्यास देता है, जिनमे प्रत्येक मे निगमन अवश्य अशव्यापी होगा ।

२६ कोई आत्मविश्वासी व्यक्ति अपने से बडो को सलाह देने मे सकोची नही होता ।

सभी अच्छे शासक आत्मविश्वासी है ।

सभी सरकारी नौकरी वाले पदाधिकारी अच्छे शासक है,

• कुछ युवक अपने से बडो को सलाह देने मे सकोची नही होते ।
यह गोक्लीनियन सक्षिप्त प्रगामी तर्कमाला है ।
२७ प्राप्त सूचना आधारवाक्यो मे कही जा सकती है ।

स आ अ

व आ द

व ए स

अपेक्षित निष्कर्ष प्राप्त करने के लिये, इन आधारवाक्यो से अ ओ द या द ओ अ मे मे कम-से-कम एक प्रतिज्ञप्ति पाने मे हमे अवश्य समर्थ होना चाहिये । किंतु न तो द और न अ मूल आधारवाक्यो मे व्याप्त है, लेकिन अ ओ द मे द व्याप्त है, और द ओ अ मे अ व्याप्त है, अत इनमे से कोई निगमन प्राप्त नही किया जा सकता । इसलिये, इस प्रश्न का उत्तर नकारात्मक है ।

२८ नोट—इस प्रश्न के उत्तर मे आधारवाक्यो का केवल सक्षेप सकेत दिया जायगा) ।

(१) सभी उदार व्यक्ति मानोचित है । (अवैध, . अव्याप्त मध्य-पद)
वह मानोचित है,
∴ वह उदार है ।

(२) सभी एंग्ल—सेक्० जातियाँ स्वतन्त्रताप्रेमी है ।
सयुक्त राष्ट्र अमेरिका प्रेमी है ।
स० रा० अ० एक ऐंग्ल—सेक्० जाति है ।
(अवैध, अव्याप्त मध्य-पद)

(३) यह युक्ति अवैध है, क्योकि इसकी मान्यता है कि जो मैं अकेले नही कर सकता, उसे दूसरो के साथ भी नही कर सकता । यह दोष सग्रह-दोष के सदृश है ।

(४) सभी जो आलोचना नापसद करते हैं, भावुक होते हैं ।
सभी सगीतज्ञ भावुक होते हैं,
सभी सगीतज्ञ आलोचना नापसद करते है ।
(अवैध, ∴ अव्याप्त मध्य-पद)

(५) अवैध, क्योकि निगमन, दो पिंड, यदि उनके बीच मे कुछ न हो तो, अवश्य स्पर्श करेंगे, ऐसी बात मान लेता है जिसे अभी सिद्ध करना है, वह है पिंडो के बीच कुछ नही हो सकता, अर्थात् रिक्त स्थान असभव है। इस प्रकार इस तर्क मे आत्माश्रय-दोष हो जाता है।

(६) आप स्वीकार करते हें अपने बच्चो के लिये सपत्ति छोडी जा सकती है जो उनके बिना काम किये भी भरण-पोषण के लिये पर्याप्त हो, अर्थात् उत्तराधिकारियो को बिना काम किये, बिना कमाया हुआ धन प्राप्त करने की आज्ञा है।

आपका मत है किसी को बिना काम किये, बिना कमायी हुई सपत्ति नही लेनी चाहिये।

ये दो कथन व्याघाती हैं।

युक्ति वैध है।

(७) अत्याचार उचित नही है।

. अत्याचार को रोकने के लिय जो भी आवश्यक ह, वह उचित हे।

निष्कर्ष घटित नहीं होता, इसलिये शेष युक्ति अप्रासगिक है।

(८) शान्तिवादी, साधू, समाजवादी, मार्क्सवादी तथा वे जो स्कूल छोडने की उम्र बढाने के पक्ष मे हैं के लिये क्रमश प, क, स, म, र को प्रयोग कर दी गई सूचना को सक्षेप मे आधारवाक्यो के रूप मे रखा जा सकता है

क$_{\text{आ}}$प, $\bar{\text{प}}_{\text{ओ}}$क, म$_{\text{आ}}$स, स$_{\text{ओ}}$म,

प$_{\text{ई}}$र, स$_{\text{ई}}$र।

निष्कर्ष कहा जाता है · क$_{\text{ए}}$म एव $\bar{\text{म}}_{\text{ओ}}$क,

$\bar{\text{क}}_{\text{ई}}$र एव $\bar{\text{म}}_{\text{ई}}$र।

परीक्षा करने पर ज्ञात होता है कि निष्कर्ष घटित नही होता, यद्यपि चार अगभूत प्रतिज्ञप्तियो मे कोई भी, आधारवाक्यो $\bar{\text{क}}_{\text{ई}}$र ≡ र$_{\text{ओ}}$क, तथा $\bar{\text{म}}_{\text{ई}}$र ≡ र$_{\text{ओ}}$म के साथ असगत नही है, किंतु क़ एव म़, या क़ एव ऱ, या म़ एव ऱ, या उनके व्याघातियो को, आधारवाक्यो को किसी क्रम मे रख कर, उन्हे जोडने के किसी प्रयास मे अवैध व्याप्ति हो जायगी।

(९) मान ले कि वे जो परिश्रमी है के लिये स तथा वे जो बुद्धिमान हैं के लिये प है, तो, आप $स_{ए}प$ को अस्वीकार करते है, मैं $स_{आ}प$ एव $प_{आ}स$ को अस्वीकार करता हू।

अव, $स_{अ}प$ का अस्वीकार = $स_{ई}प$ का अस्वीकार तथा $स_{आ}प$ एव $प_{आ}स$ का अस्वीकार = या तो $स_{ओ}प$ या $प_{ओ}स$ का अस्वीकार।

प्रश्न है कि क्या ये दो निपेध इसके 'अनुकूल' कहे जायँगे कि 'कुछ परिश्रमी व्यक्ति वुद्धिमान हैं,' अर्थात् क्या $स_{ई}प$ सत्य है। $स_{ई}प$ से या तो $स_{ओ}प$ या $प_{ओ}स$ न तो आपादित होता है और न उसको आपादित करता है, किंतु ये सगत हैं। अत यदि '$स_{ई}प$ सत्य है से अनुकूल है' का अर्थ है '$स_{ए}प$ का अभिकथन नही करते', तो हम और आप सहमत है, यदि, लेकिन, 'अनुकूल, इत्यादि ' का अर्थ 'अभिकथन करता हूँ कि $स_{ए}प$ असत्य है', तो हम सहमत नही हैं।

(१०) यह युक्ति केवल इस अभिग्रह से वैध है कि यदि अ, व से अविच्छेद है तो अ की आवश्यकता रखना, व की आवश्यकता रखने को भी आपादन करता है। यह अभिग्रह स्पप्टत असत्य है।

(११) सभी मनुष्य अपना सुख चाहते हैं आपादन नही करता कि प्रत्येक मनुष्य सव का सुख चाहते हैं। अत, यदि यह मान भी लिया जाय कि जो सव के द्वारा चाही जाती है, वह अभीष्ट है तो भी यह नही घटित होता कि सव का सुख (सार्वभौम सुख) अभीष्ट है। निष्कर्ष आधारवाक्यो से सगत है (यदि यह मान लिया जाय कि दोनो सभव है अपना सुख चाहना तथा अन्य सभी व्यक्ति का सुख चाहना), किंतु यह अभिकथन करना कि आधारवाक्य निगमन का आपादन करते है, मग्रह-दोष मे पडना है।

(१२) कोई फैशनेवुल मत सूक्ष नही है।
कुछ सत्य मत सूक्ष है,
∴ कुछ फैशनेवुल मत सत्य नही है।

यह युक्ति अवैध है, यहाँ अव्याप्त-साध्य-दोष हो जाता है।

(१३) वर्गों मे आनेवाले मनुष्यो के लिये प्रारभिक अक्षरो का प्रयोग कर, इन प्रतिज्ञप्तियो को इस प्रकार प्रतीकात्मक ढग से रख सकते है (ध = धनी व = स्वस्थ, द = दुखी) :

$ध_{ओ}व$ एव $\bar{व}_{आ}द$, ∴ $व_{आ}द$ ।

अब $ध_{ओ}व \equiv ध_{ई}\bar{व}$, तब हमारा न्यायवाक्य होगा $\bar{व}_{आ}द$, $ध_{ई}\bar{व}$, ∴ $ध_{आ}द$, जिसमे अव्याप्त-पक्ष-दोप हो जाता है । किंतु 'धनी होना स्वस्थ होना नही हैं' अनेकार्थ है, इसका प्रयोग $ध_{ए}व$ का अभिकथन करने के लिये हो सकता है जो $ध_{आ}\bar{व}$ का प्रतिवर्तन कर देता है, तथा $ध_{आ}\bar{व}$ एव $\bar{व}_{आ}द$ आपादन करते हैं $ध_{आ}द$ का ।

(१४) इस युक्ति को सक्षेप मे इस प्रकार सूत्रबद्ध किया जा सकता है
यदि उद्यम की कमी हो जाती है, तो उद्योग की उन्नति नही होती ।
यदि प्रतिद्व द्विता नही रहती, तो उद्यम मे कमी हो जाती है ।
∴ यदि प्रतिद्व द्विता नही है, तो उद्योग की उन्नति नही होती ।

यह वैध है । ज्ञातव्य है कि वैधता इस अभिग्रह पर आधारित है कि 'प्रतिद्व द्विता' का दोनो कथनो मे बराबर बल है । इन दो बातो के भेद पर बल देना बहुत सगत हो सकता है कि विभिन्न उद्योगो मे प्रतिद्व द्विता का होना एव एक ही उद्योग मे विभिन्न कार्यकर्त्ताओ के बीच प्रतिद्व द्विता का होना (जैसे उजरती काम मे) मे भेद है ।

(१५) इस युक्ति का रूप है अधिकाश म, क है, अधिकाश म, स है, ∴ कुछ स, क है ।

यह वैध है, क्योकि 'अधिकाश' का अर्थ है 'आधा से अधिक', इसलिये दोनो आधारवाक्यो को सयुक्त रूप मे लेने से, मध्य-पद, म, अपनी व्याप्ति मे आ जाता है, अर्थात् व्याप्त हो जाता है ।

२६ उसकी आमदनी तुम्हारे से बडी है असममित, सचारी
मीरा, शीला का जोड़ुवा है सममित, असचारी
हेनरी VII, एलिजाबेथ का पूर्वज है असममित, सचारी ।
राम का व्याह सीता से हुआ है सममित, न-सचारी ।

७, ४२ का घटक है असममित, नसचारी यह फीता उस पोशाक के रग मे बिलकुल मेल खाता है सममित, सचारी ।

मोहिनी श्याम की चाची है असममित, असचारी ।

मोहन सोहन के कर्ज मे है असममित, न-सचारी ।

किसी वैध न्यायवाक्य मे निगमन की असत्यता, कम-से-कम एक आधार-वाक्य की असत्यता का आपादन करती है नसममित, सचारी ।

दुष्यन्त शकुतला का प्रेमी नसममित, नसचारी ।

३० (i) का नौकर, की सतान, (ii) पिता के सबसे वडे पुत्र, दूना, (iii) का चचेरा भाई, का सौतेला बाप ।

(i) सुशील प्रमोद का मालिक है, (ii) १०,२० का आधा है, (iii) उर्मिला राजेंद्र की सौतेली बहन है ।

३१ देखें अध्याय ५ § २, § ४,५

३२ (१) न फासिस्ट इटैलियन $\neq 0$

(२) न-बहादुर व्यक्तियो का यश के पात्र होना $= 0$

(३) दीर्घजीवी तितली $= 0$

(४) न-विधि-विषयक विशेषज्ञो के द्वारा ससद् के अधिनियम का प्रारूप तैयार करना $= 0$

३३ देखे (सबधित अध्याय)

३४ देखें (सबधित अध्याय)

३५ (i) $स_{आ}$ प, दिये गये अभिग्रह से कथन करता है कि स $\bar{प} = 0$, जब कि $प_{ओ}$ $\bar{स}$ कथन करता है $\bar{स}$ प $\neq 0$, किंतु $स_{आ}$ प, प के या $\bar{स}$ के अस्तित्व का आपादन नही करता, अत अनुमान अवैध है ।

(ii) $म_{आ}$ प कथन करता है म $\bar{प}$, $= 0$ एव $स_{आ}$ म कथन करता है स $\bar{म} = 0$ जबकि निगमन $स_{ई}$ प कथन करता है स $\bar{प} \neq 0$ किंतु आधारवाक्य, स (अर्थात् पक्ष-पद के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिये पर्याप्त नही हैं, अत अनुमान वैध है ।

(iii) $प_{ए}$ स कथन करता है प स $= 0$, जबकि $\bar{स}_{ई}$ $\bar{प}$ कथन करता है $\bar{स}$ $\bar{प} \neq 0$, पर यदि कोई वस्तु प एव स दोनो नही है तो,
या तो प $= 0$ या स $\neq 0$, फलत $प_{ए}$ स आपादन करता है $\bar{स} \neq 0$ जब तक प कुछ नही है । किंतु, यदि $= 0$, तो प $\neq 0$ इससे घटित होता है कि $\bar{म}_{ई}$ $\bar{प}$, और इस प्रकार अनुमान वैध है ।

३६. देखें अध्याय ६ § २, ३

३७. देखें अध्याय ६ § ४

३८ देखें अध्याय ६ § २ 'बुद्धिसंगत बनाना' क्या है ? स्कूल के विद्यार्थी द्वारा पूछे गये इस प्रश्न के उत्तर मे, सदर्भ को निश्चित करना आवश्यक है, क्योंकि सामान्य व्यवहार मे वाचिक रूप बुद्धिसगत बनाना (Rationalise) पूर्णत· स्वतत्र तीन अर्थ रखता है और चौथा अर्थ भी होता है जिससे, टेढे-मेढे ढग से, अन्य तीनो अर्थ निकाले गये हैं। केवल सदर्भ ही तय कर सकता है कि कौन अर्थ सगत है (इन अर्थों के लिये कोई शब्द-कोष देखें, जैसे मूल शब्द का प्रयोग गणित मे, अर्थशास्त्र मे, मनो-विश्लेषण मे। किसी शब्द की ठीक व्याख्या के लिये उसके प्रयोग को निर्देशित करनेवाले उदाहरण देना आवश्यक है, क्योंकि जब तक हम किसी शब्द को विभिन्न वाक्यो मे प्रयोग करना नही जानते, तब तक हम उसे नही समझते।)

३९. याद रखना चाहिये कि किसी शब्द की बहुत-सी परिभाषाएँ दी जा सकती है और बहुत से आगतुक गुण एव गुणार्थज धर्म होते हैं। निम्नलिखित निदर्शी दृष्टात है

	जाति	अवच्छेदक	गुणार्थजधर्म	आगतुकगुण
(i)	(वायुयान-चालक) मनुष्य	वायुयान चलाने की क्षमता रखनेवाला	जिसे तु गतामापी का ज्ञान हो	आइ० ए एफ० का सदस्य
(ii)	(सॉनेट) कविता	जिसमे १४ दशाक्षरी लाइन हो, एक भाव की अभिव्यक्ति करता हो	तुकात कविता	तुकात कविता की बनावट हो a b b a c d c d c d.
(iii)	(स्कूनर) पाल-पोत	जिसके आगे और पीछे वाले भाग मे मस्तूल-पाल आदि की सज्जा हो	जिसमे मस्तूल हो	जिसमे कोई भारतीय कप्तान हो।
(iv)	राज कारीगर	फर्श तैयार करने मे लगाया गया	भुजा वाला	जापानी है
(v)	(विज्ञप्ति)	सरकारी	राष्ट्रीय महत्त्व वाली वस्तुओ के बारे मे	जिसका विषय निराशाजनक है।

४० (१) अतिव्याप्त, परिभाषा, इसमे अवच्छेदक की आवश्यकता है—जिसकी चारो भुजा बराबर हैं। (२) अव्याप्त परिभाषा, क्योकि सूत कातना रुई तक ही सीमित नही है। इसके अतिरिक्त भी अर्थ है (और अब स्पष्ट समझा जाता है) कि 'अविवाहिता स्त्री'। (३) सतोषजनक (४) इसमे गलती है कि अज्ञात की परिभाषा सभवत और अधिक अज्ञात से दी गई है। परि० 'कपन के साथ चमकना, अथवा, आतरायिक प्रकाश'। (५) अव्याप्त परिभाषा, क्योकि सैन्य कौशल का अभाव हो सकता है। परि० · 'फौज मे काम करनेवाला मनुष्य'।

४१. जहाज वर्ग-नाम है। इसका प्रयोग समुद्र मे चलनेवाले भिन्न-भिन्न प्रकार के जहाजो के लिये होता है, अत जहाज के वस्त्वर्थ मे बहुत से उपवर्ग आते हैं, जहाज का गुणार्थ है 'समुद्र मे चलने वाला बडा जहाज।' यदि उपवर्गो को क्रमबद्ध वर्गीकरण रखा जाय तो किसी भी उपवर्ग का वस्त्वर्थ उसके अतिवर्ग से छोटा होगा, किंतु उपवर्ग का गुणार्थ बड़ा होगा, क्योकि इसके गुणार्थ मे वह गुण (या वे गुण) आ जायगा जिससे एक उपवर्ग दूसरे सह-उपवर्ग तथा अतिवर्गो से भिन्न हो जायगा। उदहरणार्थ, सेलिंग-शिप से स्टीम-शिप भिन्न है, इत्यादि, और इसमे अवच्छेदक गुण सेलिंग जुट जाता है। फिर उपवर्ग ब्रिगटाइन से स्कूनर तथा ब्रिग्स भिन्न हो जाते है, इत्यादि, और सेलिंग-शिप मे अवच्छेदक दो मस्तूल वाला जुट जाता है—ब्रिग का फोरमास्ट, स्क्वायर रिंड, स्कूनर का मुख्य मास्ट, फोर-ऐंड आफ्ट रिंड।

४२ स्पष्टत हमे ऐसे एक वर्ग की आवश्यकता है जो तालिका मे नही है, जिसके अदर साहित्यिक कृत्य तथा वैज्ञानिक शोध-प्रबध अपना उचित स्थान पा सके। निम्नलिखित एक सभव व्यवस्था है

तर्क-दृष्टि से यह असतोषजनक व्यवस्था है, किंतु यह समझ मे आना कठिन है कि एक ही वर्गीकर्णीय तालिका मे विभिन्न वर्गो के वर्गीकरण से क्या कोई अच्छा प्रयोजन सिद्ध होता है। आलोचना निर्दशित करने के लिये, आवश्यक अतिवर्गो की लुप्ति को सूचित करने के लिये, प्रश्नवाची चिह्न रख दिया गया है। व्यक्तियो को जैसे ओरिजन आव् स्पीसीज, तालिका मे सम्मिलित करना किसी वर्गीकर्णीय व्यवस्था को भ्रातिपूर्ण बना देना है।

इस पर अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि वर्गीकरण के लिए उपवर्गो के स्वरूप मे साम्य होना अति आवश्यक है।

४३ देखें अध्याय ६ § २। ध्यान देने की मुख्य बात है (i) वह दृष्टि जिसके अनुसार साधारण व्यक्तिवाचक नामो मे गुणार्थ नही होता, किंतु शब्दकोश का अर्थ समान्यत गुणार्थक होता है, (ii) साधारण व्यक्तिवाचक नामो का सार्थक प्रयोग वक्ता के ज्ञान पर आश्रित है, क्योकि बहुत से वर्णन सचमुच उस नाम वाले व्यक्ति का चित्रण करते हैं।

(?)
असाहित्यिक गद्य कृत्य
साहित्यिक कृत्य
ऐतिहासिक
वैज्ञानिक
वर्णनात्मक
कथा साहित्य
कविता
नाटक
?
?
ओरिजनल अव् स्पीसीज
प्रिंसिपुल्स अव् जियालॉजी
मोल फ्लैंडर्स
एलिस इन वंडरलैंड
महाकाव्य की
गीतकाव्य को
सुखातिकी
सबोध गीति
चतुर्दश पदी
अष्ट पदी
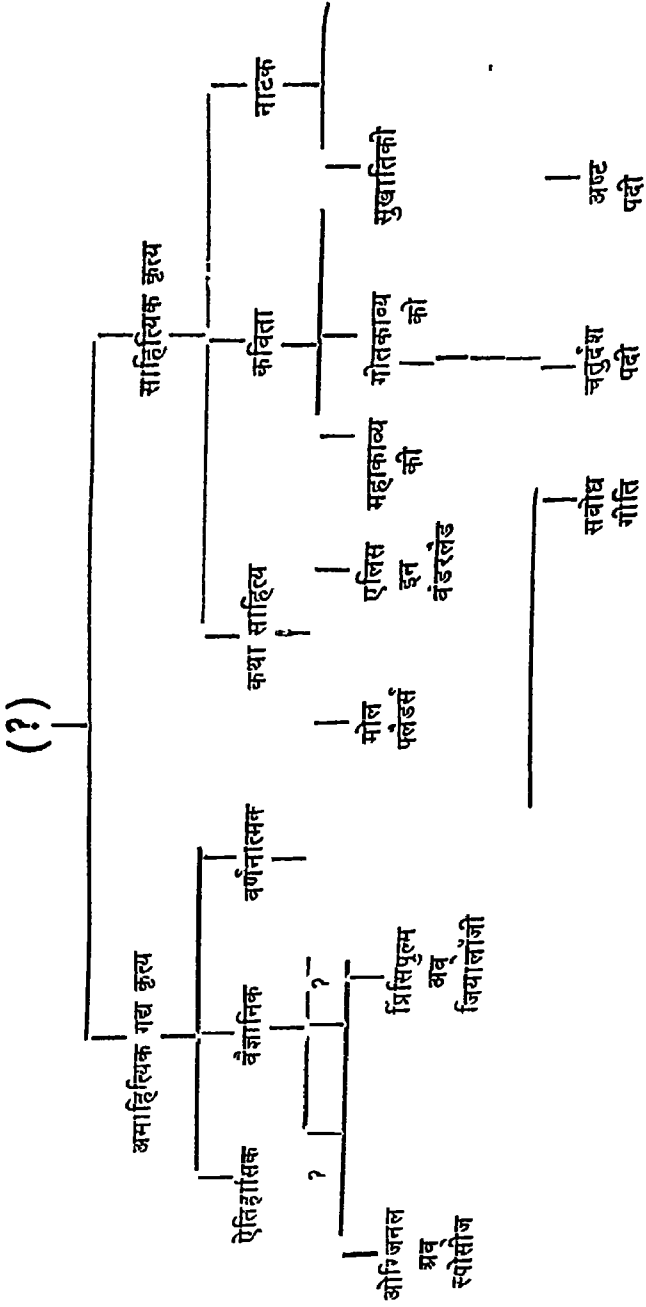
४४ देखें, अध्याय १ § ५ अध्याय ७ § १

४५ देखें, अध्याय ७ § २

४६. देखें, अध्याय ७ § ३

४७. देखें, अध्याय ७ § ४

४८. देखें, अध्याय ८ § १

४९. (१) इंद्रियानुभाविक प्रतिज्ञप्ति स्वीकार है कि 'मंदिर' के अर्थ को लेकर सहमति है, किंतु अपेक्षित साक्ष्य प्रेक्षण मूलक है। इसे प्रमाणित करने के लिये 'शब्द-प्रमाण' का प्रयोग हो सकता है, पर इसकी सत्यता को घोषित करनेवाले शब्द किसी स्तर पर प्रेक्षण पर अवश्य आश्रित रहे होंगे।

(२) परिभाषा से ही यह कथन सत्य है, अत जिस साक्ष्य की अपेक्षा है वह यहाँ दिया हुआ है, किंतु वर्ग की परिभाषा कर लेनी चाहिये।

(३) कार्य-कारण सिद्धांत प्राकृतिक घटनाओं के लिये प्रेक्षण एवं अभिग्रह साक्ष्य उपस्थित करते है।

(४) इन दो प्रतिज्ञप्तियो मे दूसरी पहले से निकलती है, क्योंकि "उससे लंबा है" का अर्थ दूसरी का आना आवश्यक कर देता है।

(५) पुनरुक्ति।

(६) उदाहरण (१) की भाँति इस प्रतिज्ञप्ति को भी सिद्ध करने के लिये प्रेक्षण पर्याप्त होगा। यह परोक्ष प्रेक्षण विधियो द्वारा भी प्रमाणित हो सकता है। ऐसी अवस्था में छाया के माप पर आश्रित होगा। वस्तुत पृथ्वी पर रहने वाले किसी व्यक्ति के लिये इसकी सत्यता या असत्यता की जाँच करना संभव नही है, क्योंकि चंद्रमा के दूसरे बगल के प्रेक्षण के लिये हमारे पास कोई व्यावहारिक रीति नही है। किंतु, यह बात अपेक्षित साक्ष्य के तार्किक महत्त्व को तनिक भी कम नही करती।

(७) प्रेक्षण एवं प्रयोग, गणित-निगमन के साथ।

(८) यह पुनरुक्ति है, परिभाषा से सत्य है।

(९) यह भी (८) की तरह है।

(१०) केवल सरल आगमन द्वारा यह सिद्ध हो सकता है (देखें अध्याय ९, § १)। दो व्यक्तियो के अंगूठे के निशान एक ही से हो, यह तार्किक असंभावना नही, किंतु प्रमाण का बाहुल्य प्रतिज्ञप्ति की स्वीकृति को तर्कसंभव बनाने के लिये पर्याप्त है।

५०. देखे, अध्याय ८ § ५

५१. देखे, अध्याय ८ § ४

५२ (i) कल वर्षा होगी। प्रश्न ४६ मे दिये गये (१), (३), (६), (१०) एव (७) से उदाहरण मिल जाते हैं।

(ii) समकोण त्रिभुज मे कोण समकोण होते हैं। प्रश्न ४६ के (२), (४), (५), (८), (९) मे उदाहरण दिये गये हैं।

(iii) लाल गुलाब लाल नहीं है। विधुर (Widower) की पत्नी ने पुकारा है। छह का पचगुना चालीस होता है।

५२ नोट—आपकी परिभाषा मे उन सभी विषयो का उल्लेख होना चाहिये जिनकी आपकी समझ से, तर्कशास्त्रियो को अध्ययन करना चाहिये तथा क्षेत्र के बाहर के विषय उसमे सम्मिलित न किये गये हो।

हिंदी–अंग्रेजी शब्दावली

अणु प्रतिज्ञप्ति	Molecular Proposition
अधितार्किक	Metalogical
अतर्वस्तु	Content
अतर्विनिमय	Transposition
अन्वय	Agreement
अन्वयाभाव	Disagreement
अनवस्था दोष	Regressus ad infinitum
अनेकार्थक	Ambiguous, Equivocal
अनिवार्य प्रतिज्ञप्ति	Necessary Proposition
अनुक्रम	Sequence, Succesion
अनुकूलन	Adaptation
अनुमान	Inference
अनुवर्ती	Consequent
अनुरूपता	Conformity
अपरिभाष्य	Indefinable
अभिकथन	Assertion
अभिगृहीत	Assumption
अभिनियम	Canon

अभिलेख	Record
अमूर्त	Abstract
अमूर्तकरण	Abstraction
अवच्छेदक	Differentia
अव्याप्त	Undistributed
अवशेष	Residuum
अवैध	Illicit, Illegitimate
आकस्मिक गुण	Accidens
आकृत्यंतरण	Reduction
आकृति	Figure
आकृतिकल्प	Schema
आकार	Form
आकारिक सत्यता	Formal Truth
आगमन	Induction
आगमनात्मक	Inductive
आधारवाक्य	Premise
आप्तवचन	Authority
आपातिक	Contingent
आपाद्य	Implicate
आपादक	Implicans
आपादन	Implication
आपादनात्मक	Implicative
उत्तर-न्यायवाक्य	Epi-Syllogism
उपजाति	Species
उपनिगमन	Corollary
उपविपरीत	Sub-Contrary
उपवैपरीत्य	Sub-Contrariety
उपाधि	Condition

उपाश्रित	Subalternate
उभयत पाश	Dilemma
उभयत पाश-विनिर्मुक्ति	Escaping between the horns of a dilemma
एकव्यापी निर्णय	Singular Judgment
एकरूप	Uniform
एकरूपता	Uniformity
एकार्थक	Univocal
औचित्य	Justification
कथन	Statement
कामेनेस	Comenes
कामेस्ट्रेस	Comestres
कार्य	Effect
कार्य-कारण सबध	Connexion
केलारेंट	Celarent
केसारे	Cesare
गुण	Quality
गुणार्थ	Connotation
घटक	Comaponent
चिह्न	Mark
जाति	Group
डाटीसी	Dotisi
डाराप्टी	Darapti
डारीरी	Dariri
डीसामीस	Disamis
तत्त्व	Element
तथ्य	Fact
तक	Reasoning

तर्कदोष	Fallacy
तर्कशास्त्र	Logic
तालिका	Table
दृष्टात	Illustration
द्विक	Dyad
द्विकीय	Dyadic
न्यायवाक्य	Syllogism
नि सबध	Non-relational
निगमन	Deduction
निगमनात्मक	Deductive
नियत	Invariable
निर्णय	Judgment
निर्देश	Reference
निर्देश्य	Referent
निरपेक्ष	Absolute
निरूपाधिक	Unconditional
निष्कर्ष	Conclusion
निषेधक	Negative
निषेधकहेतुफलानुमान	Modas Tollens
प्रणाली	Method
प्रतिपरिवर्तन	Contraposition
प्रतिपरिवर्तित	Contrapositive
प्रतिपादन	Exposition
प्रतिवर्त्य	Obvertend
प्रतिवर्तन	Obversion
प्रतिवर्तित	Obverse
प्रतिस्थापन	Substitution

प्रतिज्ञप्ति	Proposition
प्रतीक	Symblol
प्रमाण	Proof
प्रसंगापत्ति	Reductis ad absurdum
प्रसंभाव्य	Probable
प्राक्कल्पना	Hypothesis
प्राक्कल्पनात	Ex-Hypethesis.
प्रेक्षण	Observation
पद	Term
पद्धति	System
पदायोग्य शब्द	Acategorematic word
परंपरा	Tradition
परिणाम	Consequence
परिभाष्य	Definiendum
परिभाषक	Definniens
परिमाणन	Quantification
परिवर्तन	Conversion
परिवर्तित	Converse
पुनरुक्ति	Tantology
पूर्व-न्यायवाक्य	Pro-Syllogism
पूर्ववर्त्ती	Anteeedent
फ्रेसीसन	Fresison
फेरीयो	Ferio
फेरीसोन	Ferison
फेस्टीनो	Festino
फेसापो	Fesapo
बहस	Discussion

बार्बारा	Barbara
ब्रामान्टीप	Bramantip
बारोचो	Baroco
बोचार्डो	Bocardo
भाव	Being
मध्य-पद	Midle term
मुख्य	Major
युक्ति	Argument
योजक	Copula
व्यक्त	Explicit
व्यतिरेक-प्रणाली	Method of Difference
व्यष्टि	Individual
व्याघात	Contradiction
व्याप्ति	Distribution
वर्ग	Class
वर्गीकरण	Classification
वर्णन	Description
वस्त्वर्थ	Denotation
वस्त्वर्थक	Denotalative
वास्तव कारण	Vera Causa
वास्तविक सत्यता	Material truth
विचार	Thought
विधायक	Affirmative
विधायक हेतुफलानुमान	Modus Ponens
विधेय	Predicate
विधेय-धर्म	Predicable
विन्यास	Mood

विपरिवर्तन	Inversion
विपरिवर्त्य	Invertend
विपरिवर्तित	Inverse
विपरीत	Contrary
विभाजनाधार	Fundamentum divisionis
विभाग	Division
वियोजक	Disjunctive
वियोजन	Disjunction
विरोध	Opposition
विरोधचतुरस्र	Square of Opposition
विरोधाभास	Paradox
विशेष	Particular
विशेषता	Characteristic
विस्तार	Extension
वैध	Legitimate
वैपरीत्य	Contrariety
शब्द-प्रमाण	Testimony
शिरोरेखा	Bar
स्वतः-प्रामाण्य	Self-evidence
स्वतोव्याघात	Self-contradiction
स्वयंसिद्ध	Axiom
सत्य	Truth
सत्यापन	Verification
सदोष	Fallacious
संख्या	Number
संगति	Consistency
संचारी	Transitive

संप्रत्यय	Concept
संप्रत्ययात्मक	Conceptual
संपाती	Coincident
संमिश्र	Composite
संबंधात्मक प्रतिज्ञप्ति	Relational Proposition
संबंधी	Relatum
संश्लेषात्मक	Synthetic
संहति	Composition
संक्षिप्त प्रगामी तर्कमाला	Sorite
संक्षिप्त प्रतिगामी तर्कमाला	Epicheirema
सममित	Symmetrical
सममिति	Symmetry
समूह	Group
सर्वव्यापी	Universal
सहकार्य	*Coeffect*
सह-घटना	Occurrence
सहपरिवर्तन	Concomitance
सहविस्तृत	Co extensive
सहसंबंधी	Correlative
साकल्य	Whole
साध्य	*Probandum*
साध्य-आधारवाक्य	Major Premise
साधन	Probans
सामान्यीकरण	Generalization
सामान्यीकृत	Generalized
सामान्य बुद्धि	Common Sense
सिद्धांत	Principle
सोपाधिक	Conditional
श्रद्धामूलक युक्ति	Argument Verecundum